Title

महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा.

की

पी-एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत

गोस्वामी हरिराय

और

उनका व्रजभाषा-साहित्य

(शोध - प्रबन्ध)

निर्देशक

डा० दयाशंकर शुक्ल

एम० ए०, पी-एच० डी०

हिन्दी-विभाग

म० स० विश्वविद्यालय, बड़ौदा ।

प्रस्तोता

विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी

अप्रेल, १९७३

GOSWAMI HARIRAY AUR UNKA BRAJBHASHA - SAHITYA

—॥ गोस्वामी हरिराय जी ॥—

जन्म सं १६४७ वि०

गोलोकवास सं १७७२ वि.

अनुक्रम Content :

प्राक्कथन	--	पृष्ठ-	8
विषयानुक्रम	--	पृष्ट-	15
प्रथम -अध्याय	--	पृष्ठ-	16
द्वितीय- अध्याय	--	पृष्ठ-	57
तृतीय - अध्याय	--	पृष्ठ-	104
चतुर्थ - अध्याय	--	पृष्ठ-	222
पँचम् - अध्याय	--	पृष्ठ-	321
षष्ठ - अध्याय	--	पृष्ठ-	363
सप्तम् - अध्याय	--	पृष्ठ-	419
अष्टम् - अध्याय	--	पृष्ठ-	440
नवम् - अध्याय	--	पृष्ठ-	475
परिशिष्ट	--	पृष्ठ-	497

Introduction

--|| प्राक्कथन ||-----0

गोस्वामी हरिराय जी का जन्म संवत् १६४७ में हुआ था। उन्होंने एक सौ पच्चीस वर्ष की पूर्णायु प्राप्त की थी, इस प्रकार वह भक्ति एवं रीति-काल की संक्रमण-सीमा के साहित्यकार थे।

गोस्वामी हरिराय जी ने लगभग एक सौ छियासठ ग्रन्थ संस्कृत में लिखे थे, इसके अतिरिक्त उन्होंने शताधिक ग्रन्थों का ब्रजभाषा में भी प्रणयन किया था। ब्रजभाषा में उन्होंने गद्य-पद्य, दोनों विधाओं में विपुल साहित्य की सृष्टि की थी। उनके सहस्राधिक पद, कृष्ण-लीलाओं की विविध मनोहारिणी झाँकियाँ प्रस्तुत करते हैं। उनके लिखे हुए, पंजाबी, गुजराती, मारवाड़ी, राजस्थानी, तथा खड़ी-बोली में भी कुछ पद मिलते हैं।

'महाप्रभु' तथा 'प्रभुचरण' की उपाधि से विभूषित गोस्वामी हरिराय जी, पुष्टि-मार्ग की आचार्य-परम्परा में जन्मे एक यशस्वी पुरुष थे, जिन्होंने अपनी प्रांजल मेधा से, अपने विशिष्ट व्यक्तित्व से तथा गौरव-मंडित वाणी से हिन्दी-संसार को प्रभावित किया था। भारत वर्ष के विभिन्न स्थलों पर परिभ्रमण कर उन्होंने अपने उदात्त अभिव्यक्ति-सामर्थ्य से पुष्टि-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का प्रसारण किया और हिन्दी-साहित्य के भंडार को अनेक अनुपम कृतियों से सम्पन्न बनाया।

ब्रजभाषा गद्य-साहित्य के सूत्रकार गोस्वामी हरिराय जी ने 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना कर ब्रजभाषा-गद्य को साहित्य

की भाषा बनने का गौरव प्रदान किया। वार्ताओं के माध्यम से उन्होंने दुरूह सैद्धान्तिक प्रसंगों को भी लोक-वाणी के समानुकूल प्रेषित कर, उसे जन-जन की रागात्मक - वृत्ति से संश्लिष्ट कर दिया।

प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक को, गोस्वामी हरिराय जी के ब्रजभाषा साहित्य पर कार्य करने की प्रेरणा, सर्व प्रथम ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि, श्री गोविन्द जी चतुर्वेदी से प्राप्त हुई। पूज्य चतुर्वेदी जी ने गोस्वामी हरिराय जी के विपुल ग्रन्थ-राशि का संकेत करते हुए, उनमें से कुछ ग्रन्थों के प्राप्ति-स्थलों का भी निर्देश किया, जिससे लेखक अधिक उत्साहित हुआ।

मथुरा में आचार्य जवाहरलाल चतुर्वेदी से अनुसंधाता ने भेंट की और अपने शोध-विषय की इनसे चर्चा की। इन्होंने अपनी संकलित सामग्री के आधार पर गोस्वामी हरिराय जी के ग्रन्थों की एक लम्बी सूची दिखलाई और कहा कि ये सभी ग्रन्थ कांकरौली के सरस्वती भण्डार में उपलब्ध हैं।

श्री प्रभुदयाल जी मीतल द्वारा संपादित 'गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य' नामक ग्रन्थ, बजरंग पुस्तकालय, मथुरा से प्राप्त हुआ। श्री मीतल जी ने इस ग्रंथ की आधार-प्रतियों के संबंध में भी लेखक को पूर्ण निर्देश दिये। बृन्दावन के श्री रतनलाल जी गोस्वामी के यहाँ भी गोस्वामी हरिराय जी के कुछ ग्रन्थ प्राप्त हुए। बजरंग पुस्तकालय के संचालक श्री निरंजन देव शर्मा के द्वारा भी लेखक को गोस्वामी हरिराय जी के कुछ ग्रन्थ उपलब्ध हो सके!

गोस्वामी हरिराय जी का अधिकांश साहित्य अप्रकाशित है और वह कांकरौली में उपलब्ध है, यह सूचना पाकर, मैं कांकरौली गद्दी के आचार्य गोस्वामी १०८ श्री ब्रजभूषण लाल जी महाराज के पास बड़ौदा आया और अपने अभीष्ट-विषय की इनसे चर्चा की। इनसे भी मुझे यही विदित हुआ कि गो० हरिराय जी का अधिकांश साहित्य इनके कांकरौली स्थित ग्रन्थागार में सुरक्षित है। कांकरौली गद्दी के इन आचार्य महानुभाव

से प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक का सम्बन्ध पीढ़ी दर पीढ़ी से रहा है । आचार्य श्री ब्रजभूषण लाल जी महाराज अधिकतर बड़ौदा में ही निवास करते हैं । अत: इनसे निरंतर सम्बन्ध बनाये रखने के लिए लेखक को अपना कार्य-क्षेत्र बड़ौदा ही अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ । परिणाम-स्वरूप अपने मित्र नन्दलाल चतुर्वेदी की सहायता से मेरा विषय म० स० विश्वविद्यालय में डा० दयाशंकर शुक्ल के निर्देशन में पंजीकृत हो गया ।

गोस्वामी हरिराय जी का साहित्य कांकरौली के अतिरिक्त नाथद्वारा, कोटा, वृन्दावन आदि स्थानों से भी प्राप्त हुआ है । अपनी शोध-यात्रा में गो० हरिराय जी की विपुल ग्रन्थ-राशि के दर्शन हुए । यह सोचकर आश्चर्य मिश्रित खेद हुआ कि गोस्वामी हरिराय जी का ब्रज-भाषा-काव्य अभी तक हिन्दी जगत में चर्चित नहीं हो पाया ।

गोस्वामी हरिराय जी के विषय में हिन्दी साहित्य के अनेक विद्वानों ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं । इनमें स्वर्गीय श्री द्वारकादास परिख, श्री प्रभुदयाल जी मीतल, श्री जवाहर लाल चतुर्वेदी, डा० रामकुमार वर्मा, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, मिश्रबन्धु, डा० दीनदयालु गुप्त, डा० मुंशीराम शर्मा, डा० ब्रजेश्वर वर्मा, डा० हरिहर नाथ टंडन प्रभृति विद्वानों का नाम उल्लेखनीय है । श्री प्रभुदयाल जी मीतल तथा श्री द्वारकादास परिख ने गो० हरिराय जी के विषय में विशेष रुचि प्रदर्शित की है, किन्तु गोस्वामी हरिराय जी का बहुत-सा साहित्य अब तक अज्ञात बना रहा, जिसको समाविष्ट कर सर्वांगीण रूप से प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में प्रथमबार प्रस्तुत किया जा रहा है ।

अध्ययन की सुविधा के लिए प्रस्तुत प्रबन्ध को नौ अध्यायों में विभाजित किया गया है ।

प्रथम अध्याय में गोस्वामी हरिराय जी के साहित्य की पृष्ठभूमि स्पष्ट की गई है । साहित्यकार का कृतित्व उसके युगीन वातावरण से पर्याप्त प्रभावित रहता

है, गोस्वामी हरिराय जी का साहित्य भी उनके युग से सम्बद्ध रहा है, एतदर्थ इस अध्याय में गोस्वामी हरिराय जी की समकालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों को स्पष्ट किया गया है। परिस्थितियों का तारतम्य वल्लभ सम्प्रदाय के आचार्यों से निरंतर बनाये रखने का यत्न किया गया है। इस प्रकार का अध्ययन लेखक का निजी प्रयास है।

द्वितीय अध्याय में गोस्वामी हरिराय जी के जीवन-चरित्र पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इस विषय को स्पष्ट करने के लिए अनेक सहायक ग्रन्थों का भी आधार लिया गया है। व्यक्तित्व निरूपण में लेखक के निजी विचार भी देखे जा सकते हैं।

तृतीय अध्याय में गोस्वामी हरिराय जी के ब्रजभाषा कृतित्व का विवरण दिया गया है। उनके द्वारा रचित ग्रन्थों का पृथक्-पृथक् परिचय देकर उनका परीक्षण भी किया गया है। गोस्वामी हरिराय जी के समग्र-कृतित्व पर विवरणात्मक अध्ययन इस ग्रन्थ के माध्यम से प्रथम बार ही प्रस्तुत हुआ है, जिससे ग्रन्थ की मौलिकता बढ़ी है।

चतुर्थ अध्याय में गोस्वामी हरिराय जी के कृतित्व का वर्ण्य-विषय स्पष्ट किया गया है। अध्ययन की सुगमता के लिए इस 'वर्ण्य विषय' नामक अध्याय को तीन खण्डों में विभक्त किया गया है। प्रथम खण्ड में गोस्वामी हरिराय जी की भक्ति परक पद्य रचनाओं का वृत्त स्पष्ट किया गया है। द्वितीय खण्ड में श्रृंगार-परक व प्रशस्ति-परक पद्य रचनाओं के वर्ण्य की विवेचना की गई है, तथा तृतीय खण्ड में गोस्वामी हरिराय जी के गद्य-ग्रन्थों का वर्ण्य-विषय प्रस्तुत किया गया है। गो० हरिराय जी के ग्रन्थों की वर्ण्य विषयक विवेचना लेखक की अपनी देन है।

पंचम् अध्याय में गोस्वामी हरिराय जी के काव्य की भाव सम्पदा का विश्लेषण किया गया है तथा अनेक उदाहरणों द्वारा उनके काव्य में विविध रसों की

स्थिति स्पष्ट की गई है। गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में प्रमुखत: वात्सल्य, श्रृंगार एवं शान्त-रस का ही निर्वाह हुआ है। इस अध्याय में इन रसों का पृथक्-पृथक् अध्ययन किया गया है। भाव एवं रस की शास्त्रीय विवेचना छोड़कर शेष मूल्यांकन-पक्ष लेखक का अपना प्रयास है।

षष्ठ अध्याय में गोस्वामी हरिराय जी के काव्य के कला-पक्ष की विवेचना की गई है। इसमें काव्यगत भाषा, शब्द-योजना, वर्ण-मैत्री, शब्द-शक्ति, अलंकार तथा छन्द का विस्तृत विवेचन किया गया है, इसमें उद्धरण तथा विवेचन लेखक की अपनी उपलब्धि है।

सप्तम् अध्याय में गोस्वामी हरिराय जी के गद्य-साहित्य का भाषा एवं शैली की दृष्टि से मूल्यांकन किया गया है।

अष्टम् अध्याय में गोस्वामी हरिराय जी के साहित्य से ध्वनित भक्ति एवं दर्शन सम्बन्धी मान्यताओं को स्पष्टकिया गया है। इस सम्बन्ध में पुष्टि-मार्गीय सिद्धान्तों के अवगाहन हेतु अन्य सहायक-ग्रन्थों को भी आधार बनाया गया है।

अन्तिम् अध्याय में प्रबंध का `उपसंहार` दिया गया है, इसमें गोस्वामी हरिराय जी के समग्र-साहित्य का सिंहावलोकन करते हुए मूल्यांकन किया गया है जो लेखक का अपना अध्ययन है।

अन्त में इस शोध-प्रबंध की निर्माण-यात्रा में जिन महानुभावों की सहायता मुझे प्राप्त हुई है उनका मैं हृदय से आभारी हूं। म० स० विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष पूज्य डा० मदन गोपाल गुप्त का सतत् स्नेह मुझे कार्य-निष्ठा के प्रति सदैव प्रेरित करता रहा है। विद्वान अध्यक्ष ने अपना अमूल्य समय निकाल कर अपने गंभीर विचारों

से मुझे लाभान्वित किया है अतएव मैं इनका आभारी हूं। आचार्य जवाहर लाल जी चतुर्वेदी, श्री प्रभुदयाल जी मीतल, ज्यो० राधेश्याम जी द्विवेदी, श्री बालमुकुन्द जी चतुर्वेदी, श्री सुमनेश जी, डा० शंकरलाल चतुर्वेदी, पं० श्यामसुन्दर जी, लाला भगवान् दास जी आदि विद्वानों का भी मैं आभारी हूं जिनके विचारों का मैंने पर्याप्त लाभ उठाया है।

कांकरौली-गद्दी के आचार्य गो० १०८ श्री ब्रजभूषण लाल जी महाराज तथा श्री ब्रजेश कुमार जी का मैं हृदय से कृतज्ञ हूं, जिन्होंने अपने ग्रन्थागार (कांकरौली) के ग्रन्थों के अध्ययन करने का मुझे अवसर प्रदान किया, जिसके अभाव में यह शोध-कार्य पूर्ण न हो पाता। इसी प्रसंग में नाथद्वारा के निजी पुस्तकालय के स्वामी, तिलकायत महाराज गोस्वामी श्री गोविन्दलाल जी के प्रति भी लेखक कृतज्ञ है, जिन्होंने अध्ययन सम्बन्धी अनेक सुविधायें लेखक को प्रदान की थीं। बम्बई (बड़ा मन्दिर) के पू० श्री श्यामूबाबा, सूरत के श्री मथुरेश जी व इन्द्रा बेटी जी, गोकुल के श्री सुरेश बाबा, कामवन के श्री गिरधर बाबा आदि महोदयों ने भी समय-समय पर लेखक को प्रोत्साहित किया है, इन सबका भी लेखक हृदय से आभार मानता है।

श्री वेणी बेटी जी महाराज ने लेखक की सभी प्रकार से आर्थिक सहायता की है और उन्हीं के आशीर्वाद स्वरूप ही यह प्रबन्ध गठित हो पाया है, एतदर्थ लेखक इनका कृतज्ञ है, साथ ही बम्बई के सेठ श्री वसंतलाल मसरूवाला तथा प०म० चन्दा बहिन तथा दिल्ली के श्री एम०एल० सोधानी के प्रति भी लेखक आभार प्रदर्शित करता है।

मेरे मित्र नन्दलाल चतुर्वेदी भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने विषय-रजिस्ट्रेशन में मेरी सहायता की थी तथा समय-समय पर मुझे सक्रिय रहने को उकसाया था।

श्रद्धेय डा० व्रजवल्लभ मिश्र; का लेखक आभार प्रकट करता है, जिन्होंने अपने अत्यन्त व्यस्त-कार्यक्रमों से समय निकाल कर अपने बहुमूल्य विचारों से लेखक को लाभान्वित किया है।

श्री चन्द्रभान राठी, गली सेठ भीकचन्द, मथुरा, ने बड़ी ही निष्ठा और लगन से इस प्रबन्ध का टंकण-कार्य सम्पन्न किया है, अत: इस प्रसंग में उनका महत्व भी कम नहीं आंका जा सकता।

अन्त में अपने प्रबन्ध-निर्देशक श्रद्धेय डा० दयाशंकर शुक्ल का मैं किन शब्दों में आभार प्रदर्शित करूं, जिनके सतत्-स्नेह और उचित निर्देशन के फलस्वरूप ही यह प्रबंध पूर्ण हो पाया है, मैं अपने विद्वान निर्देशक का चिर-ऋणी हूं और हृदय से इनका आभार मानता हूं।

(विष्णु चतुर्वेदी)
,अप्रैल, १९७३

विषयानुक्रमणिका

प्रथम -अध्याय

पृष्ठ-भूमि,
गोस्वामी हरिराय जी कालीन राजनीतिक,
सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति ।

द्वितीय -अध्याय

गो० हरिराय जी का जीवन चरित्र-
जन्म, शिक्षा-दीक्षा, विवाह, पर्यटन, प्रमुख घटनाएँ, व्यक्तित्व, अवसान ।

तृतीय -अध्याय

कृति परिचय,
गो० हरिराय जी की गद्य-कृतियों का विवरण,
कवि की छाप । काव्य कृतियों का विवरण ।

चतुर्थ -अध्याय

वर्ण्य-विषय,
१- काव्य- (क) भक्तिपरक
(ख) श्रृंगारपरक एवं सम्प्रदायगत,
२- गद्य ।

पंचम् -अध्याय

गो० हरिराय जी के काव्य का भाव-पक्ष,
भाव एवं रस विवेचन ।

षष्ठ -अध्याय

गो० हरिराय जी के काव्य का कला-पक्ष,
भाषा, अलंकार तथा छंद ।

सप्तम् -अध्याय

गो० हरिराय जी के गद्य का विवेचन,
भाषा एवं शैली ।

अष्टम् -अध्याय

गो० हरिराय जी के साहित्य में भक्ति एवं दर्शन ।

नवम् -अध्याय

उप-संहार,
सिंहावलोकन, मूल्यांकन ।

Chapter-1

प्रथम - अध्याय

पृष्ठ - भूमि

"प्रत्येक व्यक्ति की वृत्तियाँ और उसकी आन्तरिक वैचारिक - चेतना तत्कालीन युग की परिस्थितियों से सम्बद्ध रहती हैं। युगीन प्रवृत्ति का प्रभाव उसके नैतिक-पक्ष पर अवश्य पड़ता है। साहित्यकार आंशिक रूप से समाज का दर्पण भी होता है और मार्ग-प्रदर्शक भी"।

गोस्वामी हरिराय जी भारत वर्ष की उन गौरवमयी विभूतियों में से थे, जिन्होंने अपनी भगवत्-भक्ति से जन-सामान्य को एक उज्ज्वल भाव-बोध-प्रदान किया, अपनी ज्ञान गरिमा से जन-साधारण की धार्मिक उद्भ्रान्तियों को विखण्डित किया तथा अपने पूर्वज आचार्यों की परम्परागत प्रतिष्ठा को बनाए रखा। साथ ही अपने ओजस्वी, प्रेरणायुक्त प्रवचनों तथा सात्विक प्रकृति से परवर्ती भक्त-हृदय व्यक्तियों को प्रभावित किया। उन्होंने अपने उद्भट साहित्यिक व्यक्तित्व तथा वर्चस्व से जन-जन की रागात्मक वृत्ति को उभारा तथा साहित्य के कोश को अपनी महत्वपूर्ण कृतियों से समृद्ध किया।

वल्लभ सम्प्रदाय में गोस्वामी गोकुल नाथ जी के पश्चात् गोस्वामी हरिराय जी को ही सर्वाधिक महत्व दिया गया है। गोस्वामी हरिराय जी 'महाप्रभु' जैसी महत्वपूर्ण उपाधि से सम्मानित हुए थे। गोस्वामी हरिराय जी ने एक सौ छियालीस संस्कृत ग्रन्थों के अतिरिक्त ब्रजभाषा में भी पचासों ग्रन्थों का सृजन किया था। ब्रजभाषा में गद्य ग्रन्थों के परिमाण को देखते हुए

ब्रजभाषा-गद्य के विकास में गोस्वामी जी का अत्यन्त सम्माननीय स्थान है। ब्रजभाषा-पद्य में आपने अनेक राग-रागनियों से सम्पन्न लगभग एक सहस्त्र पदों की रचना की थी जो परिमाण की दृष्टि से अष्टछाप के सूरदास, परमानन्ददास व नन्ददास को छोड़कर अन्य किसी भी कवि की रचनाओं से अत्याधिक हैं। वल्लभ-सम्प्रदाय में सूरदास के साहित्य को सर्वोत्कृष्ट कहा गया है। साथ ही सूरदास को सर्वोपरि कवि स्वीकार किया गया है। यह सत्य है है कि सूरदास ने ब्रजभाषा में हजारों उत्कृष्ट श्रेणी के पदों की रचना की थी, किन्तु गोस्वामी हरिराय जी ने संस्कृत, ब्रजभाषा का गद्य व पद्य, गुजराती, मारवाड़ी, पँजाबी आदि अनेक भाषाओं में रचना-सृष्टि कर अपनी मेधा की प्रांजलता का परिचय दिया। अतः विषय-विस्तार और ज्ञान की व्यापकता की दृष्टि से आपका साहित्य न केवल गद्य तथा पद्य में ही अपितु अन्य भाषाओं में भी विविध आयामों के साथ दृष्टिगत होता है।

किसी भी साहित्यकार का गद्य व पद्य की दोनों विधाओं में समान अधिकार होना, उसके ज्ञानात्मक, वैशिष्ट्य की अभिव्यक्ति तथा सामर्थ्य का परिचायक होता है। गोस्वामी हरिराय जी का उपलब्ध साहित्य उनके बहुव्यापी ज्ञान का साकार रूप है।

प्रत्येक व्यक्ति की वृत्तियां और उसकी आन्तरिक वैचारिक चेतना तत्कालीन युग की परिस्थितियों से सम्बद्ध रहती हैं। युगीन-प्रवृत्ति का प्रभाव उसके नैतिक-पक्ष पर अवश्य ही पड़ता है। साहित्यकार समाज का विशेष प्रकार का व्यक्ति होता है। वह आंशिक रूप से समाज का दर्पण भी होता है, और मार्ग प्रदर्शक भी। प्रायशः वह अपने कथ्य की विषय वस्तु का अधिग्रहण समाज के किसी अंग से ही करता है। यही कारण है कि साहित्यकार के कृतित्व में तत्कालीन परिस्थितियां किसी न किसी रूप में व्यक्त होती ही हैं। यह प्रभाव साहित्य के विषय-वृत्त तथा साहित्यकार के वैचारिक दर्शन के अनुसार ही स्वरूप ग्रहण करता है और साहित्य का विषय समाज के सर्वांग से

सम्बन्धित न रह कर उसके विशेष अंश को ही स्पर्श करता हुआ वाह्याभिव्यक्ति के रूप में प्रवाहित होता है । गोस्वामी हरिराय जी अपने समय के एक विशिष्ट साहित्य सृष्टा थे । अत: उनके साहित्य के स्वरूप का मूल्यांकन करने से पूर्व उनके युग-सापेक्ष्य राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक अवस्थाओं के परिप्रेक्ष्य का अवलोकन कर लेना अधिक समीचीन होगा ।

गोस्वामी हरिराय जी के जीवन-काल में मुगल-सम्राट् औरंगजेब का शासकीय - प्रभुत्व ही अधिक विद्यमान रहा है । वैसे तो गोस्वामी हरिराय जी के जीवन काल में जहांगीर, शाहजहां तथा औरंगजेब तीनों का समय आता है, किन्तु कवि के अधिकांश जीवन का समय औरंगजेब के काल से ही अधिक सम्बद्ध रहा है । अत: अध्ययन की दृष्टि से गोस्वामी हरिराय जी की कालगत् परिस्थितियों को तीन भागों में विभाजित कर लेना अधिक उचित है । औरंगजेब की पूर्ववर्ती परिस्थितियां । औरंगजेब - कालीन व्यवस्था तथा औरंगजेब की परवर्ती परिस्थितियां ।

औरंगजेब की पूर्ववर्ती परिस्थितियों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट आभास होता है कि पूर्ववर्ती मुगल-सम्राट् जलालुद्दीन अकबर के शासन की राजनैतिक सत्ता, रीति और नीतियां समस्त उत्तर भारत में अपना व्यापक प्रभाव स्थापित कर चुकी थीं । सम्वत् १६४७ गोस्वामी हरिराय जी का जन्म-काल था । सम्वत् १६५० तक सिन्ध तथा बिलोचिस्तान तक मुगल-शासकों का अधिकार क्षेत्र प्रसारित हो चुका था । भारत के सुदूर उत्तरी सीमान्त से परे भी मुगल-साम्राज्य की सीमा पहुंच चुकी थी ।

अकबर से पहले भारत की जनता सिकन्दर लोदी, इब्राहीम लोदी, बाबर आदि की बर्बरता पूर्ण शक्ति का शिकार बन चुकी थी । महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने ग्रन्थ में उस समय की भयावह-स्थिति का संकेत किया है ।

महाप्रभु जी का उल्लेख उस समय का प्रत्यक्षदर्शी प्रमाण है ।१। बाबर के पश्चात् हुमायूँ तथा अकबर का समय भी अपने वैभवशील महत्व के साथ तिरोहित हो चुका था । अकबर का निधन संवत् १६६२ में हुआ था । गोस्वामी हरिराय जी इस समय कुल पन्द्रह वर्ष के थे । अत: उनके कृतित्व में अकबर के औदार्य का किंचित प्रभाव परिलक्षित होता है । गोस्वामी जी की जिन रचनाओं में अकबर का उल्लेख मिलता है, वहाँ सम्मान सूचक सम्बोधनों का ही प्रयोग हुआ है । २ ।

वह ऐसा युग था, जब भारत की भोली-भाली जनता मुगल-शासन के अनवरत अत्याचारों को सहते-सहते अपना पौरुष भूल चुकी थी । अकबर के स्वार्थपूर्ण औदार्य में भी इन्हें ईश्वरीय अनुकम्पा का आभास होता था ।

---

(१) " म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषु च ,
सत्पीड़ा व्यग्र लोकेषु कृष्ण: एवं गतिर्मम ।।
गंगादि तीर्थ वर्येषु दुष्टैरेवा वृतेस्विह ,
तिरोहिताधि दैवेषु, कृष्ण एव गतिर्मम ।।
\+ \+ \+ \+

अपरिज्ञान नष्टेषु मंत्रेष्व वृत योगिषु ,
तिरोहितार्थ वैदेषु, कृष्ण एव गतिर्मम ।।" षोडस ग्रन्थ

-कृष्णाश्रय, श्लोक २-३ तथा ५ ।

(२) पृथ्वी-पति , देशाधिपति आदि संबोधन ।
-श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता ।

"हिन्दू-धर्म के प्रति उसके झूठे-प्रेम, प्रसिद्ध हिन्दू-सन्यासियों के साथ उसकी लम्बी तथा गुप्त वार्तायें एवं अंतिम रूप से बहुत से हिन्दू आचार तथा शिष्टाचार संबंधी नियमों का उसके द्वारा पालन करने के कारण हिन्दू उसे अपने में से एक समझते थे। वे उसे जगत्गुरू अथवा सम्पूर्ण विश्व का आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक मानते थे।१

अकबर ने राजपूत और मराठों के सहयोग से अपने साम्राज्य का विस्तार किया था। उसने अपने शासन-काल में अनेक यु-द्ध किये तथा अपनी कुशल राजनैतिक चातुरी के बल पर अपनी सत्ता को पर्याप्त सुदृढ़ बना लिया था। सम्राट् अकबर ने लोक-प्रदर्शन की भावना से हिन्दू-आचार्यों को अनेक 'रहम के तोहफे' भेट किये थे। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के नाम उसने अनेक फर्मान निकाले, जिनमें शासकीय सहानुभूति का प्रमाण प्रकाशित था। कर-माफी तथा जमीन माफी के आदेश इन प्रसिद्ध आचार्यों को समय-समय पर मिलते रहते थे।

सम्राट् अकबर की बेगम 'ताज़' गोस्वामी विट्ठलनाथ जी द्वारा दीक्षित थी। उसका निधन भी गोवर्धन की तलहटी में ही हुआ था।२। इस प्रकार के कार्यों के परिणाम स्वरूप अकबर विजातीय जनता में भी लोकप्रिय हो चुका था। लोग समझने लगे थे कि अकबर वास्तव में एक 'रहम-दिल' शासक है। वास्तव में

---

(१) मुगल शासन पद्धति- सर जदुनाथ सरकार
= अनुवादक- विजयनारायण चौबे पृ० १२१।

(२) 'एक अलीखान पठान की बेटी 'बीबी ताज़' जाकी धमार है 'निरखत आवत ताज को प्रभु गावत होरी' सो अकबर बादशाह की बेगम हती और गुसाईं जी की सेविका हती'।

-श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता(प्रकाशन-उदयपुर) पृष्ठ-४१,४२

यह सब अकबर के राजनीति-कौशल का ही एक अंग था। उसके परिचित व्यक्ति उसके कार्य और स्वरूप दोनों से विज्ञ थे। जहाँ एक ओर वह बाह्य परिस्थितियों में जन-जन के हृदय का हार बना हुआ था, वहीं दूसरी ओर उसकी आन्तरिक वृत्तियों से भी हिन्दू-वर्ग परिचित था।१

संवत् १६६२ में अकबर के पश्चात् उसका पुत्र जहाँगीर मुगल साम्राज्य का उत्तराधिकारी बना। जहाँगीर की माँ हिन्दू थी। अत: उसके व्यक्तित्व में अपने माँ बाप के सम्मिलित संस्कार सन्निहित थे। उसके सम्पूर्ण शासन-काल में सुख व शान्ति का जीवन व्यतीत किया गया।२ उसके समय में मथुरा, वृन्दावन में अनेक नवीन मन्दिरों का निर्माण हुआ। जहाँगीर के काल में ही पैंतीस लाख रुपये की लागत से मथुरा में केशवदेव का मँन्दिर निर्मित हुआ। यह अपने समय का सबसे सुन्दर, विशाल और आश्चर्यजनक मन्दिर गिना जाता था।३

जहाँगीर के समय में शान्ति तो थी, किन्तु न्याय के लिये कोई समुचित व्यवस्था नहीं थी। शासक वर्ग इसके लिये प्रयत्नशील भी नहीं था।

---

(१) "एक बार अकबर ने महात्मा सूरदास से कहा था" जो श्री भगवान् ने मोकों राज्य दियो है। सो सगरे गुनीजन मेरो जस गावत हैं सो तिनकों में अनेक द्रव्यादिक देत हौं तासों तुमहू गुनी हो, सो तुमहू मेरो जस गावो"।

-सूरदास की वार्ता- गो० हरिराय जी (प्रकाशित)

सम्पादक श्री प्रभुदयाल मीतल-पृ०३०

(२) ब्रज का इतिहास, भाग-१, कृष्णदत्त वाजपेयी पृष्ठ-१५६

(३) वही, पृष्ठ १५७।

प्रजा आतंक तथा भय से आक्रान्त जीवनयापन कर रही थी ।१

जहाँगीर के समय शासन की बागडोर, वस्तुत: उसकी बेगम के हाथ में थी । जहाँगीर स्वयं कहा करता था "मैंने एक प्याला शराब के लिये अपना राज्य नूरजहाँ के हाथों बेच दिया है" । उसकी अपनी कोई नीति न थी । नूरजहाँ ही वास्तव में राज्य करती थी ।२ राज्य-अर्थ का उपभोग शासक की विलासिता के लिए किया गया ।

शासक के अनुसार शासकीय कर्मचारी भी अपनी मनमानी कर रहे थे । मुगल - कालीन भारत के निम्न - कोटि के कर्मचारी तो इतने भ्रष्ट थे कि उन्हें सुधारा नहीं जा सकता था । ३ हिन्दू-मुसलमानों में विद्वेष-भावनाएँ फिर से पनप रही थीं ।

उस समय गो० हरिराय जी स्थायी रूप से व्रज में ही निवास कर रहे थे, क्योंकि वल्लभ-सम्प्रदायी गोस्वामी परिवार यहाँ बहुत पहिले ही स्थायी रूप से आबसे थे । यहाँ ये आचार्य अपने साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का प्रचार एवं प्रसार किया करते थे । साहित्य-सृजन के अतिरिक्त भगवान्-

---

(1) "Jahangir is one of the most interesting figure ih Mughal History. The ordinary view that he was a sensure pleasure seeker and a callous tyrant does him less than justice."

- A short History of Muslim rule in India.

- Dr. Ishwari Prasad Ed.Ist Page 493.

(२) भारत वर्ष का इतिहास - भाई परमानन्द- पृष्ठ-१७८ ।

(३) मुगल शासन पद्धति- सरजदुनाथ सरकार - अनु० विजयनारायण चौबे पृ०-१०।

कृष्ण की लीलास्थली की रमणीयता का प्रतिपादन करते हुए ये लोग भक्त-हृदय अनुयायियों को ब्रज-भूमि के प्रति आकर्षित करते थे । प्रकृति की मनोहर छटाओं ने इनको लुभा रक्खा था । गोस्वामी हरिराय जी अपने पितामह के भ्राता गोस्वामी गोकुलनाथ जी के सान्निध्य में अध्ययन-मनन कर रहे थे । जहाँगीर तथा शाहजहाँ के शासन-काल में कोई विशेष क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हुए । इतना अवश्य था कि साम्राज्य में ईर्ष्या एवं द्वेष प्रस्फुटित हो रहे थे,-पिता, पुत्र पर तथा पुत्र पिता पर घातक प्रहार कर रहा था । जहाँगीर, शाहजहाँ तथा औरंगजेब के पारिवारिक संघर्ष चले आ रहे थे । भाई-भाई के रक्त का प्यासा बना हुआ था ।

दूसरी ओर आचार्य वर्ग में अपेक्षाकृत शान्ति थी । इन आचार्यों ने अपने स्नेहिल व जीवन - सारल्य के उदाहरण से लोक - प्रांगण में सद्वृत्ति का प्रसार किया । यह सत्य है कि गुसाईं जी के समय में आचार्य-गद्दी के उत्तराधिकार हेतु पर्याप्त मत-वैषम्य रहा था । कृष्णदास अधिकारी तथा गुसाईं जी का विरोध चरम सीमा पर पहुँच गया था, किन्तु इस घटना के पश्चात् जब इस वृहद् - परिवार में अर्थ - विभाजन हो गया तब से इस वर्ग में पूर्ण शान्ति व शील की प्रतिष्ठा बनी रही । ईर्ष्या, द्वेष, कलह आदि दुर्वृत्तियाँ इस परिवार से सर्वथा विलग होगईं । सभी पारिवारिक सदस्य एक दूसरे का समुचित आदर करते थे ।

गोस्वामी गोकुलनाथ जी अपने सहोदर गोविन्दराय जी के पौत्र गो० हरिराय जी को भी स्वपुत्रवत् दृष्टि से देखते थे । गो० हरिराय जी के पिता श्री कल्याणराय जी अपने पितामह आचार्य गुसाईं जी के ही सान्निध्य में रहते थे । उनका पालन-पोषण भी गुसाईं जी की देखरेख में ही हुआ था । इस प्रकार पूरे परिवार में सुमधुर एवम् सौहार्दपूर्ण वातावरण बना हुआ था ।

गोस्वामी हरिराय जी के मध्यकाल में औरंगजेब का शासनकाल था । उल्लेख किया जा चुका है कि मुगल साम्राज्य के उत्तराधिकारियों की स्थिति ईर्ष्या

एवं द्वेष के दो विकट पाटों के मध्य पिस रही थी । औरंगजेब ने इस स्थिति को और भी अधिक कुरूप बना दिया । उसने अपने पिता को बन्दी बनाया, अपने भाइयों का दमन किया । अपने बड़े भ्राता द्वारा को युद्ध में पराजित करके ही औरंगजेब मुगल साम्राज्य का अधिपति बनपाया था ।१ इसके विपरीत ब्रज-प्रदेश में पुष्टि-मार्ग के आचार्य जन-जीवन में अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व का मधुरस घोलते आरहे थे । अपने व्यावहारिक जीवन में सरल होने के कारण वे समाज के लिये एक आदर्श बने हुए थे । जीवन के सारल्य का सहज निरूपण उनकी वेश-भूषा, खानपान, रहनसहन आदि से न था, वल्कि जनसाधारण के प्रति उनके सरल-व्यवहार एवं आचरण की सौम्यता से प्रभावित था । ये आचार्य अपने गौरव पूर्ण पद की प्रतिष्ठा पूर्ण रूप से सुरक्षित रखे हुये थे । गोस्वामी हरिराय जी के प्रभावशाली व्यक्तित्व का एक यह भी सशक्त कारण था, जिसे इन्होंने आजीवन बड़ी कुशलता से निभाया ।

यद्यपि औरंगजेब की बर्बरता तथा उसकी दमन-नीति इतिहास-प्रसिद्ध रही है । सामान्य जीवन में शासकीय-भय पूर्ण-रूपेण व्याप्त हो गया था । तथापि गो० हरिराय जी ने अकबर की भाँति औरंगजेब का नामोल्लेख भी आदरयुक्त सम्बोधनों द्वारा ही व्यक्त किया ।२ जबकि गो० हरिराय जी औरंगजेब के अत्याचारों से अनभिज्ञ नहीं थे । वे स्वंय भी इस दमन-चक्र का शिकार हो चुके, और ब्रज छोड़कर मेवाड़ जा चुके थे, किन्तु फिर भी उन्होंनें कहीं भी औरंगजेब की, खुलकर भर्त्सना नहीं की । इस समय औरंगजेब विध्वंस-

---

(१) ब्रज का इतिहास भाग-१ कृष्ण दत्त वाजपेयी पृ० १५६ ।

(२) श्रीनाथ जी की प्राक्ट्य वार्ता,

- गोस्वामी हरिराय जी ।

कार्य में संलग्न था । उसने मथुरा-वृन्दावन की प्राचीनतम् मूर्तियों को खण्डित कर दिया था और मंदिरों की प्रतिष्ठा भंग कर दी थी, १ फलत: मंदिरों के व्यवस्थापकों तथा संरक्षकों में भाग-दौड़ मच गई थी ।

औरंगजेब स्वभाव से ही युद्ध प्रिय था । वह शासन-कार्यों में कितना भी कुशल रहा हो, किन्तु उसे युद्ध का शौक लग गया था और वह हमेशा लड़ाई की ही बातों में लगा रहता था । २ अपनी इस युद्ध-प्रिय वृत्ति के कारण उसने शासन का आधार 'भय' बना दिया था । सम्पूर्ण ब्रज-क्षेत्र उसके अत्याचारों से त्रस्त था । उस समय पुष्टि-मार्ग की देव प्रतिमा, 'श्रीनाथजी' गिरिराज पर्वत के जतीपुरा नामक स्थान में प्रतिष्ठित थी । औरंगजेब की दृष्टि में यह वैभव सम्पन्न धर्म-केन्द्र कसक रहा था । उसने वहाँ से आचार्य गोस्वामियों को सूचित किया कि या तो वे अपना चमत्कार प्रस्तुत करें अथवा यहाँ से भाग जाँय ।३ औरंगजेब के बर्बर-आक्रोश और अमानुशिक अत्याचारों से ये आचार्यगण पूर्णरूप से त्रस्त हो चुके थे । वे औरंगजेब के समक्ष चमत्कार करने में भी भयभीत थे । अत: उपर्युक्त आदेशानुसार इन्हें गुप्त रूप से ब्रज-क्षेत्र से प्रयाण करना पड़ा । अनेक बीहड़-स्थलों में होकर निकलने का अर्थ यही था कि उससमय सभी जन-मार्गों पर औरंगजेब की तलवार चमक रही थी । सम्भवत: औरंगजेब ने इन आचार्यों को केवल चमत्कार-प्रदर्शन हेतु ही सूचित किया होगा, उन्हें भागने की अनुमति नहीं

---

(१) 'संवत् १७२४ में जब मिर्ज़ाराजा जयसिंह की मृत्यु हो गई तब औरंगजेब को अपनी हिन्दू-विरोधी नीति को और भी कड़ा करने का अवसर मिला था । उसने एक फरमान निकाल कर हिन्दुओं के मंदिर देवालय बनने बंद करा दिये और मूर्ति-पूजा पर पाबंदी लगा दी थी । फिर उसने सभी देवालयों को नष्ट करने की आज्ञा प्रसारित कर दी थी । ब्रज में कुहराम मच गया था ।'

-ब्रज का इतिहास- श्री प्रभुदयाल मीतल पृष्ट २२०

(२) मराठों का इतिहास-ग्रांट डफ, अनुवादक-कमलाकर त्रिपाठी पृ० ६५

(३) श्रीनाथ जी की प्राक्ट्य वार्ता - गोस्वामी हरिराय जी ।

दी होगी, क्योंकि यदि इन आचार्यों को ब्रज छोड़ने की शासकीय अनुमति प्राप्त होती तो ये बीहण-वनों में होकर गुप्तरीत से न निकलते। कहा जाता है कि गोस्वामी हरिराय जी भी 'श्रीनाथ जी की इस प्रयाण-यात्रा में सम्मिलित थे।१' अन्य प्रमाणों के आधार पर यह मत संदेहास्पद सिद्ध हुआ है। गोस्वामी हरिराय जी 'श्रीनाथ जी' के ब्रज-छोड़ने के पश्चात् स्वतंत्र रूप से अपने सेव्य-स्वरूप के साथ मेवाड़ गये थे। वे श्रीनाथ जी की यात्रा-संघ से पहले ही मेवाड़ पहुंच चुके थे। इसका विवेचन अन्यत्र किया गया है। २

हिन्दू-जनता के सभी धार्मिक अधिकार छीन लिए गए थे। औरंगजेब ने अपनी प्रवृत्ति के अनुसार सम्पूर्ण राज्य में आज्ञा प्रसारित करदी कि 'काफिरों के सारे मन्दिर', पूजागृह और पाठशालाएँ तोड़फोड़ दी जायें एवम् उनके धार्मिक पठन-पाठन और पूजा-पाठ पूरी तरह बन्द कर दिये जायें।३ इस प्रकार हिन्दुओं के सभी धर्म-केन्द्र विखण्डित हो चुके थे। वल्लभ सम्प्रदाय के विद्वान आचार्य, गुजरात, राजस्थान, काठियावाड़, सौराष्ट्र आदि प्रदेशों में यत्र-तत्र अपनी सुविधानुसार बसने लगे थे। जो आचार्य-वर्ग 'श्रीनाथ जी' की पावन देव-मूर्ति लेकर निकले थे, उन्हें कहीं भी शरण-स्थल नहीं मिल पा रहा था। औरंगजेब के भय से कोई भी राजा उन्हें अपने राज्य में ठहरने की सुविधा व सुरक्षा प्रदान करने का साहस नहीं कर सका। अन्त में मेवाड़ के तत्कालीन महाराणा राजसिंह ने इन आचार्यों को अपने राज्य में सादर

---

(१) 'श्रीनाथ जी की मूर्ति गोवर्धन से जब उदयपुर राज्य में लेजाई गई तो गोस्वामी हरिराय जी उनके साथ थे'। -- डा० ब्रजेश्वर वर्मा
--हिन्दी साहित्य- सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा, द्वितीय-खण्ड पृ० ३८४।

(२) इसी शोध प्रबन्ध में द्वितीय अध्याय, पृष्ठ ७८ पर।

(३) ब्रज का इतिहास - भाग-१, --कृष्णदत्त बाजपेयी पृ० १६१।

प्रश्रय दिया । महाराणा ने सिंहाड़ नामक ग्राम में मूर्त्ति-स्थापन हेतु उचित स्थल भी इन्हें भेट किया । तब से यह मूर्त्ति सिंहाड़ ग्राम में प्रतिष्ठित है ।१ सम्प्रति इस स्थल को 'श्रीनाथ द्वारा' नाम से जाना जाता है । हिन्दू - वैष्णवों का यह प्रमुख तीर्थ-स्थल है ।

औरंगजेब का परवर्ती-काल मुगल-शासन के अवसान का काल था । औरंगजेब जिस वेग से चढ़ा उसी वेग से गिरा भी । इसके परवर्ती-काल का गोस्वामी हरिराय जी के जीवन-काल से विशेष सम्बन्ध नहीं रहा । अत: उसका विस्तार भी प्रसंग की दृष्टि से अनावश्यक है ।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मुगल-साम्राज्य की अवधि में शासकीय प्रताड़णा से जन-सामान्य अत्यन्त त्रस्त था । धर्माचार्य अपनी देव-प्रतिमाओं को लिए हुए भाग-दौड़ रहे थे । हिन्दू जाति के प्रति अत्याचार इस युग का सबसे दुर्भाग्यपूर्ण विषय था ।

जन-मानस पर राजनीति का प्रभाव

सामन्तीय व्यवस्था में जनता के अधिकारों की सदा ही उपेक्षा हुआ करती है । मुगल सामन्तवाद इसका और भी उग्रतम रूप प्रस्तुत करता है । उनके शासन काल में वर्ग-विशेष के हित के लिये अन्य वर्गों पर सभी प्रकार के दमनकारी अस्त्र प्रयोग में लाये जाते थे । परिणामत: जनता क्षुब्ध हो उठी थी । वह कभी इस अन्याय से टक्कर लेती, तो कभी किनारा कर जाती । कुछ रजबाड़े अपनी स्वतंत्रता के प्रति फिर भी सक्रिय बने रहे । मुगल साम्राज्य से ये रजवाड़े यदा-कदा 'मोर्चा' भी लेते थे । इसके साथ ही कुछ साधू-सन्यासी , महात्मा, तथा मठाधीश अपने-अपने मतों का अलाप करते रहते थे । इनमें से कुछ अपने चमत्कारों से जनता को प्रभावित किये हुये थे

---

(१) वीरविनोद -- कविराज श्यामलदास भाग-२ पृ० ४५२

तो कुछ अपने विद्वतापूर्ण प्रवचनों से जन-साधारण को लुभाए हुए थे । वस्तुत: ये धार्मिक सम्प्रदाय प्रत्यक्ष में तो मानव-जीवन के नैतिक तथा धार्मिक आदर्श प्रस्तुत करने में संलग्न थे, किन्तु परोक्ष में ये हिन्दू-जनता में जीवन के प्रति अकर्मण्यता का ज़हर भी घोल रहे थे । आध्यात्मवादी आकर्षण में पड़कर हिन्दुओं में अकर्मण्यता घर करती जारही थी । आस्तिकवादी विश्वासों में जकड़े लोग अपने-अपने भगवान् के आगे सिर फुकाए बैठे इन आचार्यों के उपदेश श्रवण किया करते थे । संसार में क्या होरहा है इससे उन्हें कोई प्रयोजन न था । जीवन की 'नश्वरता 'तथा 'क्षणभंगुरता ' की नारेबाजी में ये वास्तविकता के कठोर रूपसे विमुख हो बैठे थे । राम और कृष्ण की अलौकिक लीलाओं के अतिरिक्त उन्हें लोक-जीवन में नैराश्य का अंधकार ही अधिक सूफता था ।

इनमें कुछ व्यक्ति ऐसे भी थे, जो भक्ति-साधना के महात्म्य को जानकर भी लोक में परिव्याप्त अन्याय से टक्कर लेते थे । कुछ वैरागी तथा सन्यासी शासन के कुचक्र को विखण्डित करने के लिए कटिबद्ध थे, किन्तु गुरु रामदास समर्थ जैसे साहसी संख्या में कम ही थे ।

हिन्दू-मुस्लिम संबंधों के विषय में हिन्दू वर्ग में मुख्य रूप से केवल दो विचार प्रचलित थे, - या तो अपने धर्म पर विश्वास रखकर शासकीय अत्याचारों को सहन करना अथवा इस्लाम-धर्म स्वीकार करके सुखपूर्वक जीवन-निर्वाह करना । १ हिन्दुओं में अपनी इच्छा से धर्म-परिवर्तन करने वालों की संख्या बहुत कम थी । गाँवों में यह समस्या अत्यन्त विषय थी । ग्रामीण वर्ग जिस सत्ता द्वारा विजित होता था, प्राय: उसी की अधीनता

---

(१) देखिए-- मध्य कालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति-
- डा० मदनगोपाल गुप्त पृष्ठ- १०१

स्वीकार करता हुआ, अपना धर्म, कर्म, आचार, व्यवहार सब-कुछ उसी को समर्पित कर देता था। इतना ही नहीं मुगल-काल में धर्म-परिवर्तन शासकीय शक्ति के माध्यम से भी होता था।१ ब्राह्मण-वर्ग भी अपनी यजमानी-वृत्ति से उदासीन होकर कृषक या सैनिक-वर्ग में प्रवृत्त होगया था। २ जादू-टोना प्रदर्शकों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।३

गोस्वामी हरिराय जी के जीवन की सान्ध्यवेला उदयपुर राज्य के खिमनौर ग्राम में व्यतीत हुई थी। इस क्षेत्र के मेवाड़ी राजपूत मुगल - सत्ता से जम-जम कर 'मोर्चा' ले रहे थे।४ औरंगजेब के तत्कालीन आक्रमणों के अवशेष नौ-चौकी, उदयपुर आदि स्थलों पर अब भी देखे जासकते हैं। गोस्वामी हरिराय जी ने इन राजकीय संघर्षों को अतिनिकट से देखा था। वे अपने जीवन में इन घटनाओं से पर्याप्त प्रभावित हो चुके थे और यही कारण है कि उनकी कुछ रचनाओं में इन परिस्थितियों के चित्र अत्यन्त ही सजीव ढंग से व्यक्त हुए हैं। गोस्वामी हरिराय जी की ऐसी रचनाओं में 'कलि-चरित्र;

---

(१) A Short History Of Muslim Rule in India.
- Dr. Ishwari Prasad Ist. Ed. Page 241.

(२) देखिए-- कलि-चरित्र - गो० हरिराय जी।

(३) 'टोना - जामन करत किते जन, अपनो दंभ बिखेरें,
तिनकों प्रीत करत नृप सिगरे, राखहिं अपने नेरें।
भगत साधु फिर-फिर हारत हैं, सपने सुखनहि पावैं,
रसिक राय या कलि की महिमा, मोपैं वरनि न आवैं।।
- राज चरित्र - गो० हरिराय जी। छन्द-१८

(४) श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता- गो० हरिराय जी।

'कृष्ण चरण विज्ञप्ति' तथा कुछ वार्ताएँ प्रमुख हैं ।

अकबर ने हिन्दू-जाति की बिखरी हुई इकाइयों को एक सूत्र में बाँधने की चेष्टा की, उसे औरंगजेब ने फिर तलवार की नोंक से छात-विछात कर डाला । इसका परिणाम यह हुआ कि जो हिन्दू, अकबर के समय शासन के समर्थक व सहायक बने हुए थे, वे प्राय: सभी, औरंगजेब के सामने मुगल -साम्राज्य के विरुद्ध तलवार चमकाने लगे । विद्रोह की भावना से प्रेरित हो अनेक रजवाड़ों के राजा भी स्वतंत्रता-संग्राम के मैदान में आ डटे । इस विद्रोह में भाग लेने वाले जन-समुदाय के वे ही सदस्य थे, जो देश - भक्ति की भावना से प्रभावित थे, जो सैन्य-वृत्ति को जीविका बनाए हुए थे तथा शासन के अन्याय सहन करने के पक्ष में न थे । इनमें से कुछ धार्मिक-विरक्त भी थे, जो अपनी धर्म-रक्षा के प्रति कटिबद्ध थे । अयोध्या के सन्यासियों तथा गोकुल के मन्दिर के कुछ कर्मचारियों के विद्रोह १ इसी रूप में प्रकट हुए थे ।

शासित-वर्ग का एक बहुत बड़ा हिस्सा पेट की खंदक को पाटने के आशय से इधर-उधर मारा-मारा फिर रहा था । उसे न साम्राज्य-प्रदत्त उपार्जन की सुविधाएँ थीं, न राजाओं के पारितोषक ही प्राप्त थे । वह वर्ग अपनी प्रतिभा का समुचित प्रयोग भी नहीं करपा रहा था । फलत: समाज में उद्दंडता के प्रमाद बढ़ने लगे ।

गोस्वामी हरिराय जी एक समृद्ध परिवार के व्यक्ति थे । दाल-रोटी की समस्या से वे परिचित न थे । वह वैभव-पूर्ण जीवन में सभी प्रकार से तुष्ट थे । वह जिस आचार्य-परम्परा में जन्मे थे, उसकी प्रतिष्ठा को पूर्ण रूप से निर्वाह करने के लिए सजग थे । यही कारण है कि उन्होंने

---

(१) देखिए--- श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता-- गोस्वामी हरिराय जी ।

'ढेरी-भरे' ग्रन्थों की रचना कर डाली ।

गोस्वामी हरिराय जी के समय समाज के मुख्यत: दो ही वर्ग थे-

समाज एवं संस्कृति :-

हिन्दू तथा मुसलमान । हिन्दू यहाँ बहुत पहिले से स्थाई रूप में निवास कर रहे थे । मुसलमान बाहर से आक्रमणकारी के रूप में यहाँ आए और धीरे - धीरे अपने पैर जमाने में लग गये । हिन्दुओं में सैद्धान्तिक दृष्टि से अनेक वर्ग थे । इनमें दो प्रमुख वर्ग अपनी-अपनी विचारधाराओं के अनुसार पृथक् - पृथक् थे । प्रथम तो वे जो मुसलमानों के प्रति प्रतिष्ठा का समादर - भाव रखते थे, चाहे यह प्रतिष्ठा भय - जन्य रही हो अथवा सहिष्णुता - जन्य । दूसरा-वर्ग इससे सर्वथा इतर वृत्ति का निर्वाहक था, वह मुसलमानों को विधर्मी समझकर तिरस्कार एवं घृणा की दृष्टि से देखता था । यह वर्ग समय-समय पर इन विधर्मियों के प्रति विद्रोह भी करता था और साम्राज्य - विरोधी तत्वों में सम्मिलित भी हो जाता था ।

मुसलमानों में हिन्दुओं के प्रति प्राय: ईर्ष्या-द्वेष, एवं घृणा की भावनाएँ ही प्राप्त होती थीं । औरंगजेब का समय पूर्णत: 'हिन्दू - मुस्लिम-विरोध' का समय था । जहाँगीर और शाहजहाँ ने, कुछ अंशों में अकबर की नीति का अनुकरण किया, परन्तु औरंगजेब ने इस नीति - को पुन: पलटकर अकबर की उदार-नीति का अन्त कर दिया ।१ अकबर की धार्मिक नीति चाहे उसकी प्रशासनिक व्यावहारिकता पद्धति का ही एक अंग थी , जिसके कारण उसे अपने राज्य-काल में इतनी सफलता प्राप्त हुई थी,२ किन्तु औरंगजेब में वह व्यवहारिकता भी नहीं दिखलाई देती ।

---

(१) भारतीय संस्कृति-- डा० गोविन्ददास, वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय, भारत सरकार प्रका० सं० ७६,पृ० २५ ।

(२) देखिए-- ब्रज का इतिहास-- श्री प्रभूदयाल मीतल, पृ०१८० ।

औरंगजेब के समय में भारत में अन्य व्यापारी-वर्ग भी रहते थे। इनकी संख्या हिन्दू एवं मुसलमानों के अनुपात से बहुत कम थी। इनमें मुख्य रूप से पुर्तगाली, अफगानी तथा अरबी व्यापारी थे। समाज में अनेक जातियाँ, उप-जातियाँ बन चुकी थीं। समाज का संगठित स्वरूप विखण्डित हो चुका था। सामाजिक संगठन का स्थान अनेक जातियों - उप-जातियों ने ले लिया था।१ मनुष्य वर्गवाद की ओर आकृष्ट हो रहा था। तत्कालीन संगठित वर्ग का ढाँचा भी परिस्थिति द्वारा निरूपित था। इनमें से कुछ सैन्य-वृत्ति कर रहे थे। शिवाजी ने अनपढ़, गरीब मराठे - किसानों को राष्ट्र-शक्ति के रूप में संगठित कर देश में एक बड़ी शक्ति संगठित करली थी।२ संवत् १७२६ में गोकुलाजाट के नेतृत्व में महावन के ग्रामीणों ने विद्रोह किया।३ ये दोनों संगठन वर्गवाद के आधार पर ही संगठित हुए थे।

हिन्दू समाज इस समय हीन से हीनतर अवस्था को पहुँच चुका था।४ अधिकांश हिन्दू लोग दुरूहतापूर्ण, निर्धनता तथा दमित जीवन व्यतीत कर रहे थे। उनकी आय उनके परिवार के लिए कठिनता से ही पर्याप्त होती थी।५ इसी कारण समाज का एक अंग लूट - मार में भी भाग लेता था। शासन के प्रति विद्रोह करने वाले भी आर्थिक तनाव के कारण लूट - मार

---

(१) देखिए-- मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति--डा० मदनगोपाल गुप्त- पृ० १३७

(२) भारतीय संस्कृति की कहानी-- डा० भगवत् शरण उपाध्याय, संस्क० चतुर्थ पृ० ७८

(३) ब्रज का इतिहास- श्री प्रभुदयाल मीतल- पृ० २२०

(४) मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति-डा० मदनगोपाल गुप्त पृ०१३७

(५) The History Of Medieval India.

- Dr. Ishwari Prasad Ist Ed. Page 471

करते थे। संवत् १७२६ में जाट-विद्रोहियों ने सादाबाद को लूटा और आगरा तक लूट - मार करते रहे।१ इन सब परिस्थितियों का मूल - कारण हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष की बलवती भावना ही कही जासकती है। सभी मुसलमान हिन्दू - धर्म की जड़ खोदने वाले थे।२ हिन्दू यथा-शक्ति उसका बचाव कर रहे थे। इस प्रकार हिन्दुओं के संघर्ष सुरक्षात्मक थे तथा मुसलमानों के आक्रामक।

इन सभी परिस्थितियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि गोस्वामी हरिराय जी का युग सामाजिक वैषम्य का युग था। हिन्दू-जाति में सामाजिक व्यवस्था के कर्णधार ब्राह्मण ही माने जाते थे, इसीलिए ब्राह्मण विद्वानों का आदर भी किया जाता था। पूजा-पाठ, यंत्र-मंत्र, यज्ञादि की अनेक विधियां ब्राह्मणों के माध्यम से जीवित थीं। वल्लभ-सम्प्रदाय में इस प्रकार के यंत्र-तंत्र का निषेध किया गया है। इस सम्प्रदाय में अस्पश्यता की मर्यादा का कट्टरता से निर्वाह किया जाता था। अस्पश्यता की यह परम्परा मध्ययुगीन प्रवृत्ति का प्रतिरूपण था।३ इससे पहले धार्मिक क्षेत्र में इतनी संकीर्णता न थी। गंगाबाई के देखने मात्र से ठाकुर जी भूखे रह जाया करते थे।४

सम्पूर्ण हिन्दू समाज में जाति-वाद की विष-बेल व्याप्त हो चुकी थी। जाति भेद के साथ-साथ समाज में और भी अनेक कुप्रथाएँ प्रचलित थीं। हिन्दू-जाति में बाल-विवाह का प्रचलन था। बालविधवाओं की भी कमी नहीं थी। स्त्रियों के प्रति शोषण भारत वर्ष की पौराणिक परम्परा

---

(१) ब्रज का इतिहास-- श्री प्रभूदयाल मीतल पृष्ठ- २२०

(२) संस्कृति के चार अध्याय-- श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' पृष्ठ- २७७

(३) भारतीय संस्कृति का उत्थान-- डा० रामजी उपाध्याय, द्वि० संस्करण पृष्ठ- १६६

(४) प्रचीन-वार्ता रहस्य, भाग-२।

रही है ।

मुसलमानों में स्त्रियों के पर्दा - प्रथा का प्रचलन भी पुराना था । हिन्दुओं में इस प्रथा का प्रादुर्भाव मुगल शासन के प्रारम्भ से ही हुआ था । मुगल शासकों की वासना जन्य कुदृष्टि की प्रतिक्रिया में नारी-सौन्दर्य को पर्दे की आवश्यकता प्रतीत हुई । मुसलमानों में बुर्का और हिन्दुओं में चद्दर प्रथा का प्रचलन अब भी कुछ वर्गों में विद्यमान है ।

गोस्वामी परिवार में इस प्रथा का परिपालन अत्यन्त कड़े ढंग से किया जाता था । इनकी स्त्रियों के साथ दासियाँ बड़ी-बड़ी छतरी लेकर चलती थीं, जिनमें इनको पूर्ण रूप से ढ़क लिया जाता था । इस प्रथा का आँशिक - रूप आज भी विद्यमान है । अन्य हिन्दुओं की भाँति इनमें बाल-विवाह को अधिक प्रोत्साहन नहीं दिया गया । महाप्रभु जी, कल्याण राय जी, हरिराय जी आदि प्रमुख आचार्यों के विवाह पूर्ण युवावस्था में ही सम्पन्न हुए थे ।

समाज में आध्यात्मिक चेतना का प्रसार करने वाले इस सम्प्रदाय में अन्दर ही अन्दर विलासिता भी पनप रही थी । गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से ही सम्प्रदाय में विलासी-वृत्ति का प्रादुर्भाव हो चुका था । गोस्वामी हरिराय जी तक यह प्रवृत्ति और भी अधिक पुष्ट हो चुकी थी । साम्प्रदायिक तथा जातीय असहिष्णुता एवं संकुचित वृत्ति वल्लभ-सम्प्रदाय में भी एक रोग की तरह व्याप्त होगई थी । यह बीमारी यहाँ तक फैली कि गोविन्द स्वामी के भैरवी राग को सुनकर जब किसी मुसलमान ने उसकी सराहना की तो सम्प्रदाय में म्लेच्छ द्वारा प्रशंसित वह राग ही दूषित होगया । १ आज भी पुष्टि-मार्गीय मन्दिरों में इस राग को गाए जाने का निषेध है ।

---

(१) देखिये-- प्राचीन वार्ता रहस्य-- सम्पादक पो० कण्ठमणि शास्त्री, भाग-२, पृ० ६६२

कुल मिलाकर समाज की अवस्था अत्यन्त विकृत हो चुकी थी । समाज की इस विकृति से वल्लभ-सम्प्रदाय भी अछूता न रह सका । फलत: इस सम्प्रदाय में दो भिन्न दृष्टिकोण एक साथ पल्लवित हुए थे, एक ओर तो यह सम्प्रदाय निम्न-जातियों को दीक्षित कर समाज में समन्वय की नींव डाल रहा था । महाप्रभु वल्लभाचार्य जी तथा गुसाईं जी द्वारा धोबी, चमार, नाई, वैश्य, क्षत्री, ब्राह्मण आदिसभी वर्णों के लिये सम्प्रदाय में दीक्षा के द्वार खोले जारहे थे । १ दूसरी ओर छुआ-छूत, ऊँच-नींच का भी प्रचलन इस सम्प्रदाय में बढ़ता चला जारहा था ।

हिन्दू - जाति की परिस्थितियाँ समाज को और सामाजिक - रूढ़ियाँ भारतीय संस्कृति को जीर्ण बना रही थीं । परम्पराओं का पुनर्वाचन तो होता था, किन्तु कोई नवीन संस्करण दिखलाई नहीं देता था । संस्कारों की निश्चित प्राचीर, व्यवहार और आचरण विषयक मान्यताएँ दृढ़ होती जा रही थीं । संस्कृति की यह विशाल अट्टालिका अपने पुराने ईंट, पत्थर, मिट्टी और मलवों को छाती से लगाए खड़ी अवश्य थी किन्तु इसमें मरम्मत की अपेक्षा औरआकार परिवर्तन की आवश्यकता के प्रति किसी का आग्रह नहीं था ।

अकबर से औरंगजेब तक भारतीय संस्कृति पर इस्लामी - प्रभाव छाया रहा । "इस्लाम ने जहाँ हिन्दुओं के सामाजिक संगठन को झकझोर दिया था, वहीं उसने अपनी ओर से मनुष्य की एकता और समता का आदर्श भी सामने रखा । १ उन्होंने सम्पूर्ण भारत को एक अखण्ड सूत्र में बाँधने का यत्न किया । वे इस उद्देश्य में पर्याप्त सफल भी रहे ।

---

(१) वार्ताओं में उल्लिखित--
चौरासी वार्ता में-- यादवेन्द्र कुम्हार, विष्णुदास छीपी
२५ दो सौ बावन वार्ता में- रसखान पठान, मैहाधीमर, चूहड़, धोबी ।
(२) भारतीय संस्कृति की कहानी- डा० भगवत् शरण उपाध्याय, संस्करण चतुर्थ- पृष्ठ- ७२ ।

अपवाद के रूप में मेवाड़ के राणा और शिवाजी जैसे न झुकने वाले देशभक्तों ने अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए, बलिदान की जो आग सुलगाई उसे बुझाना मुगल-साम्राज्य की विराट शक्ति के लिए बड़ा कठिन था। यही कारण था, जिससे मुगल-शासन के अखण्ड-भारत पर आधिपत्य के स्वप्न कालान्तर में खण्ड-खण्ड होगए। नादिरशाही तूफान के आगे मुहम्मद शाह रंगिला का 'शराबी-माहौल' एक ही झटके में क्षार-क्षार होगया। ये माना जासकता है कि मुगल-साम्राज्य के विद्रोह में राणा प्रताप जैसे रण-बाँकुरों का जीवन दुस्सार होगया था। उन्हें दर-दर की ठोकर खाने के लिये वाध्य होना पड़ा, किन्तु इन्हीं हिन्दू कर्मठ-वीरों के कारण मुगल-साम्राज्य की नींव भारत में अधिक न टिक पाई।

दारा शिकोह जैसे मुगल शासकों का कालान्तर में हिन्दुओं ने जो शमन किया, उसमें राणा प्रताप जैसे बलिदानियों की प्रेरणा ही मूल-स्रोत थी। "फिर भी अकबर द्वारा प्रचारित भारत की हिन्दू-मुस्लिम मिश्रित संस्कृति का विनाश नहीं हो पाया इसका प्रमाण दोनों की वेशभूषा, रीति-रिवाज आदि हैं।"[१] हिन्दुओं में गोस्वामी - आचार्यों के प्राचीन चित्रों में इस वेश-भूषा का प्रभाव देखा जासकता है।

औरंगजेब के समय मुसलमान-धर्म का कोई उपदेशक, अथवा प्रचारक नहीं था। औरंगजेब स्वयं ही इस्लाम धर्म का प्रचारक और पोषक बना हुआ था। वही समाज और धर्म के नियम बनाता था तथा वही उनको कार्यान्वित भी कराता था। इस्लाम-धर्म सम्बन्धी समस्त मान्यताएँ

---

(१) भारतीय संस्कृति-- डा० गोविन्ददास -
वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय,
भारत सरकार, प्रका० संख्या- ७६ पृ० २४

औरंगजेब ने अपने अधिकार में कर रखी थी ।१ इस भाँति धर्म और संस्कृति की 'बाग-डोर' व्यक्ति-विशेष के हाथों में निहित होगई थी । वह व्यक्ति भी अपनी आन्तरिक मान्यताओं के आधार पर एक पक्ष-प्रधान का नेतृत्व कर रहा था । ऐसी स्थिति में उसके एकांगी आदेशों का स्वाभाविक पालन कैसे सम्भव हो सकता था ? अकबर कालीन औदार्य-पूर्ण वातावरण में भी मुसलमान हिन्दू-कन्या से विवाह करने के लिए स्वयं हिन्दू नहीं बनता था ; किन्तु हिन्दू किसी मुसलमान स्त्री से विवाह तभी कर सकता था जब वह मुसलमान - धर्म को स्वीकार कर ले ।२ इस प्रकार अकबर कालीन आदर्श-नीति का ढकोसला भी अधिक समय छिपा न रह सका ।

औरंगजेब युद्ध-उन्माद का प्रतीक ही बनकर कर्म - क्षेत्र में आया था । उसका एक मात्र उद्देश्य हिन्दू-धर्म को विनष्ट कर सम्पूर्ण - भारत में इस्लाम का प्रचार करना ही कहा जासकता है ।

---

(1) "So far as propagation of Islam was concerned, Aurangzeb took it up seriously as a part of his religion duty. In Islam there was no formal priest and preacher." - Dr. M.L.Roy Chaudhary.
- The State and Religion In Mugal India. Ed.Ist P.222

(2) "If any Hindu wanted to relain a Muslim wife, he must be concerted to Islam and marry the Muslim wife, according to the Muslim law 1634."
- Dr. M.L.Roy Chaudhary.
- The State and Religion In Mugal India. Ed.Ist P.214

गोस्वामी हरिराय जी के समय तक हिन्दुओं के प्राय: सभी धार्मिक आन्दोलन समाप्त हो चुके थे। कुछेक धर्म सम्प्रदाय उनके समय तक अपना प्रभाव-क्षेत्र नियत कर चुके थे और स्थाई रूप से `टिक` गए थे। हिन्दुओं के ये धार्मिक-सम्प्रदाय प्रत्यक्ष रूप में कुछ भी कहते हों किन्तु आन्तरिक रूप से ये मुसलमानों को विधर्मी मानकर तिरष्कृत दृष्टि से ही देखते थे। तानसेन, रसखान, बीबीताज़ आदि का वल्लभ-सम्प्रदाय की ओर आकृष्ट होना उनके चरित्रों की विशिष्टता ही कही जाएगी। ये भक्त-हृदय-चरित्र इस सुरम्य और सरस वातावरण को आत्मसात करना चाहते थे। उनकी गुणाज्ञता तथा भावुकता ने वल्लभ-सम्प्रदाय के आचार्यों को भी आकृष्ट किया।

औरंगजेब ने `इस्लाम खतरे में है` - कहकर मुस्लिम-वर्ग की भावना को हिन्दुओं के प्रति उकसाया।१ जिसके फलस्वरूप हिन्दुओं में भी इस्लाम के प्रति विद्वेष की भावनाएँ बलवती होती चली गईं। मुसलमान तलवार की नोंक पर अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे। वे सत्य के द्वारा अपनी संस्कृति को हिन्दू संस्कृति पर बलात् आरोपित करना चाहते थे, किन्तु हिन्दूओं ने कभी इसे स्वीकार नहीं किया। इनके व्यवहार में इस्लामी संस्कृति का व्यवहार आंशिक रूप में वेश-भूषा तथा भाषा के रूप में स्वभावत: ही समाविष्ट हो गया था। यही कारण है कि उनकी भाषा में उर्दू तथा फारसी के शब्द अब भी बहुतायत से प्राप्त होते हैं।

---

(1) "Aurangzeb represented the orthodox sprit of Shah Jahan and he utilised the cry of 'Religion in danger' to suit his political purpose and he obtained his desired result."

- Dr. M.L.Roy Chaudhary.

- The State and Religion In Mugal India.

Ed. 1951 Page 219

गोस्वामी हरिराय जी के समय में संस्कार-निरूपण की अविधारा परम्परागत प्रचलनों के अनुरूप ही थी । 'जन्मना जायते शूद्र' वाली उक्ति बस उक्ति ही थी । उच्च वर्ग निम्न-वर्ग का शोषण कर रहा था । रूढ़ियां समाज के चिंतन को बुद्ध बनाए हुए थीं । हिन्दू वर्ग के इस रूढ़ि चलन ने ही उन्हें सामयिक-समझौते के प्रति उदासीन बनाए रखा, जो उस समय परिस्थितियों से विद्रोह के लिए निरूपित होते थे । कबीर, दादू आदि के नारे हवाओं में तैर कर रह गए थे । इन कवियों के महत्व को तत्कालीन समाज यद्यपि नकार नहीं पारहा था तथापि उस कटु सत्य की वेदी पर वे अपनी पौराणिक-प्रतिष्ठा की बलि भी नहीं चढ़ाना चाहते थे ।

:: संस्कार ::

हिन्दु जाति में वल्लभ- सम्प्रदायी आचार्यों ने स्त्री एवं शूद्रों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की ।१ ये दोनों वर्ग चिरकाल से शोषण का जीवन जीते आए थे । सभी निम्न वर्गों के लिए दीक्षा के द्वार खोले गये । उन्हें सेवा-भक्ति के सर्व सुलभ अधिकार दिए गए ।

शिक्षा की दृष्टि से हिन्दुओं में गुरुकुल व्यवस्था यत्र-तत्र विद्यमान थी । प्राय: सभी धार्मिक आचार्य शिक्षा के लिए पाठशालाओं का निर्माण किया करते थे । इन आचार्यों की शिक्षा में साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का प्रचार अधिक रहता था ।

::शिक्षा::

गोस्वामी हरिराय जी की पारिवारिक स्थिति में गृह-शिक्षा का प्रचलन था, गो०गोकुलनाथ जी ने ही उन्हें विद्याभ्यास कराया था । इस विद्या-

---

(१) "जहां प्रमाण जीवन लाख बत्रीस को उद्धार करनों है, प्रथम स्त्री,शूद्र के लिये प्रगटे हैं । उपरान्त दैवी जीवन को उद्धार करनों है ।"
-- श्री स्वामिनी जी की भावना - गो० हरिराय जी ।

भ्यास में भी सम्प्रदाय-गत शिक्षा का आधिक्य बना रहता था। हिन्दू जाति के निम्न-वर्ग के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था न थी।

::- युग-::
::साहित्य::

हिन्दी साहित्य की दृष्टि से संवत् १६४७ से संवत् १७७२ तक का यह युग पर्याप्त सम्पन्न रहा है। इस युग की पृष्ठ भूमि में अष्टछाप जैसी प्रतिभायें उद्दीप्त हो चुकी थीं। गद्य की दृष्टि से भी यह ब्रजभाषा गद्य का स्वर्णयुग था।[1] आचार्य शुक्ल के काल-विभाजन के अनुसार[2] यह युग भक्ति काल के उत्तर-पक्ष से रीतिकाल के पूर्व-पक्ष तक बना रहता है। इसलिए इस युग के काव्य में भक्ति कालीन कवियों की काव्य-परम्परा का प्रभाव तथा रीति-कालीन कवियों की कला-प्रदर्शन की वृत्ति विद्यमान रही। अकबर से लेकर औरंगजेब तक साहित्य-कल्लोलिनी में अनेक मोड़ आ चुके थे। कबीर, दादू, मलूक का निराकारी भक्ति साहित्य दब चुका था, इसके स्थान पर अष्टछापी कवियों के साकार भक्ति के मधुर आलाप जन-मानस में झंकृत हो रहे थे।

अष्ट-छाप कवियों का काव्य प्राय: सभी मुक्तक पद शैली में लिखा गया है। इसका प्रमुख कारण संगीत था। ये भक्ति-कवि मन्दिरों में कीर्तन हेतु पदों की रचनायें विभिन्न राग-रागनियों में निबद्ध करके किया करते थे। इस साहित्य को कीर्तन-साहित्य अथवा 'हवेली' कीर्तन साहित्य ही कहा जाता है।[3] संगीत और साहित्य का समन्वय इस युग की प्रमुख देन थी।

---

(१) 'सूरदास की वार्ता'-- गो० हरिराय जी, सम्पा० श्री प्रभुदयाल जी मीतल परिशिष्ट- पृ० ७८

(२) संवत् १५०० से संवत् १७०० तक भक्तिकाल तथा संवत् १७०० से संवत् १९०० तक रीतिकाल- हिन्दी सा० का इतिहास द्वितीय सं० पृ० ५६

(३) हवेली परम्परा-- श्री ब्रजराज जी महाराज, अहमदाबाद- पृ० १२

गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में उपर्युक्त सभी विशेषताएँ प्राप्त होती हैं, जिनकी विस्तृत चर्चा अन्यत्र की जाएगी ।

अष्ट-छाप कवियों में तत्कालीन काल-सापेक्ष्य परिस्थितियों की प्रभावान्विति प्रत्यक्ष-रूप में तो नहीं दिखाई देती किन्तु परोक्ष - रूप में यत्र-तत्र अवश्य ही परिलक्षित होती है । अष्ट-छापेतर कवियों में भी यह प्रभाव देखा जा सकता है ।१ अष्ट-छाप के कवि परमानन्द दास जी ने तत्कालीन स्थिति का इस प्रकार चित्रण किया है,--

माधो या घर बहुत धरी ।

कहत सुनन कौं लीला कीनी, मर्यादा न टरी ।
जो गोपिन कैं प्रेम न होतो , अरु भागवत -पुरान ।।
तो सब औघड़ - पंथिन हो तो कुपथ गवैया ज्ञान ।
बारह बरस को भयो दिगम्बर, ज्ञान-हीन सन्यासी ।।
खान-पान सबहिंन घर भर के, भसम लगाये उदासी ।
पाखंड दम्भ बढ्यो कल-युग में , श्रद्धा-धर्म भयो लोप ।।
"परमानन्द वेद पढ़ि बिगर्यो, का पर कीजे कोप । २

---

(१) -- वेद धर्म दूरि गए, भूमि चोर भूप भए,
साधु सीधमान जान रीति पापपीन की ।
-कवितावलि-- गो० तुलसीदास (पद-१७७)
-- कलि बारहिं बार दुकाल करै, बिनु अन्न दु:खी सब लोग मरैं ।-वही
-- कलियुग कठिन वेद विधि रही, धर्म कहूं नहीं दीखत सही ।
कही भली कोऊ ना करै ।
उद्वस विश्व भयो सब देस, धर्म-रहित मेदनी- नरेस ,
मलेच्छ सकल पहुंमी बढे ।
सेवक-सेवक वाणी-(१-४-५५)

(२) परमानन्द सागर- सम्पा० डा० गोवर्द्धन लाल शुक्ल- पृ० ६६

अष्ट-छाप के कवियों के काव्य में इस प्रकार के काल-सापेक्ष्य चित्रण अधिक प्राप्त नहीं होते । कलियुग की स्थिति का चित्रण करते हुए इन्होंने यत्र-तत्र कुछ लिखा भी है, किन्तु इस प्रसंग पर स्वतंत्र लेखन का साहस जैसे उस युग के काव्यकर्ता परिस्थिति जन्य आतंक के कारण नहीं कर पाते थे ।

यदि भक्त कवियों की आंतरिक मनोवृत्ति का अन्वेषणात्मक परिशीलन किया जाये, तो साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में यह भी कहा जासकता है कि इन भक्त कवियों को न तो 'सीकरी' से ही कुछ काम था और ना ही 'प्राकृत - जन' का गुण - गान इनके जीवन का उद्देश्य था । फलत: विषय - वस्तु की दृष्टि से इन भक्त कवियों के काव्य में लौकिक परिस्थितियों के चित्रण को कोई स्थान न मिल सका । भगवान् कृष्ण की अलौकिक लीलाओं को साकार रूप में चित्रण करने के लिये ही उन्हें लौकिक धरा के अवलम्बों को ग्रहण करना पड़ा । वे न तो नन्द के 'खिरक' से बाहर निकलकर कंस की दरबारी शोभा को ही देख पाते थे और न हीं अपने अनन्य सखा कृष्ण का क्षणिक भी वियोग उन्हें सह्य था । इनका साहित्य वैयक्तिक एवम् एकान्तिक मानसिक साधना का इतिहास है । इसमें न तो समाज की जीवन्त-परिस्थितियों के आदर्श उपस्थित किये गये हैं, और न हीं यथार्थ के प्रति किसी प्रकार के लगाव का संकेत है । इन भक्त कवियों के साहित्य से समाज भले ही लाभान्वित हो जाय, किन्तु उनका लेखन - उद्देश्य मूलत: आत्माभिव्यक्ति ही रहा था ।१

गोस्वामी हरिराय जी स्वयं एक प्रतिष्ठित आचार्य-गद्दी के अधिकारी थे । अत: उनके समस्त कृतित्व में उनके सम्प्रदायगत् धार्मिक सिद्धान्त प्रचुरता से निरूपित हुए हैं । अष्ट-छापी-शैली और विषय-वस्तु के अतिरिक्त आपके पदों में समाज के स्वरूप का यत्किंचित वर्णन भी प्रसंगवश साकार होता रहा है ।

---

(१) हिन्दी वाङ्मय का विकास -- डा० सत्यदेव चौधरी- पृ० ८६ ।

किन्तु वह आनुषंगिक ही नहीं नगण्य भी है। गोस्वामी हरिराय जी के काव्य से एक उदाहरण द्रष्टव्य है:-

सनेही साँचे नन्द कुमार ।
और नहीं कोई दु:ख को बेली, सब मतलब के यार ।
मनुष - जाति को नहीं भरोसो, छिन बिहार, छिन-पार ।।१

\+ + + + +

अहो हरि दीन के जु दयाल ।
कब देखोगे दसा हमारी, ग्रसति है कलि - काल ।
कहा सुमिरन करों तिहारो, परो अति जंजाल ।।
काढ़िवे कों नाँहि समरथ, तुम बिना नंदलाल ।
सकल साधन रहित मोसों, और नहिं गोपाल ।।
करत अति विपरीत साधन , चलत - चाल कुचाल ।
कह्यो कासों जाय ब्रजपति, आपुनो यह हाल ।।
हँसतु कहा जु हरहु आरत, 'रसिक' करो निहाल ।।२

गोस्वामी हरिराय जी से पूर्व, काव्य के अतिरिक्त, ब्रजभाषा गद्य का कोई व्यवस्थित ग्रन्थ नहीं था। साथ ही लेखन की दृष्टि से ब्रजभाषा गद्य की कोई परिमार्जित शैली का प्रादुर्भाव भी नहीं हो पाया था। गो० हरिराय जी ने 'वार्ताओं' का सम्पादन व सृजन कर ब्रजभाषा गद्य के स्वरूप को निखारा तथा एक महत्वपूर्ण परम्परा का प्रवर्तन किया। ब्रजभाषा - गद्य की वार्ताओं में निहित 'भाव-प्रकाश' इनकी मौलिक देन है। समालोचना के इतिहास में 'भाव - प्रकाश' का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान निर्धारित किया गया है।

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य(प्रका०) सम्पादक- श्री प्रभूदयालमीतल। पृ० २६१

(२) वही, -- पृ० ४६

-:: कला ::-

मुगल शासन-काल में कला के रागात्मक सौन्दर्य-पक्ष का जो उत्कृष्ट रूप सामने आया, वह अन्यत्र देखने को नहीं मिलता अकबर की कला-विषयक सहृदयता, जहाँगीर की कलागत रुचियाँ और शाहजहाँ की कला साधना ने कला के उत्थान को ऐतिहासिक और अमरत्व प्रदान किया। इस युग में संगीत, चित्रकला एवम् वास्तु-कला का अत्याधिक विकास हुआ था।

वास्तु-शिल्प के उदाहरण ऐतिहासिक इमारतों में अब भी देखे जासकते हैं। भारत वर्ष के बड़े - बड़े मन्दिरों में यह कला आज भी सुरक्षित है। जामा-मस्जिद, मोती-मस्जिद, ताज महल, फतहपुरसीकरी आदि का उत्कृष्ट कला विन्यास इसी युग की देन है। जहाँगीर और शाहजहाँ के समय में अनेक राजपूतों ने मथुरा, वृन्दावन, गोकुल आदि स्थलों पर अनेक सुन्दर भव्य मन्दिरों का निर्माण कराया, जो वास्तु-कला की दृष्टि से अब तक स्मरणीय हैं। वृन्दावन में जयपुर वालों का मन्दिर, रंगनाथ का मन्दिर, मथुरा में केशवदेव का मन्दिर, अपनी वैभवशील कला के लिए प्रख्यात थे।१

सुन्दर-सुन्दर मूर्तियाँ राजमहल की शोभा के लिये सजायी जाती थीं, धर्माचार्य भी उपासना हेतु नई - नई मूर्तियों का निर्माण कराते थे। शासकीय अधिकारीगण व अन्य धनी-मानी व्यक्ति बड़ी - बड़ी कलात्मक इमारतें बनवाया करते थे। अधिकांश घरों के द्वारों पर कारीगरी के नमूने देखे जासकते थे। राजाओं को किले बनवाने का शौक था। पुष्टि-मार्गीय आचार्यों के अधिकार में भी सुन्दर - सुन्दर मन्दिर व मूर्तियाँ थीं।

---

(१) श्री ब्रज का इतिहास- (भाग-१) कृष्णादत्त बाजपेयी- पृष्ठ- १६२

गोस्वामी हरिराय जी के समय में अनेक सुन्दर मन्दिरों का निर्माण हुआ था। 'नाथद्वारा' स्थित श्रीनाथ जी का विशाल मन्दिर गोस्वामी हरिराय जी के समय में ही तैयार हुआ था। स्मरणीय है कि यह मन्दिर आज भी भारत वर्ष के श्रेष्ठतम मन्दिरों में से एक गिना जाता है।

मानव-आकृति को चित्रित करने का इस्लाम - धर्म में निषेध था, किन्तु अकबर ने अपने उदार स्वभाव के कारण अनेक स्थलों पर बादशाहों, दरबारियों तथा नर्तकियों आदि के विभिन्न चित्र बनवाये थे। बादशाह अकबर प्रसिद्ध चित्रकारों को समय - समय पर पुरस्कृत भी करता रहता था। अकबर की भांति जहांगीर भी चित्रकला का मर्मज्ञ था। उसके दरबार में अबुलहसन, मंसूर, किशन दास, मनोहर, गोवर्धन, दौलत उस्ताद और मुराद आदि प्रसिद्ध चित्रकार थे।१

हिन्दुओं की पौराणिक कथाओं, समाज के स्वरूप और ग्राम्य-जीवन के सुन्दर - सुन्दर दृश्यों का उस काल में चित्रांकन होने लगा था। मन्दिरों और घरों के दरवाजों पर भी चित्रकारी होती थी। विवाह, उत्सव तथा अन्य सांस्कृतिक पर्वों पर भी चित्र बनाये जाते थे। पुष्टि-मार्गीय आचार्यों में भी चित्रकला के प्रति रुचि थी। इन आचार्यों के विविध चित्र अब भी प्राप्त होते हैं। महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी के साथ माधव-भट्ट नामक प्रसिद्ध काश्मीरी चित्रकार रहते थे। उनके बनाये हुए चित्र आज भी अपनी पूर्ण गरिमा के साथ उपलब्ध हैं। भगवान् के मन्दिर की 'पिछवाइयों' में यह कला और भी परिष्कृत रूप में पाई जाती थी। श्रीनाथ जी के मन्दिर में तत्कालीन चित्रकारी की पिछवाइयां आज भी उपयोग में आती रहती हैं।

---

(१) भारतवर्ष का इतिहास-- डा० ईश्वरी प्रसाद माहेश्वरी संस्क० १९३६
पृष्ठ- ४२६

भगवान की लीलाओं के विविध चित्रों का भी निर्माण होता रहता था। चित्रकला के प्रति जन-सामान्य में भी लगाव था।

इस युग में संगीत-कला के प्रति भी अत्यधिक लगाव था। हिन्दू एवं मुसलमान दोनों वर्गों ने इसे अपनाया था। औरंगजेब इस सन्दर्भ में अपवाद कहा जाता है। डा० नगेन्द्र के अनुसार, 'वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था। इस सम्प्रदाय में जीवन के रागात्मक तत्वों के प्रति एक प्रकार का कठोर-भाव मिलता है। सौन्दर्य, ऐश्वर्य और विलास का त्याग उसमें अनिवार्य है। फलत: जीवन के रागात्मक तत्वों को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली कलाओं और साहित्य के लिए औरंगजेब के आदर्श राज्य में कोई स्थान न था'।१ अन्य विद्वानों की दृष्टि से यह धारणा उपयुक्त प्रतीत नहीं होती, सर-जदुनाथ सरकार के अनुसार 'अनभिज्ञ जनता के बीच औरंगजेब के संगीत सम्बन्धी अधिनियमों के विषय में अत्यन्त मिथ्या विचार प्रचलित हैं। उसके सरकारी इतिहास 'मासीरे आलमगीरी' में वर्णित है कि मधुर कंठ वाले गायक तथा वाद्य-यंत्रों को सुन्दर ढंग से बजाने वाले उसके सिंहासन के चारों ओर अधिक संख्या में एकत्र होते थे'।२ डा० नगेन्द्र की भाँति डा० ईश्वरी प्रसाद का मत भी औरंगजेब को संगीत-प्रिय नहीं मानता।३

वस्तुत: यही प्रतीत होता है कि औरंगजेब के दरबार में संगीतज्ञों का अभाव तो न था किन्तु उसकी अभिरुचि शासन-कार्य में अधिक थी। अपने साम्राज्य के परिवर्द्धन की विविध योजनाओं को कार्यान्वित करने में ही उसका अधिकांश समय व्यतीत होता था। इस प्रकार अपनी कर्मठवृत्ति और कर्तव्य के निर्वाह में उसे संगीत श्रवण का अवसर ही कब मिल पाया होगा।

---

(१) हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास-- (षष्ठ भाग) डा० नगेन्द्र पृ० ७
(२) मुगल शासन पद्धति-- सर जदुनाथ सरकार अनु० विजय नारायन चौबे पृ०१०३
(३) भारतवर्ष का इतिहास- डा० ईश्वरी प्रसाद माहेश्वरी(सं० १६३६)।।४२७

संगीत-शास्त्र तथा गीति काव्य का अष्ट-छाप के काव्य में चरमोत्कर्ष दिखलाई देता है। 'कृष्ण भक्ति के लगभग सभी कवियों को भारतीय-संगीत का समुचित ज्ञान था। इन कवियों में से अधिकांश ने शास्त्रीय-संगीत का विधिवत् अध्ययन किया था। संगीत के कारण ही कृष्ण-काव्य जन-साधारण में अधिक प्रचलित हो सका। कृष्ण काव्य के अधिकांश कवियों ने अपने पदों का भिन्न-भिन्न राग-रागनियों में निबन्धन किया था, जो राग-रस-सिद्धान्त के सर्वथा अनुकूल हैं'। १

गोस्वामी हरिराय जी स्वयं संगीत-विज्ञ थे। उन्होंने विभिन्न राग-रागनियों के आधार पर अनेक पदों का निर्माण किया था, जो आज भी पुष्टि-मार्गीय मन्दिरों में कीर्तन के रूप में गाए जाते हैं। उनके साहित्य पर संगीत का व्यापक प्रभाव पड़ा था।

-:: धर्म और सम्प्रदाय ::-

जहाँ तक तत्कालीन धार्मिक - प्रवृत्तियों का प्रश्न है, पहले ही कहा जा चुका है कि यह युग धार्मिक - आन्दोलनों का युग न था। हिन्दू-धर्म के प्राय: सभी वैष्णव सम्प्रदाय अपना - अपना स्वरूप निश्चित कर चुके थे। वस्तुत: वह युग सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के प्रसारण की स्पर्धा का युग था। सभी वैष्णव - भक्त सम्प्रदाय अपने - अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर रहे थे। धर्म का स्वरूप भिन्न - भिन्न अवस्थाओं में पल्लवित हो रहा था।

'धर्म का भाव कर्म, ज्ञान और भक्ति इन तीनों धाराओं में चलता है। इन तीनों के सामंजस्य से धर्म अपनी सजीव अवस्था में रहता है। किसी एक के भी अभाव में वह विकलांग रहता है, कर्म के बिना वह लूला-

---

१- भक्तिकालीन काव्य में राग और रस-- डा० दिनेश चन्द्र गुप्त, पृष्ठ- ६

लगड़ा, ज्ञान के बिना वह अंधा और भक्ति के बिना वह हृदय-हीन क्या निष्प्राण रहता है ।[१]

वैष्णव धर्माचार्यों ने तत्व-त्रयी कर्म, ज्ञान और भक्ति को समन्वित करने का अप्रतिम प्रयास किया । वैष्णव-मत में कर्म और ज्ञान को समन्वित कर भक्ति को प्रधानता दी गई । आचार्य शंकर ने 'मायावाद' प्रतिपादित करते हुए ज्ञान को प्रमुख स्थान दिया था । परवर्ती, निराकार-ब्रह्म के उपासकों ने तदनुरूप ज्ञान को ही शीर्षस्थ महत्व प्रदान किया । इस तथ्य को पुष्ट करने वालों में निर्गुण-शाखा के संत कवियों का हाथ अधिक रहा, इनमें कबीर, दादू आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

धार्मिक परिवेश में जहाँ एक ओर मुसलमानों में हिन्दुओं के प्रति विद्वेष की भावना पनप रही थी, वहीं दूसरी ओर उनमें कुछ ऐसे सूफी फकीर व संत भी हुए, जिन्होंने समाज में समन्वय का अलख जगाया । उन्होंने धर्म, समाज और संस्कृति का पूर्ण अध्ययन किया और उसकी विकृतियाँ उजागर करने के लिए मैदान में निकल पड़े । ये सभी संत व फकीर निम्न-जाति से संबंधित थे । डा० हरवंश लाल शर्मा के अनुसार, "यह ध्यान रखने की बात है कि इन संतों में से अधिकांश कुछ नीची कही जाने वाली जातियों में से थे, जो समाज की रक्त - संचारक धमनियाँ कही जा सकती हैं और जिनकी त्याग-मयी सेवाओं के आधार पर समाज का साँस कायम है ।"[२] इनके माध्यम से हिन्दू एवं मुसलमान दोनों वर्ग एक दूसरे को समझने की चेष्टा करने लगे । इस प्रसंग में कबीर, मलूक, दादू आदि की देन महत्वपूर्ण है । आगे चलकर इस मत में हठयोग, व्यक्तिगत शारीरिक- अन्त: साधना तथा विभिन्न समाधियों के कठोर विधान से जन-साधारण ऊबने लगा । वह स्वयं को इन

---

(१) हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हि०सं०पृ०-५६ ।
(२) सूर और उनका साहित्य - डा० हरवंश लाल शर्मा हि०सं०पृ०-६५ ।

आध्यात्मिक-व्यायामों के अनुकूल न बना सका ।

'अंधकार के इस युग में जब ज्ञान और कर्म का मार्ग अत्यन्त दुर्लभ हो गया था तथा परस्पर विरोधी विचारों का संघर्ष हो रहा था, वैष्णव-भक्ति के प्रचार ने कुंठित और क्षुभित जन-मानस में एक महत्व पूर्ण ऐतिहासिक संदर्भ की पूर्ति की ।१ आचार्य शुक्ल ने भक्ति के विकास का कारण हिन्दुओं पर हो रहे मुसलमानी अत्याचारों को माना है ।२ हरिऔध ने इस आन्दोलन का कारण सूफी संतों के प्रेमकाव्यों को बताया है ।३

वस्तुत: यह स्थिति गोस्वामी हरिराय जी से पहले की थी । गोस्वामी हरिराय जी के समय तक इस प्रकार के समस्त भक्ति - आन्दोलन समाप्त हो चुके थे । उनका समय तो विभिन्न भक्ति सम्प्रदायों के सिद्धान्तों के प्रसारण की प्रतिस्पर्धा का समय था । इस समय सम्प्रदाय के विभिन्न आचार्य अपने-अपने सिद्धान्तों के प्रकाशन व प्रसारण हेतु साहित्य सृजन कर रहे थे । गोस्वामी हरिराय जी ने भी इस युग - वृत्ति से प्रभाव ग्रहण किया था । उनका अधिकांश साहित्य प्राय: सैद्धान्तिक - विवेचन के लिए ही निर्मित हुआ प्रतीत होता है ।

वल्लभाचार्य जी ने शंकर-मत के 'मायावाद' के प्रतिकार में शुद्धाद्वैत का प्रकाशन कर 'कृष्ण' की ललित-लीलाओं की मनोरम झांकियों के प्रति जन-रुचि को आकर्षित करने का प्रयास किया ।

---

(१) देखिये-- सूर-मीमांसा-- डा० व्रजेश्वर वर्मा - पृष्ठ- १४
(२) हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य शुक्ल-- द्वितीय संस्क० ५६
(३) हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास- अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरि औध' पृष्ठ- २०२

महाप्रभु वल्लभाचार्य के दृष्टि-पथ में दो विचार - वीथियाँ संश्लिष्ट थीं, जो अन्तत: उनके अभीष्ट - विन्दु से जा जुड़ी थीं । प्रथम - वल्लभाचार्य जी ने शंकर - मत के दुरूह - चिन्तन वन्य में भटकते निराकार ब्रह्म को एक साकार कल्पना चित्र में अभिमंडित किया, उसे एक निश्चित रूप, एक निश्चित रंग में उपस्थित कर, अज्ञात और अनन्त की परिधि से निकाल एक भव्य मंदिर में प्रतिष्ठित कर दिया । इससे जन-मानस का उस अव्यक्त, अनादि से सीधा संबंध जुड़ गया । भक्ति के अवलम्ब में कृष्ण की मनोहारिणी छवि अंकित कर वल्लभाचार्य जी ने उसे ऐन्द्रिक - सुख की परिधि में ला खड़ा किया । भक्त अब अपने आराध्य से कुछ कह सकता था, कुछ सुन सकता था । वह कभी अपने मन - मोहन के पाग - पगिया ठीक करने लगा तो कभी उसकी गुन्ज की माल पिरोने लगा । इस प्रकार वल्लभाचार्य ने भक्ति को अव्यक्त - कल्पना - क्षितिज से उतार उसे मनुष्य की कर्म-भूमि से जोड़ दिया । गुसाईं जी ने इस कर्म - क्षेत्र में और भी अनुपम पुष्प - वाटिकाएँ लगा इसके कीर्ति - पराग से दिग्दिगन्त को आच्छादित कर दिया ।

द्वितीय ---- महाप्रभु वल्लभाचार्य ने मानसिक चिंतन की बोध-तुला पर अपने वर्तमान की विभीषिका को तौला । उन्होंने पाया कि मुगल साम्राज्य के अत्याचारों से क्षुब्ध, त्रस्त और हतास जन - चेतना नैराश्य की धुंध में छटपटा रही थी । भक्तों के सामने उनके भगवान् विखण्डित हो रहे थे, मन्दिरें टूट रहे थे, पूजा - सेवा पर प्रतिवन्ध लग रहे थे और उनके भगवान् चुप थे । उनका अनादि शक्ति - सम्पन्न देव फिर भी मौन था - - - लेकिन क्यों ? इस क्यों के अहल - प्रश्न-चिन्ह में सिमट कर भक्त की आस्था विघटित होने लगी । निरास व्यक्ति का दौर्बल्य उस पर 'हावी' होने लगा ।

भक्ति के प्रति आस्था की इस थिर और विघटन की संक्रामक-सीमा पर खड़े महाप्रभु वल्लभाचार्य ने इस दुरूह समस्या का एक बड़ा ही स्वाभाविक हल निकाला । उन्होंने जन - मानस की रागात्मक - वृत्ति

को उभारने के लिए एक सर्व - ग्राह्य माध्यम निकाला --- शिशु - प्रेम । उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में भगवान कृष्ण के बाल - स्वरूप की स्थापना कर क्षुब्ध और हतास जन - चेतना को वात्सल्य के सुमधुर - स्नेह से आप्लावित कर दिया । उन्होंने माँ - यशोदा के लाड़ले - शिशु को एक भगुली पहनाई, उसके हाथ में एक बंशी दी -- और खो गये उसकी श्रृंगार सज्जा में --- उसके लाड़ लड़ावन में ।

भक्तों का भावुक हृदय फिर उमड़ा, और डूब गया अपने इस नन्द - किशोर की बाँकी चितवन में ।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने व्यवहार और सिद्धान्त -- उभय - पक्षों को पुष्ट किया है । अपने सैद्धान्तिक - विमर्श में उन्होंने ब्रह्म को सत्य माना है । ब्रह्म का 'क्रीड़ाभाण्ड' होने के कारण जगत भी सत्य है, और समस्त लोक ब्रह्म का स्वरूप है । उन्होंने जड़ - चेतन सभी को ब्रह्ममय माना है । इस मत के अनुसार उनके सिद्धान्त को 'ब्रह्मवाद' भी कहा जाता है । इस लौकिक जगत में आत्म - परिणिति होने पर भी, ब्रह्म अविकृत है । उस मान्यता के अनुसार इस मत को 'अविकृत परिणाम वाद' भी कहा जाता है ।

ब्रह्म विरुद्ध धर्माश्रय है, प्रपंच भगवत् कृत होने से सत्य और संसार अहंता ममतात्मक होने से मिथ्या है और जीव भगवद्अंश अणुस्वरूप विसर्विगुण चैतन्य है । अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन में इन्होंने चार प्रकार के ग्रन्थ प्रमाण माने हैं ---उपनिषद्, गीता, व्यास कृत उत्तरमीमांसा तथा श्रीमद्-भागवत्। १

---

(१) नन्ददास - डा० रामरतन भटनागर- पृष्ठ- २१६ ।

पुष्टि मार्ग की व्याख्या करते हुए परवर्ती आचार्य गोस्वामी हरिराय जी ने लिखा था कि 'जिस मार्ग में श्रुति, स्मृति, पुराण एवं इतिहास में प्रतिपादित धर्म का तात्पर्य भगवान् में ही जानकर भगवत् साक्षात्कार में अन्तरायभूत धर्म को त्याग कर केवल भगवत्स्वरूप का मनन एवं स्मरण हो वह पुष्टि मार्ग है' । १ जिस मार्ग में भजन को महत्व दिया हो क्योंकि भजन के माध्यम से भक्ति पुष्ट होती है, तथा भक्त और भगवान् को स्नेह और भी परिपक्व होता है । ऐसे मार्ग को पुष्टि मार्ग कहते हैं । २ जहाँ फल साधन में सर्वत्र विपरीतता हो वह पुष्टि मार्ग है ।३

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने उक्त सिद्धान्तों के आधार पर ही शुद्धाद्वैत की प्रतिष्ठा की थी जिसे आगे चलकर इनके सुपुत्र गो० विट्ठलनाथ जी ने संवर्द्धित किया ।

---

(१) स्वरूपा मात्र परता तात्पर्य ज्ञान पूर्वकम् ।
धर्म निष्ठा यत्र नैव, पुष्टि मार्ग स कथ्यते ।।

-- श्री हरिराय वाङ् मुक्तावलि- १ पृष्ठ- १२४

(२) भजन स्यापवादो न क्रियते फलदानत:: ।
प्रभुणा यत्र तद्भाषात् पुष्टिमार्ग स कथ्यते ।।

-- श्री हरिराय वाङ् मुक्तावलि-१ पृष्ठ- १२८

(३) फले च साधने चैव सर्वत्र विपरीतता,
फलम्भाव: साधनं स, पुष्टिमार्ग स कथ्यते ।।

-- श्री हरिराय वाङ् मुक्तावलि- १ पृष्ठ- १३०

वैष्णव धर्म में भक्ति-मार्ग की प्रतिष्ठा ने हिन्दू - वर्ग को नई चेतना प्रदान की। साकार कृष्ण की मन-मोहिनी मूरत अब सम्मुख विद्यमान थी। कवियों के कल्पना - परिधान में लिपटा ब्रजभाषा साहित्य भी इस भक्ति सिद्धान्त को जन - मानस के रग - रग में व्याप्त कर रहा था।

इन विविध सम्प्रदायों ने जन - साधारण में आध्यात्मिक - चेतना का प्रसारण किया, वहीं कुछ अंशों में आपसी मतान्तर के कारण संकीर्णता की भावना भी पनपने लगी। एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय से द्वेष करने लगा। स्वयं पुष्टि मार्ग में भी कुछ ऐसी धारणाएँ घर कर गई थीं। १ इस सम्प्रदाय में अपरस (अस्पर्श) व्यवस्था में छुआ-छूत को कड़े ढंग से पालन किया जाता है। विलासिता तो वैभव के साथ होती ही है, फिर भी आचरण की दृष्टि से ये आचार्य सदैव अपने अनुयायी - वैष्णवों के लिए आदर्श बने रहे। पुष्टि-मार्ग के इतिहास में ये परम्परा कभी कलुषित नहीं हुई। अपने आचार्यत्व की मर्यादा का निर्वाह इन्होंने बहुत ही सफलता के साथ किया। यही कारण है कि समस्त भारत वर्ष में इनके प्रतिष्ठित स्वरूप को आज भी व्यापक रूप से मान्यता प्राप्त है।

गोस्वामी हरिराय जी से पहले समाज में धर्म के माध्यम से अनेक अंध विश्वास भी प्रचलित हो चुके थे, जिनका उल्लेख विविध वार्ताओं में प्राप्त होता है।२ इन कुप्रथाओं को धार्मिक ग्रन्थों द्वारा पुष्टि प्रदान

---

(१) 'सो श्री गुसाईं जी आपु चतुश्लोकी में कहे हैं:-

विजाती यजनात् कृष्णो निज धर्मस्य गोपनम् ।।
देशे विधाय सततं स्थैर्यमित्यैव मे मति ।।
सो ऐसे देस में जाय जहाँ कोई वैष्णव नाहीं होय
तहाँ अपने धर्म को प्रगट न करें तब आपुनो धर्म रहैं ।।

-- प्राचीन वार्ता रहस्य, भाग-२ पृ० ३४३

(२) 'सो उह पर्वत तें मनुष्य गिरें तो चोट न लगे अनजानें, और जानि कें सिगरे पाप कहिकें ऊपर ते गिरें तो देह छूटे, पाछें दूसरे जनम में कामना सिद्ध होय, ऐसो वा पर्वत को महात्म लोक में प्रसिद्ध हो।

वही, भाग-३ पृ० ११

होती रहती थी, जिससे जन सामान्य में स्वतंत्र विवेक की चेतना जाग्रत नहीं हो पाती थी ।

पुष्टि मार्ग में महाप्रभु वल्लभाचार्य के पश्चात् उनके सुयोग्य पुत्र गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी ने अपनी पैतृक मर्यादा का सफलता पूर्ण निर्वाह किया । तत्पश्चात् गो० गोकुल नाथ जी ने अपने अध्ययन-गाम्भीर्य व व्यवहार-कौशल से जन-मानस को अत्यधिक प्रभावित किया । गो० गोकुल नाथ जी के बाद गोस्वामी हरिराय जी ही सब से प्रसिद्ध आचार्य इस सम्प्रदाय में हुए, जिनकी विद्वता व आचार्य - मर्यादा सम्प्रति भी वल्लभ सम्प्रदायी वैष्णवों में श्रद्धा का विषय बनी । इन्होंने यथा-शक्य अपने आदर्शों का निर्वाह किया ।

आलोच्य तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में विषय के अध्ययन से ज्ञात होता है कि गोस्वामी हरिराय का समय अत्यन्त विषम परिस्थितियों का युग था । शासकीय अत्याचारों से प्रताड़ित गोस्वामी परिवार यत्र - तत्र

::निष्कर्ष::

भाग-दौड़ कर रहा था । मुगल शासकों के पक्षपात पूर्ण व्यवहार ने भी हिन्दुओं को निराश कर दिया था । इसके अतिरिक्त हिन्दुओं में शिक्षा की उचित व्यवस्था न थी । उन्हें आजीविका हेतु अच्छे पदों की प्राप्ति भी नहीं हो पाती थी । भिन्न-भिन्न धार्मिक-सम्प्रदाय अपना - अपना 'अलाप' कर रहे थे । स्त्री वर्ग शोषण की परम्परा में जकड़ा हुआ था । गोस्वामी हरिराय जी एक धर्म - सम्प्रदाय के आचार्य थे । इसलिए उनके जीवन पर इन परिस्थितियों का विशेष प्रभाव पड़ा । शासकीय अत्याचार से त्रस्त होकर उन्होंने भी व्रज छोड़ दिया था । मुगल-शासकों से उनका कोई सम्बन्ध न था, साथ ही रजवाड़ों के राजाओं से इनका घनिष्ट परिचय था, इसको अन्यत्र स्पष्ट किया जा रहा है । परिस्थितियों के व्यापक प्रभाव इनकी रचनाओं पर भी

पड़े हैं । इनका जीवन-चक्र भी परिस्थितियों के समानान्तर ही चला है ।

प्रस्तुत अध्याय में गोस्वामी हरिराय जी की
युग - स्थिति के अध्ययन के पश्चात् अगले
अध्याय में उनके जीवन-चरित्र पर प्रकाश
डाला जारहा है । साहित्यकार के
कृतित्व पर उसके व्यक्तित्व एवं परिस्थितियों
का व्यापक प्रभाव रहता है । अत: तत्कालीन
परिस्थितियों के अध्ययन के पश्चात् उनके जीवन-
चरित्र को स्पष्ट करना ही अभिप्रेत है ।

Chapter-2

द्वितीय - अध्याय

जीवन -परिचय

"गोस्वामी हरिराय जी अपनी प्रौढ़ावस्था में महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य के अनुरूप भगवत्प्रेम, विरहानुभूति, दीनता, त्याग, सहिष्णुता, विद्वता एवं कर्मठता में निमग्न रहते थे । इसी कारण जीवन की सान्ध्य-बेला में उन्हें 'महाप्रभु' की सम्माननीय उपाधि से भी अलंकृत किया गया था । यह विशिष्ट उपाधि महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य के पश्चात् गोस्वामी श्री गोकुलनाथ जी को प्राप्त हुई थी । इनके पश्चात् यह महान् उपाधि गोस्वामी हरिराय जी को ही मिल सकी । यह उनकी विद्वता एवं जन-सम्मान की प्रतीक थी"।

गोस्वामी हरिराय जी

जीवन - वृत्त

परिवार-गत | सम्प्रदाय- गत | साहित्य- गत

विगत अध्याय में हम गोस्वामी हरिराय जी की समकालीन सामाजिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों का अवलोकन कर चुके हैं। विवेच्य अध्याय में गोस्वामी हरिराय जी के जीवन वृत्त से सम्बन्धित तथ्यों का अपेक्षित समाकलन प्रस्तुत किया जारहा है।

भारतीय प्राचीन परम्परा का अनुकरण करते हुए गोस्वामी हरिराय जी ने भी अपने जीवन के सम्बन्ध में स्वकीर्ति-गान की उपेक्षा करते हुए कहीं कुछ भी उल्लेख नहीं किया। उनके जीवन-चरित्र पर कुछेक अन्य विद्वानों ने अवश्य कुछ प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त गोस्वामी हरिराय जी के कुछ ग्रन्थों में भी इस ओर यत्किंचित संकेत मिलते हैं। जिनसे इनके व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है। फलतः गोस्वामी हरिराय जी के जीवन परिचय के लिये आज वाह्य - साक्ष्यों व परम्परागत-जनश्रुतियों का ही आधार प्राप्य है। कतिपय आधारों के परिप्रेक्ष्य में ही यहाँ गोस्वामी हरिराय जी का जीवन-वृत्त समायोजित किया जारहा है।

<u>परिवार-गत</u>

::पूर्वज:: गोस्वामी हरिराय जी का जन्म महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी के वंश में हुआ था। महाप्रभु वल्लभाचार्य के देहावसान के उपरान्त उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी बहुश्रुत व्यक्तित्व थे। इनके सात पुत्र हुए, जिन्हें 'सात घरों' के नाम से जाना जाता है। गोस्वामी-

विट्ठलनाथ जी सम्प्रदाय में 'गुसाईं जी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। गुसाईं जी के द्वितीय पुत्र का नाम श्री गोविन्द राय जी था। गोविन्दराय जी के चार पुत्र उत्पन्न हुए थे- कल्याणराय जी, गोकुलोत्सव जी, कृष्णराय जी एवं लक्ष्मीनृसिंह जी। कल्याण राय जी ज्येष्ठ भ्राता थे। इनका जन्म संवत् १६२५ कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी को हुआ था।१ गोस्वामी हरिराय जी गोस्वामी कल्याणराय जी के पुत्र थे।

पिता

कल्याणराय जी का अधिकांश समय गोकुल में व्यतीत हुआ था। गुसाईं जी की उपस्थिति में उनका लालन पालन हुआ था उल्लेख मिलता है कि 'एक समय वल्लभाचार्य जी के ज्येष्ठ भ्राता केशव पुरी गोकुल में गुसाईं जी से मिलने आए। ये महाशय सन्यासी जीवन व्यतीत करते थे। स्थान- स्थान पर इनके शास्त्रार्थ भी होते रहते थे। इन्होंने गुसाईं जी से कहा कि इनकी गद्दी के लिये उत्तराधिकारी हेतु कोई शिशु चाहिये। बालक कल्याण राय, जो गुसाईं जी के पौत्र थे, वहाँ उपस्थित थे, उन्होंने समझा कि सम्भवत: गुसाईं जी उन्हें ही केशवपुरी के साथ भेजेंगे। इस विचार से कल्याणराय जी भयभीत हुए। वे गुसाईं जी से पृथक् रहने की कल्पना से ही विचलित हो गए। उस समय उनकी आयु दस वर्ष की थी। केशवपुरी के विचारों को सुनकर वे रोते हुए गुसाईं जी के समीप आए, और एक स्वरचित पद - 'हौं ब्रज माँगनौ जू' - उन्हें गाकर सुनाया। गुसाईं जी बालक का भावोद्वेग देखकर गद्गद होगये। उन्होंने अपना अधरस्पर्शित ताम्बूल उन्हें दिया। केशवपुरी के साथ न भेजने का भी उन्हें अभय वचन दिया।२ इस प्रसंग से ज्ञात होता है कि गुसाईं जी की कल्याणराय जी पर अति कृपा थी। कल्याणराय जी इस छोटी

---

(१) श्री वल्लभ- वंश वृक्ष -- सम्पा० गो० व्रजभूषण शर्मा।
(२) श्री हरिराय जीना जीवन दर्शन - भाग-१,२ प्रका० सावली पृ० २०

आयु में भी पद-रचना कर लेते थे ।

सम्प्रदायगत विश्वास के आधार पर कहा जाता है कि कल्याणराय जी का प्रथम विवाह लगभग पन्द्रह वर्ष की आयु में हुआ था । उसके दो साल पश्चात् ही उनकी धर्मपत्नी का देहावसान होगया । कल्याणराय जी की द्वितीय विवाह की कदापि इच्छा नहीं थी । उनकी माता इस बात से चिंतित थीं कि यदि उनका ज्येष्ठ पुत्र विवाह न करेगा तो वंश कैसे चलेगा ?

गुसाईं जी के देहावसान के समय कल्याणराय जी की आयु सत्रह वर्ष की थी । पत्नी एवं पितामह के वियोग से उन्हें बड़ा ही आघात पहुँचा था । अन्त में गोस्वामी गोकुल नाथ जी के कहने से वे पुनर्विवाह के लिये सहमत होगए । विट्ठलनाथ जी के परलोक गमन से ही कल्याणराय जी एवं उनके भ्राता घनश्यामराय जी गोस्वामी गोकुलनाथ जी के संरक्षण में रहने लगे । गोकुलनाथ जी कल्याणराय जी के स्वभाव से भली-भाँति परिचित थे । उनके विरक्त भाव को देखकर कोई भी सद्गृहस्थ उन्हें कन्या देने के पक्ष में न था । ऐसी विषय - अवस्था में गो० गोकुलनाथ जी ने भविष्यवाणी की कि इनका प्रथम पुत्र महान-प्रभुत्व-शाली होगा । इस घोषणा के फलस्वरूप इक्कीस वर्ष की आयु में इनका दूसरा विवाह सम्पन्न हुआ ।

उनकी दूसरी पत्नी का नाम 'जमुना' था । जिनसे तीन पुत्र हुए । हरिराय जी उनमें ज्येष्ठ पुत्र थे । हरिराय जी में अपने प्रपितामह गुसाईं श्री विट्ठलनाथ जी के गुण विद्यमान थे । कालान्तर में ये उन्हीं के अनुरूप प्रख्यात भी हुए ।

:: जन्म ::

हरिराय जी का जन्म संवत् १६४७ में हुआ था। श्री विट्ठलनाथ भट्ट[1]। डा० दीनदयालु गुप्त[2], डा० हरिहर नाथ टण्डन[3], श्री प्रभुदयाल मीतल[4], श्री द्वारका दास परिख[5] आदि सभी विद्वानों ने यह जन्म संवत् स्वीकार किया है। श्रीद्वारकादास परिख ने अपने ग्रन्थ गो० हरिराय जी नूं जीवन-चरित्र में इनके जन्म के प्रसंग में दो मत दिए हैं। इन्होंने संवत् १६४५ तथा संवत् १६४७ दो संवतों पर जन्म सम्बन्धी विचार व्यक्त किये हैं, किन्तु अन्त में इन्होंने संवत् १६४७ को ही उचित संवत् स्वीकार किया है। भाद्रपद (गुर्जर) कृष्णा पंचमी हरिराय जी की जन्म-तिथि थी।

जन्म-स्थान

गुसाईं जी के समय से ही प्राय: सभी गोस्वामी परिवार गोकुल में स्थायी रूप से निवास करते थे। हरिराय जी के पितामह गोविन्दराय जीनेगोकुल में ही एक मन्दिर बनवाया था। उनकी सर्वाधिक आयु उसी स्थान पर व्यतीत हुई थी। कल्याणराय जी भी गुसाईं जी के समीप गोकुल में ही रहा करते थे। कल्याण राय जी का विवाह गोकुल में ही हुआ था। हरिराय जी का जन्म भी गोकुल में ही हुआ। गोपिकालंकार जी भट्टू जी ने हरिराय जी की बधाई में गोकुल का ही उल्लेख किया है।[6] श्री प्रभूदयाल-

---

(१) गोविंद सुत कल्याण के प्रगटे फिर हरिराय। भादव कृष्णा षष्ठिकों मुनिफल कला बधाय। -- सम्प्र० कल्पद्रुम- पृष्ठ-११६

(२) अष्टछाप व वल्लभ सम्प्रदाय (भाग-१) पृष्ठ- ८०

(३) वार्ता साहित्य एक वृहद् अध्ययन -- पृष्ठ-

(४) गो० हरिराय जी का पद - साहित्य (प्रकाशित) पृष्ठ- ५

(५) गो० हरिराय जी नूं जीवन-चरित्र (गुजराती) पृष्ठ- १२

(६) देत असीस सदा जीवौ यह, सदा बसौ श्री गोकुल ग्राम।
-- वर्षोत्सव - (भाग-२) पृष्ठ-१७८

मीतल के अनुसार भी "श्री हरिराय जी के समय में गोकुल वल्लभ - सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र था। गुसाईं जी के सातों पुत्रों, उनके वंशजों तथा सेव्य - स्वरूपों के कारण वह वल्लभ सम्प्रदायी भक्त-जनों का प्रमुख तीर्थ स्थल बना हुआ था। ऐसी पुण्य-भूमि के धार्मिक वातावरण में गोस्वामी हरिराय जी का जन्म हुआ था"।१-अ

::जन्मोत्सव::

जिस समय हरिराय जी का जन्म हुआ, समस्त व्रज-मण्डल में खुशी की लहर छा गई। घर - घर में आनन्द मनाया जाने लगा इस समय गोस्वामी गोकुल नाथ जी विशेष प्रसन्न थे। इन्हीं की आज्ञा से कल्याणराय जी का द्वितीय विवाह सम्भव हो सका था। जिसके परिणाम-स्वरूप इस सुकुमार - शिशु का मुंख देखने को मिला था। वल्लभ-सम्प्रदाय में अब भी प्रति वर्ष इनका जन्म-दिन उत्सव के रूप में मनाया जाता है।

-(जन्म-बधाई)-

शिशु- हरिराय के जन्म होने पर झांझ-मृदंग, ढोल, शहनाई आदि वाद्य बजाए गए थे।१ मंगला-चरण का गान हुआ। बधाइयां गाईं गईं।२ उनके जन्म-का समाचार सुन कर ब्राह्मण, गुनीजन, भाट तथा गायिकाऐं दौड़ - दौड़ कर उनके द्वार पर एकत्र होगईं।३ सभी को गाय, वस्त्र, आभूषण आदि का दान दिया गया।४

(१-अ)- गो० हरिराय जी का पद साहित्य, (प्रकाशित),भूमिका।

(१) बाजत मंगलाचार बधाई, झांझ मृदंग ढोल शहनाई।

(२) नर-नारी सब निरखन आए, गावत गीत अनंद बधाई।

(३) सुनधाए द्विज, गनक, गुनीजन, द्वार भई अति भीर।

(४) देत सबै मन पूरन करिकैं, गौधन भूषन चीर।

-- गो० हरिराय जी की बधाई-

वर्षोत्सव (भाग-२) पृष्ठ- १७८

कवियों ने इनके जन्म की बधाइयाँ गाईं---

--- प्रगटे श्री हरिराय श्री कल्याणराय के धाम ।१

---- प्रगटे श्री हरिराय महाप्रभु श्री विट्ठल प्रतिरूप (कहाई ।२

----- प्रगटे श्री विट्ठनाथ गुसाई निजकुल ही में फेर ।३

------- इस प्रकार के बधाई-पदों से गोस्वामी हरिराय जी की प्रतिष्ठा के संकेत सहज ही प्राप्त हो जाते हैं।

-) लोक - मान्यता (-

सम्प्रदायगत जन-धारणा है कि हरिराय जी गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के प्रति रूप में जन्मे थे। जैसा कि विगत पृष्ठों में उल्लेख किया जा चुका है, कल्याणराय जी के 'हों ब्रज मांगनौ जू' प्रसंग में गुसाई जी ने अपना मुख-चर्वित - ताम्बूल उन्हें प्रसाद रूप में दिया था। इसी आधार पर सम्प्रदाय के अनुयायियों तथा विद्वानों ने यह माना है कि गुसाई जी के ताम्बूल प्रदान करने पर कल्याण राय जी के अन्दर गुसाई जी का अलौकिक- तेज पुंजीभूत होगया था और हरिराय जी उसी तेज के साकार रूप में प्रकट हुए थे। इसी आधार पर हरिराय जी को गुसाई जी का अवतार अथवा प्रतिरूप कहा जाता है। --

-- प्रगटे श्री विट्ठलनाथ गुसाई निजकुल ही में फेर ।
दै चर्वित ताम्बूल पौत्र कों, निकट आपने टेर ।।
सोई प्रभु कल्याणराय पर निज स्वरूप वपु-धारी ।
श्री हरिराय नाम है तिनको, दीनन के दु:ख-हारी ।।४

---

(१) वर्षोत्सव (भाग-२) सम्पा० लल्लू भाई छगनलाल देसाई पृ० १७८
(२) वही । --(प्रकाशन- अहमदाबाद)
(३) वही ।
(४) वही ।

इस मान्यता की स्थापना के सम्बन्ध में अन्य भी कितने ही पद मिलते हैं जिनमें से कुछ विगत विवेचन में प्रस्तुत किए जा चुके हैं।

+X बाल्यकाल X+

हरिराय जी का शिशु - जीवन गो० गोकुलनाथ जी के संरक्षण में ही व्यतीत हुआ था। गोकुलनाथ जी अपनी विद्वता के कारण लोक में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। हरिराय जी पर इनकी विशेष कृपा थी। एक समय हरिराय जी गो० गोकुल नाथ जी की बैठक में खेल रहे थे, उस समय गोकुलनाथ जी वहाँ उपस्थित नहीं थे। उसी समय गो० हरिराय जी खेलते हुए गोकुलनाथ जी की गद्दी पर बैठ गये। वहाँ पर बैठे हुए अन्य व्यक्तियों को, जो गोकुल नाथ जी के अनुयायियों में से थे, यह उचित न लगा कि उनके आचार्य की गद्दी पर कोई 'अनधिकारी' बैठ जाये। उन वैष्णव अनुयायियों में से किसी एक ने हरिराय जी को गद्दी पर बैठने से मना किया, किन्तु चपल हरिराय नहीं माने। इस पर उसी व्यक्ति ने जोर से चिल्ला कर निषेध किया। शिशु-सुलभ वृत्ति के अनुरूप हरिराय जी गद्दी से उतर कर गो० गोकुलनाथ जी के समीप गए और रोकर कहा कि किसी वैष्णव ने उन्हें इस तरह गद्दी पर से उतार कर धमकाया है। गोकुल नाथ जी 'बैठक' में आए तथा उस वैष्णव को समझाया कि जो बालकों से द्वेष करता है, वह भगवान् से भी द्वेष करता है। उक्त वैष्णव को इस प्रकार के कृत्य पर गोकुलनाथ जी से क्षमा-याचना करनी पड़ी।

इस घटना से ज्ञात होता है कि गो० गोकुलनाथ जी का हरिराय जी पर अत्यधिक वात्सल्यमय स्नेह था। हरिराय जी का बाल्यकाल उन्हीं के संरक्षण में व्यतीत हुआ था, अपने सम्प्रदाय के विधानानुसार ये बाल्यकाल से ही सेवा-पूजा में रत रहते थे। अत: हरिराय जी पर गो० गोकुलनाथ जी के आचरणों का बहुत गहन प्रभाव पड़ा।

(शिक्षा-
(दीक्षा -

हरिराय जी की शिक्षा - दीक्षा किसी विद्यालय में सम्पन्न नहीं हुई। गोस्वामी गोकुल नाथ जी ने ही घर पर उन्हें विद्याभ्यास कराया था। बालक को घर पर ही कुटुम्ब के विद्वान - सदस्यों द्वारा विद्याभ्यास कराने की इस सम्प्रदाय में परम्परा रही है।

हरिराय जी का सम्पूर्ण विद्याध्ययन गोस्वामी गोकुल नाथ जी के ही सान्निध्य में सम्पन्न हुआ था। शीघ्र ही वह अपने विषय में पारंगत होते चले गए। वह बाल्य-काल से ही अप्रतिम- प्रज्ञा के धनी थे।

संवत् १६५५ में जब वह केवल आठ वर्ष के थे, उनका यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न हुआ। इस संस्कार - आयोजन में कुटुम्ब का प्रतिष्ठित वयोवृद्ध बालक को गुरु-दीक्षा प्रदान करता है। हरिराय के यज्ञोपवीत संस्कार के समय गुसाईं जी के सबसे बड़े पुत्र गिरधर लाल जी जीवित थे। दीक्षा देने का अधिकार --।। संस्कार ।।-- भी वस्तुत: उन्हीं को था। किन्तु श्री गिरधर लाल जी ने स्वयं उन्हें दीक्षा ~~न देकर~~ नहीं दी, गोकुलनाथ-जी ने ही हरिराय जी को गुरुदीक्षा दी और उनके दीक्षा-गुरु कहलाये।

गोकुलनाथ जी जैसे वर्चस्व के धनी, आचरण के आगार व्यक्ति को गुरु-रूप में पाकर हरिराय जी का बौद्धिक विकास दिन पर दिन निखरता ही चला गया। संस्कृत-साहित्य का उन्हें सम्यक अभ्यास कराया गया। साम्प्रदायिक ग्रन्थों का भी विधिवत् पूर्ण ज्ञान कराया गया। अपने अध्ययन काल में ये सभी विद्वानों का सहयोग प्राप्त करते रहते थे। 'श्री मद्भागवत्' एवं सर्वोत्तम ग्रन्थों पर इनका महाप्रभु वल्लभाचार्य तथा गुसाईं जी की भाँति अधिकार प्राप्त था। बाल्यकाल से ही इनमें साहित्य के प्रति अतीव रुचि थी।

स्वभाव

हरिराय जी अपने बाल्यकाल से ही अत्यन्त सरल स्वभाव के थे। अपने स्वभाव के कारण वह यत्र-तत्र वैष्णवों के सत्संग हेतु निकल जाया करते थे। उनके वंश की प्रचलित रीति के अनुसार एक गोस्वामी बालक को बाहर निकल कर वैष्णवों के बीच भ्रमण करने की अनुमति नहीं थी। हरिराय जी के पिता कल्याणराय जी को जब यह ज्ञात हुआ, तब उन्होंने किशोर हरिराय को अपने समीप बुला कर पूछा कि क्या वे इस तरह घूमते-फिरते हैं? क्या वे अर्धरात्रि तक वैष्णवों के बीच भगवत् रहस्य का विवेचन करते रहते हैं? किशोर हरिराय ने ये सभी आक्षेप स्वीकार कर लिए। कारण पूछने पर बताया कि हम सब भी तो वैष्णव ही हैं। फिर यह वर्ग भेद क्यों? वैष्णवों के सत्संग से अन्तर्निहित अलौकिक प्रेम-भाव जागृत होता है। अतएव वैष्णवों को भगवद् - भक्तों से अवश्य ही सत्संग करना चाहिए।

हरिराय जी की हठधर्मी तथा अपनी वंश की मर्यादा को देखते हुए कल्याणराय जी ने उन्हें एक कमरे में बन्द करके ताला लगा दिया, जिससे वह कहीं बाहर न जा सकें। दोपहर के समय उनके लिए भोजन भेजा गया किन्तु हठी हरिराय जी ने खाने से मना कर दिया। रात्रि-काल में भोजन के समय कल्याण-राय जी ने उन्हें फिर खाने के लिए बुलावा भेजा, तब भी वह नहीं माने। तब कल्याण राय जी स्वयं उनके कमरे के समीप गए और ताला खोलकर देखा तो उन्हें एक अलौकिक अग्निपुन्ज- सा अवलोकन हुआ। सम्प्रदाय में वल्लभाचार्य जी को अग्नि का अवतार माना जाता है। इसी लिए कल्याणराय जी ने अपने प्र-पितामह के स्वरूप का ध्यान कर उन्हें नमन किया, क्षणभर में ही यह भावावेश समाप्त हो गया। पिता कल्याण राय जी का ममत्व उमड़ पड़ा उन्होंने हरिराय जी को ध्यानावस्थित देख उनके सिर पर वात्सल्यभाव से हाथ फेरा, पश्चात् उनको स्नेहपूर्ण व्यवहार से प्रभावित कर भोजन के लिये तैयार किया।

इस घटना के बाद गोस्वामी हरिराय जी स्वेच्छा से कहीं भी सत्संग हेतु पहुंच जाते थे ।१ इस घटना से स्पष्ट होता है कि उनके स्वभाव में लोक - कल्याण व लोक - प्रेम की भावना प्रारम्भ से ही विद्यमान थी । सत्य एवं ज्ञान के प्रति वह सदैव उत्सुक रहे थे ।

-)(-
पारिवारिक स्थिति
0

माता जमुना के तीन पुत्रों में हरिराय जी ज्येष्ठ थे । गोपेश्वर जी एवं विट्ठलेश जी उनके अन्य सहोदर थे, इनमें सब से छोटे भाई विट्ठलेश जी दीर्घ-जीवी न हुए इसीलिए सम्प्रदाय में उनका नाम विशेष ख्यात नहीं है, गोपेश्वर जी हरिराय जी के लघुभ्राता थे । गोस्वामी हरिरायजी की प्रसिद्ध संस्कृत - रचना 'शिक्षा-पत्र, इन्हीं के लिये लिखे गए पत्रों का संग्रह है । हरिराय जी संयुक्त - परिवार में विश्वास रखते थे । यही कारण है कि पूर्वजों के पीढ़ी-पीढ़ी दर विभाजन होने पर भी वे गोपेश्वर जी के साथ पारिवारिक सम्बन्ध बनाए हुए थे ।

आर्थिक-दृष्टि से भी हरिराय जी सम्पन्न थे । गुसाईं जी के समय से ही इस वंश के अनुयायियों में वैभव की कमी नहीं थी । हरिराय जी भी धन-धान्य से पूर्णतया सम्पन्न थे । फलत: उनकी आर्थिक स्थिति सम्पन्न धनिकों जैसी थी, --'हरिराय जी कें सब असवारी सिद्ध रहतीं । सुखपालकी, तथा घुड़वेल तथा बैलन को रथ, तथा एक हाथी । इतनी असवारी सदा रहती, तामें सूं एक एक असवारी एक एक पहर ड्योढ़ी पैं आयकें ठाड़ी रहती ।२'

---

(१) देखिये-- गो० हरिराय जी महाप्रभु जी नूं जीवन चरित्र (गुजराती) -- प्रकाशन सावली (भाग १-२) पृष्ठ- २६

(२) श्री गोवर्धन नाथ जी की प्राकट्य वार्ता- गो० हरिराय जी -- प्रकाशन नाथद्वारा, सं० २०३६ पृष्ठ- ८४

'गाय-उपचार' के एक विशेष प्रसंग में कुछ विधर्मियों को उनका वैभव देखकर ईर्ष्या हुई थी। वैभव के प्रति आकर्षित होकर ही औरंगजेब की लोलुप-दृष्टि भी इनकी ओर घूम चुकी थी। परिणाम-स्वरूप उन्हें ब्रज-भूमि का मोह भी त्यागना पड़ा था। मेवाड़ के राणा रायसिंह से उनके घनिष्ट सम्बन्ध थे। इसके अतिरिक्त अनेक धनी-मानी व्यक्ति, उनके शिष्य थे। राजकुमारी, राणा रायसिंह आदि के सम्बन्ध की चर्चा प्रसंगान्तर से भिन्न स्थल पर पृथक् से प्रस्तुत की गई है।

दैनिक-जीवन में वह सामान्य आभूषण तथा सादे - वस्त्र ही धारण किया करते थे। धोती, अंगरखी या बगलबन्दी, सिर पर हल्की सी पगड़ी, उपरना, कानों में कर्णाभूषण तथा गले में हल्का - सा स्वर्णहार उनकी दैनिक वेश-भूषा थी। इस प्रकार की वेश-भूषा के उनके अनेक चित्र भी उपलब्ध होते हैं।

विवाह:-

हरिराय जी का विवाह चौबीस वर्ष की आयु में हुआ था। हरिराय जी की धर्मपत्नी का नाम 'सुन्दरवती' था। इनके सम्प्रदाय में उन्हें 'सुन्दरवन्ता' के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है।

उस समय हिन्दू- समाज में यद्यपि बाल विवाह का प्रचलन था, किन्तु हरिराय जी का विवाह इससे भिन्न-पूर्ण युवावस्था में हुआ था। इस प्रसंग से पुष्टि-मार्ग की सामाजिक चेतना का स्वरूप स्पष्ट होता है। हरिराय जी से पूर्व महाप्रभु बल्लभाचार्य जी का विवाह भी २४ वर्ष की आयु में ही सम्पन्न हुआ था।

-:: पत्नी- और - उनका वैशिष्ठ्य

हरिराय जी की पत्नी सुन्दरवती अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति की थी। वह सम्प्रदाय में साहित्य-सृष्टा के रूप में प्रसिद्ध है। उन्होंने 'दासी-सुन्दर' छाप से गुजराती व ब्रजभाषा में अनेक सुन्दर 'धौल-पद' लिखे हैं, जिनका पुष्टि-मार्गीय साहित्य में समुचित आदर है। आज भी पुष्टि-मार्गीय मन्दिरों में महिला-वर्ग द्वारा इनके रचे 'धौल-पदों' का सामूहिक गान बड़े ही उल्लास के साथ होता रहता है।

उन्होंने धौल-पदों[1] में राधा-कृष्ण की विविध लीलाओं को चित्रित किया है। काव्य की दृष्टि से चित्रात्मक शैली में लिखे ये धौल भावोद्वेग से परिपूर्ण अत्यन्त सरल एवं सरस बन पड़े हैं। इन धौल पदों में चिन्तन का धौल अत्यधिक प्रसिद्ध है। इस धौल-पद में 'सुन्दर-दासी' अथवा 'दासी-सुन्दर' नामक छाप मिलती है। धौल-पदों की अनेक प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं।

विषय-वस्तु की दृष्टि से चिंतन का धौल विशुद्ध श्रृंगार-प्रधान रचना है। इसमें श्रृंगार के स्थूल चित्र मिलते हैं। साधारण दृष्टि से देखा जाय तो ये पद किसी नारी हृदय की अभिव्यक्ति नहीं जान पड़ते, किन्तु परम्परागत मान्यता तथा प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर इनकी लेखिका सुन्दरवती 'बहू जी' को ही माना है।

इस चिन्तन के धौल-पद की लेखिका 'दासी-सुन्दर' अथवा 'सुन्दर-दासी' गो० हरिराय जी की धर्मपत्नी थीं, इसका प्रमाण कतिपय हस्तलिखित तथा प्रकाशित ग्रन्थों में प्राप्त होता है।--

'हरिराय जी नी बहूजी कृत चिंतन नु धौल'। २

---

(१) 'धौलपद' पद-विधा का ही एक प्रकारान्तर हैं।

(२) सरस्वती भंडार, कांकरोली, शुद्धाद्वैत भाषा नं० १६६ में मुखपृष्ठ पर।

-"श्री हरिराय जी ना बहू जी कृत चिन्तन नु पोथी सम्पूरण समापत"।१

स्व० श्री द्वारकादास परिख ने भी इस तथ्य का समर्थन किया है ।२

इन प्रमाणों के उपलब्ध होने पर भी इस पद की लेखिका के रूप में 'सुन्दरवती' का उल्लेख निश्चय ही नहीं किया जा सकता । इसके कुछ कारण हैं ।

-- प्रथम तो वर्ण्य-विषय की दृष्टि से श्रृंगार के ये स्थूल चित्र किसी पुरुष - हृदय की अभिव्यक्ति की ओर ही संकेत करते हैं । यथा:--

आलिंगन चुंबन रस क्रीड़ा रास विलास थाए जी ।
कुच कठोर श्री हस्ते मीड़े अधर सुधारस पाए जी ।
क्षणएक अधर सुधारस पावे, क्षणएक अन्तर टाले जी ।
एक ने चोली चरणा धावें, एक ने आँख मिचावे जी ।
पीन पयोधर उर सौं मीड़ी, तन ना ताप नसावे जी ।।

काम क्रीड़ा का यह मांसल चित्र किसी नारी द्वारा अंकित किया गया होगा इसमें सन्देह ही है । सम्पूर्ण पद में दो सौ बीस बन्द हैं । स्वकीया तथा परकीया के साथ विविध संभोगों का इसमें वर्णन किया गया है । जैसा कि अन्यत्र स्पष्ट किया जायगा, गो० हरिराय जी की वृत्ति श्रृंगार - वर्णन में अधिक रमी है । अत: संभावना इस बात की अधिक है कि गो० हरिराय जी ने इस पद को निर्मित कर नित्यपाठ हेतु अपनी धर्म-पत्नी को दे दिया हो । हो सकता है कि स्वयं हरिराय जी ने ही इस पद में अपनी पत्नी का नाम भी समन्वित कर दिया हो, अथवा नित्यपाठी

---

(१) लाला भगवानदास जी (नाथद्वारा निवासी) के निजी संग्रह से हस्तलिखित- --प्रति नं०- ६५ ।

(२) गो० हरिराय जी महाप्रभु नूं जीवन-चरित्र (गुजराती), — पृष्ठ-१६

वैष्णव-स्त्रियों ने बाद में यह नाम सन्निहित कर दिया हो। सन्देह के दो अन्य कारण भी हो सकते हैं :-

प्रथम--- अनेक प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में पद के अन्त में `पुष्पिका` में पद का रचयिता गोस्वामी हरिराय जी को ही माना है।१

द्वितीय-- गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में भी कुछ वर्णन, शैली तथा विषय की दृष्टि से इसी प्रकार के प्राप्त होते हैं।

यथा:-
हरें हरें जुवतिन में धसिकें, दै भुज चुंबन गाल।
बदन उघारें, विहंसि निहारें, तिलक बनावें भाल।
कबहुंक आलिंगन दै भाजे, आइ मिले तत्काल।
कबहुंक ढिंग व्है अंचरा खैंचें, छुवावें नीरज नाल।
कबहुंक आप बलैयां लेकें, पहिरावें बन - माल।।२

लोक-प्रचलित साहित्य में ओ , हो, रे आदि शब्दों का प्रयोग लय-पूर्त्ति के लिए पाठकों अथवा गायकों द्वारा ही जोड़ दिया जाता है। उपरिनिर्दिष्ट पद के अन्त में भी यदि `रे` लगा दें तो इसका स्वरूप `चिन्तन के धोल` के अनुरूप ही हो जायगा।

---

(१) `चिन्तन नु धोल` -- सरस्वती भंडार कांकरोली, बंध-४३, पुस्तक ४, लिपिकाल-१८७५, अन्त में लिखा हुआ है--`श्री हरिराय जी नां कृत `।
-- सरस्वती भंडार कांकरोली बन्ध-२२ पुस्तक- १०, लिपिकाल सं० १८४६ पद के अन्त में लिखा है `इती श्री हरिदासोदितं चिंतन प्रकार सम्पूरणम् (हरिराय जी ने संस्कृत रचनाओं में हरिदास छाप का प्रयोग किया है)
--निजी पुस्तकालय नाथद्वारा- बंध-८ पुस्तक-२, पत्रा- २६।

(२) गो० हरिराय जी का पद संग्रह- (प्रकाशित) पद संख्या- ३६४।

वर्ण्य-विषय की दृष्टि से भी ये बन्द चिन्तन के धौल के अनुसार ही रचे गये हैं। उपर्युक्त पद के समान-भाव 'चिन्तन के धौल' में पूर्व पृष्ठों में उद्धृत अंशों में देखे जा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त गो० हरिराय जी की 'छाप' 'रसिक' या 'रसिक शिरोमणि' १ का भी इस धौल पद में उल्लेख मिलता है।

यथा:-- त्रिवली कण्ठ कनक नी कुलरी ।
सोभा 'रसिक' बिराजै जी ।।

तथा-

ललित त्रिभंगी नव-रस रंगी,
'रसिक -सिरोमनि' राधा जी ।।

चिन्तन का 'धौल' की भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है।दो इसके प्रमुख कारण हो सकते हैं। प्रथम - गोस्वामी हरिराय जी ने गुजराती भाषा में भी पद लिखे हैं, अत: हो सकता है उन्हीं के द्वारा नित्य-पाठ हेतु ऐसी भाषा का प्रयोग हुआ हो। दूसरी सम्भावना यह भी है कि इस हिन्दी पद का गुजराती वैष्णवों द्वारा गान करने से पद में गुजराती भाषा का प्रभाव आगया हो।

उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि में गोस्वामी हरिराय जी की गद्य रचनाओं के भी कुछ उदाहरण देखे जासकते हैं,--

'पाछे श्री ठाकुर जी अबीर की अँधियारी करी, सो गुलाल बहुत उड्यो, पाछे श्री ठाकुर जी गोपिन के झुंड में पैंठिगए, काऊ को हार तोर्यो

---

(१) कृति-परिचय नामक अध्याय में छाप सम्बन्धी तथ्य प्रस्तुत किये जारहे हैं।

काऊ के चोली के बन्द तोर्‌यै, काहू की भुजा मरोरी, काहू के कपोलन में चौवा को बूँदा दियौ"।१

इसी के अनुरूप `चिन्तन के धौल में भी :-

`एक नें चोली चरणा धावें, एक नें आँख मिचावे जी`।

इन सभी आधारों से पुष्ट होता है कि चिन्तन का धौल, जिसकी लेखिका गोस्वामी हरिराय जी की धर्म-पत्नी सुन्दरवती को माना जाता है। वस्तुत: उसके रचयिता गोस्वामी हरिराय जी ही थे।

`चिन्तन के धौल के अतिरिक्त अन्य पद भी सुन्दरवन्ता के नाम से प्राप्त होते हैं। इससे यह भी ज्ञात होता है कि गोस्वामी हरिराय जी की धर्मपत्नी एक विदुषी नारी थी, और वह साहित्य में रुचि रखती थी। सुन्दरवती गोस्वामी हरिराय जी की ही भाँति दीर्घजीवी हुई थीं, इसलिए उन्होंने चिरकाल तक गो० हरिराय जी की सेवा की थी। इनका निधन गोस्वामी हरिराय जी से कुछ समय पहले ही हो गया था।

गोस्वामी हरिराय जी की धर्मपत्नी के नाम से अनेक `धौलपद` मिलते हैं। इससे पुष्ट होता है कि गोस्वामी हरिराय जी का पारिवारिक वातावरण साहित्य-रस में निमग्न था। साहित्य सृष्टि की अदम्य प्रतिभा उन्हें अपने पूर्वजों से विरासत के रूप में प्राप्त हुई थी। इसका प्रभाव उनके वर्तमान सम्बन्धियों पर भी पड़ा। इनके लघु-भ्राता गोपेश्वर जी स्वयं एक

---

(१) -- होरी की भावना - गो० हरिराय जी,(प्रकाशित-) पृष्ठ- ५
-- प्रकाशन, बजरंग पुस्तकालय- मथुरा।

एक सुलझे हुए साहित्यकार थे। उन्होंने गोस्वामी हरिराय जी द्वारा रचित शिक्षापत्रों (संस्कृत) पर ब्रजभाषा टीका लिखी है। महाप्रभु वल्लभाचार्य, गुसाईं जी, गोकुल नाथ जी, कल्याणराय जी, गोकुलोत्सव जी आदि प्रसिद्ध विद्वान - साहित्यकार गोस्वामी हरिराय जी की प्रेरणा के स्रोत थे।

-:: सन्तति ::-

गोस्वामी हरिराय जी की धर्मपत्नी सुन्दरवती के चार पुत्र उत्पन्न हुए,-- गोविन्दराय जी, विट्ठलराय जी, छोटा जी एवं गोरा जी।

गोविन्दराय जी का जन्म संवत् १६७५ में, विट्ठलराय जी का जन्म संवत् १६७६ में, छोटा जी का जन्म संवत् १६८१ में तथा गोरा जी का जन्म संवत् १६८२ में हुआ था। गोविन्दराय एवं विट्ठलराय के जन्म संवत् के सम्बन्ध में सभी स्थलों पर मतैक्य है, किन्तु गोरा जी एवं छोटा जी के जन्म संवतों के विषय में क्वचित् मतभेद भी दृष्टि-गत होता है। वल्लभ वंश वृक्ष में गोरा जी का जन्म संवत् १६८१ तथा छोटा जी का जन्म संवत् १६८२ माना है[1]। किन्तु इसके विपरीत काव्य कल्पद्रुम में छोटा जी का जन्म संवत् १६८१ तथा गोरा जी का जन्म संवत् १६८२ माना है[2]।

---

(१) श्री वल्लभ वंश वृक्ष सम्पा० श्री व्रजभूषण शर्मा, कांकरौली, द्वितीय। १गृह

(२) " प्रगटे फिर हरिराय गृह छोटा जू सुखकंद।
कृष्ण अषाढ़ी तीज कौं भू दिगीस रस चंद।
प्रगटे फिर हरिराय गृह गोरा जू कुल चंद।
शुक्ल अषाढ़ी प्रतिपदहि नैनदिगीस रस चंद।।

-- सम्प्रदाय कल्पद्रुम-- श्री विट्ठल भट्ट, लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई - पृष्ठ- ११७

इन दोनों मतों में `सम्प्रदाय - कल्पद्रुम` का मत अधिक समीचीन प्रतीत होता है, क्योंकि सम्प्रदाय - कल्पद्रुम के रचयिता विट्ठलनाथ भट्ट स्वयं गोस्वामी हरिराय जी के शिष्य थे। इसका इन्होंने अपने ग्रन्थ `सम्प्रदाय-कल्पद्रुम` में भी उल्लेख किया है।१ इससे सिद्ध होता है कि विट्ठलनाथ भट्ट गो० हरिराय जी के समकालीन थे, और उनके सन्निकट में भी रहते थे। अत: उनका तथ्य अधिक माननीय है। हो सकता है कि `वल्लभ वंश वृक्ष` के सम्पादन में छोटा जी एवं गोरा जी के जन्म सम्बन्धों में क्रमागत संख्या होने से प्रेस-सम्बन्धी त्रुटि रह गई हो।

शाह हिम्मत लाल भोगीलाल ने गो० हरिराय जी के चार पुत्रों के नाम इस प्रकार दिए हैं-- `श्री गोविन्दराय जी, श्री विट्ठलराय, गोरा-जी एवं श्री गोकुलनाथ जी`।२ इन्होंने छोटा जी के स्थान पर गोकुलनाथ जी का उल्लेख किया है। किन्तु यह नाम अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। अत: यह उल्लेख ध्यान देने योग्य नहीं है।

गोस्वामी हरिराय जी के चारों पुत्र असमय में ही काल-कवलित होगये, इनके वंश की मूल शाखा का यहीं पर अवसान होगया। आगे चल-कर इनकी धर्मपत्नी सुन्दरवती ने सम्प्रदाय की दत्तक-पुत्र व्यवस्था के अनुसार प्रथम-गृह के तत्कालीन आचार्य (तिलकायत) दामोदर जी (सं० १७११) के द्वितीय पुत्र गिरधर जी को गोद ले लिया।

---

(१) श्रवण सुन्यो हरिराय मुख, करण लिख्यों नृपमान।

-- सम्प्र० कल्प० पृष्ठ- १८०

(२) श्री हरिराय जी महाप्रभु जी नूं जीवन-चरित्र`- प्रका० सांवली (भाग-१।२) पृष्ठ - २७

गोस्वामी हरिराय जी की वंश परम्परा में अब-तक दत्तक-पुत्रों का विधान अपनाया जाता रहा है। सम्प्रति उनके वंश की शाखायें इन्दौर, नाथद्वारा तथा बड़ौदा में हैं।

::-:: निवास ::-::

गोस्वामी हरिराय जी की आयु का दीर्घकाल व्रज में ही व्यतीत हुआ था। उनका जीवन - प्रभात गोकुल ग्राम में प्रकाशित हुआ था। वहीं पर उनके यज्ञोपवीत, विवाह आदि संस्कार सम्पन्न हुए थे, यहीं पर उन्होंने अधिकांश साहित्य का सृजन किया, सम्प्रदाय के अनेकानेक संस्कृत ग्रन्थों का निर्माण इन्होंने गोकुल में ही किया था।

गोस्वामी गोकुलनाथ जी के साथ उनका बहुत समय व्यतीत हुआ था। गोकुलनाथ जी की 'माला-प्रसंग' घटना के समय उनकी आयु तीस वर्ष की थी। इस प्रकार गो० गोकुलनाथ जी की कुछ प्रत्यक्ष-दर्शी घटनाओं से ये अत्यधिक प्रभावित रहे थे। इसलिए गो० गोकुल नाथ जी के व्यक्तित्व के आकर्षण ने उन्हें उनका तन-मन से अनुगामी तथा श्रद्धालु बना दिया था। गो० गोकुल नाथ जी का परलोक-वास संवत् १६९७ में हुआ था, अत: गो० हरिराय जी की आयु के पचास वर्ष गो० गोकुलनाथ जी के सानिध्य में ही व्यतीत हुए थे।

जैसा कि पूर्वपृष्ठों में स्पष्ट किया जा चुका है, गो० गोकुलनाथ जी हरिराय जी के दीक्षा गुरू थे, अपने गुरु के सन्निकट गोकुल में ही रह कर उन्होंने सत्य की अनवरत शोध की। जो उनकी कृतियों से ज्ञात होता है।

जब सं० १७२६ में औरंगजेब ने गोकुल और गिरिराज में उपद्रव किया, तब अधिकांश गोस्वामी परिवार- अपने सेव्य स्वरूपों सहित व्रज छोड़कर अन्यत्र चले गए थे। वल्लभ-सम्प्रदाय के मुख्य सेव्य-स्वरूप

'श्रीनाथ जी' भी संवत् १७२६ में व्रज से बाहर ले जाए गए थे।१ कुछ विद्वानों के अनुसार गोस्वामी हरिराय जी भी इसी देव प्रतिमा के साथ ही अन्य गोस्वामियों के साथ व्रज छोड़ गए थे। २ किन्तु इस प्रकार की संभावना प्रतीत नहीं होती, क्योंकि प्रथम तो गोस्वामी हरिराय जी ने स्वयं 'श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता' में 'श्रीनाथ जी के स्वरूप' की समस्त उस यात्रा का वर्णन किया है जो व्रज से मेवाड़ तक सम्पन्न हुई थी, किन्तु इस विस्तृत यात्रा वर्णन में गोस्वामी हरिराय जी ने कहीं भी अपनी उपस्थिति का आभास नहीं दिया। उन्होंने इस यात्रा में 'श्री गोविन्द जी' श्री बालकृष्ण जी' और 'श्री वल्लभ जी' गोस्वामी आचार्यों का ही उल्लेख किया है। साथ में गंगाबाई, की भी चर्चा है।३ इसके अतिरिक्त यात्रा के मध्य में व्रजराय जी, दाऊजी आदि आचार्यों का भी वर्णन है, किन्तु गोस्वामी हरिराय जी ने स्वयं अपना उल्लेख कहीं भी नहीं किया। द्वितीय,-- 'श्रीनाथ जी' का देव-विग्रह 'सिंहाड़-ग्राम में संवत् १७२८ में पहुँचा था।४ किन्तु गोस्वामी हरिराय जी इससे भी पहिले वहाँ पहुँच गए थे।५ यह तथ्य गोस्वामी हरिराय जी के वर्तमान वंशानुयायियों से

---

(१) 'मिती आसौज सुदी १५ शुक्रवार संवत् १७२६ के पाछिली पहर रात्रि कों श्री वल्लभ महाराज पना सिद्ध कराए और आरोगाए पाछें रथ हाँक्यौ'-
--श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता -- गो० हरिराय जी - संस्करण-
-- सं० २०२५(नाथद्वारा-)पृ० ५२

(२) 'अष्टछाप परिचय' श्री प्रभुदयाल मीतल - पृ० ८१
-- अष्टछाप व वल्लभ सम्प्रदाय (भाग-त्त), डा० दीनदयालु गुप्त पृष्ठ- ८०
-- हिन्दी साहित्य-- सम्पादक- धीरेन्द्र वर्मा- द्वितीय-खण्ड-३८४

(३) श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता- गो० हरिराय जी- पृष्ठ- ५२

(४) वही, -- पृष्ठ- ७६

(५) 'श्रीनाथ जी के आने से पूर्व ही द्वितीय पीठ से ठाकुर जी श्रीविट्ठलनाथ जी का भी खमनौर (मेवाड़) में आना होगया था।-- इस समय यहाँ के तिलकायत श्री हरिराय जी महानुभाव थे'।
- कांकरौली का इतिहास- कं०पी०कंठमणि शास्त्री-पृ० १४८

भी ज्ञात हुआ है। इसके अतिरिक्त वल्लभ सम्प्रदाय के अन्य विद्वान-आचार्य भी इस तथ्य को पुष्ट करते हैं।१ इस प्रकार यदि गोस्वामी हरिराय जी 'श्रीनाथ जी' के विग्रह के साथ यात्रा कर रहे थे, तो उन्हें रास्ते में ही कहीं छोड़कर अकेले आगे नहीं बढ़ सकते थे, यदि वे इस यात्रा में सम्मिलित थे, तो उनके साथ ही सिंहाड़ यात्रा तक भी आते, किन्तु सम्भावना यह की जाती है कि गोस्वामी हरिराय जी ने 'श्रीनाथ जी' की देवमूर्ति के व्रज से चले जाने के कुछ समय पश्चात् यहाँ से प्रस्थान किया, और श्रीनाथ जी के मेवाड़ पहुँचने से पूर्व ही वे खिमनौर पहुँच गये थे। 'श्रीनाथ जी' की यात्रा विस्तृत थी तथा उसमें विश्राम भी अनेक थे, किन्तु गोस्वामी हरिराय जी की यात्रा में इस प्रकार का विस्तार न था। वल्लभ-सम्प्रदाय के वर्तमान आचार्यों द्वारा इस कथन की पुष्टि होती है।

इस प्रकार गोस्वामी हरिराय जी ने अपनी आयु के अस्सी वर्ष व्रजभूमि में ही व्यतीत किए थे।

व्रज-निवास की अवधि में इन्होंने समय-समय पर पर्यटन भी किए थे। यात्रा करने की यह परम्परा महाप्रभु वल्लभाचार्य से ही चली आरही है। उन यात्राओं के

-:: पर्यटन ::-

दो प्रमुख उद्देश्य हुआ करते थे। प्रथम तो ये विद्वान आचार्य अपने विद्वतापूर्ण प्रवचनों से जन-साधारण को प्रभावित कर अपने सम्प्रदाय में 'दीक्षित' होने के लिए आकर्षित करते थे। अन्य लक्ष्य यह भी रहता था कि इस विधा से उनकी वैयक्तिक प्रतिष्ठा का लोक-प्रांगण में प्रचार होता था। इससे वे सम्मानित होते थे तथा उनके लौकिक जीवन निर्वाह हेतु धनार्जन भी होता रहता था।

---

(१) तृतीय पीठाधिपति गो० श्री व्रजभूषण लाल जी महाराज, कांकरोली।
--तथा विट्ठलनाथ जी का मन्दिर, गो० हरिराय जी की बैठक, नाथद्वारा से ज्ञातव्य।

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के समय से ही सम्प्रदाय के भावुक वैष्णवों में यह मान्यता निरंतर चली आरही है कि ये गोस्वामी आचार्य जो महाप्रभु वल्लभाचार्य की वंश परम्परा में हैं, साक्षात् भगवान् कृष्ण के अवतार ही हैं। इसी भाव-दृष्टि से अधरामृत, चरणस्पर्श, द्रव्य-भेंट, केशर स्नान, दर्शन, पधरावनी आदि क्रियाएँ भगवत-तुल्य देखी जासकती हैं। यह स्थिति सम्प्रति भी देखी जासकती है। इसी भावात्मक वृत्ति के अनुरूप जब कोई भी वल्लभ-वंशज आचार्य या बालक अपने मतानुयायियों के घर जाता है तो सभी मतानुयायी उसका देव-तुल्य स्वागत करते हैं। आचार्य-वर्ग भी अपने सम्मान-वर्द्धन हेतु तथा सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के मनन हेतु प्रारम्भ से ही गूढ़ अध्ययन में रुचि लेते आए हैं। वे अपनी विद्वता का यथा-स्थल प्रदर्शन भी करते आए हैं। उनके वे सभी प्रवचन जो किसी विशेष-भक्त-मंडली के समक्ष उच्चरित होते हैं, सम्प्रदाय में 'बचनामृत' के नाम से जाने जाते हैं।

इस प्रकार इन आचार्यों में देशाटन के प्रति आकर्षण बना रहता है। गोस्वामी हरिराय जी गो० गोकुलनाथ जी के साहचर्य तथा अपनी प्रखर-विद्वत्ता के कारण इस सम्प्रदाय में शीघ्र ही सम्मान - के सोपान पर चढ़ गये थे। सम्प्रदाय की सैद्धान्तिक-मान्यताओं के प्रसारण-हेतु उन्होंने भी अनेक यात्राएँ की थीं।

उल्लेख मिलता है कि एक बार गोस्वामी हरिराय जी मेवाड़ के 'सिंहाड़' ग्राम में ठहरे हुए थे (सम्प्रति इस स्थान को नाथद्वारा कहा जाता है, यहीं पर श्रीनाथ जी की भव्य - देव-प्रतिमा प्रतिष्ठित है) यहाँ से उदयपुर का फासला अधिक नहीं है। गोस्वामी हरिराय जी के उदयपुर के राणा रायसिंह के साथ अच्छे सम्बन्ध थे। अत: राणा रायसिंह स्वयं 'सिंहाड़' में

गोस्वामी हरिराय जी के 'सुबोधिनी' ग्रन्थ पर प्रवचन सुनने आया करते थे। इस आशय का एक चित्र श्री विट्ठलनाथ जी के मन्दिर, नाथद्वारा में विद्यमान है। इसमें राणा रायसिंह हाथ जोड़कर गोस्वामी हरिराय जी के सन्मुख बैठे हुए हैं।

सम्प्रदायगत :-

-।- विभिन्न -।-
बैठकें

यात्राकाल में ये आचार्य जिस स्थान पर रुककर प्रवचन आदि किया करते थे, वह स्थान उनकी बैठक के रूप में प्रसिद्ध हो जाया करता था। महाप्रभु जी की चौरासी बैठकें, गुसाईं जी की अट्ठाईस बैठकें, गोकुलनाथ जी की तेरह बैठकें[1] अब भी पूर्ण सम्मान के साथ यत्र - तत्र सुरक्षित हैं। गोस्वामी हरिराय जी की भी सात बैठकें प्रसिद्ध हैं। जिनका परिचय यहाँ दिया जाता है।

गो कु ल ----

गो० हरिराय जी की यह बैठक गोकुल गाँव में विट्ठलनाथ जी के मन्दिर में है। यहाँ आप नित्य-प्रति प्रवचन आदि किया करते थे। अपने प्रमुख शिष्य हरिजीवन दास से यहीं पर रहस्य वार्तायें हुआ करती थीं। प्रथम 'निरोध लक्षण' ग्रन्थ(संस्कृत) की टीका आपने यहीं बैठकर की थी, यहाँ पर उन्होंने श्रीमद् भागवत के सप्ताह परायण भी किए थे।[2] अस्सी

---

(१) श्री आचार्य महाप्रभु जी की चौरासी बैठक-

-- गोवर्द्धन ग्रन्थ माला, मथुरा पृष्ठ- २३०

(२) वही --- ।

वर्ष की आयु तक ये गोकुल में ही रहा करते थे ।

-:: नाथद्वारा ::-

मेवाड़ राज्य के सिंहाड़ ग्राम में, जो अब 'नाथद्वारा' नाम से जाना जाता है, विट्ठलनाथ जी के मन्दिर में इनकी बैठक है । अपनी वृद्धावस्था में ये प्राय: यहाँ आया करते थे । एक समय हर जीवन दास शिष्य के पूछने पर उन्होंने 'वेणुगीत' का तीन दिन तथा तीन रात्रि पर्यन्त लगातार व्याख्यान किया था ।१ इनके सेव्य-स्वरूप विट्ठलनाथ जी की मूर्ति यहाँ सम्प्रति भी विद्यमान है ।

-:: खिमनोर ::-

सिंहाड़ ग्राम के निकट यह ग्राम स्थित है । गोस्वामी हरिराय जी के सान्ध्य-जीवन का अधिकांश समय यहीं व्यतीत हुआ था । व्रज से निकल कर गोस्वामी हरिराय जी सर्व प्रथम यहीं पर आये थे । तत्कालीन राणा राजसिंह ने उनके ठहरने की यहाँ उचित व्यवस्था की थी, तथा उन्हें उपयोग हेतु पर्याप्त भूमि भी प्रदान की थी । यहीं से ये प्राय: श्रीनाथ जी की सेवा हेतु नाथद्वारा जाया करते थे । समय-समय पर वहाँ के तिलकायत आचार्य को सेवा की त्रुटियों से भी ये अवगत कराया करते थे ।

-:: जैसलमेर ::-

यह गाँव राजस्थान में है । यहाँ पर गिरधारी जी के मन्दिर में इनकी बैठक है । 'गिरधारी जी' उनके पिता कल्याणराय जी के सेव्य-स्वरूप थे । यहाँ जैसलमेर के राजा को उन्होंने दीक्षा देकर शिष्य बनाया था ।२

---

(१) श्री आचार्य महाप्रभु जी की चौरासी बैठक,
--गोवर्धन ग्रन्थमाला, मथुरा पृष्ठ-२३१

(२) वही, --- पृष्ठ-२३२

-:: डाकोर ::-

गुजरात में ये गाँव डाकोर जी के नाम से एक तीर्थ-स्थल के रूप में प्रसिद्ध है। यहाँ गोमती जलाशय के किनारे कुछ ऊँचाई पर उनकी बैठक बनी हुई है, यहीं पर उन्होंने रंछोरलाल जी का मन्दिर भी बनवाया था, जिसमें एक खेड़ावाल-ब्राह्मण को सेवा-हेतु नियुक्त किया था। यह मन्दिर गाँव का प्रसिद्ध मन्दिर है।१

-:: सावली ::-

गुजरात राज्य में ही सावली गाँव में उनकी बैठक है। तालाब के पास में यह बैठक विशाल मन्दिर के रूप में प्रख्यात है। इस बैठक के कारण ही यह गाँव भी वल्लभ-सम्प्रदायी वैष्णवों का तीर्थ स्थान बना हुआ है। इस मन्दिर का भव्य-निर्माण हुआ है। इस समय इस नव-निर्मित विशाल मन्दिर में गोस्वामी हरिराय के हस्ताक्षरों की पूजा होती है। गो० हरिराय जी का कुछ साहित्य भी यहाँ से प्रकाशित होता रहता है।

-:: जम्बूसर ::-

जम्बूसर गाँव में भी इनकी एक बैठक तालाब के किनारे है। यहाँ पर उनके अनन्य सेवक प्रेम जी भाई ने 'युगल गीत' का प्रसंग पूछा था, जिसका समाचार उन्होंने तीन पहर पर्यंत किया था, यहीं से आप नाथद्वारा आये थे। २ इस समय इस बैठक की व्यवस्था ठीक न होने से यह जीर्ण प्राय: ही है। सम्भवत: उनके वंशानुयायियों का इस ओर ध्यान नहीं रहा।

इन सात बैठक-स्थानों के अतिरिक्त गुजरात, उत्तरप्रदेश, राजस्थान आदि प्रान्तों में उन्होंने और भी यात्रायें की थीं, जिनके प्रसंग यत्र-तत्र बचनामृतों

---

(१) श्री आचार्य जी महाप्रभु जी की चौरासी बैठक-
-- बजरंग पुस्तकालय, मथुरा। पृष्ठ- २३५

(२) वही।

में बिखरे पड़े हैं। इन विविध यात्राओं के कारण वे समग्र भारत वर्ष में प्रख्यात होगये थे। उनके ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ व्रज प्रदेश से डेरा गाजी खाँ (पाकिस्तान) तक प्राप्त हुई हैं। हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थों के अधिकांश संग्रहालयों में उनकी कुछ न कुछ रचनाएँ प्राय: मिल जाती हैं। लेखक को उनके ग्रन्थ मथुरा, वृन्दावन, नन्दगाँव, बरसाना, कोटा,जयपुर, उदयपुर, बड़ौदा, बम्बई, नाथद्वारा, कांकरौली, काशी, आदि स्थलों से विविध सूत्रों से प्राप्त हुए हैं। स्पष्ट है कि उनकी ख्याति में उनके देशाटन का पर्याप्त स्थान रहा है।

व्यक्तित्व :-

गो० हरिराय जी अपने समय के सर्व-प्रसिद्ध विद्वान थे। उनके वर्तमान परिकर में ऐसा सुयोग्य विद्वान दूसरा दृष्टिगत नहीं होता। वे स्वरूप से सुन्दर तथा स्वभाव में अत्यन्त मृदु थे। उनमें अध्ययनगत गरिमा भी थी, और अनुभवगत गम्भीरता भी। बड़े-बड़े राजाओं से लेकर मजदूर-वर्ग भी इनसे प्रभावित था। ये वैष्णव वृन्दों में जितने आदरणीय थे उतने ही सम्माननीय अपने पारिवारिक सदस्यों में भी थे। दूर-दूर से गोस्वा-मियों के जिज्ञासु बालक उनके पास आया करते थे। अपनी पत्नी तथा भाई के लिये भी वे पूज्य थे और उन्होंने आजीवन इस सम्मान का निर्वाह किया था। पूर्ण वैभव सम्पन्न होने पर भी अत्यन्त सरल-जीवन यापन करते थे। वे अपना अधिक समय भगवत् सेवा या ग्रन्थ-सृजन में लगाया करते थे। भगवत् वार्तायें उनके दैनिक जीवन का नियम थीं। वे कभी आपत्तियों से घबड़ाए नहीं, और नाहीं वैभव पाकर प्रमत्त ही हुए। औरंगजेब के उपद्रवों से जब सभी आचार्यगण अपने देव-विग्रहों सहित व्रज से चले गये थे, तब आपने बड़े ही धैर्य के साथ "देव-आज्ञा" की प्रतीक्षा की थी। इन्हें न तो किसी से प्रतिस्पर्धा थी और ना हीं अपनी विद्वता

का अभिमान । इन सभी विशेषताओं से युक्त गो० हरिराय जी एक प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे । इनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं की चर्चा हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत करना समीचीन समझते हैं ।-

(- आचार्य -)
(- रूप -)

वल्लभ-सम्प्रदाय की कुल-रीति के अनुसार वंश का सबसे बड़ा पुत्र पिता की गद्दी का अधिकारी हुआ करता है । गोस्वामी हरिराय जी के पिता कल्याणराय जी अपने भाइयों में सबसे बड़े थे, अतएव वे गद्दी के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित थे । यह गुसाईं जी के द्वितीय पुत्र श्री गोविन्दराय जी की गद्दी है । इसे द्वितीय-गृह के नाम से भी जाना जाता है । गो० हरिराय जी कल्याण राय जी के ज्येष्ठ पुत्र थे, इसलिए उनके पश्चात् ये ही इस गद्दी पर आचार्य हुए थे । इस गद्दी के अनुयायियों की संख्या अन्य गद्दियों की भाँति पर्याप्त है । बहुसंख्यक धनी-मानी व्यक्ति इस गद्दी के सेवक हैं ।

-:: सरलता ::-

गोस्वामी हरिराय जी में एक गद्दी के आचार्य होने के सभी गुण विद्यमान थे। स्वभाव से ये अत्यन्त मृदु होने के कारण वैष्णव-वृन्द इनसे अत्यधिक प्रभावित था । ये प्राय: वैष्णवों के मध्य प्रवचन किया करते थे । अपनी भाव-विभोरता के लिये ये प्रसिद्ध थे ।

एक समय 'सिमनोर-काल' में ही इनकी नित्य-वार्ता सुनकर वैष्णव अत्यधिक भाव-विभोर हो उठे थे । रात्रि में वार्ता-समापन के पश्चात् ये वैष्णव कीर्तन-गान करते हुए मंडली रूप में मन्दिर से निकले । वैष्णवों के कीर्तन-गान से कुछ जैन-धर्मावलम्बियों को रात्रि में कष्ट का अनुभव हुआ । एक मुहल्ले के चबूतरे पर बैठकर ये सभी वैष्णव भगवत् भजन करने लगे । उक्त जैनियों ने आकर श्री हरिराय जी से कहा कि आपके

अनुयायी इस प्रकार हमारी निद्रा में विघ्न डाल रहे हैं। गो० हरिराय जी उन जैन-व्यक्तियों के साथ निर्दिष्ट स्थल पर आये और जब उन्होंने देखा कि उनके सेवक इस प्रकार भगवत -स्मरण में लीन हैं तो स्वयं भी उनका साथ देने लगे। गो० हरिराय जी को आभास हुआ कि स्वयं कृष्ण भी उनके सत्संग में क्रीड़ारत हैं। इससे आप और भी भाव-विभोर हो उठे। साथ आए हुए जैनियों ने जब एक गद्दी के प्रतिष्ठित आचार्य को इस प्रकार उनका साथ देते हुए देखा तो वे भी उनसे अत्यधिक प्रभावित हो उठे। गो० हरिराय जी ने तत्क्षण ही एक पद रचकर वहाँ गाया भी।१

कीर्तन-समाप्त होने पर उक्त जैनियों ने गो० हरिराय जी से निवेदन किया कि उन्हें भी अपने सम्प्रदाय में सम्मिलित कर लें। गो० हरिराय जी ने उन्हें अष्टाक्षर मंत्र सुनाकर अपने सम्प्रदाय में समाविष्ट कर लिया। उन्हें अपना एक पद सुनाकर जीवन के प्रति कर्तव्य का ज्ञान भी कराया। २

---

(१) हौं वारी इन वल्लभियन पर।
मेरे तन को करौं बिछौना, शीश धरुं इनके चरनन तर।
नेह भरे देखो मेरी अँखियन, मँडल मध्य विराजत गिरधर।
यह तो मोहि प्राण-जीवन धन, दान दिये हैं श्री वल्लभवर।
पुष्टि-प्रकार प्रगट करिवे कों फिर प्रगटे श्री वल्लभ वपुधर।
'रसिक' सदा आस इनकी कर, वल्लभियन के चरनन अनुसर।
-- गो० हरिराय जी का पद साहित्य(प्रकाशित) पद नं० ६४१

(२) जीवन जो ऐसे बनि आवै।
श्री वल्लभ श्री विट्ठल प्रभु की शरणागति जो पावै।
द्वादस तिलक सहित मुद्राधर, तुलसी कंठ धरावै।
प्रेम सहित जो नन्द-नंदन के जन्म-कर्म गुण गावै।
- - - - - - - - ।

-- वही ०।

उक्त उदाहरण से गोस्वामी हरिराय जी के व्यवहार की सरलता का बोध होता है। वह एक प्रतिष्ठित गद्दी के आचार्य होने पर भी व्यवहार में बहुत सीधे-सादे व सरल थे। इसके अतिरिक्त अपनी पद प्रतिष्ठा के अनुरूप स्वभावत: इनमें अध्ययनगत-गाम्भीर्य भी विद्यमान था। गो० गोकुल नाथ जी के निर्देशन में, इनमें जो विद्वता प्रस्फुटित हुई, उसकी आभा सर्वत्र देदीप्यमान रही। इन्होंने सम्प्रदाय सम्बन्धी सभी ग्रन्थों का पूर्ण अध्ययन किया था। इनके समय की सभी गद्दियों के आचार्य इनका आदर करते थे।

अध्ययन-गत गरिमा इनके प्रवचनों में दिखाई देती थी। अपने आचार्य-धर्म के अनुरूप ये नित्य-प्रति उपदेश दिया करते थे जो लिपिबद्ध रूप में बचनामृत ' नाम से प्रसिद्ध हैं।

-:: सम्प्रदाय के प्रति::-

आचार्य होने के कारण इन्हें अपने धर्म- सम्प्रदाय के प्रसारण का सदैव ध्यान रहता था। एक समय गो० गोकुलनाथ जी ने परमानन्द नामक स्वर्णकार से श्रीनाथ जी की मूर्ति के लिये एक जड़ाऊ कूलहा (पगड़ी सम्बन्धी एक विशेष आभूषण) बनाकर लाने के लिए कहा। यह स्वर्णकार गोस्वामी हरिराय जी का शिष्य था। जिस समय वह उक्त आभूषण बनाकर लाया गोकुल नाथ जी बाहर गये हुए थे। इसलिए वह स्वर्णकार उस आभूषण को गोस्वामी हरिराय जी के पास लाया तथा उनसे पूछा कि यह आभूषण कैसा बना है? गोस्वामी हरिराय जी उसे देखकर सन्तुष्ट हुए और कहा कि इसे देखकर गोकुलनाथ जी तथा श्रीनाथ जी दोनों प्रसन्न होंगे। स्वर्णकार के वापस जाते समय गो० हरिराय जी ने उससे कहा कि जब गोकुलनाथ जी तुझे पारिश्रमिक-द्रव्य दें तो तू द्रव्य मत लेना, वल्कि उनसे बचन लेलेना कि पुष्टि-मार्ग की पचास वर्ष तक विशेष स्थिति रहे। तेरा पारिश्रमिक मैं दे दूंगा। गो० हरिराय जी की आज्ञा के अनुरूप वह स्वर्णकार गोकुलनाथ जी के पास गोकुल गया, और

वह आभूषण उन्हें दिखलाया, गो० गोकुलनाथ जी उस आभूषण को देखकर अति प्रसन्न हुए। उन्होंने इस आभूषण को दूसरे ही दिन अपने जन्म दिवस पर श्रीनाथ जी के स्वरूप में संजोया। अपने सेव्य-स्वरूप की ललित झाँकी देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। बाद में गोकुलनाथ जी ने उस स्वर्णकार से पारिश्रमिक हेतु पूछा, इस पर स्वर्णकार ने द्रव्य के बदले 'मार्ग की पचास वर्ष तक विशेष स्थिति' का आशीष माँगा। स्वर्णकार की इस अद्भुत माँग को सुनकर गोकुलनाथ जी स्तब्ध रह गये। उन्हें संदेह हुआ कि ऐसी विचित्र माँग इस स्वर्णकार की नहीं हो सकती, बाद में उन्हें गोस्वामी हरिराय जी के कृत्य का पता चला।

इस प्रसंग से ज्ञात होता है कि गोस्वामी हरिराय जी अपने गुरु गोकुलनाथ जी का बहुत सम्मान करते थे, वे गोकुल नाथ जी से आशीष के रूप में स्वार्थ-सिद्धि नहीं चाहते थे, बल्कि अपने सम्प्रदाय की विशेष उन्नति के लिये ही अपने गुरु की शुभ-कामनाओं की इच्छा करते थे।

-:: भक्त-हृदय ::-

आचार्य होने के नाते वे कृष्ण के अनन्यतम् भक्त थे, कृष्ण की विविध लीलाओं को ही उन्होंने अपने साहित्य का वर्ण्य-विषय बनाया है। बिना भगवत् आज्ञा के वे व्रज छोड़ने के लिये तैयार न थे। श्रीनाथ जी के स्वरूप की सेवा के लिये खिमनौर से नाथद्वारा नित्य आया करते थे। उन्हें भगवत् आज्ञा का समय-समय पर आभास हुआ करता था। भगवान् की स्वप्न-आज्ञा को वे सदैव ही सत्य मानते थे।

-संयमी-

अपने पद की मर्यादा के अनुसार गोस्वामी हरिराय जी में संयम भी पूर्ण रूप से विद्यमान था। अपने आचरण से पूर्ण संयमी होने के कारण अपने समय के परिकर में गो० हरिराय जी एक उदाहरण बने हुए थे।

प्रसंग है कि एक समय सिमनौर में गोस्वामी हरिराय जी के प्रवचन सुनने एक राजकुमारी आया करती थी । गो० हरिराय जी शयन की भाँकी के पश्चात् वैष्णवों के आगे भगवत् वार्ता किया करते थे । उनकी वार्ता बहुत सरल व सरस हुआ करती थीं । उन रसमयी वार्ताओं को सुनकर राजकुमारी का मन गोस्वामी हरिराय जी के प्रति आकृष्ट हुआ गोस्वामी हरिराय जी में दिव्य तेज के साथ-साथ लौकिक सौन्दर्य भी पूर्णरूपेण विद्यमान था । राजकुमारी के वासनामय अंतस् में गो० हरिराय जी के प्रति कुछ कलुषित विचार उत्पन्न हुए, राजकुमारी ने गो० हरिराय जी के प्रति भाव-विभोरता प्रगट करते हुए स्वेच्छा परिपूर्ति का भी दृढ़ निश्चय कर लिया था । गोस्वामी हरिराय जी के प्रति आसक्त उस राजकुमारी ने अपनी सेविका द्वारा गो० हरिराय जी से एकान्त में चरण-स्पर्श की प्रार्थना की । एकान्त प्राप्त कर राजकुमारी ने चरण-स्पर्श के माध्यम से अपनी कलुषित भाव-भंगिमाओं को भी प्रदर्शित करने का यत्न किया, किन्तु संयम, त्याग एवं भगवत् भाव की निरन्तर स्थिति के कारण गो० हरिराय जी में दीर्घ-जीवन के अनुभवों की दूर-दर्शिता विद्यमान थी । वे लौकिक वातावरण से इन सभी छल-छन्दों से परिचित थे, उस समय उन्होंने राजकुमारी के उस तामसिक विकार के उन्मूलन का निश्चय किया ।

> वल्लभ-सम्प्रदाय के जन-विश्वासों और प्रचलित कथा-श्रुतियों के अनुसार जिस समय राजकुमारी ने उनके चरण-स्पर्श किए, गो० हरिराय जी अपनी दिव्य शक्ति के कारण वात्सल्य-भाव के अनुरूप माँ यशोदा के रूप में परिणित होगए । राजकुमारी को आभास हुआ कि भगवान् कृष्ण यशोदा के स्तनों का पान कर रहे हैं । उस अलौकिक दृष्टि के प्रभाव से राजकुमारी का हृदय विकार-मुक्त होगया । वह वात्सल्य के चरमोद्वेग के वशीभूत हो मूर्च्छित होगई । चैतन्य होने पर गो० हरिराय जी ने उन्हें बताया कि इस तरह एकान्त में उनका आना

लोक-विरुद्ध है । प्राणी को लोक-मर्यादा से विमुख नहीं होना चाहिये । भक्ति के विधान में काम की सन्निहिति असंतुलन प्रकट करती है, अत: इस सन्दर्भ में आत्मिक कालुष्य का परित्याग करना चाहिये । अपने इस मत की पुष्टि में उन्होंने संस्कृत में 'कामाख्य दोष विवरणम्' नामक ग्रन्थ की रचना की ।१ उसका अर्थ राजकुमारी को समझाया, राजकुमारी ने उस प्रसंग का एक भाव-चित्र अपने हाथ से बनाया ।२ उसी चित्र का स्मरण करती हुई, कुछ दिन पश्चात् मृत्यु को प्राप्त हुई ।३

इस घटना से स्पष्ट है कि गोस्वामी हरिराय जी लोक - मर्यादा का सदैव ध्यान रखते थे तथा नैतिक आचरण की शुद्धता के प्रति सदैव जागरूक रहते थे । आचार्य-पद की गरिमा का उन्हें सदैव स्मरण रहता था, तथा इसके अनुरूप ही वे आचरण करते थे । गो० हरिराय जी भलीभाँति जानते थे कि उनका जन्म आचार्य-वल्लभ तथा गुसाईं विट्ठलनाथ जी के लोक-विश्रुत वंश में हुआ है । वे अपने कर्त्तव्यों के प्रति सदैव सचेष्ट रहते थे ।

-::)उपाधि(::-

गो० हरिराय जी अपने समय के सर्व प्रसिद्ध व्यक्ति थे । तत्कालीन वैष्णव समाज में उनका पर्याप्त सम्मान था, गुसाईं जी के लिये प्रयुक्त होने वाली 'प्रभुचरण' की उपाधि से वे अलंकृत थे । गुसाईं जी के प्रसाद-स्वरूप जन्म लेने के कारण ही सम्भवत: गोस्वामी हरिराय जी को भी 'प्रभुचरण' की उपाधि प्राप्त हुई थी । दामोदर दास फालानी एवं गोपाल दास फालानी के अनुसार

---

(१) गो० हरिराय जी नूं जीवन चरित्र (गुजराती)- द्वारकादास परिख-पृ० ४०

(२) यह चित्र गोकुल तथा कांकरोली में उपलब्ध है । यह चित्र श्री विट्ठलेश चरितामृत में छप चुका है ।

(३) विद्याविभाग, नाथद्वारा से संवत् १९८० में प्रकाशित ।

'आप श्री (हरिराय) प्रभु चरण (गुसाईं जी के चर्वित ताम्बूल स्वरूप होने से) के नाम से सम्बोधित किये जाते थे' ।१ वैसे स्वरूप और कर्म की दृष्टि से भी आप गुसाईं जी के प्रति रूप ही थे । बाल्यकाल से ही उनमें सेवा, श्रृंगार, भक्ति, व्यवहार, विद्वता आदि के प्रति गुसाईं जी की भाँति रुचि थी । साम्प्रदायिक सेवा-भावना, कर्म-ज्ञान, व्यवहार, मर्यादा, शिष्टाचार आदि के बीज उनमें शिशु-काल से ही विद्यमान थे ।

गोस्वामी हरिराय जी अपनी प्रौढ़ावस्था में महाप्रभु वल्लभाचार्य के अनुरूप भगवत्प्रेम, विरह-भावना, दीनता, त्याग, सहिष्णुता, विद्वता एवं कर्मठता में निमग्न रहते थे । इसी कारण जीवन की सांध्य बेला में उन्हें 'महाप्रभु' की सम्माननीय उपाधि से भी अलंकृत किया गया था । यह विशिष्ट उपाधि महाप्रभु वल्लभाचार्य के पश्चात् गोस्वामी गोकुलनाथ जी को ही प्राप्त हुई थी, और उनके पश्चात् यह महान् उपाधि गो० हरिराय जी को ही मिल सकी, -- यह उनकी विद्वत्ता तथा जन-सम्मान की प्रतीक थी । शाह-हिम्मत लाल भोगीलाल के अनुसार 'महाप्रभु जी के अनेक गुणों के दर्शन हरिराय जी में होते थे । इसको लेकर भक्त वैष्णवों ने हरिराय जी को 'महाप्रभु जी' के नाम से सम्बोधित किया था, इससे हरिराय जी 'महाप्रभु' के नाम से प्रख्यात हैं ।'२ फ़ालानी बन्धुओं के अनुसार भी 'श्री हरिराय जी की उत्तर अवस्था विप्रयोग रस के अनुभव से पूर्ण रही थी, इसलिये उस समय सबकोई आपको 'महाप्रभु' कह कर सम्बोधित करते थे । आप श्री में महाप्रभु जी के अद्वितीय त्याग, विरह-भावना,

---

(१) श्री हरिराय जी महाप्रभु -- जीवन-चरित्र प्रका० इन्दौर - पृष्ठ- ५

(२) 'श्री महाप्रभु जी नां अनेक दिव्य गुणों श्री हरिराय जी मां थतुं, तेने लई श्री हरिराय जी ने भगवदीयो ए श्री महाप्रभु जी ना नामाभिधान थी जनाव्या छे । जे थी श्री हरिराय जी 'महाप्रभु' ना नाम थी प्रख्यात छे ।'

-- श्रीमद् गो० श्रीहरिराय जी महाप्रभु नुं जीवन-दर्शन(भाग-१।२) पृ०-३५

दीनता और `स्वानंदतु दिलत्व` आदि अनेक धर्म प्रत्यक्ष हुए थे। इस तरह श्री हरिराय चरण `महाप्रभु` और `प्रभुचरण` ऐसे दोनों नामों से जाने जाते हैं।`१ जन-वाणी में उन्हें `महाप्रभु -हरिराय चरण` के नाम से भी जाना जाता है।

-:: उपदेशक ::-

पूर्ववर्ती पृष्ठों में कहा जा चुका है कि गो० हरिराय जी वैष्णवों के मध्य नित्य-प्रति प्रवचन किया करते थे, उनके `वचनामृत` अब भी आदर के साथ पढ़े जाते हैं। राणा रायसिंह उनके प्रवचन सुनने `खेड़ा` नामक स्थान पर अपने राज्य से चलकर आते थे। राजकुमारी उनके उपदेशों से अत्यधिक प्रभावित हुई थीं। श्रीमद् भागवत तथा सुबोधिनी ग्रन्थों पर उनका इतना अधिकार था कि उनके सप्ताह परायण सुनने लोग दूर-दूर से आया करते थे। उन्होंने जिस स्थल पर रुक कर सप्ताह परायण या सुबोधिनी की कथाएँ कहीं थीं, वहीं पर उनकी बैठकें स्थापित होगईं। ये प्राय: गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, आदि स्थलों का भ्रमण करते रहते थे तथा वहाँ के निवासी वैष्णव वर्ग को अपने उपदेशों से प्रभावित करते रहते थे। उनके ये प्रवचन उनकी कुछ विशिष्ट-शिष्य मंडली द्वारा लिपि-बद्ध कर लिये जाते थे। इस प्रकार उनके प्रवचन भी उनके साहित्य के परिमाण वर्द्धन में सहायक सिद्ध हुए थे।

-:: भविष्य-द्रष्टा ::-

सिंहाड़ ग्राम के पास `खेड़ा` नामक ग्राम में उन्होंने राणा-रायसिंह के समक्ष भविष्यवाणी की थी कि निकट भविष्य में ही श्री द्वारकाधीश जी, विट्ठलनाथ जी तथा नवनीत प्रिया जी की सेव्य-मूर्तियाँ व्रज से मेवाड़ लायी जायेंगी। कुछ समय उपरान्त उनकी भविष्यवाणी सत्य निकली। तभी से ये मूर्तियाँ अब तक नाथद्वारा

---

(१) श्री हरिराय जी महाप्रभु - जीवन-चरित्र पृष्ठ- ५

तथा कांकरोली में विद्यमान हैं। उनके भव्य मन्दिर राणा-रायसिंह द्वारा बनवाए गए थे।

इसके अतिरिक्त जब वे देशाटन काल में घर से बाहर गए हुए थे तब उन्हें आभास हुआ कि उनके सहोदर की पत्नी का अवसान होने वाला है। इस दुःख में डूब कर उनका भाई सेवा-भावना से विरक्त न हो जाय, यह सोच कर वे अपने लघुभ्राता गोपेश्वर जी को एक पत्र नित्य लिखकर भेजने लगे। कुछ समय उपरान्त उनकी धर्मपत्नी का देहावसान हो गया। गो० हरिराय जी के पत्र अब भी आ रहे थे। गोपेश्वर जी अत्यन्त दुःखी हुए तथा भगवत् - सेवा में भी अब उनकी रुचि न रही थी। एक दिन गोस्वामी हरिराय जी के एक विशिष्ट शिष्य हर-जीवन-दास ने गोपेश्वर जी को गो० हरिराय जी के पत्र देखने के लिए कहा। गोपेश्वर जी ने इनके सभी-पत्र खोले और पढ़ने बैठ गए, पत्रों को पढ़ने से उनका दुःख कम हुआ। उन्होंने हर जीवन दास से कहा कि तुम नित्य मेरे समीप बैठा करो, मैं इन पत्रों की ब्रजभाषा-टीका करूंगा।[१]

गो० हरिराय जी के ये पत्र इकतालीस शिक्षा-पत्र के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन पर गोपेश्वर जी ने ब्रजभाषा टीका भी लिखी है। सम्प्रदाय में शिक्षा-पत्र अत्यधिक लोक-प्रिय ग्रन्थ है। वैष्णवों में इसके नित्यपाठ का भी विधान है।

::-दैवी-शक्ति ::-

सम्प्रदाय के वैष्णवों में यह विश्वास था कि गो० हरिराय जी में दैवी - शक्ति व्याप्त थी। श्रीनाथ जी के स्वरूप की सेवा का आभास उन्हें उनके निवास स्थल खिमनौर में ही हो जाया करता था। तब ये समय - समय पर नाथद्वारा आकर सेवा की त्रुटियों को सुधारते थे। एक मरणासन्न गाय को तृण देकर

---

(१) हरिराय जी कृत बड़े शिक्षा-पत्र - उपोद्घात से -
-- प्रकाशक - नारायण मल जेठानन्द आसनमल बम्बई।

उन्होंने जीवन-दान दिया था ।१ राजकुमारी को माँ यशोदा के रूप में दर्शन दिया था । अपने पिता के सन्मुख स्वयं को अग्नि पुन्ज स्वरूप में दर्शाया था । ये घटनाएँ उनकी दैवीशक्ति की प्रतीक समझी जाती हैं ।

-:: पूर्वजों के प्रति निष्ठा::-

गो० हरिराय जी अपने पूर्वज आचार्यों को सदैव स्मरण किया करते थे । अपनी ध्यान - धरा पर उन्होंने अपने पूर्वजों के शब्द-चित्र अंकित किए हैं । उनकी रचनाओं में पूर्वजों के प्रति प्रशस्ति-गायन सम्बन्धी पद विपुल परिमाण में हैं । उन्होंने अपने पूर्वजों के सम्मान में उनकी बधाइयाँ, उत्सव, प्रशस्ति आदि के विभिन्न पद-लिखे हैं । जन-श्रुति के अनुसार उन्हें अपने पूर्वज- आचार्यों का साक्षात्कार प्राप्त था ।२ जिसका वर्णन उन्होंने स्वयं एक पद में इस प्रकार किया है ।:-

केसर की धोती कटि, केसरी उपरना ओढ़ें ।
तिलक मुद्रा धरें, ठाड़े मंदिर गिरधर के ।।
दोउन की प्रीत कछु, काहू पैं न कही जाय ।
उत नंदनंदन इन वल्लभ - सुत वर के ।।
करिकैं सिंगार आजु लाड़िले कुंवर जू कौ ।
लेत हैं बलैया, वारि वारि दोउ करके ।।
बैठे मुसकात जात, फूले न समात गात ।
कहैं 'हरिदास' मैं निहारे दृग भरिकैं ।।३।।

पद के कथन से ज्ञात होता है कि कवि प्रत्यक्ष-घटना का वर्णन कर रहा है, किन्तु कृष्ण की विविध लीलाओं के ऐसे ही वर्णन इन भक्ति - कवियों ने

---

(१) श्री हरिराय जी महाप्रभु नुं जीवन दर्शन (भाग-१।२) पृष्ठ- ४३-४४
(२) गो० महाप्रभु हरिराय जी नुं जीवन चरित्र- द्वा० प० पृष्ठ- ३२
(३) गो० हरिराय जी का पद साहित्य (प्रकाशित) पद सं० ६०२

अपने काव्य में अनेक स्थानों पर किए हैं। हो सकता है कि यह पद कवि के भाव-चित्रों को व्यक्त करता हो। इससे यह तो सिद्ध होता ही है कि गो० हरिराय जी अपने पूर्वजों में अटूट श्रद्धा रखते थे।

-:: सेव्य - स्वरूप ::-

गो० हरिराय के प्रमुख सेव्य-स्वरूप श्री विट्ठलनाथ जी थे। यह देव-प्रतिमा सम्प्रति नाथद्वारा में प्रतिष्ठित है। उसका विशाल मन्दिर वैष्णवों के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र बना हुआ है। इसी मन्दिर में गो० हरिराय जी की बैठक भी है। इसके अतिरिक्त श्री रणछोड़ लाल की प्रतिमा की भी ये सेवा करते थे। 'रणछोड़ लाल जी' का देव-विग्रह किसी वोड़ाना-नामक भक्त-वैष्णव द्वारा द्वारका से डाकौर ले जाया गया था। यवन-आक्रमण के भय से कुछ समय तक इस मूर्ति को गुप्त रखा गया, किन्तु उनकी सेवा व्यवस्था उचित ढंग से नहीं हो पा रही थी। गोस्वामी हरिराय जी को स्वप्न में आभास हुआ कि श्री 'रणछोड़ लाल जी' वहाँ कष्ट में हैं। स्वप्न प्रेरणा को भगवद् - आज्ञा मानकर उन्होंने रणछोड़ लाल जी की देव-मूर्ति को गुप्त वास से निकाला। नवीन मन्दिर बनवाकर उस मूर्ति को प्रतिष्ठित किया।१ डाकौर में स्थित गई भव्य मन्दिर आज भी प्रसिद्ध है। यहाँ उन्होंने भागवत का सप्ताह - परायण भी किया था।२ श्री प्रभुदयाल मीतल ने इनके सेव्य-स्वरूपों में 'द्वारका नाथ जी' तथा 'नवनीत - प्रिया' के देव-विग्रहों का भी उल्लेख किया है।३ 'श्रीनाथ जी' की सेवा का भी उन्हें पर्याप्त अवसर मिला था।४

---

(१) श्री हरिराय जी महाप्रभु जीवन चरित्र और साहित्यालोचन फालानी-वन्धु पृ० १६

(२) श्री आचार्य महाप्रभु जी की चौरासी बैठक- गोवर्धन, ग्रन्थ माला मथुरा पृ० २३५

(३) गो० हरिराय जी का पद-साहित्य -श्रीप्रभूदयाल मीतल पृ० ८

(४) गोवर्धन नाथ जी की प्राकट्य वार्ता- गो० हरिराय जी- पृ० ८५

-:: प्रमुख-
शिष्य-
गण-

वैसे तो उनकी शिष्य परम्परा में सहस्रों भक्त-वैष्णव थे, किन्तु कुछ शिष्य उनकी विशिष्ट कृपा के पात्र भी थे। जिनका संक्षिप्त परिचय यहाँ देदेना समीचीन प्रतीत होता है।

::हरिजीवन-दास::

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, हर जीवन दास की प्रेरणा से ही गो० हरिराय जी के लघुभ्राता श्री गोपेश्वर जी ने 'शिक्षा पत्रों' का अध्ययन किया था तथा उन्हीं के सन्निकट में बैठकर उन्होंने 'शिक्षापत्रों' की भाषा-टीका की थी।१ हरि जीवन दास गोस्वामी हरिराय जी के परमभक्त शिष्यों में से थे। ये संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। गो० हरिराय जी इन पर अडिग विश्वास रखते थे।

:: विट्ठलनाथ-
भट्ट ::

विट्ठलनाथ भट्ट एक प्रसिद्ध साहित्यकार थे। राजा मानसिंह के कहने पर उन्होंने 'सम्प्रदाय कल्पद्रुम' नामक ग्रन्थ की रचना गो० हरिराय जी से जानकारी प्राप्त कर की थी, इसका उन्होंने स्वयं अपनी रचना में उल्लेख किया है। २ 'सम्प्रदाय कल्पद्रुम' वल्लभ सम्प्रदाय का प्रमुख इतिहास ग्रन्थ माना जाता है। यह एक घटना-प्रधान ऐतिहासिक ग्रन्थ है। विट्ठलनाथ भट्ट गो० हरिराय जी के प्रमुख शिष्य थे। अनेक स्थलों पर उन्होंने अपने गुरु का उल्लेख किया है। विट्ठलनाथ भट्ट 'रस गंगाधर' के रचयिता जगन्नाथ कविराय के भाई के पुत्र थे। उन्होंने 'सम्प्रदाय कल्पद्रुम' की रचना संवत् १७२६ में की थी।

---

(१) इसी अध्याय के पृष्ठ- ३५ पर।
(२) 'श्रवन सुन्यौं हरिराय मुख, करन लिख्यौ नृपमान।'
सम्प्रदाय कल्पद्रुम -

-: शोभा मा जी :-

इन्होंने 'शोभा' छाप से गुजराती एवं ब्रजभाषा में अनेक रचनाएँ की थीं। द्वारका दास परिख ने इनकी रचनाओं के कतिपय उद्धरण इस प्रकार दिए हैं :-

'अ' हरिदास प्रभु 'शोभा' निरखत ।
मन क्रम बचन इनके गुन गाए ।।

'ब' जुगल जोरी हरिदास 'शोभा' निरखत,
दुहु कर जोरिकैं करत नमने ।

'स' गुजराती :-

ए 'शोभा' जोई हरिदास जाइ बलिहारी ।१

उपर्युक्त पदों को 'द्वारका दास परिख ने 'शोभा' जी कृत बताया है। इनमें हरिदास' छाप देखने से कुछ भ्रांति होती है कि ये पद किसी 'हरिदास कवि' के लिखे हुए हैं। किन्तु वास्तव में ये पद शोभा जी के ही हैं। इन्होंने गोस्वामी हरिराय जी से 'ब्रह्म-संबंध' लिया था, इसलिए इन पदों में अपने गुरु का नाम इन्होंने रख दिया है।

-:: काका-वल्लभ ::-

काका वल्लभ का जन्म संवत् १७०३ में हुआ था।२ काका वल्लभ गोस्वामी हरिराय जी के प्रति अत्यन्त श्रद्धाभाव रखते थे। ये एक भावुक-कवि तथा विद्वान पुरुष थे। 'भगवदीय नाम मणिमाला' नामक ग्रन्थ इनका लिखा हुआ है। इसके अतिरिक्त इनके द्वारा रचित अनेक घोल पद भी

---

(१) देखिये-- गो० हरिराय जी नूं जीवन-चरित्र (गुजराती) श्री द्वारकादास परिख

(२) श्री गिरधरलाल जी के १२० वचनामृत- सं० लल्लूभाई, छगनलाल देसाई अहमदाबाद प्र० संस्क० पृष्ठ- ५९

मिलते हैं। इन्होंने अपने पदों में `दास`, `श्री वल्लभ` तथा `वल्लभदास` तीन `छापों` का प्रयोग किया है।१ इनकी रचनाओं में गो० हरिराय जी का उल्लेख प्राय: मिलता है,--

ये भगवदीय ना स्वरूप जे, लीला माँ क्षिमान ।
कृपा करी हरिराय जी समलाम्याँ सहुनाम ।।

\+ \+ \+ \+

कंठे पहेरे प्रकाश पामे मनमाँ वारे आनंद ,
कृपा श्री हरिराय पूरण थाए परमानन्द ।
ए भगवदीय चरण रजनी सदा राखूं आस ,
कृपा करो मने दीन जाणी, गाए वल्लभ दास ।।२

इसी प्रकार इन्होंने चौरासी वैष्णवों के धोल में भी हरिराय जी का उल्लेख सादर किया है। ---

ए वैष्णव पद कमल रजरति तणी छे अति आश ।
गाए गुण हरिदास नाँ, पद - रज वल्लभदास ।।३

इसके अतिरिक्त `चरण चिन्ह वर्णन` नामक इनकी एक रचना तो गो० हरिराय जी की रचना के नाम से ही प्रसिद्ध है।४ काका वल्लभ ने अपनी इस रचना में गो० हरिराय जी का उल्लेख इस प्रकार किया है--

---

(१) देखिये-- दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (भाग-३) सम्पा० द्वारकादास परिख- सम्पादकीय लेख से।

(२) वही, -- `भगवदीय नाम मणिमाला ` से- पृष्ठ- ६

(३) धोल-पद प्रकाशक वैष्णव हरिगोविन्द दास हरिदास, नाथद्वारा प्रथम- संस्क० सं० २००७, पृष्ठ- ३२

(४) सरस्वती भंडार कांकरोली- बंध संख्या-२३ पुस्तक- ७

अब श्री षोडस चिन्ह बखानु ।
चरन- कमल उर अन्तर जानु ।।
अनन्यंपासन आसन मानौ ।
श्री हरिराय प्रताप यह जानौ ।।

जानौ श्री हरिराय बुध बल जब सरन मोकूँ दियौ ।
ब्रह्मवानी कहीं मुख ते, ग्रन्थ एक अद्भुत कियौ ।।१

उपर्युक्त उद्धरण से ज्ञात होता है कि काका वल्लभ गो० हरिराय जी का बहुत आदर करते थे ।

इस प्रकार इनके शिष्यों में साहित्य के प्रति विशेष रुचि थी । इनके शिष्यों ने अपनी रचनाएँ गो० हरिराय जी के सानिध्य में ही की थीं । उन्हें सैद्धान्तिक सूचनाएँ इन्हीं से प्राप्त हुई थीं ।

साहित्यगत:-

-:: साहित्य-कार::-

गो० हरिराय जी सम्प्रदाय के विद्वान आचार्य होते हुए एक योग्य साहित्यकार भी थे । साहित्य सृजन की अदम्य शक्ति उनके ग्रन्थों के परिमाण से ही जानी जासकती है । उन्होंने सैकड़ों ग्रन्थों का प्रणायन किया था । संस्कृत के ये उद्भट विद्वान थे । सम्प्रदाय में यह प्रसिद्ध है कि वल्लभ-मत को गो० हरिराय जी के ग्रन्थों के अध्ययन के बिना नहीं जाना जा सकता । सम्प्रदाय का कोई भी ऐसा विषय नहीं रहा जिस पर उन्होंने अपनी लेखनी न उठाई हो ।२

---

(१) सरस्वती भण्डार, कांकरौली-- बंध सख्या-२३ पुस्तक- ७
(२) वार्ता-साहित्य एक अध्ययन - डा० हरिहर नाथ टन्डन, पृष्ठ- ४००

-:: गद्य-लेखक ::-

संस्कृत के अतिरिक्त ब्रजभाषा में साहित्य सृजन कर उन्होंने तत्कालीन आचार्यों को लोक-भाषा में लिखने के लिये प्रेरित किया। ब्रजभाषा गद्य का एक निश्चित स्वरूप उनके द्वारा ही निरूपित हुआ था। 'वार्ता-साहित्य' में शैली का सुष्ठु रूप तथा भाव-प्रकाश, हिन्दी साहित्य को उन्हीं की देन कहा जासकता है। 'ऐसा प्रतीत होता है कि वैष्णवों में जितने गद्य ग्रन्थ हरिराय जी ने लिखे हैं, उतने शायद ही किसी ने लिखे हों। प्राचीन ब्रजभाषा अथवा हिन्दी में गद्य ग्रन्थों का एक-प्रकार का अभाव-सा बतलाया जाता है, खोज में इन ग्रन्थों के आने से एक कमी की पूर्ति हुई है।'[१]

-:: काव्यकार ::-

पद्य -साहित्य में भी उनका साहित्य परमानन्द, सूरदास तथा नन्ददास को छोड़कर परिमाण व स्तर में अष्टछाप के किसी भी कवि से कम नहीं है। ब्रजभाषा में रचे हुए उनके सहस्राधिक पद मिलते हैं।

-:: लोक-कवि ::-

गोस्वामी हरिराय जी अपने सम्प्रदाय के वैष्णवों में एक सफल लोक-कवि हुए हैं। उनकी रचनाएँ उनके अनुयायियों में अत्यधिक प्रचलित हैं। इनका सामूहिक तथा नित्यगान होता है। नित्य-उत्सव तथा वर्षोत्सव के विविध कीर्तन-संग्रहों में उनके पद निहित हैं। सम्प्रदाय का ऐसा कोई भी पद-संग्रह नहीं, जिनमें गो० हरिराय जी के पद न मिलते हों। उनके पदों को कहीं-कहीं पर तो सर्वाधिक महत्ता प्राप्त है, नित्यलीला, स्नेहलीला आदि उनकी विशिष्ट-सम्मान प्राप्त रचनाएँ हैं।

---

(१) हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का पन्द्रहवां त्रै-वार्षिक विवरण, नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित

-:: बहु-भाषा-विद::-

गो० हरिराय जी ने ब्रजभाषा के अतिरिक्त पंजाबी, गुजराती, मारवाड़ी, राजस्थानी आदि बोलियों में भी फुटकर पद लिखे हैं, जो वल्लभ-सम्प्रदाय में कीर्तन तथा भजन रूप में अब भी गाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त इनके कुछ छन्दों में खड़ी बोली का रूप भी देखा जा सकता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है ---

तू बनरा रे बनि बनि आया, मो मन भाया सुख उपजाया,
अति उतंग नीली घोड़ी चढ़ि , धरि सिर सेहरा अतिसुन्दर-
अंग सुगंध लगाया।
अपने संग सकल जन सोहैं, तिलक लिलार बनाया,
'रसिक प्रीतम' बलिहारी जाऊँ, उठि हँस अँग लगाया ।।१

जैसा कि पूर्ववर्ती पृष्ठों में कहा जा चुका है कि गो० हरिराय जी संस्कृत के भी प्रकाण्ड विद्वान थे। इस प्रकार उनके बहुभाषा-विद होने के प्रमाण मिलते है।

-:: अनुवादक::-

कवि तथा लेखक होने के अतिरिक्त गोस्वामी हरिराय जी एक कुशल अनुवादक भी थे। उन्होंने अनेक संस्कृत - ग्रन्थों की संस्कृत तथा ब्रजभाषा में टीकाएँ की हैं। उनकी व्रजभाषा टीकाओं के नामांकन 'कृति-परिचय' नामक अध्याय में दिए जायेंगे। वल्लभ सम्प्रदाय का प्रमुख साहित्य जो बल्लभा-चार्य तथा गुसाईं जी द्वारा रचा गया है, प्राय: सभी संस्कृत में ही है। सम्प्रदाय के जन-साधारण के लिये उनका मनन करना सुलभ नहीं। इस प्रकार गोस्वामी हरिराय जी ने इन ग्रन्थों की व्रजभाषा टीका प्रस्तुत करके इसे जन-सामान्य के लिये सुबोध बना दिया है। सम्प्रदाय में वे एक अनन्यतम साहित्यकार थे।

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य (प्रकाशित) पृष्ठ-७६

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोस्वामी हरिराय जी अपने समय के एक कुशल साहित्यकार थे, उनके इस व्यक्तित्व का उनके परिकर पर व्यापक प्रभाव रहा था ।

गोलोकवास :-

गोस्वामी हरिराय जी ने एक सौ पच्चीस वर्ष की पूर्णायु प्राप्त की थी । उनका निधन खिमनौर ग्राम में संवत् १७७२ में हुआ था । उनकी वृद्धावस्था के समय अनेक गोस्वामी जिज्ञासु उनके समीप रहते थे । अपने प्रभुत्वशाली व्यक्तित्व तथा साहित्य सृष्टा के रूप में वे अत्यधिक प्रसिद्ध हो चुके थे । श्री द्वारकादास परिख ने उनके निधन काल के सम्बन्ध में दो संवतों का उल्लेख किया है । परिख जी के अनुसार संवत् १७७२ तथा संवत् १७७५ में से किसी एक संवत् को उनका निधन हुआथा । किन्तु अन्य सभी विद्वानों ने संवत् १७७२, इनका निधन काल एक मत से स्वीकार किया है । १

खिमनौर में बावड़ी के ऊपर उनकी एक छत्री समाधि के रूप में अब भी बनी हुई है । उनके देहावसान के पश्चात् उदयपुर के राणा ने उनके सेव्य स्वरूप श्री-विट्ठलनाथ जी को सिंहाड़ ग्राम के समीप खेड़ा नामक स्थान पर प्रतिष्ठित किया । वहाँ पर उन्होंने एक मन्दिर भी बनवाया था ।२ बाद में उनकी सेव्य-मूर्त्ति को कोटा ले जाया गया था ।३ सम्प्रति यह

---

(१) श्री प्रभुदयाल जी मीतल, डा० हरिहरनाथ टन्डन, डा० दीनदयालु गुप्त प्रभृति विद्वानों के अनुसार ।

(२) देखिये-- आचार्य महाप्रभु जी की चौरासी बैठक, प्रका० बजरंग पुस्तकालय मथुरा- पृष्ठ- २३२ ।

(३) वही ।

देव विग्रह नाथद्वारा में विट्ठलनाथ जी के मन्दिर में विद्यमान है। इस मन्दिर में गोस्वामी हरिराय जी ने एक बृहद् पुस्तकालय का भी निर्माण किया था, जिसमें उनके सभी ग्रन्थों के अतिरिक्त और भी विपुल ग्रन्थों का संग्रह था, किन्तु उनके वंशजों की उदासीनता एवं साहित्य के प्रति अरुचि से वह विशाल ग्रन्थागार नष्ट होगया। इस समय यत्किंचित साहित्य जो उनके उत्तराधिकारियों के पास है भी वह किसी को दिखलाया नहीं जाता। उस बचे हुए साहित्य का कुछ भी उपयोग होना असम्भव सा प्रतीत होता है। ग्रन्थ स्वामियों की इसी मनोवृत्ति के परिणाम-स्वरूप सम्प्रदाय का बहुत सा साहित्य नष्ट होगया और हो रहा है।

गोस्वामी हरिराय जी के पश्चात् उनके दत्तक पुत्र श्री गिरधर जी द्वारा उनका वंश क्रम आगे बढ़ा, इस समय बड़ौदा, इन्दौर व नाथद्वारा में उनके वंशज बसे हुए हैं।

गोस्वामी हरिराय जी के जीवन का पूर्ण अध्ययन करने के पश्चात् अब उनके कृतित्व का परिचय अगले अध्याय में किया जा रहा है।

Chapter-3

तृतीय-अध्याय

कृति-परिचय

"गोस्वामी हरिराय जी बहुमुखी काव्य-प्रतिभा के धनी थे। उनके काव्य में भक्ति तथा श्रृंगार के विविध आयाम विविध रूपों में विकसित हुए थे। ---- गोस्वामी हरिराय जी जितने कुशल गद्यकार थे, उतने ही भावुक कवि भी थे"।

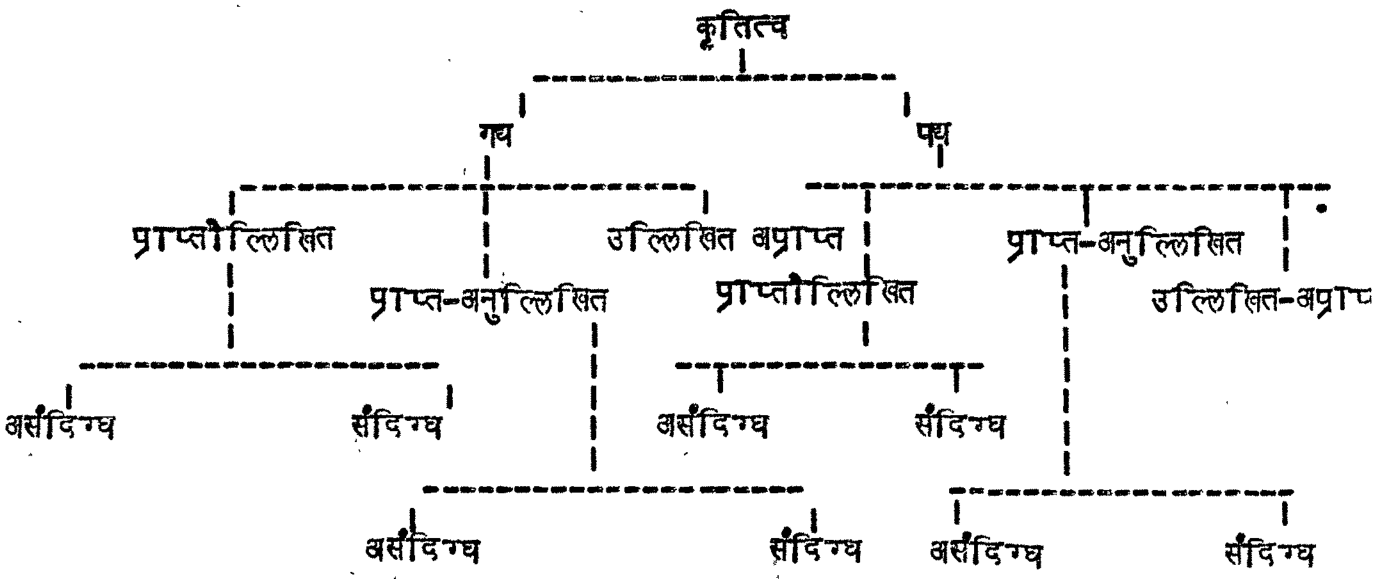

गोस्वामी हरिराय जी ने व्रजभाषा गद्य व पद्य में अनेक अनुपम कृतियों का सृजन किया है। गोस्वामी हरिराय जी की कुछ-क रचनाएँ ही प्रकाशित हैं। इसके अतिरिक्त जिन विद्वानों ने गोस्वामी हरिराय जी की रचनाओं के उल्लेख किये हैं, वे मात्र उल्लेख ही हैं, उन्होंने गोस्वामी हरिराय जी की उल्लिखित - रचनाओं के पूर्ण विवरण नहीं दिये। नागरी-प्रचारिणी सभा की शोध-पत्रिकाओं में अवश्य ही उनकी रचनाओं के विवरण दिए हैं, किन्तु सभा की शोध यात्रा में गो० हरिराय जी के समग्र ग्रन्थ नहीं आ पाये हैं। प्रस्तुत अध्याय में गोस्वामी हरिराय जी के प्राप्य सभी ग्रन्थों का पूर्ण विवरण दिया जारहा है।

गोस्वामी हरिराय जी के अधिकांश ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, जिनमें बहुत से ग्रन्थ ऐसे हैं, जिनका विद्वानों ने यत्र-तत्र उल्लेख किया है। फिर भी कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं, जिनका उल्लेख अन्यत्र देखने को तो मिलता है किन्तु वे ग्रन्थ या तो अप्राप्त हैं अथवा किन्हीं दूसरे ग्रन्थकारों के नाम से प्राप्त होते हैं। इस सन्दर्भ में विशेष महत्वपूर्ण बात यह है कि गो० हरिराय जी के कुछ और ग्रन्थ भी शोध में प्राप्त हुए हैं, जिनका इस शोध-प्रबन्ध से पूर्व कहीं भी उल्लेख देखने को नहीं मिलता।

इस प्रकार गोस्वामी हरिराय जी के समग्र ग्रन्थों का परिचय निम्नलिखित विभाजन के अनुसार प्रस्तुत किया जारहा है।

प्रथम-- वे ग्रन्थ जो उपलब्ध हैं और जिनका विद्वानों ने यत्र-तत्र उल्लेख भी किया है।

द्वितीय- वे ग्रन्थ जो शोध करते समय प्रथमबार प्राप्त हुए हैं, जिनका कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता।

तृतीय-- वे ग्रन्थ जिनका मात्र उल्लेख ही प्राप्त होता है, किन्तु उपलब्ध नहीं हैं।

गोस्वामी हरिराय जी ने व्रजभाषा में गद्य एवं पद्य दोनों प्रकार के ग्रन्थों का सृजन किया है। सर्व-प्रथम उनके गद्य ग्रन्थों का परिचय प्रस्तुत किया जारहा है।

गद्य-ग्रन्थ:-

गो० हरिराय जी के हस्तलिखित ग्रन्थों की मूल-प्रतियाँ प्राप्त नहीं होतीं और न किसी ग्रन्थ में प्रतिलिपिकारों ने रचनाकाल का ही निर्देश किया है।

कुछ हस्तलिखित प्रतियों में तो प्रति का लिपिकाल भी ज्ञात नहीं होता। इस अवस्था में गोस्वामी हरिराय जी की रचनाओं का अकारादि-क्रम से ही विवरण देना अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

विषय-वस्तु के आधार पर गोस्वामी हरिराय जी के प्राप्त ग्रन्थों को तीन रूप में विभाजित किया जासकता है।

-- भावना - प्रधान ग्रन्थ,
-- सिद्धान्त- प्रधान ग्रन्थ
-- तथा टीका - ग्रन्थ।

भावना प्रधान ग्रन्थों में विभिन्न विषयों की भावात्मक परिकल्पनाएँ की गई हैं। प्रत्येक लौकिक विषय को अलौकिक बनाए रखने के लिए प्रतीक - योजना का निर्वाह इन ग्रन्थों में प्रारम्भ से अन्त तक पाया जाता है। इनमें विवेच्य विषय को सांगरूपक, अन्योक्ति आदि अलंकारों द्वारा प्रभावक बनाए रखने का प्रयास किया गया है। वल्लभ -सम्प्रदाय में अन्य अनेक आचार्यों ने भी इस प्रकार के ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें गोस्वामी गोकुलनाथ जी, पुरुषोत्तम जी,(भावना वाले) श्री द्वारकेश जी, श्री गिरधर लाल जी आदि विद्वानों के विभिन्न ग्रन्थ हस्तलिखित रूप में उपलब्ध होते हैं।

<u>भावना-प्रधान कृतियों का विवरण:-</u> (प्राप्तोल्लिखित)

१- <u>उत्सवभावना</u>

यह ग्रन्थ प्रकाशित है।१ प्रकाशित संस्करण में यह ग्रन्थ एक संग्रह ग्रन्थ में समाविष्ट है। इस संकलन-ग्रन्थ में सर्व प्रथम व्रजभूषन कृत

(१) श्री वल्लभ विलास-(भाग-३।४) सम्पा० बाबू व्रजभूषन दास दीसावाल प्रका० बनारस सं० १९४५

'अलौकिक-पंचतत्व ' नामक एक पद है, तत्पश्चात् गोस्वामी हरिराय जी कृत 'नित्य सेवा की रीति' नामक ग्रन्थ दिया गया है, तदनन्तर ब्रजभूषन दास विरचित 'वर्षोत्सव कौ प्रकार' अंकित है, इसके पश्चात् पृष्ठ ६२ से 'हरिराय जी कृत भावना' में 'उत्सव-भावना' नामक ग्रन्थ प्रारम्भ हुआ है। इसके अन्त में 'इति उत्सव-भावना श्री हरिराय जी कृत सम्पूर्ण' लिखा हुआ है। ग्रन्थ पृष्ठ ६२ से प्रारम्भ होकर पृष्ठ ८६ पर समाप्त होता है।

इस ग्रन्थ की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ भी देखने में आई हैं।[1] हस्तलिखित प्रतियों में स्पष्ट रूप से गोस्वामी हरिराय जी का रचयिता के रूप में उल्लेख हुआ है। इस ग्रन्थ की प्राचीनतम प्रति संवत् १८४० की प्राप्त हुई है, जिसमें गोस्वामी हरिराय जी का रचयिता के रूप में उल्लेख भी हुआ है।[2] श्री प्रभुदयाल मीतल,[3] मिश्रबन्धु,[4] नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट[5] आदि में भी यह ग्रन्थ गोस्वामी हरिराय जी कृत माना गया है। मीतल जी तथा मिश्रबन्धुओं ने ग्रन्थ का उल्लेख मात्र ही किया है, जबकि खोज रिपोर्ट में ग्रन्थ का विवरण भी प्रस्तुत किया गया है।

---

(१) निजी पुस्तकालय, नाथद्वारा - बंध सं० ४६ पुस्तक सं० ४ ।
- सरस्वती भंडार, कांकरौली, - बंध सं० ६६ पुस्तक सं० १४ ।

(२) '"इति श्री' उत्सव-भावना' श्री हरिराय जी कृत सम्पूर्ण ।। शुभमस्तु कल्याणमस्तु । श्रीकृष्ण प्रशन्नोस्तु । संवत् १८४० मिति चैत्र सुदी १ काश्यांमध्ये" । -- निजी पुस्तकालय नाथद्वारा, बंध ४६ पुस्तक- ६

(३) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, (प्रकाशित)- पृष्ठ- १७

(४) मिश्रबन्धु विनोद- (भाग-१) नाम सं० १०६ पृष्ठ-३४२

(५) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (भाग-२) पृष्ठ-६२६

गोस्वामी हरिराय जी के इस प्रकार के ग्रन्थ दो रूपों में प्राप्त होते हैं, प्रथम `सेवा-प्रकार` तथा द्वितीय `सेवा-भावना` । यह ग्रन्थ सेवा-भावना से सम्बन्धित है । इसमें वर्षोत्सव के प्रत्येक विषय की भावनाएँ समझाई गई हैं । इस ग्रन्थ में व्रजभाषा का परिष्कृत रूप प्रयुक्त हुआ है तथा शैली विवेचनात्मक है । कुछ अंश द्रष्टव्य हैं :-

" और केसरी साड़ी स्याम कंचुकी को अभिप्राय यह जो केसरी साड़ी सो तो आप ही को अंग को वर्ण । और स्याम कंचुकी जो श्री ठाकुर जी को वर्ण । या ते यह जान्यो पड़त है सो ए दोऊ स्वरूप एक क्षण न्यारे नहीं । जन्म समय गूढ़ रीति सों प्राकट्य एक ठो है । ताहां केसरी साड़ी रूप सो तो प्रसिद्ध । और स्याम चोली रूप श्री स्वामिनी जी के हृदय स्थायी श्री ठाकुर जी । सो तो गुप्त रीति सों विचारिये" १

ग्रन्थ में सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का भावात्मक वर्णन किया गया है । वर्ष के सभी प्रमुख उत्सवों के भाव समान रूप से प्रस्तुत किये गये हैं ।

२- डोल उत्सव की भावना

यह ग्रन्थ वस्तुत: वर्षोत्सव ग्रन्थ का ही एक अंश है । वर्षोत्सव की प्राय: अधिकांश प्रतियों में यह ग्रन्थ समाविष्ट है । अन्य उत्सवों की अपेक्षा इस उत्सव का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है । इसी कारण इस ग्रन्थ की पृथक् प्रतिलिपियाँ भी प्राप्त होती हैं ।२ `वसंत होरी की-

---

(१) निजी पुस्तकालय,नाथद्वारा -- बंध ४६ पुस्तक-४ पत्रा- ८

(२) लाला भगवान दास जी (नाथद्वारा वाले) का संग्रह-`गोकुलनाथ जी कृत `रहस्य-भावना` के अन्तर्गत - पत्रा- ९६ से १०४ तक ।

भावना' नामक प्रकाशित ग्रन्थ में भी यह सन्निहित है ।१ इसका प्रकाशित रूप अन्यत्र पृथक् रूप से प्राप्त नहीं होता । ग्रन्थ प्रामाणिक है । हस्त-लिखित प्रतियों में रचयिता के रूप में गो० हरिराय जी का उल्लेख मिलता है ।२ नागरी प्रचारिणी सभा की 'खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों' के विवरण में भाव-भावना, गोकुल निवासी हरिराय कृत ग्रन्थ में 'डोल उत्सव की भावना' की भी चर्चा की गई है । ३

ग्रन्थ में 'डोल-उत्सव' नामक उत्सव के वर्णन में गिरिराज के आस-पास की प्रकृति का मनोरम चित्र प्रस्तुत किया गया है । भावात्मक कथनों का बाहुल्य है । भाषा परिष्कृत ब्रजभाषा है ।

३- <u>द्वादस निकुंज की भावना</u>

इस ग्रन्थ का रचयिता गो० हरिरायजी को माना जाता है, किन्तु किसी भी हस्त-लिखित प्रति में ग्रन्थ-कर्त्ता के रूप में गोस्वामी हरिराय जी का उल्लेख नहीं मिलता । इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं ।४ श्री प्रभुदयाल मीतल ने अपने ग्रन्थ में इसका उल्लेख किया है ।५ मिश्रबन्धुओं ने

---

(१) 'वसंत होरी की भावना' सम्पादक निरंजन देव शर्मा, मथुरा - प्रका० संवत् २०२५, पृष्ठ- ११७ से १३४ तक ।

(२) 'इति श्री हरिराय जी कृत डोल उत्सव की भावना सम्पूर्णम्' - -- सरस्वती भंडार, कांकरौली- बंध ६८, पु० ४, पत्रा- ६७

(३) पन्द्रहवाँ त्रै-वार्षिक विवरण सन् १६३२ से -३५ ई० पृष्ठ- १६६

(४) सरस्वती भंडार, कांकरौली - बंध सं० ६४, पुस्तक सं० ३
लाला भगवान् दास जी (नाथद्वारा वाले) के निजी संग्रह में भी ।

(५) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, (प्रकाशित) पृष्ठ- १७

'आचार्य महाप्रभून की द्वादस वार्ता' नामक एक ग्रन्थ का उल्लेख किया है[1]; किन्तु इस नाम को उक्त ग्रन्थ के नाम से नहीं जोड़ा जासकता। इसके अतिरिक्त महाप्रभु जी की द्वादस वार्ता नाम से कोई अन्य ग्रन्थ देखने में नहीं आता।

ग्रन्थ में सम्प्रदाय के व्यवहृत वातावरण का तथा सिद्धान्तों का वर्णन है। कृष्णदास अधिकारी और गुसाईं जी के प्रसंग से वर्णन प्रारम्भ हुआ है। आचार्य महाप्रभु जी के सम्बन्ध में भी कुछ प्रभावक विचार प्रस्तुत किए गए हैं। सृष्टि संबंधी दार्शनिक विचार दिए गए हैं। इसी 'गुसाईं जी और दामोदर दास जी का संवाद' भी कहा गया है। ग्रन्थ संदिग्ध है।

४- द्विदलात्मक स्वरूप विचार

यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हैं।[2] संवत् १८२६ की लिखी हुई इसकी प्राचीनतम प्रति प्राप्त हुई है, किन्तु उसमें रचयिता का कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता, तथापि अन्यान्य हस्तलिखित प्रतियों में गोस्वामी हरिराय जी का उल्लेख किया गया है।[3] एक हस्तलिखित प्रति का विवरण द्रष्टव्य है :-

---

(१) मिश्रबन्धु विनोद- (भाग-१), नाम १०६, पृष्ठ-३४२

(२) सरस्वती भंडार, कांकरोली, बंध संख्या-१००, पुस्तक सं० १५
-वही, -- बंध संख्या-१०७, पुस्तक सं० १५
-गो० रतनलाल जी(वृन्दावन वाले) से प्राप्त 'संग्रह ग्रन्थ' के प्रारम्भिक पृष्ठों से।

(३) 'इति श्री हरिराय जी विरचितम् द्विदलात्मक को विचार समाप्तम्'।
- गो० रतनलाल जी की प्रति से ---।

द्विदलात्मक स्वरूप विचार । गो० हरिराय जी कृत, संग्रह ग्रन्थ में पत्रा ३१ से प्रारम्भ, कुल ८ पृष्ठों पर लिपिबद्ध, आकार ६।।" + ६।", १३ पंक्तियाँ प्रति पृष्ठ, लिपिकाल संवत् १६१०, कागज देशी, लिपि पठनीय, व्रजभाषा ।

प्रारम्भ:- "कोटि कंदर्प लावण्य साक्षात्कार रसात्मक स्वरूपा आनंद मात्रकर पाद मुखोदरादि ऐसे जो पूरन पुरुषोत्तम जो प्रथम रसरूप आप ही हते, और श्री स्वामिनी जी के संग अन्तर लीला को अनुभव करते परि बाहर प्रगट न हते । सो एक समय वो पुरुषोत्तम के स्वरूप ने अपनो श्री मुख दरपन में देख्यो सो कोई एक अद्भुद् स्वरूप गर्वित नायक को सो देखि अत्यन्त अनिवर्तनीय लावण्यता और शोभा युक्त देखिकें अपने स्वरूप पैं आप मोहित होइकें अपने हृदय में ते भाश्य अपने मुख द्वारा प्रगट कियो ।"

अन्तिम-अंश:- "लीला मध्य पाती सामग्री दासत्व रूप है । या हीं तें तादृशी वैष्णव कों भगवद् रूप कहत हैं । इति श्री हरिराय जी विरचितं द्विदलात्मक स्वरूप विचार विवर्ण सम्पूर्ण ।"[1]

श्री प्रभुदयाल जी मीतल,[2] श्री द्वारकादास परिख[3] तथा मिश्रबन्धुओं[4] ने इस ग्रन्थ का

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध १०७, पुस्तक- १५ ।

(२) गो० हरिराय जी का पदसाहित्य(प्रकाशित) पृष्ठ- १७ ।

(३) महाप्रभु हरिराय जी नूं जीवन-चरित्र(गुजराती) पृष्ठ-११५ ।

(४) मिश्रबन्धु विनोद (भाग-१), नाम १०६, पृष्ठ-३४२ ।

उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ का पूर्ण विवरण अन्यत्र नहीं मिलता।

इस ग्रन्थ की भाषा संस्कृत - गर्भित है। यथा-- 'यह नून-भाव सर्वथैव संभवै नाहीं।' लेखक का अध्ययन-गाम्भीर्य स्थान-स्थान पर व्यक्त हुआ है, ' जो कीट - भ्रमर न्यायेन, अरु श्याम कटाक्ष के अखण्ड ध्यान में आपहू तद्रूपा स्याम स्वरूप होइ गए। अतएव श्री महाप्रभु जी नै प्रभु के आगे नमन समैं विज्ञप्ति कीनी है। ---- यह विचार करनौ।'

ग्रन्थ में भगवान कृष्ण और स्वामिनी जी (राधा) के स्वरूप की शास्त्र सम्मत व्याख्या की गई है। लेखक ने दार्शनिक विवेचना से स्वमार्गीय सिद्धान्तों को पुष्ट किया है।

५- नवग्रह-आकार

इसकी एक मात्र प्रामाणिक प्रतिलिपि प्राप्त हुई है।१ आकार में यह ग्रन्थ छोटा है, विवरण इस प्रकार है :-

'नवग्रह आकार। गोस्वामी हरिराय जी कृत। संग्रह ग्रन्थ में पत्रा-१७ से प्रारम्भ होकर पत्रा २२ तक, कुल पृष्ठ- २२। आकार ५।।"+ ६।।।" ।१४ पंक्ति प्रति पृष्ठ। कागज देसी-जीर्ण। लेखन अशुद्ध, किन्तु पठनीय। ब्रजभाषा।

प्रारम्भ:- 'श्रीकृष्णायनम:। अथ नव ग्रह लिख्यते। अथ पुष्टि मार्गीय वैष्णव को नव-ग्रह पूजन करिवे कौ प्रकार भगवदीयन कौ लौकिकन विग्रह कहा करि सके। भगवदीय तौ श्री ठाकुर जी अंस हैं। श्री महाप्रभु जी जाके हर दसा में विराजत हौंय

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध सं० ६१, पुस्तक-२।

तिनकों अन्य सम्बन्ध कछू नाय होय सो अपरस काहू वस्तु
की न राखें ।

अन्त में गोस्वामी हीरराय जी का उल्लेख इस प्रकार हुआ है; इती श्री हरिराय जी त्रत्य नवग्रहे के प्रकार सामपुरण । श्री रस्तु श्री श्री ।१ अन्य विद्वानों ने भी इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है ।२

६- नित्यभावना

इस ग्रन्थ की एक प्रकाशित प्रति भी प्राप्त हुई है ।३ किन्तु इसमें विषय सामग्री नित्य-भावना से मेल नहीं खाती । प्रकाशित प्रति में अन्त में लिखा है 'इति श्री हरिराय जी कृत नित्य सेवा भाव विज्ञप्ति संक्षेप करी लिख्यो है ।' इससे आभाव होता है कि गोस्वामी हरिराय जी द्वारा लिखित नित्य सेवा विज्ञप्ति संस्कृत ग्रन्थ का संक्षिप्त व्याख्यानुरूप ही है, यह ग्रन्थ किसी अन्य व्यक्ति द्वारा लिखा गया है ।

इस ग्रन्थ की कोई प्रमाणित प्रति प्राप्त नहीं हुई, जो प्रतियां प्राप्त भी हुई हैं उनमें लेखक का उल्लेख नहीं किया गया ।४

श्री प्रभुदयाल मीतल ने इसका 'नित्य-लीला की भावना'

---

(१) सरस्वती भण्डार, कांकरोली, बंध सं० ६१ पुस्तक सं०- २
(२) -- गो० हरिराय जी का पद साहित्य- सम्पा० श्री प्रभुदयाल मीतल (प्रकाशित) पृ० १७
-- श्री महाप्रभु जी हरिराय जी नूं जीवन-चरित्र- द्वारकादास परिख पृ० ११५
-- हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण-(भाग-२),, ६२६
(३) वल्लभ-विलास (भाग-३।४), सम्पा० बाबू ब्रजभूषनदास दीसावाल, (प्रकाशन) बनारस, सं० १६४५ पृ० ४,से २८
(४) सरस्वती भंडार, कांकरोली, बंध सं६ ६३, पुस्तक सं० ५ ।

नामसे उल्लेख किया है।१ नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में भी 'भाव-भावना' नामक ग्रन्थ के प्रसंग में 'नित्यसेवा-भावना' की भी चर्चा की गई है, किन्तु पूर्ण विवरण नहीं दिया गया। खोजकार ने इस ग्रन्थ का रचयिता गो० हरिराय जी को माना है।२

नित्य-भावना के अन्तर्गत राधा-कृष्ण अर्थात् स्वामिनी जी तथा श्री जी के युगल स्वरूप का वर्णन किया गया है। इन स्वरूप की नित्य लीलाओं की भावमयी कल्पनाएँ की गई हैं। भाषा परिष्कृत है।

७- भावना अथवा भाव-भावना

इस नाम से गोस्वामी हरिराय जी का कोई पृथक् ग्रन्थ नहीं मिलता। लिपिकारों ने उनके कुछ ग्रन्थों का एक ही ग्रन्थ में सम्पादन करके इस ग्रन्थ का नाम 'भावना' या 'भाव-भावना' रख दिया है। इस प्रकार के कुछ संग्रह ग्रन्थ दृष्टिगत हुए हैं, जिनमें 'स्वामिनी जी के चरण चिन्ह की भावना', वस्त्र आभरण को भाव, सामग्री करन की विधि, जप प्रकार आदि ग्रन्थों को सन्निहित किया गया है।३ नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में भी इसी प्रकार के संग्रह ग्रन्थ का विवरण दिया गया है।४

यह ग्रन्थ स्वतंत्र ग्रन्थ न होकर संग्रह ग्रन्थ का एक अंश है। अतः इसका पृथक् विवरण देना आवश्यक नहीं है।

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य (प्रकाशित) पृष्ठ- १७

(२) हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का पन्द्रहवाँ विवरण- सन् १९३२-३४ ई० पृ०१९७

(३) सरस्वती भंडार, कांकरोली, बंध सं० १५९, पुस्तक सं० ५ ।

(४) हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का पन्द्रहवाँ त्रै-वार्षिक विवरण- पृ०१९७

८- भावना - त्रय

यह ग्रन्थ 'त्रिविध-भावना' नाम से भी प्रसिद्ध है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति देखने में आई है।१ ग्रन्थ में कहीं भी गो० हरिराय जी का उल्लेख नहीं है। ग्रन्थ के अन्त में लिपिकार ने दो दोहे दिये हैं, जिनमें लेखक की काव्य-व्यवहृत-छाप 'रसिक' सन्निहित है। प्राप्त हस्तलिखित प्रति का विवरण इस प्रकार है :-

त्रिविध भावना। कुल पत्रा ५२ (पृष्ठ- १०४), आकार ४।।"+ ८"। १७ पंक्ति प्रतिपृष्ठ। लिपि प्राचीन किन्तु पठनीय। यह एक वृहद् ग्रन्थ है, इसमें लेखक का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

प्रारम्भ :- 'अथ त्रिविध भावना लिख्यते। श्री वल्लभ पद कमल वर कोमल कर मकरंद। जो से-व्है यह सबै, ब्रज मंडल आनन्द। श्री विट्ठलवर नाथ के चरण कमल की रेनु, ठेल है ब्रजनाथ की अधरामृत रस बेनु। अथ श्री मद्वल्लभाचार्य प्रकटित शुद्ध पुष्टि मार्ग की भावना प्रकटित करियतु हैं। तहाँ भावना तीन प्रकार की एक रूप की भावना। दूसरी लीला भावना। तामें स्वरूप भावना की स्वरूप विधि तो। प्रथम दसाविषयक। प्रभु के स्वरूप को प्रत्यक्ष नाहीं। केवल प्रभु के स्वरूप को श्रवण मात्र होत है।'

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरोली, बंध संख्या- ६३, पुस्तक सं० ८।

अन्त में:-

'त्रिविध भाव की भावना,
त्रिविध भाव फल रूप,
'रसिक' त्रिभंगी लाल के,
सुललित भाव - अनूप ।।

इति श्री आचार्य जी कृता त्रिविध भावना सम्पूर्णम्' ।।१

वल्लभ सम्प्रदाय में 'आचार्य जी' का संबोधन सामान्यत: महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के लिये ही प्रयुक्त होता रहा है. किन्तु ब्रजभाषा का यह ग्रन्थ वल्लभाचार्य रचयित नहीं हो सकता । एक मात्र 'रसिक' शब्द को गोस्वामी हरिराय जी की छाप' स्वीकार करके ही इस ग्रन्थ को गोस्वामी हरिराय जी कृत नहीं कहा जासकता । अत: प्रमाणाभाव में ग्रन्थ को असंदिग्ध नहीं कहा जा सकता । श्री द्वारकादास परिख एवं श्री प्रभुदयाल मीतल ने अपने ग्रन्थों में दी गई गोस्वामी हरिराय जी के ग्रन्थों की सूची में भावना-त्रय नामक ग्रन्थ का भी उल्लेख किया है । २

जैसा कि प्रारम्भिक अंश से ही स्पष्ट है, ग्रन्थ में भावनाओं का वर्गीकृत रूप प्रस्तुत किया गया है ।

९- श्री यमुना जी की भावना

यह ग्रन्थ आकार में बहुत छोटा है । इसे ग्रन्थ की अपेक्षा लेख कहना ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है । इस लघु ग्रन्थ की एक ही

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध संख्या- ६३ पुस्तक सं० ८ ।

(२) महाप्रभु हरिराय जी नूं जीवन-चरित्र - (गुजराती) पृष्ठ- ११५

-- गो० हरिराय जी का पत्र साहित्य (प्रकाशित) पृष्ठ १७

प्रति देखने में आई है। अन्त में 'श्री यमुनाजी की भावना श्री हरिराय जी कृत सम्पूर्ण समाप्त'।१ लिखा हुआ है। यह ग्रन्थ एक संग्रह ग्रन्थ में पिछले पृष्ठों पर लिपिबद्ध है। स्व० द्वारकादास परिख ने 'यमुना जीना धौल' नाम से इस ग्रन्थ का समर्थन किया है।२ खोज रिपोर्ट में यमुना जी के नाम शीर्षक-ग्रन्थ का उल्लेख हुआ है।३ मिश्रबन्धु विनोद में भी 'यमुनाजी के नाम' ही नाम दिया गया है।४ वस्तुत: यह सभी नाम एक ही ग्रन्थ से संबंधित हैं।

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, इसमें यमुना जी के सम्बन्ध में लेखक ने अपनी पावन-भावनाएँ व्यक्त की गई हैं।

१०- <u>बसंत होरी की भावना</u>

यह ग्रन्थ प्रकाशित है।५ इस ग्रन्थ की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ भी दृष्टिगत हुई हैं।६ यह गोस्वामी हरिराय जी की प्रामाणिक रचना है। सभी हस्तलिखित प्रतियों में रचयिता के रूप में गोस्वामी हरिराय जी का उल्लेख हुआ है।

---

(१) लाला भगवान् दास जी (नाथद्वारा वाले) के निजी संग्रह में।
(२) महाप्रभु हरिराय जी नुं जीवन-चरित्र-(गुजराती) पृष्ठ- ११६
(३) हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण (भाग-२) पृष्ठ- ६२६
(४) मिश्रबन्धु विनोद (भाग-१) नाम १०६, पृष्ठ- ३४२
(५) प्रकाशन- बजरंग पुस्तकालय गोवर्धन ग्रन्थ माला,(मथुरा) संवत्- २०२२
(६) -- सरस्वती भंडार, कांकरौली, (बंध-संख्या- १०६) पुस्तक सं० ३
-- हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का पन्द्रहवां त्रै-वार्षिक विवरण-१६६
-- लाला भगवान् दास जी के निजी संग्रह से (नाथद्वारा वाले)।
-- सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध संख्या- ६८, पुस्तक-४, पत्रा- ५४।

अन्य भावना ग्रन्थों की भाँति गोस्वामी हरिराय जी ने इस ग्रन्थ में भी भावात्मक कल्पनाओं के माध्यम से साम्यभावों की सुन्दर योजना की है।

श्री द्वारकादास परिख ने होरी भावना नाम से इसका उल्लेख किया है।१ श्री प्रभुदयाल मीतल ने इसका उल्लेख `बसंत होरी की भावना` नाम से ही किया है।२ खोज रिपोर्ट में भी इसका समर्थन किया गया है।३

ग्रन्थ में बसंत एवं होरी त्योहार का सांस्कृतिक वर्णन किया गया है। स्थान-स्थान पर वल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की भी विवेचना की गई है। ग्रन्थ आकार में बड़ा है।

११- वर्षोत्सव की भावना

यह ग्रन्थ सर्वथा अप्रकाशित है। इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं।४

विगत पृष्ठों पर `उत्सव-भावना` नामक ग्रन्थ का विवरण दिया जा चुका है। नाम साम्य होने पर भी यह ग्रन्थ `उत्सव-भावना` से सर्वथा भिन्न है। `उत्सव-भावना` में समग्र उत्सव की लीलाओं की भावात्मक अभिव्यंजना की गई है, जबकि `वर्षोत्सव की भावना` में वर्ष में होने वाले सभी उत्सवों की सेवा का प्रकार तथा उन सेवाओं के

---

(१) महाप्रभु हरिराय जी नूं जीवन-चरित्र, (गुजराती), पृष्ठ- ११६
(२) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, (प्रकाशित), पृष्ठ- १७
(३) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, (भाग-२), पृष्ठ- ६२६
(४) -- सरस्वती भण्डार, (कांकरोली) बंध सं० ९८, पुस्तक सं० ४
-- निजी पुस्तकालय, (नाथद्वारा), बंध सं० ८१, पुस्तक सं० ४
-- हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का पन्द्रहवां त्रै-वार्षिक विवरण पृष्ठ- १६५

भावों को भी व्यक्त किया गया है। 'वर्षोत्सव की भावना' उत्सव-भावना से बड़ा ग्रन्थ है। प्रत्येक उत्सव का इस ग्रन्थ में विस्तार से वर्णन किया गया है।

इस ग्रन्थ की प्राय: सभी प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों में रचयिता के रूप में गोस्वामी हरिराय जी का उल्लेख मिलता है। एक प्रति का परिचय निम्नलिखित रूप में द्रष्टव्य है :-

वर्षोत्सव की भावना। गोस्वामी हरिराय जी कृत। कुल पत्रा १२४ (पृष्ठ- २४८)। कागज देसी- प्राचीन। लेखन सुस्पष्ट। ग्रन्थ आकार में बड़ा है।

प्रारम्भ:- 'अब वरस दिना के उत्सव को भाव लिख्यते। भाद्रपदी ।।७।। को पाग पिछौरा कसूमल धरिये। याते जो अनुराग सूचक है। जन्म के पहले ही तथा सप्तमी को शृंगार अष्टमी के मंगला ताईं रहे। सो कसूमल सुभ को सूचक है। सगरे ब्रज भक्तन कों अनुराग रूप राज-भोग में कछू सामिग्री विशेष काहे ते श्री यसोदा जी की कूँख में प्रभु हैं।'

उत्सव के भाव तथा सेवा-प्रकार का पूर्ण विधान वर्णन इसमें देखा जासकता है। बीच-बीच में अवसर के पद भी दिए गए हैं। गो० हरिराय जी ने उदाहरण स्वरूप अन्य कवियों के पद अधिक दिए हैं। उनके स्वयं के पद भी यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं। विजय-दशमी, वरषा, रथयात्रा आदि के प्रसंग में लेखक ने अपने पद उद्धृत किये हैं।

इस ग्रन्थ में जन्मअष्टमी को भाव। मेष बारवे को भाव

पालना की सामग्री । राधा-अष्टमी को भाव । दान एकादसी । बामन द्वादसी । साँझी की भावना । विजेदसमी । सरद पूनौ । धन तेरस , रूप चौदस । दीपावली । हठरी । चौपड़ । अन्नकूट । गोवर्धन-पूजा । गोपाष्टमी । अक्षय नवमीं । प्रबोधिनी । बसंत । होरी । डोल । यमुना जी । द्वितीया पाट । राम नवमी । आचार्य जी को उत्सव अखै तीज । नृसिंग चतुर्दसी । गंगा जी को भाव । गंगा यमुना को समागम । यमुना वैभव । स्नान - जात्रा । रथ-जात्रा । बरसारितु हिंडोरा । राखी । स्वरूप की भावना । जप प्रकार । स्वामिनी जी के चरण चिन्ह की भावना । सामग्री करन की विधि आदि विविध प्रसंगों पर भाव - विचार प्रस्तुत किए गए हैं ।

अन्तिम अंश :- `इति श्री गोकुल नाथ कृत तथा श्री हरिराय जी कृत भाव-भावना सम्पूर्णम् । यह पुस्तक लिखी लिखिया पनालाल सनाढ्य ब्राह्मण वैष्णव ने ठिकानौ श्री गोकुल में अनाज की मंडी में । जो कोई बाँचे तिनको हमारी जै श्रीकृष्ण बंचना जी । मिती माह वदी ।६। संवत् १६५६, श्री वल्लभ कुल कों साष्टांग दंडवत्`।१

ग्रन्थ प्रामाणिक है । उपर्युक्त पुष्पिका में गोकुल नाथ जी का भी उल्लेख हुआ है, उसका प्रमुख कारण यह है कि उक्त संग्रह ग्रन्थ में प्रारम्भ के २४ पत्राओं तक गोकुल नाथ जी कृत `नित्य-सेवा श्रृंगार की भावना` नामक ग्रन्थ दिया गया है । इसी कारण अन्त में पुष्पिका में लिपिकार ने गोकुल नाथ जी का नाम दे दिया है । संग्रह ग्रन्थ `भावना` तथा भाव-भावना दोनों नामों से प्राप्त होता है ।

---

(१) सरस्वती भंडार-- कांकरौली - बंध सं० ६८, पुस्तक सं० ४ ।

खोज-रिपोर्ट में भी इस ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है।१ मिश्रवन्धुओं ने गोस्वामी हरिराय जी के ग्रन्थों की सूची में यह नाम दिया है ।२

१२- श्री स्वामिनी जी के चरण चिन्ह की भावना

यह ग्रन्थ प्रकाशित है।३ प्रकाशित संस्करण में गो० गोकुलनाथ जी का ग्रन्थकार के रूप में उल्लेख हुआ है, किन्तु यह तथ्य भ्रामक है। इसका कारण यह है कि यह ग्रन्थ एक संग्रह ग्रन्थ में भी समाविष्ट है। हम पिछले पृष्ठ पर कह आए हैं कि यदि गोस्वामी गोकुल नाथ जी का एक ग्रन्थ गोस्वामी हरिराय जी के अन्य ग्रन्थों के साथ सम्पादित हो जाता है तो लिपिकार अन्त में `इति श्री गोकुल नाथ जी तथा श्री हरिराय जी कृत` लिख देता है। `स्वामिनी जी के चरण चिन्ह की भावना` भी भाव-भावना नामक ग्रन्थ में सन्निहित है। प्रकाशित प्रति के सम्पादक ने उक्त ग्रन्थ सम्भवत: उसी प्रति से लिया होगा। गो० गोकुलनाथ जी का प्रथम उल्लेख होने के कारण सम्पादक ने भी गो० गोकुलनाथ जी को ही ग्रन्थ का रचयिता स्वीकार कर लिया होगा। ग्रन्थ एक वैष्णव भक्त द्वारा सम्पादित है, जिसका नाम प्रकाशित प्रति में नहीं दिया गया और वह प्रकाशित प्रति भी बिना मूल्य वैष्णवों में वितरित करने के उद्देश्य से ही प्रकाशित कराई गई थी। अत: स्पष्ट

---

(१) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (भाग-२) पृष्ठ- ६२६

(२) मिश्रवन्धु विनोद (भाग-१), नाम १०६ , पृष्ठ- ३४२

(३) `चरण चिन्ह की भावना` सम्पादक एक वैष्णव प्रकाशन-जवलपुर ।

है कि सम्पादक न तो शोध-कर्त्ता था और न ही साहित्य-मर्मज्ञ ।

वस्तुत: यह ग्रन्थ गोस्वामी हरिराय जी कृत ही है । नागरी प्रचारिणी सभा के खोज कर्त्ताओं ने भी इसे हरिराय जी कृत माना है ।१ इसके अनन्तर अन्य हस्तलिखित प्रतियों में भी गोस्वामी हरिराय जी का नाम मिलता है ।

प्रकाशित संस्करण के प्रारम्भिक पृष्ठों पर नगधर कृत 'चरन चिन्ह वर्णन' नामक एक पद्य दिया गया है, इसमें उन्नीस दोहे हैं, अन्तमें कवि लिखता है :-

चरण चिन्ह ग्रन्थहि रच्यो, भाव सहित हरिराय,
ताकी भाषा करि कही, नगधर सुमति बनाय ।२

इससे आभास होता है कि गोस्वामी हरिराय जी ने ही 'चरण चिन्ह की भावना' का सृजन किया होगा । नगधर भट्ट ने इसका पद्यानुवाद किया है । गोस्वामी हरिराय जी ने संस्कृत भाषा में 'भगवच्चरण चिन्ह वर्णन' नामक ग्रन्थ लिखा है;[3] किन्तु स्वामिनी जी के चरण चिन्ह की भावना से सम्बन्धित कोई ग्रन्थ संस्कृत में नहीं लिखा, इससे ज्ञात होता है कि नगधर भट्ट ने गोस्वामी हरिराय जी की ब्रजभाषा रचना का ही पद्यानुवाद किया है ।

---

(१) हिन्दी ग्रन्थों का पन्द्रहवां त्रै-वार्षिक विवरण- पृष्ठ-१६७
(२) चरण-चिन्ह की भावना, सम्पादक एक वैष्णव,(प्रकाशन)-जवलपुर,-८
(३) गो० हरिराय जी का पदसाहित्य,(प्रकाशित), - पृष्ठ- १२

'चरण-चिन्ह की भावना' नामक एक अन्य ग्रन्थ काका-वल्लभ कृत भी प्राप्त होता है। यह महाशय गोस्वामी हरिराय जी के अनन्य भक्त थे।१ इन्होंने अपने इसी ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर गो० हरिराय जी का उल्लेख किया है, --

'पद १ । मूल । ख्याल । षोडसचिन्ह वखानु चरन कमल नर अंतर आनों । अन्यनपासन आसन मानो । श्री हरिराय प्रताप यह जानो । श्री हरिराय बुधिबल जब सरन मोकूं दियो । ब्रह्मवानी कही मुखते ग्रन्थ एक अद्भुत कियो ।२

'काका वल्लभ'कृत इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति में भी लिपिकार ने ग्रन्थकार के स्थान पर गोस्वामी हरिराय जी का ही नाम दिया है।३ किन्तु यह ग्रन्थ हरिराय जी के ग्रन्थ से सर्वथा भिन्न है और इसके रचयिता वल्लभ दास जी ही हैं।४ इस ग्रन्थ से इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि वल्लभ दास जी ने गोस्वामी हरिराय जी रचित चरण चिन्ह की भावना के आधार पर ही यह ग्रन्थ रचा होगा। एक हस्तलिखित प्रति में प्रारम्भ इस प्रकार है :-

'अब श्री हरिराय जी कृत भाव-भावना लिख्यते। सो पुष्टि-मार्ग में जितनी क्रियायें हैं जो सब स्वामिनी जी के भाव ते हैं।

---

(१) देखिये-- इसी प्रबन्ध का द्वितीय अध्याय।
(२) सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध संख्या- २३ पुस्तक सं० ७ ।
(३) 'इति श्री हरिराय जी कृत चरण चिन्ह षोडस संपुर्ण,' वही।
(४) 'दास वल्लभ' भक्तजन कों चिन्ह षोडस भावहि,' वही, बंध-८ ।

ताते मंगला चरण गावैं। प्रथम श्री स्वामिनी जी के भाव ते चरण कमल कौं नमस्कार है। तिनकी उपमा देवे कूं मन दसौं दिसा दौर्‍यौ परन्तु कहूं पायौ नहीं। पाछे श्री स्वामिनी जी के चरण कमल कौ आश्रय मैं कियौ।'१

नागरी प्रचारिणी सभा के खोज-कर्त्ताओं ने गोस्वामी हरिराय जी को इस ग्रन्थ का टीकाकार माना है। उनके अनुसार गोस्वामी गोकुलनाथ जी ने यह ग्रन्थ संस्कृत में लिखा है, गोस्वामी हरिराय जी ने बृजभाषा में इसकी टीकानुरूप व्याख्या की है। २ श्री द्वारकादास परिख तथा श्री प्रभुदयाल मीतल ने भी इस ग्रन्थ का कर्त्ता गोस्वामी हरिराय जी को माना है।३

गो० हरिराय जी ने इस ग्रन्थ में राधा के चरणों में अंकित चिन्हों के विभिन्न काल्पनिक विचार प्रस्तुत किए हैं, इस संदर्भ में उन्होंने अनेक उपमाओं का भी सुन्दर निरूपण किया है। भाषा साहित्यिक है। सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का भी विवेचन किया गया है। ग्रन्थ सर्वथा प्रामाणिक है।

१३- <u>सात बालकन की भावना</u>

इस ग्रन्थ की दो हस्तलिखित प्रतियां कांकरौली से प्राप्त हुई

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरौली बंध सं० १५६, पुस्तक सं० ५।

(२)'लाला जी के चरण चिन्हों की भावना मूल संस्कृत में गोकुलनाथ जी की मिली है, हरिराय जी ने इसकी भाषा की है'।
-- हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का पन्द्रहवां त्रै-वार्षिक विवरण, -- पृष्ठ- १६७

(३) -- महाप्रभु हरिराय जी नुं जीवन-चरित्र,(गुजराती), पृष्ठ- ११६
-- गो० हरिराय जी का पद साहित्य, (प्रकाशित), पृष्ठ- १७।

हैं ।१ प्रतियों में रचयिता के रूप में किसी का उल्लेख नहीं मिलता । इन दोनों प्रतियों में से एक प्रति अपूर्ण है और दूसरी पूर्ण तथा व्यवस्थित । व्यवस्थित प्रति में गुसाईं जी के सात पुत्रों का अतिशयोक्ति पूर्ण यश-वर्णन है । ग्रन्थ में एक स्थान पर लिखा हुआ है कि 'चाचा गोपीनाथ जी आपु कथा बाँचते । श्री घनश्याम जी व्याख्यान करते'।२ गोपीनाथ जी गुसाईं जी के ज्येष्ठ भ्राता थे । इस प्रकार 'चाचा गोपीनाथ जी' का सम्बोधन उनके भतीजे गो० गोकुल नाथ जी ही प्रयुक्त करते होंगे यह सम्भावना अधिक है । पितामह भ्राता के लिए भी 'चाचा' सम्बोधन ब्रज बोली में प्रयुक्त होता है, कालान्तर में नई पीढ़ी के वंशज भी उसी व्यवहृत सम्बोधन को प्रयुक्त करने लगते हैं । इससे सम्भावना यह है कि गो० हरिराय जी ने अपने पूर्वज आचार्य को प्रचलित सम्बोधन से ही सम्बोधित किया हो ।

यदि इस ग्रन्थ का रचयिता गो० गोकुलनाथ जी को मान भी लें तो एक स्थान पर प्रयुक्त इस वाक्यांश की संगति नहीं बैठ पाती :- 'अतएव श्री गोकुल नाथ जी कहते । दाबा जाने का सो कोऊ न जानें ।३

इस वाक्य से ध्वनित होता है कि यह रचना गोस्वामी गोकुलनाथ जी के पश्चात् की रचना है । 'चाचा गोपीनाथ जी', इस

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध सं० १००, पुस्तक सं० ६
-- वही, -- बंध सं० १०५, पुस्तक सं० १
(२) वही , पत्रा- ६६ पर ।
(३) वही ।

सम्बोधन से ज्ञात होता है, कि यह ग्रन्थ 'आचार्य मंडल' में से ही किसी ने लिखा होगा। क्योंकि गोस्वामी गोकुल नाथ जी के पश्चात् गोस्वामी हरिराय जी ही सम्प्रदाय में सर्वोत्कृष्ट विद्वान हुए हैं, अत: ये स्वाभाविक अनुमान है कि गोस्वामी हरिराय जी ने ही यह ग्रन्थ लिखा होगा। गोस्वामी हरिराय जी वार्ता साहित्य के प्रसिद्ध लेखक हैं, इन्होंने इस विषय में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, तथापि यह पूर्ण रूप से नहीं कहा जासकता कि गोस्वामी हरिराय जी ही इस ग्रन्थ के रचयिता थे, क्योंकि इस तथ्य की पुष्टि में कोई भी अन्य विश्वस्त प्रमाण नहीं मिल पा रहे।

श्री द्वारकादास परिख एवं श्री प्रभुदयाल मीतल ने इस ग्रन्थ का कर्त्ता गोस्वामी हरिराय जी को माना है।१ इन्होंने अपने ग्रन्थ की सूची में ये नाम दिए हैं, किन्तु इस प्रकार के नामों का इन्होंने कहीं भी परीक्षण नहीं किया है।

प्राप्त प्रति का विवरण इस प्रकार है:-

'सात बालकन की भावना। संग्रह ग्रन्थ में संपादित-पत्रा ७२ से प्रारम्भ (कुल पृष्ठ-१२) आकार ६।।" + ५" । २३ पंक्तियाँ प्रति पृष्ठ। लेखन प्राचीन है। पठनीय।२

कुछ अंश द्रष्टव्य हैं:-

---

(१) महाप्रभु हरिराय जी नूं जीवन-चरित्र, (गुजराती), पृष्ठ- ११६
-- गो० हरिराय जी का पद साहित्य, (प्रकाशित), पृष्ठ- १७

(२) सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध संख्या- १०५, पुस्तक संख्या- १
-- पत्रा ६७ से प्रारम्भ।

'श्री वल्लभ, श्री विट्ठल, श्री गिरधर यह मूल वस्तु है। इन समान और बालक कौ कहनौ परमापराध है। अग्नि तै दीपक प्रगट प्रकाश श्री गुसाइ जी तिनतें दीपक। प्रगट प्रकाशन रूप श्री गिरधर जी। पुष्टि मार्गीय लीला रसात्मक-ज्ञान-प्रकाशन रूप श्री गिरधर जी बड़े कहौं शास्त्र के वक्ता या ही तै भए। अतएव श्री गोकुलनाथ जी कहते। दादा जानैं सो कोऊ न जानैं' ।१

१४- सात स्वरूप की भावना

इस ग्रन्थ की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं ।२ इन प्रतिलिपियोँ में से किसी भी प्रति में ग्रन्थकार के रूप में गो० हरिराय जी का उल्लेख नहीं मिलता। किसी प्रति में गिरधर जी कृत लिखा है तो किसी में वल्लभाचार्य कृत। किसी-किसी प्रति में लेखक का नाम ही नहीं दिया गया।

यह ग्रन्थ 'भाव-भावना' नामक एक संग्रह ग्रन्थ में सम्पादित है। 'भाव-भावना' में सम्पादित सभी ग्रन्थ गोस्वामी हरिराय जी कृत हैं। इसके प्रारम्भ में, अथ श्री हरिराय जी कृत 'भाव-भावना' लिख्यते।' लिखा हुआ है ।३ इसी तरह की एक प्रति का विवरण नागरी प्रचारिणी सभा का खोज-रिपोर्ट में भी दिया गया है। ४ इससे यह सम्भावना होती

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध १०५, पुस्तक-१, पत्रा ६७ से

(२) निजी पुस्तकालय नाथद्वारा, बंध ४१, पुस्तक-१, ग्रन्थ गिरधर जी कृत है।
-- लाला भगवान् दास जी (नाथद्वारा वाले) की प्रति, संग्रह पृष्ठ- १३६
-- सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध-९८, पुस्तक-४ (पत्रा-१२० से)
-- वही। -- बंध-१२७ पुस्तक-२

(३) वही, -- बंध-१५६ पुस्तक-५

(४) हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का पन्द्रहवां त्रै-वार्षिक विवरण, पृ० १६७

है कि यह ग्रन्थ गोस्वामी हरिराय जी कृत हो सकता है। प्रमाणाभाव में यह रचना हरिराय जी कृत है यह कहना संदेह से परे नहीं है।

ग्रन्थ में वल्लभ सम्प्रदाय के सात प्रमुख देव विग्रहों की भावस्तुति प्रकट की गई है। इनमें नवनीत प्रिया, मथुरा नाथ, विट्ठलनाथ, गोकुलनाथ, गोकुल चन्द्रमा, मदनमोहन, की भावनाओं का वर्णन है।

द्वारकादास परिख तथा प्रभुदयाल जी मीतल द्वारा प्रदत्त सूची में भी इस ग्रन्थ का उल्लेख है।१ इन विद्वानों ने केवल नामोल्लेख ही किया है, अन्यत्र कहीं भी इस ग्रन्थ का विवरण नहीं मिलता है।

१५- सेवा भावना

इस नाम की दो हस्तलिखित प्रतियां कांकरोली से प्राप्त हुई हैं। इनमें वल्लभ-सम्प्रदाय के वैष्णवों हेतु 'नित्य-कृत्य' संबंधी उपदेश दिए गए हैं। इस नाम से एक और ग्रन्थ गो० गोकुलनाथ जी के नाम से भी प्राप्त होता है, किन्तु वह इस ग्रन्थ से पृथक है। इस ग्रन्थ की सभी प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों में से केवल एक प्रति में ही गो० हरिराय जी का रचयिता के रूप में उल्लेख मिलता है।२ अन्य प्रतियों में रचनाकार का उल्लेख नहीं किया गया।३ नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में भी गो० हरिराय जी को रचयिता के

---

(१) महाप्रभु श्री हरिराय जी नूं जीवन-चरित्र(गुजराती), पृष्ठ-११६
-- गो० हरिराय जी का पद साहित्य,(प्रकाशित), पृष्ठ- १७
(२) सरस्वती भंडार,कांकरोली बंध १०४ पुस्तक- ७
(३) वही, --- बंध १०५ पुस्तक- १

रूप में स्वीकार किया गया है ।[१] एक प्रति का विवरण दृष्टव्य है:-

सेवा-भावना । गोस्वामी हरिराय जी कृत । कुल पत्र ६ (पृष्ठ-१८) । आकार ५।।।"+ ६।।।"। १३ पंक्तियाँ प्रतिपृष्ठ । लिपि प्राचीन किन्तु पठनीय ।

प्रारम्भ:- 'प्रात: काल उठि भगवान्नाम लेकरि पाछे देह कृत्य कर जब परदेशादिकन में साक्षात् सेवा न होय तब केवल भावना करनी । व्रजभक्त अपने घर घर प्रति जागि गृह मंडन करि सर्वत्र दीप करि मंगल आर्ती के दीप हू सिद्ध करि भगवद् गुणगान करत उच्चस्वर सों सर्वाभरण भूषित होइ वियोगा-वस्था भूलि ठाकुर घर में भाव रीति सों विराजत हैं यह जान भगवदर्थ नवनीतादि सिद्धर्थ दधि मंथान करत हैं ।'

अन्त:- 'रात्रि लीला भावनीय नाँही ताते नाँही लिखत गोप आक्ति के अनुभाव करि गुण-गावत हैं । ज्यों दिवस में व्रजभक्त । दोहा । भई भावना रीति यह पूरण सब संक्षेप, जाके मन यह नित बसै । सु रहै जगत निर्लेप । श्री वल्लभ पद भावना, होइ कदाचित सिद्ध । साधन कौ बल

---

(१) हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों का पन्द्रहवाँ त्रै-वार्षिक विवरण --(नागरी प्रचारिणी सभा, काशी), पृष्ठ-१६७

कहू न हीं, महा अलौकिक रिद्ध । इति श्री
हरिरायाविरचिता सेवा-भावना सम्पूर्णम् ।१

ग्रन्थ अप्रकाशित है । वैष्णवों के लिए नित्य-सेवा-विधान का इसमें वर्णन किया गया है । जब सेव्य-स्वरूप पास न हों, तब परदेश में नित्य क्रियाओं के लिए निर्देश हैं । स्व० द्वारकादास परिख तथा श्री प्रभुदयाल मीतल ने भी इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है ।२ गो० हरिराय जी की एक संस्कृत रचना भी इसी नाम से प्राप्त होती है ।३

१६- श्रीनाथ जी की भावना

यह ग्रन्थ प्रकाशित है ।४ इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ भी उपलब्ध हुई हैं ।५ सभी प्राप्त प्रतियों में गोस्वामी हरिराय जी का रचयिता के रूप में उल्लेख किया गया है । गोस्वामी हरिराय जी ने इस ग्रन्थ में शंका समाधान की शैली को अपनाया है ।

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरौल, बंध सं० १०४, पुस्तक सं० ७ ।
(२) -- महाप्रभु श्री हरिराय जी नूं जीवन-चरित्र (गुजराती), पृष्ठ- ११६
-- गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य (प्रकाशित), पृष्ठ- १७
(३) सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध सं० १३६, पुस्तक सं० ११
(४) प्रकाशक- वैष्णव हरिगोविन्द दास, हरिदास, नाथद्वारा ।
(५) लाला भगवान् दासजी, नाथद्वारा वाले के निजी संग्रह में ।
--प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण भाग-२
-- बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्- पटना, पृष्ठ- ८४

शंका:-जग मोहन लम्बो कहा भाव ते है?
समाधान:- ये श्री महाराणी जी के भाव सौं हैं। उष्ण-काल में यहाँ जल भरो जाय है। सो साक्षात् श्री यमुना जी की लहरें लम्बी होत हैं। याही सौं यें हू लम्बो है। जग-मोहन में जो कीर्तनियाँ-गली की आड़ी वारी है। सो कन्दरा भाव सौं है।१

इस ग्रन्थ में श्री नाथ जी के नाथद्वारा स्थित मंदिर का पूर्ण विवरण दिया गया है। इसमें मंदिर की प्रत्येक वस्तु की अलौकिक भावनाएं भी प्रदर्शित की गई हैं।

गो० हरिराय जी लौकिक वातावरण की अलौकिक स्थिति में कल्पना करने में अतिपटु थे। उनका समग्र भावना-साहित्य, उनकी उर्वर कल्पना-शक्ति की सम्पन्नता का द्योतक है।

श्रीनाथ जी की भावना गो० हरिराय जी के उत्तर काल की रचना है, क्योंकि इस मन्दिर की स्थापना संवत् १७२८ के पश्चात् ही हुई थी। ग्रन्थ में ग्रन्थकार का अध्ययन-गाम्भीर्य तथा अभिव्यंजना कौशल सर्वत्र प्रतिभासित होता है।

श्री द्वारकादास पारिख तथा श्री प्रभुदयाल मीतल ने भी अपनी कृतियों में दी गई सूची में इस ग्रन्थ की गणना की है।२।

---

(१) प्रकाशित संस्करण-- (नाथद्वारा), (कुल-पृष्ठ-७१), पृष्ठ-६६
(२) महाप्रभु हरिराय जी नूं जीवन-चरित्र,(गुजराती), पृष्ठ-११६
-- गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ- १७।

१७- हिंडोरा की भावना

इस ग्रन्थ की पृथक्-पृथक् प्रतिलिपियां प्राप्त होती हैं, किन्तु यह 'वर्षोत्सव' ग्रन्थ का ही एक अंश मात्र है। 'वर्षोत्सव की सभी प्रतियों में इसका सन्निवेश है। ग्रन्थ-आकार की दृष्टि से ही इसका पृथक् लेखन हुआ होगा। ग्रन्थ हरिराय जी कृत ही है, और आकार में बड़ा भी ।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि गोस्वामी हरिराय जी ने भावात्मक ग्रन्थ अधिक परिमाण में लिखे हैं। इन ग्रन्थों में पुष्टि-मार्गीय लौकिक स्थितियों की पारलौकिक कल्पनाएँ की गई हैं। स्थान-स्थान पर सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की भी चर्चा की गई है। अपने पूर्वज आचार्यों की महत्ता का प्रतिपादन भी बहुत किया है।

इन भावना-ग्रन्थों में सर्वाधिक महत्व की बात यह है कि इनमें गूढ़तम विचारों को भी बोल चाल की भाषा में प्रस्तुत करके लिखा गया है।

ऊपर जिन ग्रन्थों का परिचय दिया गया है उनमें से निम्नलिखित ग्रन्थों के रचयिता के विषय में संदेह है :--

(१) द्वादस निकुंज की भावना ।
(२) सात बालकन को भाव ।
(३) सात स्वरूप की भावना ।
(४) भावना - त्रय ।

इन चार संदिग्ध ग्रन्थों के अतिरिक्त 'भाव-भावना' नामक ग्रन्थ एक संग्रह ग्रन्थ है, जिसमें गोस्वामी हरिराय जी के अनेक ग्रन्थों को सम्पादित किया गया है। अत: इस संग्रह ग्रन्थ को पृथक् ग्रन्थ नहीं माना जा सकता ।

इस प्रकार कुल बारह ग्रन्थ प्रामाणिक हैं, जो उल्लिखित तथा प्राप्त दोनों अवस्थाओं में विद्यमान हैं। इन भावना-ग्रन्थों के अतिरिक्त उन ग्रन्थों की भी चर्चा की जारही है, जिनमें प्रधान रूप से सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का निरूपण हुआ है।

सिद्धान्त पक्ष ग्रन्थ :-

१- ग्रन्थात्मक भगवत्स्वरूप निरूपण

यह ग्रन्थ टीका-रूप में प्राप्त हुआ है, इसकी एक मात्र हस्त-लिखित प्रति प्राप्त हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी अन्य व्यक्ति ने गोस्वामी हरिराय जी के संस्कृत ग्रन्थ की टीका की हो। प्रारम्भ द्रष्टव्य है:-

> 'इति श्री हरिदासोदितं ग्रन्थात्मक भगवत्स्वरूप निरूपणं समाप्तं। अथ ग्रन्थात्मक भगवत्स्वरूप के पाँच श्लोक को ग्रन्थ श्री हरिराय जी लिखे हैं ताको अभिप्राय भाषा में लिखयतु है। श्री मदाचार्य महाप्रभु ने ठाकुर जी के द्वादस अंगात्मक द्वादस ग्रन्थ निरूपण किए हैं। सो प्रभु के द्वादस अंग कौन से सो कहतु हैं।[१]'

इस ग्रन्थ से पहिले गोस्वामी हरिराय जी कृत संस्कृत में इसका मूलपाठ भी दिया गया है।

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरोली - बंध--१०० पुस्तक- ६ ।

अन्त में लिखा हुआ है; यह हम आचार्य महाप्रभु के चरण कमल की कृपा
बल ते सम्यक प्रकार सों निरूपित, यह भांति
श्री हरिराय जी कहत हैं। इति हरिदासोदितं
ग्रन्थात्मक भगवत्स्वरूप निरूपणं समाप्तम्।१

अन्तिम कथन से स्पष्ट होता है कि, 'ग्रन्थात्मक भगवत्स्वरूप निरूपण' नामक ग्रन्थ, संस्कृत में हरिराय जी ने लिखा है। ब्रजभाषा में उन्होंने इस प्रकार का कोई ग्रन्थ नहीं लिखा।

स्व० द्वारका दास परिख ने अपनी सूची में इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है।२ श्री प्रभु दयाल मीतल ने भी 'भगवत्स्वरूप निरूपण' नाम से इसी ओर संकेत किया है।३ मिश्र बन्धुओं ने 'कृष्णावतार स्वरूप-निर्णय' नामक एक ग्रन्थ का उल्लेख किया है।४ सम्भवत: मिश्र-बन्धुओं का अभिप्राय इस ग्रन्थ से न रहा होगा। द्वारका दास जी परिख तथा श्री प्रभुदयाल जी मीतल ने इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है जो भ्रामक प्रतीत होता है। प्राप्त प्रति के अतिरिक्त अन्य कोई भी इतर प्रति अभी तक प्राप्त नहीं हुई। प्रस्तुत ग्रन्थ हरिराय जी कृत नहीं हैं, यह निश्चित है। गो० हरिराय जी ने इस नाम से संस्कृत में ही रचना की है।

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरोली, बंध संख्या- १००, पुस्तक संख्या- ६
(२) महाप्रभु हरिराय जी नुं जीवन-चरित्र, (गुजराती), पृष्ठ- ११६
(३) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, (प्रकाशित), पृष्ठ- १७
(४) मिश्रबन्धु विनोद (भाग-१), नाम १०६, पृष्ठ- ३४२।

२- पुष्टिदृढाव की वार्ता

यह ग्रन्थ प्रकाशित है ।१ इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ भी प्राप्त हुई हैं ।२ किसी भी प्रति में गोस्वामी हरिराय जी का ग्रन्थकार के रूप में उल्लेख नहीं मिलता, तथापि यह ग्रन्थ हरिराय जी का बहुचर्चित ग्रन्थ है । किसी ग्रन्थ में नामोल्लेख न होने पर भी परम्परागत जन श्रुति के अनुसार इसके रचयिता गोस्वामी हरिराय जी ही हैं । सम्प्रदाय के विद्वानों द्वारा भी इस ग्रन्थ का रचयिता गो० हरिराय जी को ही माना जाता है । कुछ अन्य विद्वानों द्वारा भी इसका समर्थन किया गया है ।३ श्री द्वारकादास परिख, श्री प्रभुदयाल मीतल तथा नागरी प्रचारिणी की खोज रिपोर्ट में भी इस ग्रन्थ का कर्त्ता गोस्वामी हरिराय जी को माना गया है । -४

ग्रन्थ में पुष्टि-मार्ग के कुछ सिद्धान्तों की विवेचना की गई है, इसकी भाषा परिनिष्ठित व्रजभाषा है । लेखक की विद्वता सर्वत्र आभासित होती है । बहुचर्चित होने के कारण ग्रन्थ को संदिग्ध नहीं माना जा सकता ।

---

(१) वजरंग पुस्तकालय, मथुरा तथा डाकोर से प्रकाशित ।

(२) सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध संख्या- ६२, पुस्तक सं० १ (अन्य और भी)

(३) वार्ता साहित्य, एक वृहद् अध्ययन - डा० हरिहर नाथ टंडन, पृ० १५७

(४) -- महाप्रभु हरिराय जी नूं जीवनचरित्र, (गुजराती), -- पृ० ११६
-- गो० हरिराय जी का पद साहित्य, (प्रकाशित), -- पृ० १७
-- हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों का पन्द्रहवां त्रै-वार्षिक विवरण, (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी), -- पृ० १६४

३- महाप्रभु जी की प्राकट्य वार्ता

इस ग्रन्थ में निहित भाव-प्रकाश नामक टिप्पणी के कर्ता ही गो० हरिराय जी हैं। इसके दो संस्करण प्राप्त हुए हैं। प्रसंगात्मक तथा भावात्मक। भावात्मक संस्करण गो० हरिराय जी द्वारा प्रस्तुत किया गया है। भावात्मक संस्करण में गोस्वामी हरिराय जी ने प्रत्येक वाक्य की भाव-मयी व्याख्या की है, इस प्रसंग में उन्होंने अपने विचारों को भी अनेक रूप में व्यक्त किया है। इस प्रकार भावात्मक संस्करण, जिसमें गोस्वामी हरिराय जी कृत भाव-प्रकाश सन्निहित है, गोस्वामी हरिराय जी कृत ही हैं।१ प्रसंगात्मक-संस्करण, जिसमें भाव-प्रकाश नहीं है, गो० हरिराय जी के पूर्ववर्ती विद्वान द्वारा लिखा हुआ है।

भावात्मक संस्करण का प्रकाशित संस्करण भी उपलब्ध है।२ ग्रन्थ में महाप्रभु-वल्लभाचार्य जी के जीवन वृत्त पर प्रकाश डाला गया है। ग्रन्थ बहुचर्चित है।
श्री द्वारकादास परिख तथा श्री प्रभुदयाल मीतल ने भी इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है।३

४।५- निजवार्ता तथा घरूवार्ता

आचार्य महाप्रभु जी की प्राकट्य वार्ता के अनुरूप ही यह ग्रन्थ

---

(१) देखिये-- वार्ता साहित्य एक बृहद् अध्ययन- डा० हरिहरनाथ टण्डन - पृष्ठ- ३५६

(२) प्रकाशन- विद्याविभाग, कांकरौली, संवत्- २००१।

(३) -- महाप्रभु हरिराय जी नूं जीवन चरित्र(गुजराती), पृष्ठ- ११६
-- गो० हरिराय जी का पद-साहित्य, (प्रकाशित), पृष्ठ- १७।

भी महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के जीवन-वृत्त पर आधारित हैं। इन ग्रन्थों में भी गोस्वामी हरिराय जी कृत `भाव-प्रकाश` ही प्राप्त होता है।[१] ये ग्रन्थ प्रकाशित भी हैं।[२] प्रकाशित संस्करण में सम्पादक श्री द्वारकादास परिख ने इन ग्रन्थों के रचयिता हेतु गोस्वामी हरिराय जी की ही अधिक सम्भावना की है।[३]

इस ग्रन्थ की किसी भी प्रति में गोस्वामी हरिराय जी का नामोल्लेख नहीं किया गया, किन्तु सम्प्रदाय की लोक धारणा के अनुसार इसके रचयिता गोस्वामी हरिराय जी ही हैं।

श्री प्रभुदयाल मीतल ने `निज वार्ता` ग्रन्थ की गणना अपनी सूची में तीन बार की है;[४] `घरू वार्ता` का भी इन्होंने पृथक् उल्लेख किया है।[५] ग्रन्थ चौरासी वार्ताओं के अनुरूप ही लिखा गया है। ऐतिहासिक घटनाओं का तिथि संवत् सहित वर्णन किया गया है। मुख्य विषय आचार्य महाप्रभु जी का जीवन चरित्र है। प्रमाणा-भाव में ग्रन्थ को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

---

(१) श्री आचार्य जी महाप्रभुन की निजवार्ता, घरूवार्ता, (भाव-प्रकाश), सहित, -- सम्पा० द्वारकादास परिख, (संवत् २०१५), मथुरा।

(२) वही।

(३) `अत: इसके संकलन और रचना का श्रेय गो० हरिराय जी को ही दिया जासकता है।` -- वही, पृष्ठ- २

(४) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, (प्रकाशित) सूची में ग्रन्थ सं० ३,४,२८

(५) वही, ग्रन्थ सं० २६।

६।७- रास विलास तथा बन यात्रा परिक्रमा

वनयात्रा की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं, जिनमें ब्रजयात्राओं का पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया है। वर्ण्य विषय की दृष्टि से यह ग्रन्थ विशेष महत्व नहीं रखता। किसी भी प्रति में गोस्वामी हरिराय जी का नामोल्लेख नहीं मिलता। अत: यह ग्रन्थ संदिग्ध है। रास-विलास की भी कोई प्रति देखने में नहीं आई, केवल एक स्थान पर उसका विवरण देखने में आया है।[1] श्री द्वारकादास परिख[2] ने 'गोकुलनाथ जी को रास को प्रसंग' का उल्लेख किया है, जबकि श्री प्रभुदयाल मीतल[3] ने 'रास को प्रसंग' ही कहा है, किन्तु यह दोनों ग्रन्थ उक्त ग्रन्थ से सम्बन्धित नहीं हैं।

८- समर्पण गद्यार्थ

इस ग्रन्थ की एक मात्र हस्तलिखित प्रति कांकरौली से प्राप्त हुई है।[4] इस नाम से एक अन्य ग्रन्थ भी गोस्वामी गिरधर लाल जी कृत

---

(१) 'रास विलास। रचयिता रसिक राय। साइज- ८.८" +६"। पत्र सं०१४ लिपिकाल सं० १८०० के लगभग। ब्रजभाषा। रास वर्णन। ग्रन्थ छोटे - छोटे ५ पत्रों में विभाजित है, जिनमें सब मिलाकर १४६ पद्य हैं। कविता मधुर है।'--प्राप्ति स्थान- सरस्वती भंडार-राजकीय पुस्तकालय, उदयपुर।' -- राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज (भाग-१), --- पृष्ठ- १२१ से उद्धृत।

(२) महाप्रभु हरिराय जी नूं जीवन चरित्र,(गुजराती), पृष्ठ- ११६

(३) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, (प्रकाशित), पृष्ठ- १७

(४) सरस्वती भंडार, कांकरौली बंध संख्या- १०५ पुस्तक सं० १, पत्रा ६ से।

भी प्राप्त होता है ।१ गोस्वामी गिरधर लाल जी का वह ग्रन्थ उक्त ग्रन्थ से सर्वथा भिन्न है । ग्रन्थ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि गो० हरिराय जी ने यह ग्रन्थ टीकानुरूप लिखा है । विवरण द्रष्टव्य है :-

`समर्पण गद्यार्थ । गो० हरिराय जी कृत । कुल पृष्ठ- आठ । आकार- ६।।"+ ५" । पंक्ति -२३ प्रति पृष्ठ । प्रति प्राचीन किन्तु पठनीय ।`

प्रारम्भ:- `अथ समर्पण गद्यार्थ की टीका भाषा में लिख्यते । सृष्टि के आदि विषै ब्रह्म की इच्छा भई जो मैं रूपात्मक सृष्टि करौं । तब वाकी इच्छा पूरी करिकैं -- । २

सम्भवत: इस नाम से किसी अन्य आचार्य ने संस्कृत में ग्रन्थ लिखा होगा, जिसकी व्याख्या गोस्वामी हरिराय जी ने की है ।

ग्रन्थ का अन्तिम अंश द्रष्टव्य है :- ` तहाँ ताईं यह जीवकाहू काम कौं नाहीं, यह हू अर्थ वर्जित होत है । इति श्री मद् हरिरायोदितसमर्पण- गद्यार्थ सम्पूर्ण श्रीकृष्णायनम: ।३`

श्री प्रभुदयाल मीतल ने इस नाम से दो ग्रन्थों का उल्लेख किया है, जो हरिराय जी कृत हैं ।४ तथा श्री द्वारकादास परिख ने भी इस

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरोली- बंध सं० १००, (पुस्तक सं० ३) ।
(२) वही, -- बंध सं० १०५, पुस्तक सं० १, पत्रा-६
(३) वही।
(४) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य,(प्रकाशित), सूची में ग्रन्थ- --सख्या- १६।१७ ।

ग्रन्थ का अपनी सूची में उल्लेख किया है ।१ मिश्रबन्धुओं ने भी 'गद्यार्थ-भाषा' नामक उनके एक ग्रन्थ का उल्लेख किया है ।२ मिश्र बन्धुओं द्वारा उल्लिखित ग्रन्थ का नाम उक्त ग्रन्थ से सम्बन्धित नहीं जान पड़ता ।

'जीव को भगवत्-शरण का आश्रय ग्रहण करना चाहिए' इस विषय को इस ग्रन्थ में विस्तार पूर्वक विवेचित किया गया है ।

९- श्री नाथ जी की प्राकट्य वार्ता

गोस्वामी हरिराय जी के वार्ता साहित्य का यह सर्वाधिक चर्चित ग्रन्थ है । यह ग्रन्थ विभिन्न स्थानों से प्रकाशित हो चुका है ।३ डा० हरिहरनाथ टण्डन ने इस ग्रन्थ का पूर्ण विवरण अपने ग्रन्थ में दिया है ।४ इसे श्री गोवर्द्धन नाथ जी की प्राकट्य वार्ता भी कहा जाता है । श्री प्रभुदयाल जी मीतल ने इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है ।५

---

(१) महाप्रभु हरिराय जी नूं जीवन चरित्र,(गुजराती), पृष्ठ- ११६

(२) मिश्रबन्धु विनोद (भाग-१), नाम १०६ पृष्ठ- ३४२

(३) -- विद्या विभाग, नाथद्वारा से अनेक संस्करण प्रकाशित ।
-- लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित ।
-- मुंशी नवल किशोर भार्गव की आज्ञानुसार सन् १८८४ में प्रकाशित ।
-- श्री मोहन लाल विष्णूलाल पंड्या द्वारा संवत् १९३५ में सम्पादित ।
-- लल्लूभाई छगन लाल देसाई,अहमदाबाद, संवत् १९९९ में प्रकाशित ।

(४) देखिये-- वार्ता साहित्य एक वृहद् अध्ययन - भारत प्रकाशन मन्दिर, -- अलीगढ़ ।

(५) गो० हरिराय जी का पद साहित्य,प्रकाशित- पृष्ठ- १७ ।

ग्रन्थ प्रामाणिक है । इसकी पचासों हस्तलिखित प्रतियाँ भी देखने में आई हैं । सभी प्रतियों में गोस्वामी हरिराय जी कृत लिखा हुआ है ।

इस ग्रन्थ में 'श्रीनाथ जी' की प्राकट्य चर्चा में श्रीनाथ जी की प्रमुख देव-मूर्ति का ऐतिहासिक वृतान्त दिया गया है । इसमें श्रीनाथ जी की सेवा व्यवस्था तथा व्रज से मेवाड़ आने की सम्पूर्ण घटनाओं का तिथि, संवत् सहित वर्णन किया गया है । इस ग्रन्थ से अनेक ऐतिहासिक तथ्य भी स्पष्ट होते हैं । गोस्वामी परिवार के जीवन का इसमें व्यवस्थित रूप से वर्णन किया गया है । स्वयं गोस्वामी हरिराय जी की जीवन-घटनाओं का भी इसमें विवरण प्राप्त होता है ।

यह ग्रन्थ गोस्वामी हरिराय जी के मेवाड़ जाने के पश्चात् लिखा गया था । सम्भवत: गोस्वामी हरिराय जी ने अपने किसी अनुयायी भक्त से यह ग्रन्थ लिखवाया था, जिससे गोस्वामी हरिराय जी का नाम भी इस ग्रन्थ में आदरणीय सम्बोधनों में व्यक्त हुआ है ।१

१०- <u>षट्षष्टि अपराध</u>

इस नाम से गोस्वामी हरिराय जी ने एक संस्कृत ग्रन्थ भी लिखा है । २ व्रजभाषा में यह ग्रन्थ कांकरोली से हस्तलिखित रूप में प्राप्त हुआ है । ३ 'षट्षष्टि अपराध' नामक ग्रन्थ मूल रूप से संस्कृत में

---

(१) श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता-- प्रका० लल्लूभाई छगनभाई देसाई, पृ० ६६

(२) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, -- पृ० १७

(३) सरस्वती भंडार, कांकरोली, बंध संख्या- ६१, पुस्तक सं० १, -- पत्रा ३४ से ४० तक (१२ पृष्ठों पर) ।

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी कृत है, जिस पर श्री पुरुषोत्तम जी ने संस्कृत में टीका लिखी है । गो० हरिराय जी ने सम्भवत: इसी ग्रन्थ का आधार लेकर संस्कृत तथा व्रजभाषा में इस नाम से ग्रन्थ रचना की है । इस ग्रन्थ के अतिरिक्त 'चौसठ अपराध विष्णु स्वामी-सम्प्रदाय के' भी प्राप्त हुए हैं ।१ संस्कृत में बत्तीस अपराध, १० अपराध नाम से भी ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं ।२ गो० हरिराय जी कृत षट्षष्टि अपराध ग्रन्थ का विवरण इस प्रकार है :-

'षट्षष्टि अपराध । गो० हरिराय जी कृत । पत्रा ३४ से ४० तक, (१२ पृष्ठों पर अंकित) । आकार ६।।"+ ५"। १३ पंक्ति प्रति पृष्ठ । प्रति प्राचीन किन्तु पठनीय ।'

प्रारम्भ:- 'अथ श्री हरिराय जी कृत षटु षटारस अपराध लिख्यतें । जो श्री ठाकुर जी समीप क्रोध करें तो तीन जन्म ताईं म्लेछ जोनी पावें । नग्रे यह जो । अस्नान करि श्री ठाकुर जी आगें घी को दीवा करें तो ताको दोष नग्रे होय । अनमारगी साथे बोले तो सत्रु पीड़ा उपजे । जैसो ताको नग्रे । ये है जो श्री ठाकुर जी को अष्टोत्तर सत नाम जप करे तो तब ताको दोष नवरत होय ।'

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरोली, बंध संख्या ६२, पुस्तक संख्या- १ ।

(२) वही।

अन्तिम अंश :- श्री ठाकुर जी की सेवा समै चूकै तौ तीन
जन्म अंधा होइ । सौ श्री ठाकुर जी दोय
सौ पैसा भर दूध कौ अभिषेक करावनौ ।
वैतरणी नदी मैं सौ बरस ताईं तीन उपवास
करै । श्री ठाकुर जी कौ नयौ मन्दिर
करावैं ।१

श्री प्रभुदयाल मीतल ने इस ग्रन्थ का नामोल्लेख किया है ।२ नागरी प्रचारिणी सभा के खोज - विवरण मैं भी इस ग्रन्थ का नाम दिया गया है ।३ इनके अतिरिक्त गार्सा द तासी ने भी गो० हरिराय जी के इस ग्रन्थ की चर्चा की है ।४

ग्रन्थ हरिराय जी कृत ही है । इसमैं अपराध वर्णन, उसका फल और प्रायश्चित विधान का वर्णन किया गया है । ग्रन्थ मैं आचार - अनाचार की व्याख्या की है । इसकी विषय वस्तु का सम्प्रदाय की दृष्टि से ही महत्व है ।

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध संख्या-६२, पुस्तक संख्या-१ ।

(२) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, -- पृष्ठ-१३

(३) हस्त लिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण-(भाग-२),पृष्ठ-६२६

(४) `हरराय जी` । वल्लभ के शिष्य । ने ब्रजभाषा मैं लिखी है ।
१- सडसठ पापों,अपने गुरु के सिद्धान्तानुसार, उनके प्रायश्चितों और उनके फलों पर एक रचना ।`हिस्ट्री आँव दि सैक्ट आँव दि महाराजाज` (महाराजों के सम्प्रदाय का इतिहास) ।
-- हिन्दुई साहित्य का इतिहास - गार्सा द तासी,
अनुवादक - लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, - पृष्ठ- ३२६

११- गो० हरिराय जी के घर की नित्य सेवा तथा वर्षोत्सव की भावना ।

यह ग्रन्थ गोस्वामी हरिराय जी के नाम से जाना जाता है । वस्तुत: यह गोस्वामी हरिराय जी के पश्चात् की रचना जान पड़ती है । इसकी प्राप्त हस्त लिखित प्रति में कहीं भी गो० हरिराय जी का ग्रन्थकार के रूप में उल्लेख नहीं मिलता । १ किसी अन्य लेखक ने गोस्वामी हरिराय जी के घर में व्यवहृत नित्य-सेवा का इस ग्रन्थ में विवरण दिया है । ग्रन्थ हरिराय जी कृत नहीं है ।

१२- सेवा - प्रकार

पूर्ववर्ती पृष्ठों पर `सेवा-भावना` नामक एक अन्य ग्रन्थ की चर्चा की गई है । वर्ण्य विषय की दृष्टि से यह ग्रन्थ भी तदनुरूप ही है । अन्तर केवल इतना है कि `सेवा-भावना` में परदेश काल में जब सेव्य - स्वरूप पास नहीं होते तो सेवा की भावना का ही विधान वर्णित है । इसके विपरीत `सेवा - प्रकार` में सेव्य - स्वरूप पास रहने पर उनकी सर्वांग सेवा-पद्धति का पूर्ण क्रियात्मक विवरण दिया गया है । प्रथम ग्रन्थ भावना - प्रधान है, तो दूसरा कर्म-प्रधान ।

`सेवा-प्रकार` नामक यह ग्रन्थ अप्रकाशित है । इसकी एक हस्तलिखित प्रति कांकरौली से प्राप्त हुई है ।२ नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में भी इसका विवरण दिया गया है । ३ श्री द्वारकादास परिख ने इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है । ४

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध संख्या १०६, पुस्तक सं० १२, पत्रा ११ से
(२) वही, बंध संख्या ६६, पुस्तक सं० १० ।
(३) हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का : पन्द्रहवां त्रै-वार्षिक विवरण, पृ० १६५
(४) महाप्रभु हरिराय जी नूं जीवन चरित्र, (गुजराती), - -- पृ० ११६ ।

प्राप्त प्रति का विवरण इस प्रकार है :-

सेवा विधि । गोस्वामी हरिराय जी कृत । इस ग्रन्थ में सेवा-प्रकार तथा सेवा-भावना दोनों ही ग्रन्थ संगृहीत हैं । प्रथम ग्रन्थ प्रारम्भिक ११ पत्राओं में लिपिबद्ध है । बाद के पृष्ठों पर 'सेवा-भावना' ग्रन्थ अंकित है । आकार- ६।" + ५" । ६ पंक्ति प्रति पृष्ठ । लिपि - प्राचीन । पठनीय ।

प्रारम्भ:- 'प्रातकाल खाट ते उठि रात्रि वस्त्र बदल आचमन करि श्री जी के सन्मुख बैठि नाम श्री आचार्य जी कौ तथा श्री ठाकुर जी कौ नाम लै करि । वंदे नन्द ब्रजस्त्रीणां । इन दो श्लोकन करि, नमस्कार करि, रात्रि कौ जो कृत्य विचारि सो यों होइ भगवद् संबंधी तथा सब सुद्धि करि तदुपरान्त देह कृत्य करि सुद्ध होइ चरणामृत लैकरि कैं मुख सुद्ध अर्थ बीड़ा तथा लवंग लैकरि तैल लगाइ स्नान करि तिलक करि अवकास होइ तौ शंख चक्र धरैं । नहीं तौ नाम मुद्रा देइ करि मन्दिर के द्वार जाइ, पाउ धोइ सैया निकट जाइ रात्रि के गडुवा, बीड़ा, भोग सामग्री माला होई सो काढ़िये ।"

अन्तिम अंश :-'पाछैं प्रभु स्वतंत्र हैं । मनमाने सो करैं । काहू कौ बल नाहीं । इति शिक्षा सम्पूर्णम् ।'१

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरोली, बंध संख्या- ६६, पुस्तक सं० १० ।

इस प्रति में कहीं भी गोस्वामी हरिराय जी का नाम प्राप्त नहीं होता, किन्तु सम्प्रदाय के विद्वानों ने इसे हरिराय जी कृत माना है। गोस्वामी हरिराय जी कृत मानने का एक यह भी कारण हो सकता है कि प्राप्त प्रति में गोस्वामी हरिराय जी के दो अन्य ग्रन्थ भी संलग्न हैं। सेवा भावना तथा सेवा प्रकार। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है[1] कि सेवा भावना नामक ग्रन्थ गोस्वामी हरिराय जी कृत ही है। सम्भव है कि लिपिकार ने गोस्वामी हरिराय जी के इन ग्रन्थों को एक ही प्रति में संलग्न कर दिया हो।

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में इस ग्रन्थ का कर्ता गोस्वामी हरिराय जी को माना गया है। २ ग्रन्थ में पुष्टिमार्गीय सेवा पद्धति का सरल शब्दों में वर्णन किया गया है।

१३- सन्यास निर्णय

यह ग्रन्थ संस्कृत में महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी विरचित है। गोस्वामी हरिराय जी ने इसकी ब्रजभाषा टीका की है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में भी इसका विवरण दिया गया है।३ यह टीका ग्रन्थ गोस्वामी हरिराय जी कृत ही है। ग्रन्थ आकार में अत्यन्त छोटा है। वर्ण्य विषय की दृष्टि से इसका साम्प्रदायिक महत्व ही है।

---

(१) देखिये-- इसी ग्रन्थ में पृष्ठ १२६ पर।

(२) हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का पन्द्रहवाँ त्रै-वार्षिक विवरण, पृ०१६५

(३) हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का सोलहवाँ त्रै-वार्षिक विवरण, पृ०१३८।

१४- शरण मंत्र व्याख्या

श्री प्रभुदयाल मीतल ने अपने ग्रन्थ में इसका उल्लेख किया है[1], किन्तु इस नाम से गोस्वामी हरिराय जी कृत कोई ग्रन्थ देखने में नहीं आया । `अष्टाक्षर मंत्र की टीका` नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित रूप में प्राप्त हुआ है[2], इसमें लेखक का उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु शरण मंत्र की व्याख्या का तात्पर्य सम्भवत: इसी ग्रन्थ से लिया गया है । प्रमाणाभाव में ग्रन्थ को प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता ।

ग्रन्थ में वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षा देने के लिए जो मंत्र दिए जाते हैं, उनकी भाव व्याख्या की गई है ।

१५- वचनामृत

इस ग्रन्थ का नामोल्लेख नागरी प्रचारिणी सभा के खोज कर्ताओं ने किया है । इसका पूर्ण विवरण भी सभा की खोज रिपोर्ट में दिया गया है, किन्तु सम्प्रति यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो पाया है । गुजराती मिश्रित ब्रजभाषा में व्याख्यान रूप में यह लिपिबद्ध है । सभा के खोज कर्ताओं ने इस ग्रन्थ को प्रामाणिक माना है ।३

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ- १३

(२) `अष्टाक्षर` ब्रज टीका समेत- सम्पा० पं० विट्ठल प्रसाद ज्येष्ठाराम -- मुकुंद जी, सुवर्ण प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई, संवत्-१६६७

(३) हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का सोलहवां त्रै-वार्षिक विवरण, --- पृष्ठ- १३६ ।

इस ग्रन्थ में महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के भक्ति संबंधी विचार प्रस्तुत किए गए हैं। इसमें स्पष्ट किया गया है कि नवधा-भक्ति के निमित्त वैष्णव को किस प्रकार के आचरण करने चाहिए।

१६- षट् ऋतु की वार्ता

इस ग्रन्थ पर गोस्वामी हरिराय जी कृत भाव-प्रकाश नामक टिप्पणी प्राप्त होती है। यह ग्रन्थ प्रकाशित भी है। १ इस ग्रन्थ में निहित भाव प्रकाश का कर्ता विद्वानों द्वारा गोस्वामी हरिराय जी को ही माना गया है। २

ग्रन्थ में गिरिराज की तलहटी में षट् ऋतुओं के नित्य-निवास की कल्पना की गई है। एक ऋतु में दो-दो कुंजों की भी कल्पना की है, जिनके अन्तर्गत कृष्ण के नित्य ऋतु-विहार का वर्णन किया गया है।

१७- चौरासी वैष्णवन की वार्ता

'वार्ता-साहित्य एक वृहद् अध्ययन' नामक शोध प्रबन्ध में डा० हरिहर नाथ टण्डन द्वारा स्पष्ट किया जा चुका है कि इस ग्रन्थ में निहित 'भाव-प्रकाश' गोस्वामी हरिराय जी कृत ही है। इसके भावात्मक संस्करण सहित सम्पादन का सारा

---

(१) -- सम्पादक द्वारकादास परिख, संदेश प्रेस, अहमदाबाद, संवत् २००५
-- सम्पादक वही, गोवर्धन ग्रन्थ माला, मथुरा, संवत् २०२५

(२) वार्ता साहित्य एक वृहद् अध्ययन - डा० हरिहरनाथ टण्डन पृ० ३६० ।

श्रेय गोस्वामी हरिराय जी को ही दिया गया है । यह ग्रन्थ वल्लभ-सम्प्रदाय का सर्वाधिक चर्चित व महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । ब्रजभाषा का यह एक लोक प्रसिद्ध ग्रन्थ है । ब्रजभाषा गद्य के विकास में इस ग्रन्थ का शीर्षस्थ स्थान है । इसका महत्व अनेक विद्वानों द्वारा प्रतिपादित किया गया है ।

डा० हरिहरनाथ टण्डन ने इस ग्रन्थ में निहित गोस्वामी हरिराय जी कृत भाव-प्रकाश को टिप्पणी न मानकर स्वतंत्र ग्रन्थ माना है ।१ डा० टण्डन ने अनेक पुष्ट प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया है कि गोस्वामी हरिराय जी रचित भाव-प्रकाश एक स्वतंत्र व महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । अष्टछाप के कवियों की जीवनी के सम्बन्ध में भाव-प्रकाश द्वारा जो जानकारी प्राप्त हुई है वह अन्यत्र नहीं मिलती । जहाँ भी अष्ट-छापी कवियों के जीवन-वृत्त का प्रश्न उठता है, सभी विद्वानों को गोस्वामी हरिराय जी कृत भाव-प्रकाश का अवलम्ब ग्रहण करना पड़ता है ।

इस ग्रन्थ के अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं । तथा इसका गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित है । इस ग्रन्थ की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ भी प्राप्त हुई हैं । यह ग्रन्थ व्याख्यान रूप में सम्पादित है, इसमें वल्लभ मतानुयायी चौरासी वैष्णवों के चरित्र पर व्यापक प्रकाश डाला गया है । यह ग्रन्थ चरित्र प्रधान होने पर भी ऐतिहासिक तथ्यों से परिपूर्ण है ।

---

(१) वार्ता साहित्य एक वृहद् अध्ययन - डा० हरिहरनाथ टण्डन, पृ० १३३ ।

151

१८- दो सौ बावन वैष्णावन की वार्ता

चौरासी वैष्णावन की वार्ता की ही भाँति दो सौ बावन वैष्णावन की वार्ता भी बृजभाषा का एक प्रसिद्ध गद्य-ग्रन्थ है। वार्ता साहित्य के शोध-कर्ता ने यह स्पष्ट किया है कि इस ग्रँन्थ के रचयिता गोस्वामी हरिराय जी ही हैं। १

चौरासी वैष्णावन की वार्ता तथा दो सौ वैष्णावन की वार्ता,दोनों ग्रन्थों का अध्ययन अनेक विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किया जा चुका है। इन ग्रन्थों की प्रकाशित प्रतियों के मुख पृष्ठ पर 'गोस्वामी हरिराय जी प्रणीत' लिखा हुआ है।२

गोस्वामी हरिराय जी ने ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना करके बृजभाषा-गद्य के भण्डार को पूर्ण समृद्ध बनाया है। इन ग्रन्थों में बृजभाषा गद्य का पूर्ण परिमार्जित स्वरूप दृष्टिगत होता है। इन ग्रन्थों के कारण ही गोस्वामी हरिराय जी के युग को वार्ता साहित्य तथा बृजभाषा गद्य का स्वर्णयुग कहा जाता है। बृजभाषा गद्य के इतिहास में इस प्रकार के अन्य ग्रन्थ देखने में नहीं आते।

उपर्युक्त विवरण में निम्नलिखित ग्रन्थ संदिग्ध पाए गए हैं:-

---

(१) वार्ता साहित्य एक बृहद् अध्ययन-- डा० हरिहरनाथ टण्डन, पृ० २३०

(२) -- श्री द्वारका दास परिख द्वारा सम्पादित तथा मथुरा से प्रकाशित प्रतियों में द्रष्टव्य।

१- रास विलास,।

२- वन यात्रा परिक्रमा ।

३- गो० हरिराय जी के घर की नित्य सेवा तथा वर्षोत्सव की भावना ।

४- शरण मंत्र व्याख्या ।

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित ग्रन्थों में भाव-प्रकाश-कर्ता या टीकाकार के रूप में गोस्वामी हरिराय जी का उल्लेख मिलता है। --

१- महाप्रभु जी की प्राकट्य वार्ता,

२- महाप्रभु जी की निज वार्ता ,

३- महाप्रभु जी की घरू वार्ता ,

४- समर्पण गद्यार्थ ,

५- षट्षष्टि अपराध ,

६- षट् ऋतु की वार्ता ,

७- सन्यास निर्णय तथा

८- चौरासी वैष्णव की वार्ता ।

इस प्रकार उपर्युक्त समग्र विवरण से ज्ञात होता है कि गोस्वामी हरिराय जी के उल्लिखित तथा प्राप्त ग्रन्थों में बारह भावना ग्रन्थ तथा छै: सैद्धान्तिक ग्रन्थ पूर्ण प्रामाणिक हैं। इनके अतिरिक्त आठ ग्रन्थों पर गोस्वामी हरिराय जी के भाव-प्रकाश तथा व्याख्यायें निहित हैं। अत: भावना तथा सैद्धान्तिक छब्बीस ग्रन्थों के विवेचन में कुल नौ ग्रन्थ संदिग्ध हैं। इस तरह इस खण्ड में गोस्वामी हरिराय जी के कुल पैंतीस गद्य-ग्रन्थों का विवरण दिया गया है।

प्राप्त -अनुल्लिखित ग्रन्थ

१- अधवासन की भावना

यह ग्रन्थ आकार में बहुत छोटा है। इसकी एक अपूर्ण प्रति कांकरौली से प्राप्त हुई है।१ हस्तलिखित प्रति में इस ग्रन्थ से पहले गोस्वामी हरिराय जी कृत 'हिंडोरा की भावना' नामक ग्रन्थ अंकित है। 'अधवासन की भावना' में गोस्वामी हरिराय जी का रचयिता के रूप में उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु सम्प्रदाय के विद्वानों के अनुसार इसे गोस्वामी हरिराय जी कृत ही माना गया है। विवरण दृष्टव्य है :-

अधवासन की भावना। पृष्ठ ४ पर अंकित। आकार ७।।"+ ११।।"। १८ पंक्ति प्रति पृष्ठ। लिपि प्राचीन। पठनीय। अपूर्ण।

प्रारम्भ :- यह अधवासन याते हैं जो हिंडोरा की रहस्य लीला हैं अधवासन की यह रहस्य लीला संबंधी तीन ही कों अलौकिक ज्ञान होय। ताही ते अधवासन करत हैं। और व्रज भक्तन को आवाहन हू होत हैं और हिंडोरा हू अलौकिक होत है। वह स्थल हू अलौकिक होत है -- ।२

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध संख्या १५६, पुस्तक संख्या- १ ।
(२) वही।

ग्रन्थ में हिंडोरा की भावना का उल्लेख किया गया है, इसलिए जान पड़ता है कि हिंडोरा की भावना तथा अधवासन की भावना गोस्वामी हरिराय जी की एक ही क्रम की रचनाएँ हैं ।

यथेष्ट प्रमाण न मिलने पर ग्रन्थ को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है ।

२- अधिक - भावना

'अधवासन' की भाँति यह ग्रन्थ भी लेखानुरूप है । 'परदेश-काल' में जब सेव्य-स्वरूप न हों तो भावना विधान का ही पालन करना चाहिए । वैष्णवों के लिए यह एक उपदेशात्मक लघु ग्रन्थ है । 'पाके गृह में सब एकत्र होइ बैठि संध्या पर्यन्त गुणगान करत हैं ।' जैसे कथनों से ज्ञात होता है कि वैष्णव कर्त्तव्य हेतु ही गोस्वामी हरिराय जी ने इस ग्रन्थ की रचना की होगी ।

ग्रन्थ के अन्त में गोस्वामी हरिराय जी का रचयिता के रूप में उल्लेख मिलता है :-

> 'रात्रि लीला भावनीय नहीं, तातें नहीं लिखियत, गोप्य अंतरंग आसक्ति के अनुभाव करि गुणगान करत हैं । ज्यौं दिवस समय में ये व्रज भक्त । इति श्री हरिराय विरचितं अधिक-भावना समाप्तं सम्पूर्ण ।'१

---

(१) निजी पुस्तकालय, नाथद्वारा, बंध संख्या- ८ पुस्तक संख्या- १०   ।

३- अष्ट सखा तथा अष्ट समय के दर्शन कौ भाव

'अष्ट सखाओं की वार्ता' नामक ग्रन्थ की पृथक् प्रतियां प्राप्त होती हैं, किन्तु यह ग्रन्थ चौरासी तथा दो सौ बावन वार्ताओं से ही उद्धृत है। इसमें गोस्वामी हरिराय जी कृत भाव-प्रकाश निहित है। 'सूरदास की वार्ता' नामक गोस्वामी हरिराय जी की एक रचना प्रकाशित रूप में भी प्राप्त होती है।१ यह रचना सूरदास की वार्ता नामक रचना से भिन्न है।' अष्ट सखा तथा अष्ट समय के दर्शन कौ भाव' नामक एक लघु ग्रन्थ गोस्वामी हरिराय जी कृत भाव-प्रकाश सहित मुद्रित अवस्था में भी प्राप्त होता है। २

इस ग्रन्थ में भगवान् कृष्ण के अष्ट सखाओं के भाव प्राधान्य वर्णन किए गए हैं तथा पुष्टि-मार्गीय मन्दिरों में व्यवहृत अष्ट झांकियों का विवेचन भी किया गया है।

४- द्रव्य - शुद्धि

यह ग्रन्थ एक संग्रह ग्रन्थ में लिपिबद्ध है। इस ग्रन्थ से पहले 'पुष्टि-दृढ़ाव की वार्ता' गोस्वामी हरिराय जी कृत है तथा 'द्रव्य - शुद्धि' के पश्चात् गोस्वामी हरिराय जी कृत 'सूतक निर्णय' दिया गया है। 'द्रव्य-शुद्धि' में लेखक का कहीं उल्लेख नहीं मिलता किन्तु पहले और बाद में गोस्वामी हरिराय जी के ग्रन्थ सन्निहित होने से

---

(१) — सम्पादक- श्री प्रभुदयाल मीतल - अग्रवाल प्रेस, मथुरा (कुल पृ० १००)

(२) गोवर्द्धन ग्रन्थ माला कार्यालय, मथुरा सम्पा० निरंजन देव शर्मा, संवत् २०२६।

यह ग्रन्थ भी गोस्वामी हरिराय जी कृत माना जा सकता है। ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति काँकरौली से उपलब्ध हुई है। १

ग्रन्थ का प्रारम्भ इस प्रकार है:- `अत्य शुद्र: रजस्वला, चँडाल, महापातकी, सूतका, ज्ञानस्पर्शी, शावा शौत्री, कूकर, चिता-धूम, चिता-काष्ठ, देव द्रव्योपजीवी ग्राम याजक, सोम विक्रमी, महाम्ब मांड् सस्नेह, मनुष्यास्वि इतनेन ते छूवे तो सचैल स्नान करनो। २

शुद्धि संस्कार सम्बन्धी प्रस्तुत ग्रन्थ का आकार इतना लघु है कि इसे एक लेख ही कहना समीचीन प्रतीत होता है। यह लेखाकार ग्रन्थ संदिग्ध है।

५- द्वितीयापाट की भावना

`भाव-भावना` संग्रह ग्रन्थ में यह लघु-ग्रन्थ सन्निहित है। यह ग्रन्थ भाव-भावना के संग्रह का ही एक लेख विशेष है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में भी इसका उल्लेख गोस्वामी हरिराय जी के ग्रन्थों में किया गया है। ३ ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियों में `द्वितीयापाट की भावना` तथा `फूल मण्डली` नामक ग्रन्थ समन्वित रूप में मिलते हैं। अन्त में `इति श्री हरिराय जी`

---

(१) सरस्वती भंडार, काँकरौली, बँध संख्या- ६२, पुस्तक संख्या- १।
(२) वही।
(३) हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का पन्द्रहवाँ त्रै-वार्षिक विवरण, पृष्ठ-१६६।

कृत फूल मंडली को भाव सम्पूर्णम् ।१

६- नयो वर्ष ताको भाव

यह 'रहस्य-भावना' में सम्पादित एक लेख के अनुरूप ही है । इसमें नए वर्ष की भावात्मक कल्पना की गई है । लेखक की प्रवृत्ति रही है कि वह प्राय: लौकिक धरा पर अलौकिक वातावरण की सृष्टि कर वर्ण्य विषय में चमत्कार प्रस्तुत कर देता है । इस लेख को विषय और आकार की दृष्टि से पृथक् महत्व नहीं दिया जा सकता ।

७- प्रेम परीक्षा

वृन्दावन से प्राप्त एक संग्रह ग्रन्थ में यह लघु ग्रन्थ समाविष्ट है ।२ ग्रन्थ में कहीं भी गोस्वामी हरिराय जी का उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु संग्रह ग्रन्थ के अन्य अधिकांश ग्रन्थ गोस्वामी हरिराय जी कृत ही हैं । प्रमाणाभाव में ग्रन्थ को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता ।

८- व्यालीस शिक्षा

इस ग्रन्थ की एक मात्र हस्तलिखित प्रति कांकरोली से प्राप्त हुई है ।३ ग्रन्थ में वैष्णवों के लिये 'व्यालीस शिक्षाओं का वर्णन'

---

(१) लाला भगवान् दास जी नाथद्वारा वाले के निजी संग्रह से प्राप्त ।

(२) श्री रतन लाल जी गोस्वामी निधिवन, वृन्दावन वाले के संग्रह से प्राप्त ।

(३) श्री सरस्वती भण्डार, कांकरोली, बंध संख्या- १०८, पुस्तक सं० २७ ।

किया गया है । ग्रन्थ छोटा है । विवरण दृष्टव्य है :-

व्यालीस शिक्षा । गोस्वामी हरिराय जी कृत । कुल पृष्ठ ८ । आकार ६।।।"+ ४ ।।"। ७ पंक्ति प्रति पृष्ठ । लिपि प्राचीन । पठनीय ।

प्रारम्भ:- 'अथ पद वेतालीसमु लीख्यते । अब श्री हरिराय जी आज्ञा करत हैं संसार में ग्रहणो सो कहा । गुरु के वचन ।१। संसार में तत्व पायो सो क्यों जानिये । जो सब जीवन को हित करनो ।२। संसार में उतावलो सो कहा, बूझो । जो संसार को संग करिबो ।३। संसार में मोक्ष को बीज सो कहा । जो ज्ञान सम्मान और वीज कोई नहीं ।'

अन्तिम :- 'इति श्री हरिराय जी कृत वेतालीस सीक्षा पत्र सम्पूर्णम् ।४२।'[1]

प्राप्त प्रति के अध्ययन से ज्ञात होता है कि गोस्वामी हरिराय जी के ये व्यालीस उपदेश किसी अन्य व्यक्ति द्वारा संकलित करके ग्रन्थ रूप में प्रस्तुत किए गए हैं । 'अब श्री हरिराय जी आज्ञा करत हैं ।' से स्पष्ट होता होता है कि स्वयं हरिराय जी ने इसे नहीं लिखा । वैष्णव अनुयायियों में से ही किसी ने इसे लिपिवद्ध किया होगा ! अपने आचार्यों के प्रति सम्मान-नीय सम्बोधनों का प्रयोग इन वैष्णवों की वृत्ति रही है !

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध संख्या- १०८, पुस्तक सं० २७ ।

९- ब्रह्मस्वरूपाख्यान

इस ग्रन्थ की एक मात्र हस्तलिखित प्रतिलिपि वृन्दावन से प्राप्त हुई है। १ ग्रन्थ प्रामाणिक है। ग्रन्थ का आकार अन्य उपर्युक्त ग्रन्थों की भाँति छोटा ही है। विवरण द्रष्टव्य है :-

ब्रह्मस्वरूपाख्यान। गोस्वामी हरिराय जी कृत। कुल पृष्ठ- ५। आकार १६"+ १२" (बड़े पत्रा साँची के) संग्रह ग्रन्थ 'वातारें' में संगृहीत। ३२ पंक्तियाँ प्रति पृष्ठ। प्रति प्राचीन है। पठनीय।

प्रारम्भ :- श्री कृष्णायनम:। अथ ब्रह्म स्वरूप कों व्याख्यान लिख्यते। ब्रह्म के स्वरूप तीन, अक्षर (१) अक्षर (२) अक्षरातीत (३) तहाँ प्रथम अक्षरातीत कों व्याख्यान करत हैं। तहाँ मार्ग तीन पुष्टि, प्रवाह, मर्यादा, (३) पुष्टि-मार्ग अक्षरातीत कों मार्ग है। पुष्टि-मार्ग के स्वामी अक्षरातीत हैं। पूर्णानन्द गोवर्द्धनधरन पर ब्रह्म श्रीकृष्ण जिनके धाम में जीव सदाँ जाय सदा आनंद में रहैं। रासादि लीला कों सुख देखें फिर जन्म न होई सो काहे ते। श्रीकृष्ण जी श्रीमद् गीता विषै कह्यों जो मेरे धाम में जाय। तो जन्म होइ। यज्ञत्वान निवर्तते तव्दाँ मपर् मंमम। यह श्लोक श्रीगीता

---

(१) श्री रतन लाल जी गोस्वामी, लाल जी की गद्दी, निधिवन, वृन्दावन।
(२) वही।

मैं कहे हैं । पूर्णानन्द परब्रह्म और वैष्णव चार विष्णुस्वामी, मध्वाचार्य, निबांदित्य, 'रामानुज, तातैं विष्णु स्वामी के इष्ट तो अक्षरातीत और तीन सम्प्रदाय के इष्ट तो अक्षर ब्रह्म सो अक्षर कैसो षट् गुण जिन विषै है जिनके पास मुक्ति है चार प्रकार की । सालोक्य । सारूप्य । सामीप्य । सायुज्य, इन मुक्तिन मैं दोई मुक्ति हैं । सायुज्य, सामीप्य ।सो काहे तैं सायुज्य मुक्ति को प्राप्ति जाय अक्षर ब्रह्म के पास बैठे, और सालोक्य सारूप्य मैं जाय तो लीन होइ । अक्षर मैं जो लीन भयो तो सुख कहा, जैसे अग्नि मैं अग्नि मिल जाय तो कहू सुख कहा ---- ।'१

ग्रन्थ मैं पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तों का शास्त्रीय विवेचन किया गया है । भाषा परिमार्जित तथा संस्कृत निष्ठ है । स्थान-स्थान पर शास्त्रों के उद्धरण दिए गए हैं । लेखक के दार्शनिक विचारों का व्यवस्थित रूप इस ग्रन्थ मैं दृष्टिगत होता है ।

अन्त :- 'तो इतने मैं गीता के श्री मद् भागवत् के श्लोकन सों प्रमाण भयो सोऊ प्रमाण है, और इनसों विरुद्ध करै सो कछु न प्रमाण । इति श्री हरिराय जी कृत ब्रह्मस्वरूपाख्यान सम्पूर्णम् । श्री।श्री।श्री ।'२

---

(१) रतन लाल जी गोस्वामी, वृन्दावन वाले की प्रति ।
(२) वही ।

१०- <u>वल्लभ-ग्रन्थानुक्रम</u>

यह ग्रन्थ एक लेखानुरूप विज्ञप्ति ही है। इसमें वल्लभाचार्य जी के द्वादस ग्रन्थों की तुलना भगवान् श्रीनाथ जी के अंग-प्रत्यंगों से की गई है, यथा--

'कृष्णाश्रय वामचरणारविंद। सिद्धान्त रहस्य दक्षिण चरणारविन्द। नवरत्न वाम कुक्षा। - - -' १

इसमें रचयिता का कोई उल्लेख नहीं मिलता है किन्तु यह ग्रन्थ गोस्वामी हरिराय जी के नाम से ही जाना जाता है। ग्रन्थ संदिग्ध है।

११- <u>वैष्णवों के नित्य-निर्देश</u>

इस ग्रन्थ में भी ग्रन्थकार का नाम नहीं मिलता, किन्तु ग्रन्थ हरिराय जी के अन्य ग्रन्थों के क्रम में ही लिपिवद्ध है। ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति वृन्दावन से प्राप्त हुई है। विवरण द्रष्टव्य है :-

'पुष्टि-मार्ग वैष्णवों के नित्य कृत्य। कुल पृष्ठ १३। आकार १६ + १२ ३२ पंक्तियाँ प्रति पृष्ठ। प्रारम्भ इस प्रकार है :-

---

(१) रतनलाल जी गोस्वामी, वृन्दावन वाले की प्रति।

(२) वही।

'प्रात् काल खाट ते उठ रात्रि के वस्त्र उतार मुख धोह ।
आरसी में देख नमस्कार प्रभुन कों करि -----'।१
इसमें षट् घटिकाएं (खण्ड) हैं । ग्रन्थ संदिग्ध है ।

१२- स्वरूप निर्णय

उपर्युक्त ग्रन्थ की भांति इस ग्रन्थ में भी ग्रन्थकार का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु यह ग्रन्थ भी उसी संग्रह ग्रन्थ में गोस्वामी हरिराय जी के ग्रन्थ क्रम में ही समाविष्ट है । भाषा शैली में भी अन्य ग्रन्थों के समान है । यह ग्रन्थ ४१ पृष्ठों पर लिपिबद्ध है । प्रारम्भ इस प्रकार है:-

'श्री गोपीजन वल्लभाय नम: ।। अथ स्वरूप-निर्णयालिष्यते ।
ब्रह्मांहते और सबते पहिली बात कहयतु है । अरु नित्य
सिद्ध न को प्रागट्य कह अतु हैं । तहाँ पहलें तो एक मैवा
द्वितीय ब्रह्मणाश्रुति ते श्री ठाकुर जी कों स्वरूपान्यक ज्योतिमय
टिकानों - - - -'।२

ग्रन्थ की भाषा पर्याप्त अशुद्ध है । इसमें पुष्टि-मार्गीय 'सेव्य स्वरूपों' का वर्णन तर्क-वितर्क के आधार पर किया गया है । ग्रन्थ संदिग्ध है ।

---

(१) रतनलाल जी गोस्वामी, वृन्दावन वाले, की प्रति ।

(२) वही ।

१३- सूतक निर्णय

यह ग्रन्थ आकार में छोटा है । इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त होती हैं ।१ पुष्टि-मार्ग की मर्यादानुसार सूतक-निर्णय हेतु शास्त्र सम्मत विवेचन किया गया है, प्रारम्भ द्रष्टव्य है :-

'श्री कृष्णायनम: । अथ श्री हरिराय जी कृत सूतक निर्णय लिख्यते । प्रथम गर्भमास त्रय ३ पात होइ तौ मात्रा कौं त्रिरात्रि सूतक । मास उपरान्त ६ तक माता कौं रात्रि छह सूतक । कुटुम्बे स्नानैन शुद्धि: - - - ।'

अन्त :- 'माटी के मात्र कौं छूनौ नहीं । कोस दो सौ चालीस उपरान्त मृतक-सूतक स्नान मात्र शुद्धि होइ कुटुम्ब । इति श्री हरिराय जी कृत सूतक निर्णय: । शुभमवतु ।'२

यह ग्रन्थ कुल छ: पृष्ठों पर अंकित है । विवरण द्रष्टव्य है:-

हरिराय जी के पद संग्रह में अन्तिम पृष्ठों से पत्रा- १३३ से प्रारम्भ । आकार ८"+ ८" । १४ पंक्ति प्रति पृष्ठ । प्रति प्राचीन । ग्रन्थ प्रामाणिक है ।

१४- स्वामिनी जी के स्वरूप की भावना

शोध यात्रा में इस ग्रन्थ की अब तक हस्तलिखित दो प्रतियाँ

---

(१) -- सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध संख्या- ६२, पुस्तक संख्या- १ ।
-- निजी पुस्तकालय,नाथद्वारा, बंध संख्या- ७७, पुस्तक संख्या- १ ।

(२) वही ।

नाथद्वारा तथा बृन्दावन से प्राप्त हुई हैं। नाथद्वारा वाली प्रति जीर्ण तथा अपूर्ण है जबकि बृन्दावन वाली प्रति पूर्ण तथा व्यवस्थित है। बृन्दावन वाली यह प्रति एक संग्रह ग्रन्थ में संलग्न है। प्रारम्भ द्रष्टव्य है:-

> "श्री कृष्णाय नमः। अथ श्री हरिराय जी कृत भावना श्री ठाकुर जी श्री स्वामिनी जी के स्वरूप की लिख्यते। श्री ठाकुर जी अपनो स्वरूप कोटि कंदर्प लावर्ण धर्यो तब आरसी मैलि कैं अपनो स्वरूप निहार्यो। स्वरूप देखिकें मन में आई जो काहू साथ रास खेलि करिये। तब मन में विचार्यो जो हम समान तो कोऊ नांही। कोन सों खेलिये। तब अपनी इच्छा ते अपने श्री अंग ते श्री स्वामिनी जी प्राकट्य करी। अपने स्वरूप ते अधिक लावण्यता राखी। तहाँ श्री स्वामिनी जी के तेज तें ताकी किरनी गोपीजन प्रगट होत गई। तहाँ अलौकिक चन्द्र पवन सुगंध सहित उत्पत्ति भए।

अन्तिम-अंश:- "श्री महाप्रभु जी की कृपा बिन न होइ। अपनी प्रभुता कों सब चाहत हैं। पर जीव के हाथ तो कछू नांही। महाप्रभु द्वारा दोई प्रकार के जीव अंगिकार करने हैं। एक मोक्षस्थल के संबंधी हैं। एक रस लीला के संबंधी हैं। जिनको जैसो योग्य। तिनको तैसी बुद्धि देत हैं। महाप्रभु जी श्री गुसाईं जी के हाथ बात है। इति श्री हरिराय जी विरचित भावना - संपूरन" ।१

ग्रन्थ में राधा के स्वरूप का भावात्मक वर्णन किया गया है, जिन्हें सम्प्रदाय के मतानुसार "स्वामिनी जी" कहा गया है।

---

(१) श्री रतन लाल जी गोस्वामी, बृन्दावन वाले की प्रति।

उपरि विवेचित ग्रन्थों के अनुशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इन ग्रन्थों में निम्नलिखित ग्रन्थ संदिग्ध है :-

१- अधवासन की भावना ।
२- द्रव्य शुद्धि ।
३- प्रेम परीक्षा ।
४- वल्लभ ग्रन्थानुक्रम ।
५- वैष्णवों के नित्य कृत्य, तथा
६- स्वरूप निर्णय ।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त गोस्वामी हरिराय जी के कुछ ऐसे ग्रन्थ भी मिले हैं, जिनका अन्यान्य साहित्यकारों ने यत्र-तत्र नामोल्लेख मात्र ही किया है, किन्तु ये ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होते :-

उल्लिखित अप्राप्त ग्रन्थ :-

१- आचार्य महाप्रभु जी की द्वादस वार्ता ।१
२- कृष्णावतार स्वरूप निर्णय ।२
३- गुसाईं जी के चिन्तन कौ भाव ।३

---

(१) -- हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण,(भाग-२), पृ० ६२६
-- मिश्रबन्धु विनोद- (भाग-१), नाम १०६, --- पृ० ३४२
(२) वही ।
(३) वही ।

४- गद्यार्थ भाषा । १

५- चिन्तन ।२

६- छाक की भावना ।३

७- छप्पन भोग की भावना ।४

८- जप प्रकार ।५

९- ठाकुर जी के षोडस चिन्ह ।६

१०- भोला मारू की वार्ता ।७

११- तृतीय घर की उत्सव मालिका । ८

१२- नाम रत्न -स्त्रोत्र भाषा में ।९

१३- भगवती के लक्षण ।१०

१४- मार्ग स्वरूप सिद्धान्त ।११

१५- मार्ग शिक्षा ।१२

---

(१) मिश्रबन्धु विनोद (भाग-१), नाम १०६, --- पृ० ३४२

(२) महाप्रभु हरिराय जी नूं जीवन चरित्र , (गुजराती), -- पृ० ११६

(३) वही, तथा--

-- गो० हरिराय जी का पद साहित्य,(प्रकाशित), -- पृ० १३

(४) श्री द्वारकादास परिख एवं श्री मीतल जी की ग्रन्थ-सूची में ।

(५) वही ।

(६) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण,(भाग-२), पृ०६२९

(७) मिश्रबन्धु विनोद, (भाग-१), नाम १०६, --- पृ०३४२

(८) श्री प्रभुदयाल मीतल जी की ग्रन्थ-सूची में ।

(९) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, (भाग-२), पृ०६२९

(१०) मिश्रबन्धु विनोद, (भाग-१), नाम १०६ , --- पृ०३४२

(११) श्री द्वारकादास परिख एवं श्री प्रभुदयाल मीतल की ग्रन्थ-सूची में ।

(१२) वही ।

१६- सुदामा जी री बार खड़ी तथा -१

१७- वल्लभाचार्य जी के स्वरूप को चिन्तन ।२

इन सभी गद्य ग्रन्थों के अतिरिक्त गोस्वामी हरिराय जी कृत निम्नलिखित टीका ग्रन्थ भी प्राप्त होते हैं ।--

१- अन्त: प्रबोध सटीक ।
२- कृष्णाश्रय की टीका ।
३- गोकुलाष्टक की टीका । (प्रकाशित)
४- नवरत्न की टीका । (प्रकाशित)
५- पुष्टि प्रवाह मर्यादा की टीका ।
६- भक्ति वर्द्धिनी की टीका ।
७- भावबतानुक्रमणिका ।
८- निरोध लक्षण की टीका ।
९- मधुराष्टक की टीका ।
१०- मंगल चतुष्पदी की टीका,(प्रकाशित) ।
११- यमुनाष्ट पदी की टीका,(प्रकाशित) ।
१२- सिद्धान्त रहस्य की टीका ।
१३- स्वामिन्याष्टक की टीका । (प्रकाशित)
१४- सौन्दर्य पद्य की टीका । (प्रकाशित) तथा--
१५- अन्य स्फुट टीकाएँ ।

इन टीका ग्रन्थों में कुछ ग्रन्थ बहुत छोटे हैं । पुष्टि-मार्गीय विद्वानों के अनुसार तो महाप्रभु जी के द्वादस ग्रन्थों पर गोस्वामी हरिराय जी ने

---

(१) मिश्रबन्धु विनोद, (भाग-१), नाम १०६, -- पृ० ३४२

(२) वही ।

-- परिख जी तथा मीतल जी की ग्रन्थ सूचियों में भी ।

टीकाएँ लिखी हैं, किन्तु वे सभी टीकाएँ अब प्राप्य नहीं। वर्ण्य विषय की दृष्टि से इन सभी टीका-ग्रन्थों का सैद्धान्तिक महत्व ही है। अत: इनका पृथक् विवरण देना समीचीन प्रतीत नहीं होता।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि गोस्वामी हरिराय जी के मूल तथा प्रामाणिक गद्य ग्रन्थों की संख्या ३४ है। मूल तथा संदिग्ध ग्रन्थों को मिलाकर यह संख्या उन्चास हो जाती है। मात्र उल्लिखित सत्तरह ग्रन्थों को भी यदि इसमें मिला दें तथा चौदह टीका ग्रन्थों को भी सम्मिलित करदें तो यह संख्या अस्सी हो जाती है।

इन सभी ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ विद्वानों ने गोस्वामी हरिराय जी के कुछ और भी ग्रन्थों का उल्लेख किया है, किन्तु ये ग्रन्थ गोस्वामी हरिराय जी कृत नहीं हैं।

श्री प्रभुदयाल मीतल ने निम्नलिखित ग्रन्थ गोस्वामी हरिराय जी कृत लिखे हैं:-

१- महाप्रभु जी और गुसाईं जी के स्वरूप को विचार।
२- श्री गोकुलनाथ जी के बैठक चरित्र।
३- द्वादस निकुंज की वार्ता।
४- चरण-चिन्ह की भावना।

इनमें प्रथम ग्रन्थ 'महाप्रभु जी और गुसाईं जी के स्वरूप को विचार' गोस्वामी गोकुलनाथ जी कृत है। इस ग्रन्थ की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में गो० गोकुलनाथ जी का स्पष्ट उल्लेख किया है। १ गो० हरिराय जी कृत इस

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरोली, बंध संख्या- ६६, पुस्तक सं० १७।

इस नाम से अन्य कोई ग्रन्थ नहीं मिलता । इसी प्रकार 'गोस्वामी गोकुलनाथ जी के बैठक-चरित्र ' नामक ग्रन्थ की भी कोई प्रति दृष्टिगत नहीं होती । वैसे 'बैठक-चरित्र' नामक एक पुस्तक प्रकाशित है, उसमें गोकुलनाथ जी के भी बैठक-चरित्र दिए गए हैं, किन्तु इस ग्रन्थ में गोस्वामी हरिराय जी के बैठक-चरित्रों का भी वर्णन है । अत: यह ग्रन्थ गोस्वामी हरिराय जी कृत नहीं ।

इसी प्रकार श्री द्वारका दास परिख ने कुछ ऐसे ही ग्रन्थों का उल्लेख किया है, जो गोस्वामी हरिराय जी कृत नहीं :-

(१) लीला भावना ।
(२) नवग्रह की भावना, तथा--
(३) गोकुल नाथ जी को रास को प्रसंग ।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गो० हरिराय जी ब्रजभाषा के एक समर्थ गद्यकार थे । उनकी रचनाओं में हमें ब्रजभाषा गद्य का प्रारम्भिक स्वरूप तो मिलता ही है, साथ ही उसमें भावी गद्य के बीज भी अंकुरित होते आभासित होते हैं ।

गोस्वामी हरिराय जी ने गद्य साहित्य की रचना कर ब्रजभाषा-गद्य के अभाव को पूर्ण किया । उन्होंने भावना-ग्रन्थों से गद्य को अलंकृत स्वरूप प्रदान किया तथा सैद्धान्तिक ग्रन्थों से दुरूह विषयों को बोल-चाल की भाषा में व्यक्त कर गद्य के प्रति सामान्य-पाठक की रुचि बढ़ाई । दो सौ बावन और चौरासी वार्ताओं के प्रकाश में आने से हिन्दी साहित्य की अनेक समस्याओं का समाधान सुलभ होगया, यह गो० हरिराय जी के कठिन परिश्रम का ही परिणाम कहा जासकता है ।

पद्य -रचनाएँ :-

गोस्वामी हरिराय जी की काव्य रचनाओं के परिचय से पूर्व उनके काव्य में व्यवहित कवि 'छाप' की विवेचना कर लेना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। गोस्वामी हरिराय जी ने अपने विभिन्न पदों में अपनी अनेक छापों का प्रयोग किया है, प्रथम इसी सन्दर्भ में स्पष्टीकरण किया जा रहा है :-

-:: छा प ::-

गोस्वामी हरिराय जी ने अपनी पद्य रचनाओं में रसिक, रसिकराय, रसिक शिरोमणि, रसिक-प्रीतम आदि छापों (उपनामों) का प्रयोग किया है। श्री प्रभुदयाल जी मीतल ने अपने द्वारा सम्पादित पद-संग्रह में प्रयुक्त गोस्वामी हरिराय जी की छापों का उल्लेख करते हुए निम्नलिखित तालिका दी है :-

विषय	रसिक प्रीतम	रसिक	रसिक राय	रसिक शिरोमणि	रसिक दास	हरि-दास	अन्य	बिना नाम	जोड़
कृष्णलीला	२६६	१२६	२५	७	२४	८	६	२	५००
उत्सव-त्योहार	-	-	-	-	-	-	-	-	-
सम्प्रदाय सम्बन्धी	१३	७०	४	४	४१	१०	५	-	१४७
विनय	२	११	-	१	२	५	-	३	२४
अन्य	२	२	-	-	-	१८	२	५	२६
जोड़-	३१६	२०६	२६	१२	६७	४१	१६	१०	७००

श्री प्रभुदयाल जी मीतल द्वारा सम्पादित 'गोस्वामी हरिरायजी के पद-साहित्य' नामक ग्रन्थ में 'हरिराय' नामके चार पद प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त 'सनेह लीला' में भी प्रारम्भ में गोस्वामी हरिराय जी की यह छाप मिलती है :- 'एक समय व्रजबास की सुरति करी 'हरिराय'।

गोस्वामी हरिराय जी के सम्बन्ध में जिन विद्वानों ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं, सभी ने एक मत से उनके रसिक, रसिक प्रीतम, रसिकराय, रसिक-शिरोमणि आदि उपनामों (छापों) को स्वीकार किया है।

अन्त:साक्ष्य के लिए 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में गोस्वामी हरिराय जी ने भाव-प्रकाश में स्वयं का एक पद उद्धृत किया है।१ पद के अन्त में गोस्वामी हरिराय जी की 'रसिक' छाप निहित है।२ पद का तात्पर्य भी गोस्वामी हरिराय जी ने अपने भाव-प्रकाश में स्पष्ट किया है और अन्त में यह स्वीकार किया है कि रसिक छाप उन्हीं की है :-

> 'यह नवल छवि दूध पान करिवे के समय की शोभा ऊपर में-
> 'श्री हरिराय जी, 'बलिहारी जात हों' ।३

---

(१) गो० हरिराय जी प्रणीत- चौरासी वैष्णवन की वार्ता (तीन जन्म की लीला भावना वाली), संवत् १७५२ की प्रति- सम्पा० श्री द्वारकादास परिख, -- अग्रवाल प्रेस, मथुरा से मुद्रित, संस्करण तृतीय, पृष्ठ- ३

(२) हँसि हँसि दूध पीवत नाथ।
मधुर कोमल वचन कहि कहि, प्रानप्यारी साथ।
स्यामा स्याम की नवल छवि परि 'रसिक' बलि बलि जात।
-- वही, -- पृष्ठ- ३

(३) वही, पृष्ठ-४।

'चौरासी वैष्णावन की वार्ता' की इस प्रकाशित पुस्तक की आधार प्रति संवत् १७५२ की लिखी हुई है। इस प्रकार आधार प्रति का लेखन गोस्वामी गोस्वामी हरिराय जी के समय में ही हुआ था ।। 'बलिहारी जात हौं' वर्तमान की क्रिया है। इससे स्पष्ट होता है कि गोस्वामी हरिराय जी ने पदों में अपनी छाप (उपनाम) 'रसिक' का प्रयोग किया है।

रसिक शिरोमणि, रसिक प्रीतम, रसिकरायआदि छापें का प्रयोग कवि ने प्राय: पाद-पूर्ति के लिये ही किया है। उनकी मुख्य छाप 'रसिक' ही है। इनके अतिरिक्त 'हरिदास' छाप का प्रयोग उन्होंने प्राय: संस्कृत तथा गुजराती पद-रचनाओं में किया है। कुछ व्रजभाषा के पदों में भी उनकी यह छाप समाविष्ट है।

'गिरधर लाल जी के १२० वचनामृत' नामक ग्रन्थ में भी गोस्वामी गिरधर लाल जी ने गोस्वामी हरिराय जी की रसिक छाप का उल्लेख किया है।१ यह ग्रन्थ प्रकाशित है तथा सम्प्रदाय के मान्य ग्रन्थों में से एक है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की खोज रिपोर्ट में गोस्वामी हरिराय जी की छापों के सम्बन्ध में लिखा है, 'रसिक शिरोमनि' हरिराय जी का उपनाम है। इनके रसिकराय, रसिक प्रीतम आदि और भी नाम प्रख्यात हैं।'२

---

(१) 'और श्री हरिराय जी ने कीर्तन किये हैं तामें रसिकराय की छाप धरी है।' -- श्री गिरधर लाल जी के १२० वचनामृत,
-- सम्पा० लल्लूभाई छगन लाल देसाई, प्रथम संस्करण संवत् १९७६, (अहमदाबाद), वचनामृत-३१, पृ० ५६

(२) हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का सोलहवां त्रै-वार्षिक विवरण- पृ०१३८ ।

शोध में प्राप्त गोस्वामी हरिराय जी के सभी पद-संग्रहों में उपर्युक्त छापों का प्रयोग मिलता है। उनकी उपरि विवेचित छापों में केवल `रसिकदास` छाप संदिग्ध है। इस छाप का उन्होंने कुछ भी पदों में प्रयोग किया है। इस छाप के पद `सम्प्रदाय सम्बन्धी` अधिक हैं। `रसिक दास` छाप श्री गोपिकालंकार (मट्टू जी) महाराज की भी है। मट्टू जी ने अपने समस्त पदों में इसी छाप का प्रयोग किया है। मट्टू जी महाराज गो० हरिराय जी के परिवर्ती आचार्य थे तथा गोस्वामी हरिराय जी के परम-भक्त भी थे। इन्होंने अन्य आचार्यों की `बधाई की भाँति गो० हरिराय जी की भी बधाइयाँ लिखी हैं। इनका एक संग्रह-ग्रन्थ प्रकाशित भी है।१

गोस्वामी हरिराय जी के प्रकाशित पद संग्रह में सम्पादक श्री प्रभुदयाल मीतल ने `रसिकदास` छाप के अनेक संदिग्ध पद भी संग्रहीत कर दिए हैं। इनमें अधिकांश पद श्री गोपिकालंकार जी (मट्टू जी) महाराज के लिखे हुए हैं। श्री मट्टू जी महाराज की इस छाप का उल्लेख श्री गिरधरलाल जी के वचनामृतों में भी हुआ है।२ श्री प्रभुदयाल जी मीतल के संग्रह में सम्पादित निम्न-लिखित कुछ पद श्री मट्टू जी महाराज के पद-संग्रह में भी प्राप्त हैं :-

हौं वारी इन वल्लभियन पर ।।३

-- श्री मीतल जी का संग्रह- पद संख्या- ६४१

---

(१) श्री गोपिकालंकार जी मट्टू जी महाराज के ३२ वचनामृत तथा पद-संग्रह -- सम्पादक लल्लूभाई छगनलाल देसाई, अहमदाबाद।

(२) श्री गिरधर लाल जी के १२० वचनामृत, सम्पादक वही, पृष्ठ- ६०,

(३) श्री गोपिकालंकार जी मट्टू जी महाराज के ३२ वचनामृत, सम्पादक वही, --पद सं० ४४, पृष्ठ- २३।

मिले कब श्री वल्लभ के प्यारे ।१

-- श्री मीतल जी का पद-संग्रह, पद सं० ६४२

हौं हरिदास वर्य पैं वारी ।२

-- श्री मीतल जी का पद-संग्रह, पद सं० ५०३

करियै श्री सर्वोत्तम रस-पान ।३

-- श्री मीतल जी का पद-संग्रह, पद सं० ६४७

उपर्युक्त पद गोस्वामी हरिराय जी रचित पद संग्रह के सम्पादित संस्करण मैं संगृहीत हैं तथा अन्य स्थलों पर भी इनका उल्लेख गोस्वामी हरिराय जी कृत के रूप में ही मिलता है। अत: ऐसे पदों को `मट्टू जी महाराज` द्वारा रचित मान लेना भी समीचीन प्रतीत नहीं होता। हो सकता है कि मट्टू जी महाराज के संग्रह मैं भी संग्रह कर्ता की असावधानी वश ये पद सम्पादित हो गए हों। इस प्रकार `रसिक दास` छाप के पद विवादास्पद ही हैं।

श्री प्रभुदयाल जी मीतल द्वारा सम्पादित पद संग्रह मैं कुछ ऐसे पद भी संगृहीत हैं जो अन्यान्य कवियों के नाम से जाने जाते हैं :-

---

(१) श्री गोपिकालंकार जी मट्टू जी महाराज के ३२ वचनामृत तथा पद-
-- सम्पादक लल्लूभाई छगनलाल देसाई, अहमदाबाद, पद सं० ४५,
--पृष्ठ सं० २४

(२) वही, पद संख्या- ५२, -- पृष्ठ सं० २६

(३) वही, पद संख्या- ५६, -- पृष्ठ सं० २८ ।

वे हरिनी हरिनी न रहाईं ।
जिन तन कृपा कटाच्छ चितै तुम, अपने ढिंग बैठाई ।
जिन गुन सिंधु जाति हरि मूरति, कृष्णसार तजि आईं ।
- - - - - - - - - -।
'रसिक प्रीतम' करुना तैं तिनहूं गोपिन की गति पाई ।१

श्री प्रभुदयाल जी मीतल ने अपने सम्पादित ग्रन्थ में गोस्वामी हरिराय जी की 'रसिकराय' तथा 'रसिकदास' छाप के लिये निम्नलिखित पद उद्धृत किया है :-

रसिक राय विनती कीन्हीं , रसिकदास छाप दीन्हीं ।
श्री वल्लभ रटत हिऐं , और पंथ त्यागे । (पद सं० ५४८)

किन्तु अन्यत्र पाठ इस प्रकार मिलता है :-

रसिकराय विनती कीन्हीं दास छाप दीन्हीं ।२

यहाँ पर छाप का अर्थ उपनाम से नहीं ग्रहण किया जा सकता, किन्तु 'दास' छाप दासत्व का बोधक है ।

---

(१) किंचित पाठ भेद इस प्रकार है :-
वे हरिनीं हरिनिंदि न जाईं
जिन पर कृपा कटाच्छ चितै तुम अपने ढिंग बैठाई
जिन अपने नैनति मोहन कौं गोपिन सुरति दिखाई ,
- - - - - - - - ,
परमानन्द स्वामी करुना तै गोपिन की गति पाई ।
--देखिए :- परमानन्द सागर- सम्पा० डा० गोवर्द्धननाथ शुक्ल, पद ८५८
(२) वर्षोत्सव के पद, सम्पा० लल्लूभाई छगन लाल देसाई(भाग-२), पृ० २४१ ।

'नव-विलास' नामक पद्य रचना में गो० हरिराय जी की 'रसिकदास' छाप का प्रयोग मिलता है ।१ यह रचना प्रामाणिक है । इससे सिद्ध होता है कि गोस्वामी हरिराय जी ने 'रसिकदास' छाप का प्रयोग कुछेक रचनाओं में किया अवश्य है ।

> उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गोस्वामी हरिराय जी ने अपनी पद-रचनाओं में रसिक, रसिक प्रीतम, रसिक-शिरोमणि , रसिकराय, हरिदास, रसिकदास आदि छापों का प्रयोग किया है ।

गोस्वामी हरिराय जी ने अनेक काव्य कृतियों का सृजन किया है । इनमें उन्होंने स्फुट पद अधिक लिखे हैं, जिनके विभिन्न हस्तलिखित संग्रह प्राप्त होते हैं, इन प्राप्य पद संग्रहों का विवरण दृष्टव्य है :-

-:: स्फुट - पद ::-

गोस्वामी हरिराय जी के पदों को सर्व प्रथम श्री प्रभुदयाल मीतल ने अग्रवाल प्रेस मथुरा से संवत् २०१८ में संकलित कर प्रकाशित किया था । इस संकलन का आधार श्री मीतल जी ने मथुरा संग्रहालय की (सं० १६२१- की) हस्तलिखित प्रति तथा रतन लाल गोस्वामी, वृन्दावन की तीन हस्तलिखित प्रतिलिपियों को माना है ।

रतन लाल जी गोस्वामी पाकिस्तान विभाजन के समय डेरा गाजी खान से भाग कर वृन्दावन आए थे । ये महोदय 'लाल जी की गद्दी' (जिसे

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य,(प्रकाशित), भूमिका से।

ये वल्लभ सम्प्रदाय की आठवीं गद्दी मानते हैं) के आचार्यों के वंशानुयायी हैं। पाकिस्तान छोड़ते समय ये यथा सम्भव गृह-वस्तुओं के साथ अपने पूर्वजों के संगृहीत ग्रन्थों को भी ले आए थे। उन्हीं ग्रन्थों में गोस्वामी हरिराय जी के पदों की तीन संकलित पोथियाँ भी प्राप्त हुई हैं, जिसका विवरण श्री मीतल जी ने अपने ग्रन्थ में दिया है।१ श्री मीतल जी ने रतन लाल गोस्वामी की प्रतियों का लिपिकाल नहीं दिया है, और लिखा है कि 'इनमें लिपिक के नाम और लिपिकाल का भी उल्लेख नहीं किया गया है।२ किन्तु रतन लाल गोस्वामी जी की उक्त 'पूर्णप्रति' में लिपिकाल का उल्लेख मिलता है।३ इन सभी प्रतियों में गोस्वामी हरिराय जी के जो पद मिले हैं वे पर्याप्त अशुद्ध लिखे गए हैं, इनमें नित्योत्सव के ही पद संगृहीत हैं। इन आधार प्रतियों के आधार पर सम्पादित श्री मीतल जी के संग्रह में कुछ पद ऐसे भी मिलते हैं जो अन्य कवियों के लिखे हुए हैं, किन्तु उन पदों के अन्तिम चरण हटा कर उनको गोस्वामी हरिराय जी के नाम से ही प्रस्तुत कर दिये हैं, यथा :-

त्रिय बागो ललिता ही दियो, स्यामा पति सुघर सुजान,
रसिक रूप धरि केलि करी, सुख सागर प्रानन - प्रान ।।४

'प्रस्तुत पद में 'रसिक' विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। इस पद की दो पंक्तियाँ और भी शेष हैं जो श्री मीतल जी के संग्रह में समायोजित नहीं।-

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य - दृष्टव्य- भूमिका।

(२) वही, पृष्ठ- ५ ।

(३) 'संवत् १८५४ मिती फागवदी १२ बारह के दिन मोहन मुरारी सुमरण को उछव सोमवार--' । -- श्री रतन लाल जी की 'पूर्ण प्रति' में
--प्रारम्भिक कथन ।

(४) गो० हरिराय जी का पद साहित्य,(प्रकाशित), पद सं० ३६५ ।

सरद निसा सुख इति विधि राधा माधव बनित बिहार ,
सोभा पर बलि जाय`स्याम घन` अवलोकत सुखसार ।।१

इस प्रकार यह निर्णय पूर्वक कहा जासकता है कि उपर्युक्त पद स्यामघन कृत ही है, इसी प्रकार पद सं० ३६६ में हरिदास प्रभु की यह शोभा निरखत मन न अघाय` जैसी छाप वाले पद गोस्वामी हरिराय जी के नहीं जान पड़ते ।

गोस्वामी हरिराय जी कृत दान लीला की प्राय: सभी प्रतियों में प्रारम्भ इस प्रकार दिया गया है :-

तुम नन्द महर के लाल, मोहन जान दैं ।
रानी जसुमति प्रान अधार, मोहन जान दैं ।।२

मीतल जी के सम्पादित संग्रह में सन्निहित हरिराय जी की दान लीला में उक्त दो पंक्तियां नहीं मिलतीं । इस प्रकार श्री मीतल जी के सम्पादित ग्रन्थ में अनेक विभेद दृष्टिगत होते हैं ।

-:: हस्तलिखित - प्रतियां::-

श्री प्रभुदयाल मीतल की आधार प्रतियों के अतिरिक्त और भी अनेक हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त होती हैं, जिनमें गोस्वामी हरिराय जी के पदों को संकलित किया गया है । इन विविध प्रतिलिपियों का विवरण दृष्टव्य है ।-

---

(१) वर्षोत्सव, प्राचीन प्रति, पृष्ठ- ४० (लेखक के निजी संग्रह से),
(२) वर्षोत्सव, वही, पृष्ठ-२२३ ।

कांकरोली विद्या विभाग के सरस्वती भंडार से गोस्वामी हरिराय जी के तीन हस्तलिखित पद संग्रह उपलब्ध हुए हैं, जिन्हें अ, ब तथा स से सम्बोधित किया जा रहा है :-

(अ) ग्रन्थागार की विषय सूची में इस ग्रन्थ का नाम कीर्तन संग्रह `नित्य पद` है। ग्रन्थकार के स्थान पर `रसिक` लिखा है।१ यह गोस्वामी हरिराय जी के पदों का संग्रह ग्रन्थ है। इसमें नित्य सेवा के ही पद हैं, विवरण दृष्टव्य है :-

पद संग्रह। गोस्वामी हरिराय जी कृत। आकार ६।।"+ ३।।"। ६ पंक्तियाँ प्रति पृष्ठ। ब्रजभाषा। लेखन प्राचीन। कुल पत्रा ५६ (पृष्ठ- ११८), कुल पद १६३।

प्रारम्भ :- `श्री गोकुलेन्दु।। नित्य के पद। मंगला चरन।
राग रामकली। मेरि मति राधिका चरन रज
में रहो। ---, `रसिक` वल्लभ चरन कमल जुग
परिसरन, आस धरि यह महा पुष्टी पथ
फल कहो।२
श्री यमुना जी स्तवन।। श्री यमुना जी तुमसी
और न सोइ। ---, ३

यमुना जी के इस पद में अन्य प्रतियों में `सोइ` के स्थान पर `कोई` मिलता है और वही उपयुक्त भी है। इन पदों के पश्चात् `आचार्य जी के पद लिखे गए हैं, जिनमें महाप्रभु श्री बल्लभाचार्य जी के प्रति कवि का दैन्य दृष्टिगत होता है, यथा :-

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरोली, बंध सं० १२, पुस्तक सं० ६।

(२) देखिये-- गो० हरिराय जी का पद साहित्य, (प्रकाशित), पद सं० ६५७ -- तदनुरूप।

(३) वही, पद सं० ५०६।

- श्री वल्लभ श्रीवल्लभ गाऊँ ,
- मोरे श्री वल्लभ कहिएँ --- ,

इसके उपरान्त `वन को प्रबोध ` सुरतान्त । खंडिता । मान । बाल भोग । श्रृंगार । दरपन को पद । उराहने को पद । गाय चरावन । पलना तथा राजभोग शीर्षक पद हैं ।

प्रस्तुत पद संग्रह में श्रृंगार-परक पद अधिक हैं, संयोग श्रृंगार के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं :-

भोर भये आरस भोरन मिस
पिय प्यारी रहे दोऊ लपटाय
अन्तर नैंक न रह्यो उनमें -
मिल कैं एक सरूप लखाय ।
वदन कमल आमोद लैन को -
मधुकर `रसिक ` तहाँ ढिंग जाय
यह छवि निरखत सखी वृन्द मैं
आनंद उर न समाय ।।१

+ + +

मीड़त नैन उठि दोऊ कर, करि आरस भोरत भुज जोरैं ,
लोग चवाव करनि उर डरपति, बोले खगजहाँ तहाँ चकु ओरैं ।
प्रिय जैहों हों अपने भुवन, पहुँचाय मोहे मर बिन भोरैं ,
`रसिक प्रीतम` रस बस करि राखी, कुंज भवन करि निपट निहोरैं ।।२

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरोली, बंध संख्या १२, पुस्तक सं० ६, पत्रा ५
(२) वही ।

लाज भरी अखियाँ मुख देखत सुरत भई, रति की हँसि देति,
अरुन नैंन दोऊ निशि जागर के फपकत विफुक जमाईं लेति,
कबहुक आय परत पीतम परि मैटति अति अरमान समैटि,
'रसिक पीतम' प्यारी छवि परि बलि जैये देखत परस्पर हेत ।

इस तरह के शृंगार प्रधान पद इस संग्रह ग्रन्थ में अधिक हैं । खंडिता, सुरतान्त तथा मान के पद अत्यन्त सुन्दर हैं । इस ग्रन्थ में कुछ पद ऐसे भी हैं जो शोध में सर्व प्रथम उपलब्ध हुए हैं :-

-- चौपर खेलत हैं पिय - प्यारी ।
-- देखौं मैं स्याम अटपटो रूप ।
-- मोहे गोपाल कछु टोना कीन्हों ।

इस प्रकार के और भी पद प्राप्त होते हैं । इस संकलन का अन्तिम पद अधूरा है :-

अखियाँ हारी हो
कहाँ बसे तुम सब निसि मोहन , मो अब दई विसारी हो,
- - - - - - - - - -

ग्रन्थ में पुष्पिका नहीं दी है, अत: लिपिकार तथा लिपिकाल का निश्चित निर्देश नहीं मिलता । पुस्तक की जिल्द पर चिपका हुआ कागज किसी 'हिसाब की बही' का है, जिसमें संवत् १७७७ का लेखन है । इससे स्पष्ट होता है कि ग्रन्थ संवत् १७७७ के पश्चात् लिपिबद्ध हुआ होगा । लेखन की दृष्टि से ग्रन्थ लगभग २०० वर्ष पुराना प्रतीत होता है । लेखन पर्याप्त अशुद्ध है, किन्तु पठनीय है ।

इस संग्रह ग्रन्थ में रसिक व रसिक प्रीतम छाप के पदों की संख्या ही अधिक है। वैसे `रसिक शिरोमनि`, `रसिक राय` आदि छाप के पद भी एक-दो ही मिलते हैं। इस संग्रह ग्रन्थ में रसिकदास छाप का एक भी पद नहीं मिलता।

(ब) कीर्तन संग्रह नाम से यह पदों का एक वृहद् संग्रह है। इसमें विविध कवियों के पद संग्रहीत हैं।१ ग्रन्थ की जिल्द पर रचयिता के स्थान पर गोस्वामी हरिराय जी का उल्लेख है, किन्तु इसमें गोस्वामी हरिराय जी के ३२ पद ही हैं। इनमें रसिक, रसिक प्रीतम, रसिकराय, आदि छापों का प्रयोग किया गया है, विवरण द्रष्टव्य है :-

कीर्तन संग्रह । हरिराय जी कृत । कुल पत्रा २१ (पृष्ठ-४२) । कुल पद ७० । १० पंक्तियाँ प्रति पृष्ठ । आकार ६।।।" + ५।।।"।

इस ग्रन्थ में सूरदास, द्वारकेश, वृजाधीश, प्रीतम, हरिदास, विष्णुदास आदि विविध कवियों के पद प्रथम खण्ड में हैं। दूसरे खण्ड में भी अन्यान्य कवियों के नित्य के पद संग्रहीत हैं।

प्रथम खण्ड में गोस्वामी हरिराय जी के ३२ पद हैं, जोकि श्री मीतल जी के सम्पादित संग्रह में भी उपलब्ध होते हैं। इस संग्रह ग्रन्थ में प्रथम खण्ड के अन्त में गोस्वामी हरिराय जी का ही पद है :-

पदान्त-- `रसिक` कहैं आस इनकी करि,
वल्लभियन की चरन रजि अनुसरि ।।

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरोली, बंध संख्या- २६, पुस्तक सं० ४ ।

उक्त पद के आगे कुछ पत्रावों को छोड़कर दूसरा खण्ड प्रारम्भ होता है, इसमें भी गोस्वामी हरिराय जी के कुछ पद सन्निहित हैं :-

श्री वृन्दावन बन-कुंजन ठाढ़े उठि मोर ।
वाहैं जोरि वदन मोरि हंसत सुरत इनकी ओर ।।
- - - - - - - - - - ।
`रसिक प्रीतम` छवि निहारि उदयो जनु घन विचारि ।
बार बार उमगि उमगि बोलत है मोर ।।१

इस संग्रह ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड के अन्त में सगुनदास का पद दिया गया है:-

सगुनदास कहैं रसिक जूथ मिलि गिरधर महल विराजैं ।।

अन्त के १० पत्रा रिक्त हैं । पुष्पिका नहीं दी गई है । ग्रन्थ का लेखन अधिक प्राचीन प्रतीत नहीं होता । इस संग्रह में `रसिक दास` छाप के पद नहीं मिलते ।

(स) इस पद संग्रह में आश्रय के तथा नित्य के पद हैं । ग्रन्थ अपूर्ण तथा जीर्ण है । विवरण द्रष्टव्य है :-

पद संग्रह । गोस्वामी हरिराय जी कृत । आकार ८"+ ७"। १० पंक्ति प्रति पृष्ठ । लेखन प्राचीन । अपूर्ण ।

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध संख्या- २६ , पुस्तक सं० ४, पत्रा-८ ।

इस ग्रन्थ में पत्रा ४० तक अष्टछापी कवियों के विविध पद हैं। पत्रा ४१ से गोस्वामी हरिराय जी के पद प्रारम्भ होते हैं, यथा :-

'अब हरिराइ जी के पद लिख्यते। राग भैरव। दीनों दरस सुपने में आइ - - -।'

प्रारम्भ में अधिकांश आश्रय के पद हैं, यथा --

-- हरि के विमुखन कौ मुख जिन दिखावै।
-- नाथ हा हा मौहि दरस दीजै।
-- नैंक बोलौं नाथ अमृत रस बैंन।

इनके अनन्तर श्रृंगार रस के भी सुन्दर पद दिए गए हैं,-

-- पिया बिन जागत रैंन गई,।
-- पिय हू कौं राखति हैं निसदिन।
-- कहा तू अरि रही री।

इन पदों के पश्चात वल्लभाचार्य जी के आश्रय के पद अंकित हैं,--

-- बलि बलि जाउ श्री वल्लभ नाथ।
-- रह्यौ मौहि श्री वल्लभ गृह भावै।

इसके उपरान्त गाय चरावन के, बाल-लीला, श्रृंगार आदि के विविध पद संगृहीत हैं। इस ग्रन्थ के प्राय: पद श्री मीतल जी के सम्पादित संग्रह में भी प्राप्त होते हैं, किन्तु कुछ पद नवीन भी प्राप्त होते हैं :-

-- अब रे मैं जानी इन दूजै ठानी।
मेरौ लाल सौतन बस कीनौ सो मैं जिय पहिचानी।
कैसैं करौं कित जाऊं मेरी सजनी प्रीतम यह विधि ठानी।

'रसिक प्रीतम' कोऊ आनि मिलावौ, राखौंगी नैन समानी ।

\+ \+ \+ \+

चरन कमल की चेरी , छाइहु लाला नन्द के ।।

ऐसे पदों की संख्या बहुत ही कम है । इस संग्रह ग्रन्थ में गोस्वामी हरिराय जी के कुल २५ पद हैं । इन पदों में प्राय: रसिक, रसिक प्रीतम आदि छाप ही मिलती है । 'रसिक दास' छाप का कोई भी पद प्राप्त नहीं होता ।

उपरिनिर्दिष्ट अ, ब, स, तीनों प्रतियों में प्रति 'अ' विशेष महत्वपूर्ण है, किन्तु 'ब' एवं 'स' में भी कुछ पद नवीन मिलते हैं तथा पाठ-शुद्धि के लिये इनका उपयोग किया जा सकता है ।

गोस्वामी श्री ब्रजेश कुमार जी की प्रति :-

यह हस्तलिखित पद संग्रह वल्लभ सम्प्रदाय के वर्तमान तृतीय पीठाधिपति गोस्वामी १०८ श्री व्रजभूषण लाल जी महाराज के सुपुत्र श्री व्रजेश कुमार जी के निजी संग्रह से उपलब्ध हुआ है । विवरण द्रष्टव्य है :-

पद संग्रह । गोस्वामी हरिराय जी कृत । आकार ३४ + २१ सें० मी० । कुल पत्रा ६१ । २६ पंक्ति प्रति पृष्ठ । लेखन सुन्दर व प्राचीन । प्राप्य स्थान बड़ौदा । कुल पद ४५३ ।

इस संग्रह में प्रारम्भ से पत्रा ५६ तक गोस्वामी हरिराय जी के ही पद सम्पादित किए गए हैं । लिपिकार कोई गुर्जर भाषी प्रतीत होता है, फलत: यत्र-तत्र लेखन में अशुद्धियाँ विद्यमान हैं । अन्त में पद सं० ४५३ के पश्चात् लिखा है :- 'इति श्री हरिराय के पद सम्पूर्ण ।'

पत्रा ५६ की १५ वीं पंक्ति के पश्चात् चार और भी पद हैं, इनमें पहला पद नंददास का, दूसरा हरिराय जी का, बाद के दोनों पद नन्ददास के हैं। अन्तिम पृष्ठ पर छीत स्वामी का एक बृहद-पद है, छीत स्वामी का यह पद किसी अन्य लिपिकार का लिखा हुआ ज्ञात होता है। लेखन पहले से भिन्न है। लिपिकाल तथा लिपिकार का कुछ भी उल्लेख नहीं है।

इस संग्रह में गोस्वामी हरिराय जी की, रसिक, रसिकराय, रसिक चरण, रसिक-सिरोमणि, रसनिधि, दास-रसिक व हरिदास, छापों का प्रयोग हुआ है। समस्त संग्रह में रसिक दास छाप का एक भी पद नहीं है।

इस संग्रह में लगभग ६० ऐसे पद मिले हैं जो सर्वथा नवीन हैं, कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं :-

-- कहा करौ हरि दूरि रहे -- ।
-- गाय चरावन की फेर ब्रज आमन की -- । १
-- सखी हरि मनहरि कहा उगायौ -- ।२
-- अजहू न आयौ पिय परदेशी -- ।३
-- पिय बादर वरसत दोऊ -- ।४

---

(१) गो० ब्रजेश कुमार जी का संग्रह, पत्रा ४६ ।
(२) वही, । --
(३) वही, -- पत्रा ५१ ।
(४) वही, -- पत्रा ५८ ।

-- ऐमन तू वल्लभ जू के चरन सरन जाइ -- ।१
-- कैसे सहै जसुमाई तेरो लाल -- ।२
--- आदि ।

उपर्युक्त पद-संग्रह ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेकों अन्य साम्प्रदायिक कीर्तन संग्रहों में गोस्वामी हरिराय जी के पद मिलते हैं। नित्य कीर्तन, वर्षोत्सव, वसंतधमार, कीर्तन-कुसुमाकर आदि प्रसिद्ध पद-संग्रहों में इनके पद भी निहित हैं। इनमें बहुत से ऐसे पद हैं जो गोस्वामी हरिराय जी के प्रकाशित संग्रह में नहीं आ सके हैं।३

उपरिविवेचित संग्रह ग्रन्थों के अतिरिक्त नाथद्वारा में श्रीनाथ जी के मन्दिर स्थित `निजी पुस्तकालय` में भी गोस्वामी हरिराय जी के कुछ पद संग्रह प्राप्त हुए हैं। निजी पुस्तकालय के संरक्षक `टीकैत` गोस्वामी श्री गोविन्द लाल जी हैं। यह उनका वैयक्तिक ग्रन्थागार है। जिसमें सैकड़ों प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ निहित हैं। पुष्टि-मार्गीय साहित्य के लिये यह ग्रन्थाकार विशेष उपयोगी है। लेखक को यहाँ से निम्न-लिखित सामग्री प्राप्त हुई है, --

यहाँ से प्राप्त तीन पद संग्रह उल्लेखनीय हैं,--

(१) `हरिराय के पद`, इस ग्रन्थ का नाम दिया गया है। रचयिता के स्थान पर गोस्वामी हरिराय का उल्लेख है,४

---

(१) गो० ब्रजेश कुमार जी का संग्रह, पत्रा २० ।
(२) वही, -- पत्रा ३८ ।
(३) लेखक के निजी संग्रह में संगृहीत ।
(४) निजी पुस्तकालय, नाथद्वारा, बंध संख्या- १७, पुस्तक सं० ३ ।

ग्रन्थ परिचय :- कुल पत्रा १६५ । २० पंक्तियाँ प्रति पृष्ठ । नाप- ६" + १२" । लेखन प्राचीन व सुस्पष्ट । लेखनकाल तथा लिपिकार का उल्लेख नहीं हैं । प्राप्ति स्थान `निजी पुस्तकालय` नाथद्वारा, (मेवाड़)।

ग्रन्थ में सर्व प्रथम अष्ट-छापादि कवियों के पद संगृहीत हैं । तत्पश्चात् गोस्वामी हरिराय जी के पद हैं - यथा--

`अथ श्री आचार्य जी के उत्सव के पद राग देवगंधार ।। भूतल महा महोच्छव आज ------ रसिक सिरोमनि

सदा विराजै श्री वल्लभ सिरताज ।

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के आश्रय के कुल ४० पद हैं --

-- सबहु मिलि गावहु गीत बधाई ।
-- श्री वल्लभ मुख-कमल की हौं बलि बलि जाऊं ।
-- देखौगे कब मेरी ओर ।
-- श्री वल्लभ मधुराकृत मेरे । आदि --

इन पदों में प्राय: `रसिक` छाप ही है । पद संख्या २६ में रसिकदास छाप है, हरिधन, हरिदास तथा दास छाप के एक दो ही पद हैं ।

इसके पश्चात् कृष्ण जन्म का वृहद् पद है, बाल-लीलाओं के और भी अनेक सुन्दर पद हैं :- यथा---

-- जनम सुत कौ होत ही ।
-- गोपी जन मन आनंद भयौ ।
-- जसुमति सुत जनमि सुनि ।

जन्म के पश्चात् पालने के पद हैं :-

-- झूलौ पालनै नंदनन्द ।
-- जसुमति सुत कौं पालनैं झुलावै ।
-- जसुमति सुत विलसत नंदरानी ।
-- ब्रजरानी हो । सुत पालना झुलावै ।१

पालनै के कुल नौ पद हैं। इसके पश्चात् राधा जन्म के पद हैं यथा-

-- महारस पूरन प्रगट्यौ आनि ।
-- अति फूली घर घर ब्रजनारि राधा प्रगटी जानि ।
- - - - - - - - - - ।
रसकी निधि जो रसिकराय ब्रज करहु विरहु दुख हानि ।
-- राधा रावल प्रगट भई, २

राधा जन्म के पदों के पश्चात् दसहरा, प्रबोधिनी, तथा गुसाईं जी की बधाई के पद हैं। ३ पत्रा ८५ से वसंत के पद दिए गए हैं। यथा-

-- मन तजौ भजौ कंत रितु बशंत आयौ । -- आदि

कुछ पद विरह के हैं। ४

---

(१) निजी पुस्तकालय, नाथद्वारा, बंध सं० १७, पुस्तक सं० ३ पत्रा- ७६
(२) वही , -- बंध सं० १७, पुस्तक सं० ३ पत्रा- ७८
(३) वही , -- बंध सं० १७, पुस्तक सं० ३ पत्रा- ८४तक
(४) वही , -- -- पत्रा- ८६तक

इस संग्रह ग्रन्थ में उक्त पदों के पश्चात् परमानन्द दास के पदों का संग्रह दिया गया है।१ इसके अनन्तर गुजराती भाषा में गोस्वामी हरिराय जी कृत `मरम` नामक ग्रन्थ सन्निहित है। इस ग्रन्थ के आगे भी गो० हरिराय जी के संस्कृत पद दिए गए हैं। संस्कृत पदों के अन्त में लिखा है :- `इति श्री हरिदास विरचितं स्व स्वामिनी निरूपणाष्टकम्

सम्पूर्ण ।। श्री हरि ।।'

अन्तिम पृष्ठों में अन्य कवियों के भी कुछ पद हैं।

इस संग्रह में गोस्वामी हरिराय जी के लगभग एक सौ पचास पद प्राप्त होते हैं, जो प्राय: श्रीमित्तल जी के सम्पादित संग्रह में समाविष्ट हैं। इसमें अधिकांश नित्य तथा वर्षा के पद दिए गए हैं।

(२) `हरिराय जी के भाषा-पद`, नामक पद-संग्रह में गोस्वामी हरिराय जी के पदों को अंकित किया गया है। ग्रन्थ में रचयिता के स्थान पर `गो० हरिराय जी` लिखा हुआ है। २ विवरण द्रष्टव्य है :-

हरिराय जी के भाषा पद। आकार ६"+ १४"। २१ पंक्ति प्रति पृष्ठ। कुल पद ५०१। कुल पत्रा १२५, (पृष्ठ २५०)। लेखन काल संवत् १८३०। लिपिकार ब्रजमोहन दास। लिपि स्थान श्रीनाथद्वारा।

ग्रन्थ का प्रथम पत्रा नहीं है। प्रारम्भ का पद बड़ा है, और प्रथम पत्रा न होने से उसके ६ बंद नहीं हैं। प्रारम्भ इस प्रकार है :-

---

(१) निजी पुस्तकालय,नाथद्वारा , बंध संख्या- १७, पत्रा सं० १३६ तक

(२) वही, -- बंध संख्या- १७, पुस्तक सं० ५।

'सुनत ही भई मुदित गोपी जसोदा सुत पाई ।
वसन सकल सिंगारि भूषन आदि तन भूषाई'।

इस संग्रह ग्रन्थ के प्रारम्भ में कृष्ण जन्म के पद हैं। इसमें कुल पद ५०१ हैं, किन्तु ब्रजभाषा के पद कुल(४६०) चार सौ साठ ही हैं।१ अन्तिम पद श्री यमुना जी से सम्बन्धित है :- 'कहत सुखसार निरधार करिकैं -- । इसके पश्चात् गोस्वामी हरिराय जी कृत संस्कृत पद दिए गए हैं।

इस संग्रह ग्रन्थ में गोस्वामी हरिराय जी के कुछ नए पद भी प्राप्त होते हैं :-

आयौ री मेह, देह मेरी काँपत,
पिय बिन विपिन अकेली ।
मोर पुकारत, मारुत मारत,
डरपावत वन द्रुम वेली ।
दामिनी दमक छिनु छिनु चौंकावत,
विरह बढ़ावत पिय संग खेली ।
'रसिक' पियारौ जौ मिलै री आय आप,
ताप धरै, ना तौ प्राण रहैंगें नहीं,
विरह हूवै - अग्नि मेली ।।२

+ + + +

-- कैसे धीरज धरौ प्यारे, वन बोलत है मोर ।।३

---

(१) निजी पुस्तकालय, नाथद्वारा, बंध संख्या- १७ पुस्तक सं० ५, पत्रा- ११३ तक
(२) वही, पत्रा ११० ।
(३) वही, पद संख्या- ४४६ ।

इस प्रकार के नवीन पद कम ही मिलते हैं। इस ग्रन्थ में प्राय: नित्योत्सव के पद हैं, कुछ पद श्री वल्लभाचार्य जी के आश्रय सम्बन्धित भी हैं। ग्रन्थ में पुष्पिका इस प्रकार दी है :-

> 'इति श्री हरिराय जी कृत पदम् । सम्पूर्णम् । संवत् १८३० वैशाख कृष्ण ११ शनिवारे, लिखे ब्रजमोहन दास ने चूरामणि जी खवास कों दिए । लिखे श्री जी द्वारे । श्लोक संख्या २५०१ । श्री गोकुलेश जयति ।१'

यह हस्तलिखित संग्रह ग्रन्थ लगभग २०० वर्ष पुराना है। अत: यह प्रतिलिपि मूल प्रति के अधिक निकट ज्ञात होती है। गोस्वामी हरिराय जी के पदों का यह एक बृहद् संकलन है। इसमें रसिक, रसिकराय, रसिक - प्रीतम तथा रसिक शिरोमनि छापों के पद हैं। 'हरिजन' तथा 'हरिदास' छाप के भी एक दो पद मिलते हैं, किन्तु रसिकदास छाप का एक भी पद प्राप्त नहीं होता। इस ग्रन्थ की लिपि सुन्दर है।

(३) 'हरिराय जी के पद' : गोस्वामी हरिराय जी के पदों का यह तीसरा संग्रह है। विवरण दृष्टव्य है :-

गोस्वामी हरिराय जी के पद । आकार- ८"+ ८"। कुल पत्रा १३६, (पृष्ठ २७२) १४ पंक्ति प्रति पृष्ठ । कुल पद ३४५ । लिपि प्राचीन ।

प्रारम्भ:-'श्रीकृष्णाय नम: अथ श्री हरिराय जी कृत पद लिख्यते : राग भैरों । दीनों दरस सुपने में आय --- । छिन एक सुख

---

(१) निजी पुस्तकालय, नाथद्वारा, बंध संख्या- १७ पुस्तक सं० ५, पत्रा-१२५

उपज्यौ मेरे मन, गयौ कछू हरि विरह बढ़ाय --- !

इसके पश्चात् कुछ पद इस क्रम में दिए हैं :-

-- हरि के विमुखन कौ मुख जिन दिखावै ।
-- नाथ हा हा मोहि दरस दीजै ।
-- नैक बोलो नाथ अमृत रस बैन ।
-- ललना जागौ भयौ भोर --- ।।-- आदि ।

इस संग्रह ग्रन्थ में प्राय: कृष्णलीला सम्बन्धी नित्य के पद हैं, कुछ पद महाप्रभु जी के आश्रय सम्बन्धित भी हैं । ग्रन्थ का सम्पादन व्यवस्थित रूप से हुआ है । कृष्ण लीला के अनुक्रम से ही पदों का सम्पादन किया गया है । कुछ पद वर्षोत्सव के भी हैं । इस संग्रह में 'रसिक' एवं 'रसिक प्रीतम' छाप के ही पद अधिक हैं । 'रसिक दास' छाप का एक भी पद नहीं मिलता ! कुछ पद नए भी प्राप्त होते हैं :-

देखि प्रतिबिम्ब गोपाल खिलावै,
लै लड़ुआ भेलत वाके मुख खेलत संग बुलावै ।
बोलि बोलि उठि चलरे भैया, तुमको ब्रज विहरावैं ।
अपने कंठ के हार उतारि कैं वाके कंठ छु आवै ।।
मधुर बचन कहि हित करि नीकें मधुरे बोल सिखावै !
आभूषन सब अपने अंग के करले वाहि दिखावै ।
अरी मैया हौं कहौं करौं यह खेलन संग न आवै ;
मेरी कही न मानत बालक यौं ही मोहि बिरावै ;
तू कर गहि करि किंकनियाँ कौं मेरे संग पठावै ।
सुत के बचन सुनत नंदरानी, आनंद हिये बढ़ावै ।--

बाल-केलि रस महा मुग्ध जो सबहिन के मन - भावै ।
'रसिक-प्रीतम' सुमरित निसि-बासर गावत अति सुख पावै ।१।

इस संग्रह ग्रंथ में पत्रा ११७ तक ही गोस्वामी हरिराय जी के पद हैं । इसके पश्चात् पत्रा १३२ तक विविध कवियों के पद संग्रहीत हैं । पत्रा १३३ से गोस्वामी हरिराय जी कृत 'सूतक निर्णय' गद्य ग्रन्थ दिया गया है । अन्त में पुष्पिका इस प्रकार दी गयी है :-

'सेठ ग्यायाराम पठनार्थं हीरा लिखतम् पोथी इह हरिराय'।।२

ग्रन्थ में लिपिकाल नहीं दिया गया । लेखन अशुद्ध है । पद-परिमाण की दृष्टि से ग्रन्थ महत्वपूर्ण है ।

उपरिनिर्दिष्ट पद-संग्रहों के अतिरिक्त एक पद-संग्रह लाला भगवान दास जी, नाथद्वारा वाले, के निजी संग्रह से भी प्राप्त हुआ है:-

विवरण- इस ग्रन्थ का नाम 'श्रीहरिराय जी का पद-संग्रह' है । आकार ६"+१३" । कुल पत्रा ११२, (पृष्ठ २२४), १६ पंक्ति प्रति पृष्ठ । अन्त के तीन पत्रा नहीं मिलते । कुल पद संख्या २८९ है ।

प्रारम्भ:- 'रागधनासिरी ।। जसुमति सुत जनम सुनत फूले
ब्रजराज हो। ----।'

इस ग्रन्थ की लिपि सुस्पष्ट होते हुए भी पर्याप्त अशुद्ध है । ग्रन्थ में नित्य-

---

(१) निजी पुस्तकालय, नाथद्वारा, बन्ध संख्या - ७७, पु०सं०१,पत्रा११०, -पद सं० ३४५ ।

(२) वही, पत्रा ११७ पद ।

उत्सव एवं वर्षोत्सव के पद हैं। इस संग्रह में कुछ पद नए भी प्राप्त होते हैं। ग्रन्थ में लिपिकाल नहीं दिया गया।

उक्त सभी पद-संग्रहों के अतिरिक्त ऐसे और भी अनेक कवियों के कीर्तन पद संग्रह प्राप्त होते हैं, जिनमें गोस्वामी हरिराय जी के भी पद उपलब्ध होते हैं। इन विविध संग्रह ग्रन्थों में गोस्वामी हरिराय जी के कुछ ऐसे भी पद प्राप्त होते हैं जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं होते। इनमें से कुछेक उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

सखी री देखे न मोहन , बताय ।
कौन विपिन में हैं मन - मोहन, गोप चरावत गाय ।
कौन कदंब ढ़ाक की छैंया, बैठे हैं चित लाय ।
धरि नट भेख हार गहैं ठाड़े, रीझत बैन बजाय ।
लेहों सब पकवान बहोत कर, बिंजन सबै बनाय ।
सीतल जल बीरा संग लेहों, रहों कछुक खबाय ।
तुम प्रताप संगम सुख पैहों, छिन को विरह बुझाय।
सही न जात 'रसिक-प्रीतम', पिय - विरह बढ़यो उर आय ।।१

\+ \+ \+ \+

खिवत कन्हाई नन्द को कनियाँ ।
कछू खात कछु धरनी गिरावत , छवि निरखत नंद -रनियाँ ।।२

इस प्रकार के स्फुट पद अनेक संग्रहों में विद्यमान हैं, जो अभी तक प्रकाश में नहीं आसके हैं। यथा-- प्राप्य हस्तलिखित विविध पद-संग्रहों में गो०

---

(१) सरस्वती भण्डार, कांकरोली, बंध संख्या- १७, पुस्तक सं० १२ पत्रा-४
(२) वही, -- पत्रा- २८ ।

हरिराय जी के लगभग एक सौ पच्चीस पद प्राप्त होते हैं, जो श्री मीतल जी के प्रकाशित पद संग्रह में उपलब्ध नहीं होते। ये सभी पद लेखक के निजी संग्रह में सुरक्षित हैं।

गोस्वामी हरिराय जी के विविध हस्तलिखित पद संग्रहों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि गोस्वामी हरिराय जी अपने समय में पुष्टि-सम्प्रदाय के एक सिद्धहस्त कवि थे, उनका उनके परिकर में पर्याप्त सम्मान था। उन्होंने सहस्राधिक पदों का निर्माण किया है, जो विभिन्न संग्रहों में बिखरे पड़े हैं।

वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी वैष्णवों में गोस्वामी हरिराय जी के पदों को अति सम्मान के साथ पढ़ा व सुना जाता है। गोस्वामी हरिराय जी के पदों की महत्ता व पवित्रता बतलाते हुए श्री गिरधर लाल जी महाराज अपने वचनामृत में लिखते हैं, `श्री गुसाईं जी, श्री हरिराय जी आदि गोस्वामी बालक तथा महाप्रभु जी तथा श्री गुसाईं जी के सेवक इत्यादिकन के के कीये जो कीर्तन हैं सो तो मनोक्त नहीं हैं वे तो ऐसी लीला के अनुभव नेत्रन सूं देखते तैसे ही भासत। तासों ए पद-कीर्तन श्री ठाकुर जी आगे गावें हैं। और इनको वेद - रूपत्व कहे हैं।`[1]

उपरिविवेचित पद संग्रहों के अतिरिक्त एक अन्य स्फुट छंद-संग्रह कोटा से उपलब्ध हुआ है। यह ग्रन्थ शोध में प्रथम बार ही उपलब्ध हुआ है, विवरण द्रष्टव्य है :-

चौरासी कवित्त

इस ग्रन्थ का नाम `गोस्वामी हरिराय जी के चौरासी-

---

(१) श्री गिरधरलाल जी के १२० वचनामृत, सम्पादक लल्लूभाई छगन लाल देसाई, प्रका० अहमदाबाद, संस्क० प्रथम, सं० १६७६, पृ० १७।

कवित्त है। कोटा में यह ग्रन्थ श्री मथुरेश जी के मन्दिर के विशाल पुस्तकालय में सुरक्षित है। इस ग्रन्थागार को मथुरा मन्दिर पुस्तकालय भी कहा जाता है। यह ग्रन्थ गोस्वामी श्री ब्रजेश कुमार जी (बड़ौदा) के माध्यम से उपलब्ध हुआ है।

इस ग्रन्थ में अधिकांश घनाक्षरी, सवैया आदि छन्द हैं। कवितायें शृंगार प्रधान अधिक हैं।

ग्रन्थ में प्रथम श्री महाप्रभु जी की वन्दना है तत्पश्चात् कृष्ण की बाल-लीलाओं के सजीव वर्णन हैं। शृंगार रस के छंद अपनी पूर्ण गरिमा के साथ प्रस्तुत हुए हैं। प्रारम्भ इस प्रकार है :-

श्री कृष्णायनम: । श्री हरिराय जी कृत कवित्त लिखे हैं :-

जैसें गजराज राख्यौ धाय धाम हू ते आय ,
जैसे कैं सहाय ह्वै पृथा सुत पारे हैं ।
जैसे महाराज राखी द्रुपद सुता की लाज,
जैसें ब्रजवासी गिरधर कैं उबारे हैं ।
जैसे दैकैं सम्पति सुदामा दुख दूरि कर्‌यौ ,
जैसे संतन के लिए असुर संहारे हैं ।
तैसे राखि लीजे निज वल्लभ के बंश हू कौ ,
जैसे तैसे जग में कहावत तिहारे हैं ।

अन्तिम छन्द :-

कोटिक भरे हैं मन - मांहि तो मनोरथ पैं,
और कौन पूरन कौं समरथ तेरे कौं ।
तो तजि न माखी न जाय दीनता कृपा निधान,
आपुनो दुखारी देख कृपा करि हेरे कौं ।
अब कहा देखत न रह्यौ कछु आसिरो है,

रावरौ कहायौ सो न जहाँ तहाँ फेरे कौ ।
'रसिक' अधीन सब भाँति भयौ रावरौ ही ,
जानौ सोई करौ तहाँ कहाँ चारौ चेरे कौ ।

ग्रन्थ के शृंगार रस प्रधान छंदों में विप्रलम्भ शृंगार के छन्द अधिक हृदयाकर्षक हैं। कुछ छन्द समस्यापूर्ति के भी जान पड़ते हैं, जिनके अन्तिम चरण 'समस्या' रूप में प्रकट हुए हैं। एक उदाहरण दृष्टव्य है :-

रैनि अँधेरी दुराय सरूप, चढ़ी मनौ मैन चमू पर री ।
तब साँवरी ही भई आय जुरे, रस रूप तिया तिन हू पर री।
स्याम सजे लखि छूटी है धार, कटाछन की पय भू पर री।
बरसै बरसाने की गोरी घटा, नंदगाँव के साँवरे ऊपर री ।

इस छन्द संग्रह में एक छन्द में क्रियाएँ खड़ी बोली के अनुरूप प्रयुक्त हुई हैं, जो उस समय की प्रचलित खड़ी बोली का एक स्वरूप स्पष्ट करती हैं :-

तुझे तो न आवै दया उनने खाना छोड़ दिया,
भया रहै चाकर हर रोज तेरे द्वारका ।
देखन की करै चाह, फिरै तेरी गाह-गाह ,
नैंकु हू न करै उर मन हू मैं मार का ।
सबसे निसंक बोलै, मन की न बात खोलै ,
करै नहीं संक जिसै सोच न विचार का ।
आशिक 'रसिक' प्यारै महबूब देखै बिन ,
डोलै घर घर बह्या वार का न पार का ।।

कवि ने इन छन्दों में भाषा का प्रयोग बहुत सावधानी से किया है। कृति का साहित्यिक पक्ष विशेष ध्यातव्य है।

'चौरासी कवित्त संग्रह' के अतिरिक्त एक ग्रन्थ 'रेखता' नाम से भी गो० हरिराय जी कृत मिलता है, जो कांकरौली ग्रन्थागार में सुरक्षित है। विवरण द्रष्टव्य है :-

रेखता-

इस नाम के ग्रन्थ में केवल एक पद ही है जो आकार में बड़ा है। इसे स्वतंत्र ग्रन्थ न कहकर स्फुट पद ही कहना अधिक समीचीन होगा। इस ग्रन्थ का नाम 'रेखता' क्यों रखा गया, यह प्रश्न कुछ अस्पष्ट-सा है। डा० शिवप्रसाद सिंह ने रेखता के विषय में इस प्रकार प्रकाश डाला है, 'संवत् १६००, रेखता। यह नई भाषा का कोई ठीक नाम न था। समय-समय पर हिन्दी, दक्खिनी, रेखता, उर्दू इसके विभिन्न नाम हुए। ---- साहित्यिक हिन्दुस्तानी की चार शैलियाँ यानी उर्दू, रेखता, दक्खिनी और हिन्दी। इन चारों नामों में भाषा की दृष्टि से रेखता शब्द का प्रयोग सब से प्राचीन है। डा० सुनीत कुमार चाटुर्ज्या रेखता का अर्थ 'विकीर्ण-प्रयोग' मानते हुए लिखते हैं, 'तब की भाषा पश्चकालीन उर्दू की तरह फारसी से बिल्कुल लदी हुई न थी। फारसी के शब्द अपेक्षाकृत कम संख्या में मिलाए जाते थे। एक पंक्ति में कहीं-कहीं छितरे हुए (रेखता) रहते थे। इसी लिए आधुनिक उर्दू-हिन्दुस्तानी पद्य की भाषा का आद्य रूप रेखता कह लाता है। १५वीं शती के कबीर के ही नहीं, १२वीं शती के बाबा फरीद के पद्य भी 'रेखता' कहलाते थे'।' १

सम्भवत: जिस अर्थ में कबीर के पद्यों को रेखता कहा गया होगा, उसी अर्थ में गोस्वामी हरिराय जी की इस रचना का नामकरण भी रेखता पड़ गया होगा। यह रचना अन्य रचनाओं से कुछ भिन्न प्रकार की है। इसमें

---

(१) सूरपूर्व ब्रजभाषा- डा० शिवप्रसाद सिंह, प्रथम संस्क०, पृष्ठ- १३५।

कुछ शब्द खड़ी बोली के भी प्राप्त होते हैं, छन्द भी अन्य रचनाओं से पृथक् है ।

गोस्वामी हरिराय जी की इस रचना की एक मात्र हस्तलिखित प्रति कांकरोली से प्राप्त हुई है । श्री द्वारकादास परिख ने अपने ग्रन्थ में इस रचना का उल्लेख किया है ।१ सम्प्रदाय कल्पद्रुम में भी इसका उल्लेख मिलता है ।२ विवरण इस प्रकार है :-

रेखता । गो० हरिराय जी कृत । संग्रह ग्रन्थ में सम्पादित । संग्रह ग्रन्थ में कुल पत्रा १४४, यह रचना पत्रा ९० से ९३ तक, (कुल पृष्ठ ६) । आकार ५½ + ३।।" । ६ पंक्तियाँ प्रति पृष्ठ । लिपिक प्राचीन व पठनीय । इस रचना के अन्त में लिखा हुआ है ',श्री हरिराय जी कृत रेखता' ।३ प्रारम्भ द्रष्टव्य है :-

> 'श्री गोपीजन वल्लभायनम: । अथ रेखता । मेरे मन में यही गिरवर धरन नित नैंन भरि देखूं । जभी यह जीवन अपना सफल जग मांज करि लेखूं। खुली खिरकीन की पगिया, छबीली चन्द्रिका सोहै - - - - - -' ।

अन्तिम अंश :- 'दिखावो वेगि मणि कोठा, करो मति नैकु हू न्यारे।
श्री वल्लभनंद आनंदकंद, कारज एक ही सारे ।।
दम्मन तुम देव देवन के । तिहारी वेद यह बानी ।

---

(१) श्री महाप्रभु हरिराय जी नूं जीवन चरित्र,(गुजराती), पृष्ठ- ११७
(२) 'ख्याल, रेखता, कीरतन- - -' । सम्प्रदाय कल्पद्रुम- विट्ठलनाथ भट्ट
(३) सरस्वती भंडार, कांकरोली, बंध संख्या- १३५, पुस्तक सं० ६ ।

सुनो जी नन्द के कान्हा, तुम्हारी बात अनमानी ।
इति श्री हरिराय जी कृत रेखता ।।

इस रचना में कवि ने कृष्ण की लीला का बखान किया है । भाषा अन्य छन्दों से अधिक व्यवस्थित नान पड़ती है । यह रचना गोस्वामी हरिराय जी कृत ही है ।

विविध स्फुट पदों के अतिरिक्त गोस्वामी हरिराय जी ने अनेक लघु आख्यानक रचनाओं का भी सृजन किया है जिनका विवरण दृष्टव्य है :-

गोस्वामी हरिराय जी की प्राप्तोल्लिखित रचनाएँ (वे पद्य-रचनाएँ, जो प्राप्त भी हैं और जिनका उल्लेख भी मिलता है) जो प्रभुदयाल मीतल के सम्पादित संग्रह में संगृहीत हैं, निम्नलिखित हैं --

१- नित्य लीला
२- ढाढ़ी ढाढ़िन
३- होलीगान
४- सेवा-भावना
५- दस उल्लास
६- नवरात्रि के पद
७- गोवर्द्धन लीला (प्रथम) तथा
८- दान लीला ।

इनके अतिरिक्त जो ग्रन्थ हस्तलिखित रूप में प्राप्त होते हैं, निम्न हैं :-

१- गोवर्द्धन लीला (द्वितीय)

२- दामोदर लीला ।
३- सनेह लीला ।
४- कलि-चरित्र ।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त दो अन्य ग्रन्थों का विवरण नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की खोज रिपोर्ट से सर्व प्रथम उपलब्ध हुआ है --

१- दैन्यामृत, तथा
२- स्नेहामृत ।

उपर्युक्त आठ रचनाओं का, जो श्री मीतल जी के संग्रह में सम्पादित हैं, का पूर्ण विवरण देना अपेक्षित जान नहीं पड़ता । इनके अतिरिक्त हस्तलिखित चार ग्रन्थों का तथा अन्य दो ग्रन्थ, दैन्यामृत तथा स्नेहामृत का विवरण प्रस्तुत किया जारहा है । प्रथमोक्त आठ पद्य रचनाओं की चर्चा अन्यत्र की जायगी ।

१- गोवर्द्धन लीला (द्वितीय)

'गोवर्धन लीला' नाम से एक अन्य रचना भी गोस्वामी हरिराय जी कृत है, जो श्री प्रभुदयाल मीतल के सम्पादित संग्रह में विद्यमान है । विवेचित रचना उससे सर्वथा भिन्न है ।

गोस्वामी हरिराय जी कृत यह रचना गोवर्द्धन पूजा प्रसंग पर आधारित है । इसकी एक हस्तलिखित प्रति कांकरौली से प्राप्त हुई है ।१

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध सं० १५।२ पुस्तक सं० २ ।

विवरण :- संग्रह ग्रन्थ में सम्पादित । गोस्वामी हरिराय जी कृत । रचना ६ पत्रों पर (पृष्ठ-१२) लिपिबद्ध है । आकार - ६।।।"+ १०।" । २३ पंक्ति प्रति पृष्ठ । पत्रा ११६ से प्रारम्भ लिपि प्राचीन व पठनीय ।

प्रारम्भ:- 'अथे गोरि गोरधन लीला लिख्यते । राग गोरी, सिखवत मोहन नन्द को, तुम पूजो श्री गिरिराज हो, टेक ।गोप सबै दिसि दाहिने हो, बाम दिसै ब्रजनारि हो, कौन भांति ठाढ़े भए हो, बरनत बचन उचारि हो, श्री नंदरानि प्रथम जेहो तिन ढिंग कीरत जानी, उपनंदादिक की घरनी हो जसुमति पाछे मानी - - - - ।

प्रस्तुत पद्य में गोवर्द्धन पूजा हेतु प्रारम्भिक पृष्ठ भूमि के पश्चात् सेवा विधान का वर्णन किया गया है , यथा --

'केसर रंगहि रंग के, हो. उपरैना जु सुबास, ग्लाव वगैयन दैन कों, हो, धरि राखे तिहि पास । सब समाज जब जैं चुकौ, हो, तब बोले नन्दलाल, बाबा जू गिरि पूजिए ,जु , सगरे बोलि गुपाल । - - - ।'

तदनन्तर'अन्नकूट भोग' वर्णन में कवि ने विविध खाद्य पदार्थों की सूची कुछ इस प्रकार दी है,--

'मथुरा के पेरान की, हो, पंगति अधिक विशाल ।
ताही की गुजियान की, हो, पंगति मधुर रसाल '।१

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरोली, बंध संख्या १५।२, पुस्तक सं० २, पृ० १२०।

रचना के प्रारम्भ में गोवर्द्धन लीला - हरिराय जी कृत लिखा हुआ है। पद के अन्त में हरिराय जी की `हरिदास` छाप निहित है। यह रचना शोध में प्रथमबार ही उपलब्ध हुई है।

अन्त :- श्री वल्लभ चरन प्रताप ते हौ , मति अनुसारहि गाय ।
श्री वल्लभ कृपा करी श्री विट्ठल निज नाथ ,
`हरिदास` कृपा करिके , हौ राखे चरनन साथ ।

संग्रह ग्रन्थ में इस रचना के पश्चात् गुसाईं जी श्री विट्ठलनाथ जी की बधाई केकुछ पद हैं, ये पद गोस्वामी हरिराय जी कृत ही हैं। इन पदों में गो० हरिराय जी की `हरिदास` छाप निहित है,--

केसर की धोती पहरे कटि केसर उपरना ओढ़े,
तिलक मुद्रा धरि बैठे मन्दिर गिरधर के ।
बैठे मुसकात जात, फूले न समात गात ,
कहैं हरिदास मैं निहारे दृग भर के ।।१

लिपि अस्पष्ट तथा भाषा अशुद्ध है। रचना गोस्वामी हरिराय जी कृत ही है।

इस रचना के अतिरिक्त एक और गोवर्द्धन लीला की हस्तलिखित प्रति नाथद्वारा से प्राप्त होती है, जिसकी जिल्द पर गोस्वामी हरिराय जी कृत, लिखा हुआ है। इस हस्तलिखित प्रति में लिपिकार ने कहीं भी रचयिता का उल्लेख नहीं किया और न ही इस सम्बन्ध में अन्य संकेत ही मिलते हैं। विवरण द्रष्टव्य है :-

---

(१) यह पद श्री प्रभुदयाल मीतल के सम्पादित संग्रह में भी सन्निहित है।
-- देखिये, पद सं० ६७२ ।

गोवर्द्धन लीला । ग्रन्थ अपूर्ण । रचना के प्रारम्भिक २० छंद नहीं हैं ।
आकार- १०" + ६"। ११ पंक्ति प्रति पृष्ठ । प्राप्ति स्थान, नाथद्वारा ।१

प्रारम्भ:- 'भरी जलेबी अति रस आई । तिनकूं दूनी खांड़ पिवाई ।
घेवर भर सौंधिउ के हर - - - - '।

लिपि बहुत अशुद्ध है, भाषा की दृष्टि से यह रचना गोस्वामी हरिराय जी कृत ज्ञात नहीं होती ।

अन्तिम अंश :-'--- ब्रज भर 'हरिराय', गंगा ग्वार आनंद कर मैं तीनों अपनाय । - - - - इति श्री गोवर्द्धन लीला सम्पूरणा-मस्तु । शुभम् भवतु कल्याणमस्तु लिषतं जो श्री बालचन्द जगन्नाथ पठनार्थ गोकुलदास, काशीदास संवतु १७७३ वर्षे वैशाख सुदि ४ शुक्रे । आत्मज पठनार्थं ।।'

इस रचना की विषयवस्तु प्रथम उल्लिखित गोवर्द्धन लीला के अनुरूप ही है । रचना संदिग्ध है ।

२- दामोदर लीला

गोस्वामी हरिराय जी कृत'दामोदर लीला' की दो प्रतियां कांकरौली से उपलब्ध हुई हैं । शोध में यह रचना प्रथमबार ही दृष्टिगत हुई है । विवरण दृष्टव्य है ।-

---

(१) निजी पुस्तकालय, नाथद्वारा, बंध संख्या-४, पुस्तक सं० ४ ।

इस रचना की दो प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं, अपूर्ण प्रति तथा पूर्ण प्रति ।

<u>अपूर्ण प्रति</u> :- हस्तलिखित एक संग्रह ग्रन्थ में यह रचना समाविष्ट है । संग्रह ग्रन्थ में पत्रा ५ से यह रचना प्रारम्भ होती है । इस प्रति में दामोदर लीला के प्रारम्भिक केवल २० बंध हैं । आकार - ६।।" + ७"। १५ पंक्तियाँ प्रति पृष्ठ । प्रति प्राचीन है, किन्तु लिपिकार तथा लिपिकाल का कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता । पत्रा ५ से पत्रा १६ तक (३२ पृष्ठों पर) यह रचना लिपिबद्ध है । लेखन सुस्पष्ट व शुद्ध है । अन्त में `रसिक प्रीतम` छाप का प्रयोग किया गया है ।।१ यह रचना नाथद्वारा से उपलब्ध हुई है ।।२

भगवान कृष्ण की अनेक बाल क्रीड़ाओं के अनुक्रम में दामोदर लीला भी एक लोक-प्रसिद्ध लीला कही जाती है । इसे `ऊखल लीला` एवं `यमलार्जुन` लीला भी कहते हैं । कृष्ण को माँ यशोदा द्वारा रस्सी से बाँधे जाने पर इस लीला का नाम दामोदर लीला पड़ा ।

<u>पूर्ण प्रति</u> :- ग्रन्थ में `दामोदर लीला` हरिराय जी कृत, शीर्षक दिया गया है । विवरण द्रष्टव्य है :-

दामोदर लीला । गोस्वामी हरिराय जी कृत । कुल पत्रा १८ (पृष्ठ ३६) । १० पंक्तियाँ प्रति पृष्ठ । आकार ६।।" x ५।" । लिपिकाल संवत् १८७० । लिपि सुन्दर व शुद्ध है । प्रारम्भ इस प्रकार है :-

---

(१) `इति श्री रसिक प्रीतम कृत दामोदर लीला सम्पूर्णम्` ।
(२) सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध संख्या २४, पुस्तक सं० ८-ल ।

'अथ श्री दामोदर लीला रसिक राय जी कृत लिख्यते । श्री वल्लभ पद बंदन करिकैं श्री विट्ठल सिर नाऊं, बाल विनोद यथा मति हरि के सुन्दर सरस सुनाऊं, भक्तन के वत्सल करुणामय, तिनकी अद्भुत लीला, सुनौ संत तुम सावधान हुइ श्री दामोदर लीला । सुन्दर सरस श्री गोकुल भीतर बसत अही रस भागे, जाति अनेक - अनेकहि गोपन सब ब्रजराजहि लागे । ब्रज के बास बीच अति उत्तम नंद भवन सुखकारी, संपति कहा कहौं कमलापति जाके अजिर विहारी, सब सौने के सुखद धरोहर पला पिटौजा लागे, बहुत भक्ति मनि ही रवि द्रुम खचित सभागे । आँगन सिढ़ी देहरी बेदी खचि-खचि रतन बनाई, सरस वितान चंदोवा लागे पार तनावत नाई ।--'

गोस्वामी हरिराय जी ने परम्परागत कथानक को बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है । उक्त पृष्ठ भूमि के पश्चात् कवि ने कथा प्रसंग को एक स्वाभाविक वातावरण प्रदान करने की चेष्टा की है :-

इतने मांझ दूध कौ चरुआ चूल्हे ताप धर्यौ है ,
सो यह घर में उफनत देख्यौ, जान्यौ दूध जर्यौ है ।
अधि भूख्यौ लरिका कौं धरिकैं, जसुमति घर में दौरी,
दूध पूत जुग एकैं बरियां, राखन कौं इहिं बौरी ।

भगवान कृष्ण घर में मक्खन की हाड़ी फोड़ देते हैं, बन्दरों को मक्खन लुटाते हैं, अपने शरीर पर भी उसे मल लेते हैं, मां दूध औटाने में लगी हुई है--

तब लौं आय बीच आँगन में कियौ पूत कौ देख्यौ ,
फैलि रह्यौ मनिमय आँगन में, दूधि मँहोदिक भारी,
इतनत चितवत वाहि न देख्यौ, रोस भरी महतारी ।

संवाद सरस व सहज बन पड़े हैं :-

कहरे साँच मथनियाँ दधि की तैं काहे ते फोरी ।
सुनि मैया तू मोहि छाँड़ि कै दूध उतारन दौरी ।
लागि गयौ तेहर कौ चूरा, जासौं मथना फूट्यौ ।
हौं तौ तेरे डर के मार्यौ, आपुन ही ते रूठ्यौ ।।१

\+ \+ \+ \+

माखन की मटकी छीके ते कहौ लाल किन लीनी ।
चोरी होन हार यह मैया , परमेश्वर नै कीनीं ।।२

जब माँ यशोदा कृष्ण को धमकाती हैं, तब कृष्ण रूठ जाते हैं :-

हिलकी लै लै लाला रोवै, इतनी नाँहि सहुँगौ ।
वचन मोहि कहे तू तासौं, बनहि जाय रहुँगौ ।
तेरे घर मैं पाँय न दैहौं, तब तू ह्याँ सुख पाओ ,
दूध दही पकवान तिहारौ, तुही अकेली खाओ ।

गोस्वामी हरिराय जी की अन्य रचनाओं से इसकी भाषा कुछ पृथक् जान पड़ती है । अन्त के छन्द में प्राप्त दोनों प्रतियों में किंचित भेद मिलता है-

अपूर्ण प्रति :- 'दामोदर जू की यह लीला रसिक दास कही है । संत जनन की चरन रेनु की तन मन और लही है । भूलिमई जो होइ कछू तो सुकवि सुधार सुलीजो, मधुर मुकुन्द नाम के रस कौ मन की रुचि सौं पीजो - - - ।'

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध संख्या- २४, पुस्तक सं० ८-ख, पत्रा- ६

(२) वही, पत्रा-७ ।

पूर्ण प्रति :- 'दामोदर जू की यह लीला रसिकन दास कही है ।
संत जनन की चरत रैनु की तनमन ओट लही है ।
यह दामोदर लीला हित सों मधुर सुधारस लीजो ।
मधुर मुकुन्द नाम के रस कों मन की रुचि सों पीजो ।।

इन दोनों प्रतियों में पूर्ण प्रति का उक्त पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि 'भूल भई जो होइ कछू तो सुकवि सुधार सुलीजो' जैसी उक्तियां गो० हरिराय जी की किसी भी कृति में नहीं मिलतीं । अन्त में पूर्ण प्रति की पुष्पिका इस प्रकार दी है :-

'।। इति श्री हरिराय जी कृत दामोदर लीला सम्पूर्ण । यह पोथी पूर्ण भई । श्री गोकुल जी मध्ये । मिती वैसाख सुदी ।५। के दिन संवत् १८७० में पूर्ण भई'।।१

इस रचना में कुल १६० छंद हैं । रचना हरिराय जी कृत ही है ।

३- दैन्यामृत

इस रचना की कोई भी हस्तलिखित प्रति दृष्टिगत नहीं होती । अत: नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में उपलब्ध विवरण ही यहां प्रस्तुत किया जारहा है ।

गो० हरिराय जी ने इस नाम से संस्कृत में भी एक रचना की है । व्रजभाषा में लिखित दैन्यामृत का विवरण दृष्टव्य है :-

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरोली, बंध सं० ७०, पुस्तक सं० १, पत्रा- १८ ।

दैन्यामृत

संख्या ३८-ए, दैन्यामृत, रचयिता - रसिक सिरोमनि (हरिराय), कागज- बाँसी, पत्र-१०, आकार ६"+ ७"पँक्ति (प्रति पृष्ठ) १२, परिमाण (अनुष्टुप) ३२२, पूर्ण, रूप-प्राचीन,पद्य, लिपि नागरी, प्राप्ति स्थान पं० रामकिशन दास, दाऊजी मंदिर कालीदह, वृन्दावन, मथुरा ।।१

आदि-- श्री गोपीजन वल्लभाय नम: अथ दैन्यामृत लिख्यते ।

दोहा । हीन महा जड़ जीव को कीयो कहा कछु होय,
हा नाथ, हा प्राणपति, दैन्य दान दै मोय ।
नहिं साधन, नहिं सम्पति, लखि कस करें उपाय ।
भक्तन को धन दैन्य है, फेरि गई निधि पाय ।
ऊँचो ऊँचो सब कहूये, तू नीचो होय खोज ।
अपनो आपुन देखियैं, तब आवत है रोज ।
जो मेरी पैं देहुगे तो, मेरी कहा गति होय ।
तुम अपनी अपनाइए, अपना जीनो मोय ।
सब जन सौं नीतो रहैं, ये धौं परम उपाय ।
जैसे ठौर निचान मैं, आपुही ते जल आय ।
और न कौं उत्तम गिनैं, सो सर्वोत्तम सार ।
रात दिना सोचत रहै, अपना दोष विचार ।

---

(१) खोज में उपलव्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का १६वाँ त्रै-वार्षिक - - विवरण, पृष्ठ १३५ ।

अन्त-- बार बार विनती सुनियै जू, सूरति नाथ याके दोष
गिनवे मैं रावरी न बड़ाई है ।
पग पग अपराध भर्यो कौन घों पुण्य करो, जन्म ते
बनाई है पापन की घड़ाई है ।
पापी पाखंडी तौहू जैसे तैसे तिहारे जू हम हैं वे लोक
थोक विरह सूँ लड़ाई है ।
अति करुणा कीरत की संत मिल साखदेत हा हा अब
कैसी होत चींटी पै चढ़ाई है ।
नहिं दैनी सो देत हौ कहाँ लगि लिखिए लेख, अनहद
करुना रावरी विधि पै मांटी मेख ।
हा नाथ रमण प्रेष्ठ महावाहु महाप्रीत, जन्म जन्म प्रति
दीजिए मो निज पद पंकज प्रीत ।
सदा हिये मैं राखियो, दैन्य अमोलक रतन, याकों बैरी
देह मैं करियो वहोत जतन ।
बार बार बिनती करूं सुनियो कृपा निधान, मीन हीन
कूँ दीजियो दैन्य महारस दान ।
इति श्री दैन्यामृत सम्पूर्णम् ।।

विषय:- पुष्टि मार्ग के दृष्टि कोण से दैन्य भाव द्वारा किस प्रकार और कहाँ तक भक्ति की जाती है, इसी का प्रतिपादन प्रस्तुत ग्रन्थ में किया गया है ।

विशेष ज्ञातव्य:- जैसा कि साथ के अन्य विवरण पत्रों में बतलाया गया है `रसिक सिरोमणि` हरिराय जी का उपनाम है । उनका यह ग्रन्थ खोज में प्रथम बार मिला है, कविता बहुत अच्छी है, हरिराय जी का

कविता पर कितना आधिपत्य था, इस ग्रन्थ से पुष्ट हो जाता है।।१

उपर्युक्त निर्दिष्ट, ग्रन्थ के प्राप्ति स्थल से अब यह ग्रन्थ नहीं मिलता, इस ग्रन्थ की अन्य हस्तलिखित प्रतियाँ भी उपलब्ध नहीं होतीं।

४- स्नेहामृत

इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति प्राप्त नहीं होती। इसका विवरण नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में ही उपलब्ध हुआ है :-

'स्नेहामृत

संख्या ३८-सी

स्नेहामृत, रचयिता रसिक सिरोमनि (हरिराय) कागज मूंजी पत्र ३८, आकार ११" + ६," पंक्ति (प्रतिपृष्ठ) १४, परिमाण (अनुष्टुप) ७६१, पूर्ण, रूप- प्राचीन, पद्य, लिपि-नागरी, प्राप्तिस्थान पं० रामकिशन दास, दाऊजी का मन्दिर कालीदह वृन्दावन।'

आदि -- श्री कृष्णायनम: अथ श्री स्नेहामृत ग्रन्थ प्रारम्भ, 'दोहा-'

रसिक सनेही दीनता भजन अनन्यता जुष्ट।
दया वैराग उदारता, ते कहिये जन- पुष्ट।
पुष्ट सनेही, सम्पदा तहाँ नहिँ नेकु विरोध,
गुणातीत पथ पग धरैं पावै परम निरोध।
व्रजरतना व्रजनाथ सूँ कीनो सहज सनेह,
पुनि चौरासी जन कह्यो द्वैसत बावन तेह।

---

(१) सोलहवाँ - त्रै-वार्षिक विवरण, (ना०प्र०स०), पृष्ठ- १३६।

मुख्य अधिकारी अन्तरंग, दामोदर वर दास,
क्षण वियोग नहि सहि सकैं, श्री वल्लभ पद पास,
पूरन ना तो नेह को सर्वोत्तम भयो भाव ,
लिख्यो न काहू सों कह्यो , अपनो मन अनुभाव।

अन्त दोहा- लोक विषैं मन मैं भर्यो , भल्यो दृगन मैं दोष ।
याकू यह रथ कुपथ है जो जुरमैं पय पोख ।
'रसिक' होय सो देखियो, हरिपद बढ़े सनेह ।
वरन्यो सहज सनेह मैं रस अमल अमृत अनुपान ।
संजीवन है विरही के हरि पल हैं प्रान ।
हरे हरे मन हरत हो जरे जरे फिर जार ।
परे ढरे ढिंग ढरत हो भले नीत परवार ।
केऊ भरे केऊ भरत हो, ज्यौं सावन को मेह ।
मोह देखिकैं ढरत हो, भले निभावत नेह ।
दश नगर वन तन भयो, सबैं किए सरसान ।
'रसिक सिरोमणि' लाड़िलो ब्रज रसिकन की खान ।

इति श्री स्नेहामृत सम्पूर्णम् शुभंभवतु ।।

विषय:- वल्लभ सम्प्रदाय के भक्ति सम्बन्धी सिद्धान्तों के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति और उनकी लीलाओं का वर्णन है ।[1]

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में निर्दिष्ट ग्रन्थ स्थल पर यह ग्रन्थ भी अब उपलब्ध नहीं होता । इस ग्रन्थ की अन्य प्रतियाँ नहीं मिलतीं ।

५- सनेह लीला

(१) सोलहवां - त्रै-वार्षिक विवरण, (ना०प्र०स०), पृष्ठ- १३८ ।

वल्लभ सम्प्रदाय में, गोस्वामी हरिराय जी की यह एक लोकप्रिय रचना है। पुष्टि-मार्गीय नित्य-पाठ की अनेक प्रकाशित पुस्तकों में यह संकलित है।१ श्री मीतल जी द्वारा सम्पादित पद संग्रह में यह रचना उपलब्ध नहीं होती। इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ दृष्टिगत हुई हैं।

सनेह-लीला में उद्धव प्रसंग की कथा को विवेचित किया गया है। उद्धव कृष्ण के समीप से गोपिकाओं के पास जाते हैं, तथा वहाँ गोपिकाओं एवं उद्धव में अनेक तर्क-वितर्क होते हैं।

प्रारम्भ :- एक समै ब्रजवास की, सुरति करी हरिराय ।
निजजन अपनौ जानि कैं, उद्धव लियौ बुलाय ।
कृष्ण बचन ऐसे कहे, उद्धव तुम सुन लेहु ।
नन्द जसोदा आदि कौं, जाय ब्रजहि सुख देहु ।
ब्रजवासी वल्लभ सदां, मेरे जीवन प्रान ।
तिनकौ निमिष न छांड़ि हौं, मोहि नन्दराय की आन ।
मैं उनसौं ऐसें कही, आवैंगे रिपु- जीत ।
अब तौ रे कैसे बनैं पिता मात सौं प्रीत ।
ऊधौ वे ब्रज पोषिता, जिनकौ मेरौ ध्यान ।
तिन्हैं जाय उपदेश देहु, पूर्ण ब्रह्म सुज्ञान ।
वागौ अपने अंग कौ, कीट मुकुट पहिराय ।
श्रुति-कुंडल माला दई, अपनौ विरद विहाय ।

---

(१) वैष्णवोपयोगी घौलपद- महेश मुद्रणालय, नाथद्वारा, संवत् २०१७, आदि -- ।

इस रचना में उद्धव के प्रति गोपिकाओं के उपालम्भ-पूर्ण सम्वाद भी दृष्टव्य हैं-

नैंन हमारे मधुकरा आनंद कृष्ण - सरोज ।
ब्रज छाड्यौ जा दिवस ते, बैरी भयौ मनोज ।
है या भीतर दवजरे, धूंआ प्रगट नहीं होय ।
कैं जिय जानै आपुनौ, कै जिन लागी सोय ।
मधुकर अपने चोर को सब कोऊ डारैं मारि ।
मो मन - चोर जो मो मिलै, सरबस डारौं वारि ।
प्रेम बनज कीनो हु तो, नेह नफा जिय जानि ।
उद्धव अब उलटी भई, प्रान - पूँजि मैं हानि ।।१

कवि के कथन में चातुर्य है तथा कल्पना में मौलिकता है । यह रचना साहित्य के गौरव से अभिमण्डित है ।

अन्तिम अंश:- गोपी अरु उद्धव कथा भुवि पर परम पुनीत ।
तीन लोक चौदह भुवन, बन्दनीय सब गीत ।
नासत सकल कलेस कलि, अरु उपजत मन मोद ।
युगल चरन मकरन्द मन पावत परम विनोद ।
जे गावैं, सीखैं, सुनैं, मन कृम बचन सहेत ।
रसिकराय पूरन कृपा, मन बांछित फल देत ।।२

इस रचना में कुल १२८ छंद हैं । इसके अन्तिम चरण में विभिन्न प्रतिलिपियों में कुछ पाठ-भेद मिलता है । अन्त के कुछ पाठ भेदों के आधार

---

(१) वैष्णवोपयोगी धोलपद, नाथद्वारा सं० २०१७, पृष्ठ- १५ ।
(२) वही ।

पर यह रचना अन्य व्यक्तियों के नाम से भ्रम उत्पन्न करती है, किन्तु जहाँ भी इस प्रकार की संदिग्ध पंक्तियाँ प्राप्त हुई हैं, वे प्राय: प्रक्षिप्त व त्रुटिपूर्ण प्रतीत हुई हैं।

उपरि उद्धृत पदान्त के प्रतिकूल इस प्रकार की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :-

१- यह लीला ब्रजवास की, गोपी कृष्ण सनेह।
जन मोहन जो गावहीं, ते नर उत्तम देह ।।१

२- यह लीला ब्रजवास की गोपी कृष्ण सनेह ।
जे मोहन गुन गावहीं ते पावैं नर देह ।।२

३- मन मोहन जो गावहीं ते पावें नर देह ।
रसिक राय पूरन कृपा मन बाँछित फलदेत ।

\+ \+ \+ \+

भ्रमर गीत को जो पढ़ै, सुनै सकल चित लाय।
इच्छा मन की पूरवै, श्रीरामकृष्ण सहाय !
इति हरिराय जी कृत सनेह लीला सम्पूर्णम् ।।३

इन सभी पाठान्तरों में 'जे मोहन गुन गावहीं' पाठ ही मूल पाठ है, किन्तु लिपिकारों की असावधानी से उसे 'जनमोहन जस गावहीं' रूप दे दिया गया है। पद के अन्त में 'रसिक' छाप गोस्वामी हरिराय जी की ही है। इसके अनन्तर अनेक हस्तलिखित प्रतियों में, अन्त में 'गोस्वामी हरिराय जी कृत' भी लिखा हुआ है।।४

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरौली, प्रकाशित हि० का० २२८, पृ० २०
(२) वही, बंध संख्या ७३, पुस्तक सं० ११ लिपिकाल सं० १८६१
(३) वही, बंध संख्या ७४, पुस्तक सं० ४ लिपिकाल सं० १८६६
(४) वही, बंध संख्या १३३, पुस्तक सं० १ ।

गोस्वामी हरिराय जी की यह रचना पुष्टि-मार्गीय विद्वानों एवं वैष्णवों में पर्याप्त लोक-प्रिय रही है। रचना प्रामाणिक है।

६- कलि-चरित्र

यह रचना शोध में प्रथम बार ही प्राप्त हुई है। द्वारकादास परिख ने अपने ग्रन्थ में इसका उल्लेख किया है।१ इसके अतिरिक्त इस रचना के विषय में अन्य कहीं भी कुछ भी विवरण दृष्टिगत नहीं होता। गोस्वामी हरिराय जी की यह एक विशिष्ट रचना है। तत्कालीन युग-दृष्टि को इस काव्य में प्रकाशित किया गया है।। 'कलि-चरित्र' के दो लघु खण्ड प्राप्त होते हैं,१-'विप्रचरित्र' तथा २-'राजचरित्र'। 'विप्रचरित्र' में औरंगजेब कालीन ब्राह्मणों की हीन अवस्था का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया गया है। 'राजचरित्र' में राजाओं की स्वार्थपरता एवं क्रूरता की ओर इंगित किया गया है। विवरण द्रष्टव्य है :-

कलिचरित्र (रसिकराय कृत। आकार ८"+ ६।"। १३ पंक्ति प्रति पृष्ठ। कुल पत्रा २६ (५२ पृष्ठ)। स्थान स्थान पर रसिकराय छाप का प्रयोग किया गया है। लिपि प्राचीन व पठनीय। प्रारम्भ इस प्रकार है :-

'अथ कलिचरित्र लिख्यते। सेवत चरन कमल तेरे सब, किन्नर,नर, मुनि, ज्ञानी, वेद, पुरान मध्य करुना निधि, तू ही परम बखानी। तेरी कृपा सकल प्राणिनि के कल मख कलहि कृपानी। कलि-चरित्र करिवे अब दीजै, मोहि दया अब बानी। जे चरित्र कलिजुग के इह जग देखे नाँहिन सपने ते चरित्र कलि के नाना-

---

(१) महाप्रभु हरिराय जी नूं जीवन चरित्र, (गुजराती), पृष्ठ- ११७।

विधि देखे लोचन अपने । तिहि तें तिती जुगति जिय आई
लोगन को सुख दायक, तिती जुगति बरनी चित हित करि
रसिक राय कवि नायक ।

चारि बरन इह भूमि लोक मधि, रचे बिरंचि पुराने,
तिहि मधि सकल बरन को दीने, तिलक विप्र कुल माने ।
तिन्हें कुराय कृपा अपनी सों घर घर प्रति भटकावें,
रसिक राय या कलि की महिमा मोपै बरनि न जावे ।।१

इस प्रकार प्रारम्भ में कवि ने ब्राह्मणों के स्वरूप को चित्रित करने का यत्न किया है । ब्राह्मणों ने जब अपना कर्म त्याग कर कृषक कर्म व सैनिक कर्म को अपना लिया था और कर्तव्यच्युत हो इधर उधर भागने लगे थे, उसीकाल का चित्र कवि ने बड़े ही सजीव ढंग से प्रस्तुत किया है,-

विप्र छिप्र तजि अपनी क्रिया लागे होन सिपाही, कांधे धरि
समसेर पुरानी, मन में गरव न माँही, काम परे भाजत तजि लज्जा
बानो निपट लजावे, रसिक राय या कलि की महिला मोपै
बरनी न जावें ; जिन पंडित अपनी पढ़ि विद्या सकल विज्ञ
कुल जीते, जिनकी कृपा पाइ और जन, नांहि रहे गुन रीते,
तिनके पुत्र कुपुत्र होइ पुनि लागे हलहि जुजावें, रसिक राय
या कलि की महिला मोपै बरनि न जावे ।

कुछ उदाहरण 'राज चरित्र' के भी दृष्टव्य हैं :-

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध संख्या- ६८ पुस्तक सं० ६ ।

> पहले नृपति मनोरथ करि करि दान विप्र कुल दीनै, सेवन करि करि विप्र बरन कौ जनम सफल करि लीनै, अबके नृप आगे ही अपने विप्र-न नगर कटावैं, रसिक राय या कलि की महिला मोपै बरनि न जावे ।।१

प्रत्येक छन्द के अन्त में 'रसिक राय' गोस्वामी हरिराय जी की छाप निहित है । इस रचना की एक मात्र प्रति कांकरौली से प्राप्त हुई है । लिपि पठनीय व शुद्ध है ।

इस ग्रन्थ में कहीं भी गोस्वामी हरिराय जी का नाम रचयिता के रूप में प्राप्त नहीं होता । 'रसिकराय' छाप को देखकर ही यह सम्भावना की जाती है कि यह रचना गोस्वामी हरिराय जी की हो सकती है । गोस्वामी हरिराय जी ने अनेक रूपों में काव्य सृजन किया है । कलिचरित्र की भाषा भी अन्य रचनाओं से पृथक् जान पड़ती है । वल्लभ सम्प्रदाय के एक विशिष्ट ग्रन्थागार में इस ग्रन्थ का मिलना भी यह संकेत करता है कि रचनाकार वल्लभ-सम्प्रदाय से सम्बन्धित व्यक्ति ही हो सकता है । इस सम्भावना के आधार पर 'रसिकराय' छाप को देखते हुए इसका कर्ता गोस्वामी हरिराय जी को माना जा सकता है । कोई अन्य प्रमाण न मिलने पर ग्रन्थ संदिग्ध ही है ।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि गोस्वामी हरिराय जी ने सहस्राधिक पदों के अतिरिक्त पद्य में अनेक रचनाओं का सृजन किया है । इनमें प्राप्त तथा उल्लिखित रचनाएँ बारह हैं । इनमें आठ रचनाएँ श्री प्रभुदयाल जी मीतल के सम्पादित संग्रह में प्रकाशित हैं, शेष चार का विवरण दिया जा चुका है । दो ग्रन्थों का विवरण नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की

---

(१) सरस्वती भंडार, कांकरौली, बंध संख्या- ६८, पुस्तक संख्या- ६, पत्रा-२४ ।

खोज रिपोर्ट से उद्धृत किया गया है। इस प्रकार यह संख्या चौदह हो जाती है। स्फुट पदों के विवरण में 'रेखता' नामक एक रचना का विवरण दिया जा चुका है। इस प्रकार यह संख्या पन्द्रह हो जाती है।

'चौरासी कवित्त' नाम से जिस ग्रन्थ का परिचय स्फुट पदों के विवरण में दिया गया है, प्रथम बार ही उपलब्ध हुआ है। इस ग्रन्थ का कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया।

एक ग्रन्थ उल्लिखित -अप्राप्त रूप में भी है। इसका उल्लेख तो मिलता है किन्तु प्राप्त नहीं होता। इस ग्रन्थ का नाम 'स्याम सगाई' है। इस नाम से कोई भी रचना गोस्वामी हरिराय जी कृत दृष्टिगत नहीं होती।

अब तक के विवरण में गोस्वामी हरिराय जी के अस्सी गद्य ग्रन्थों के अतिरिक्त पद्य में भी पन्द्रह ग्रन्थ ऐसे हैं जो प्राप्त तथा उल्लिखित दोनों अवस्थाओं में विद्यमान हैं। एक ग्रन्थ प्राप्त है, किन्तु इसका कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। अन्त में एक ग्रन्थ का मात्र उल्लेख ही प्राप्त होता है किन्तु ग्रन्थ अप्राप्त है। इस प्रकार गोस्वामी हरिराय जी के सहस्राधिक पदों के अतिरिक्त सत्रह पद्य ग्रन्थों का विवरण दिया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि गोस्वामी हरिराय जी बहुमुखी काव्य-प्रतिभा के धनी थे। उनके काव्य में भक्ति तथा शृंगार के विविध पक्षों को चित्रित किया गया है। गोस्वामी हरिराय जी की काव्य कृतियों में अधिकांशत: भक्ति-परक रचनाएँ हैं। जहाँ उन्होंने शृंगार-वर्णन में लेखनी उठाई है, वहाँ भी भक्ति का प्रश्रय उन्हें ग्रहण करना पड़ा है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गोस्वामी हरिराय जी जितने कुशल गद्यकार थे उतने ही भावुक कवि भी थे। आध्यात्म क्षेत्र के विभिन्न कोणों पर उन्होंने अपनी लेखनी उठाई, जिससे गद्य-पद्य-मय अनेक ग्रन्थ-रत्न निस्सृत हुए, जिनके वर्ण्य विषय की चर्चा हम अगले अध्याय में करेंगे। वहां इन ग्रन्थ-रत्नों के यथार्थ प्रकाश का अधिक अनुभव हो सकेगा।

Chapter-4

चतुर्थ - अध्याय

वर्ण्य - विषय

"गोस्वामी हरिराय जी के गद्य-ग्रन्थों में अधिकांश ग्रन्थ भावना-प्रधान हैं। इनमें सम्प्रदाय की सेवा-व्यवस्था, सिद्धान्त एवं दर्शन पर प्रकाश डाला गया है। सिद्धान्त-ग्रन्थों में पुष्टि-मार्गीय भक्ति के सिद्धान्त का व्यावहारिक रूप विवेचित किया गया है। दर्शन प्रधान ग्रन्थों में शुद्धाद्वैत की शास्त्रीय व्याख्या की गई है।"

गोस्वामी हरिराय जी एक भक्त कवि थे, इस सन्दर्भ में वह भक्त पहले थे और कवि बाद में। यही कारण है कि उनकी अधिकांश रचनाएँ भक्ति-भावना मूलक अनुभूतियों पर अधिक आश्रित हैं।

गोस्वामी हरिराय जी ने स्फुट पदों का ही अधिक सृजन किया है। कुछ पद, जो विस्तृत हैं, उनका पृथक् नामांकन दिया गया है, जैसे दामोदर लीला, सनेहलीला, नित्य लीला, दानलीला आदि, किन्तु शेष रचना पदों अथवा कवित्तों के रूप में ही संकलित है। अत: काव्यगत वर्ण्य विषय की चर्चा ग्रन्थों के नाम के आधार पर न करके, काव्यगत विषयों को पृथक् शीर्षक बनाकर ही करना समीचीन प्रतीत होता है। गद्य-ग्रन्थों का वर्ण्य विषय स्पष्ट करते समय पृथक्-पृथक् ग्रन्थों का पृथक्-पृथक् अध्ययन किया जायगा।

अध्ययन की सुविधा के लिये गोस्वामी हरिराय जी के समस्त साहित्य को निम्नांकित अधिकरण में वर्गीकृत किया जा सकता है,-

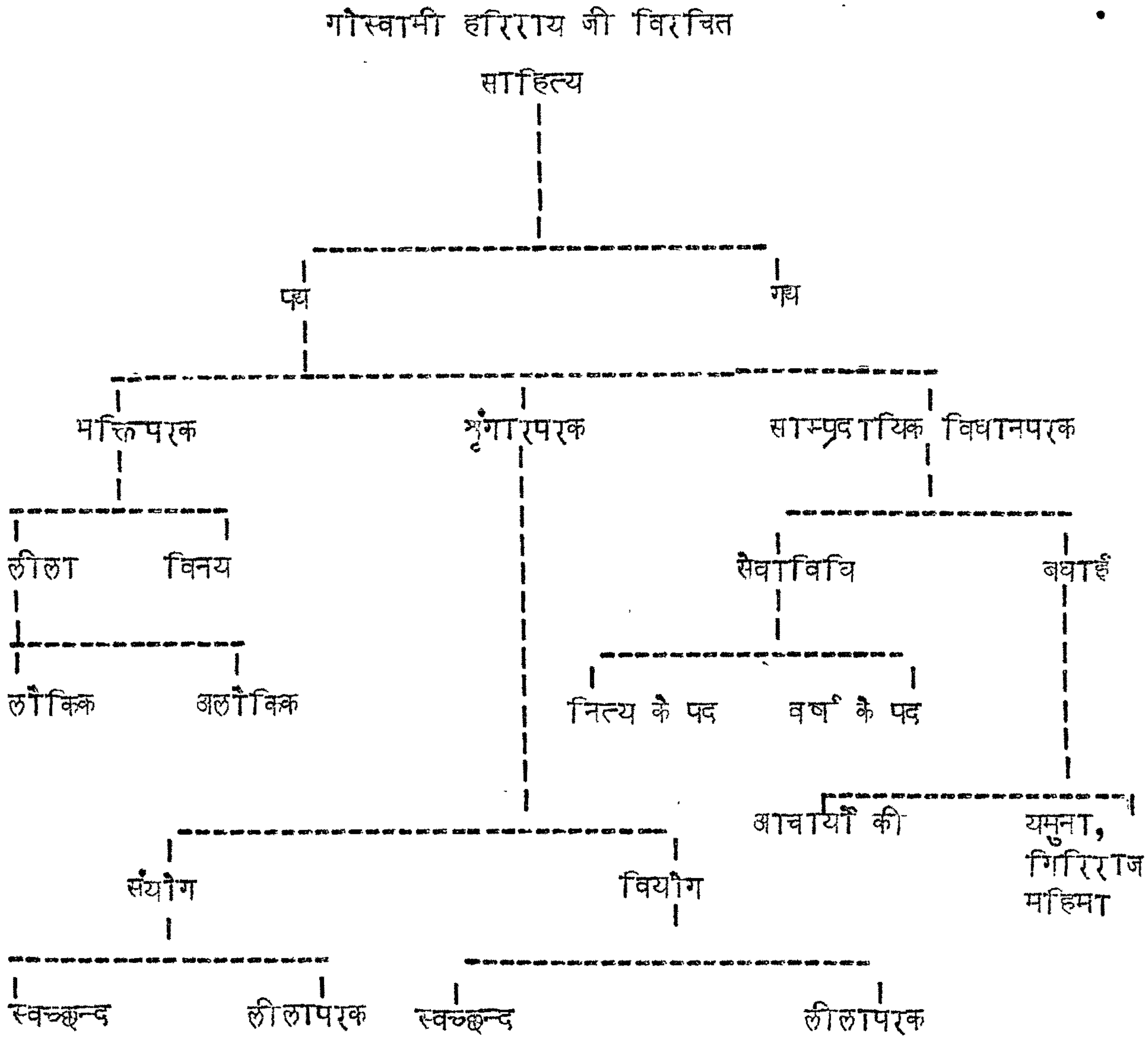

उपर्युक्त वर्गीकरण के अनुसार गोस्वामी हरिराय जी की भक्तिपरक लीला सम्बन्धी पद्य-रचनाओं का वर्ण्य विवेचित है,-

लीला सम्बन्धी :-

`लीला` शब्द `क्रीड़ा` का पर्यायवाची है। कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं के क्रिया-कलापों को पौराणिक काल से ही `लीलाएँ` कहा जाता है। इस सन्दर्भ में यह तथ्य विशेष रूप से दृष्टव्य है कि कृष्ण के जीवनवृत्त की घटनाओं के लिये विशेष प्रकार की सम्मान सूचक शब्दावली का प्रयोग किया जाता रहा है। उदाहरणार्थ प्राकट्य, अवतरण, दर्शन, लीला, अन्तर्द्धान आदि जैसे शब्दों के प्रयोग से उनके लीला नायक स्वरूप को प्रस्तुत किया जाता रहा है।

`गोस्वामी हरिराय जी ने कृष्ण की विविध लीलाओं को बड़े ही मनोहारी ढँग से प्रस्तुत किया है। उनके लीला सम्बन्धी पद्य-साहित्य के लौकिक तथा अलौकिक दो पक्ष हैं,-

कृष्ण की लौकिक-लीलाएँ

कृष्ण की लौकिक लीलाओं में, गोस्वामी हरिराय जी ने परम्परा-विश्रुत सभी लीला - प्रसंगों का वर्णन नहीं किया, वरन् कृष्ण की कुछ प्रमुख लीलाओं का ही उन्होंने चित्रण किया है,-

१- कृष्ण जन्म
२- ढाँढ़ी ढाँढ़िन
३- बाल-क्रीड़ा
४- माखन चोरी
५- कलेऊ

६- छाक
७- गौ-चारण
८- यशोदा की चिन्ता
९- वन से वापसी
१०- गौ-दोहन
११- राधा जन्म
१२- मुरलीहरण आदि ।

-:: कृष्ण - जन्म ::-

कृष्ण जन्म के वर्णन में गोस्वामी हरिराय जी ने अपने पूर्ववर्ती कवियों की भाँति कृष्ण के जन्म काल की सभी परिस्थितियों का चित्रण नहीं किया, माँ यशोदा की गोद में क्रीड़ा करते, उनके कृष्ण कब जन्मे, कहाँ जन्मे ? इन प्रपंचों से कवि सर्वदा दूर ही रहा है । इस सन्दर्भ में कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

'जसुमति सुत जनम सुनि, फूले ब्रजरात हो,
बड़े भाग खुले, करन आए सुर काज हो ।
गाय ब्रज सिंगारी सब, बसन भूषन साज हो ,
देखन कों आय जुरे, गोप, गोपि समाज हो ।
सिगरे मिल नाचैं गावैं, छाड़ि लोक लाज हो,
दूध दही मक्खन लै, छिरकैं करि गाज हो ।
नंदभवन दीने बहु, धेनु बसन नाज हो,
प्रगट भए 'रसिक -प्रीतम' गोकुल सिरताज हो'।।१

इस प्रकार गोस्वामी हरिराय जी ने जन्म के पद अधिक नहीं लिखे हैं । जन्म के अतिरिक्त बधाई, ढाढ़ी ढाँढ़िन आदि विषयों पर भी उन्होंने संक्षिप्त रूप से लिखा है । उनके बधाई के पदों में पूर्ववर्ती साहित्य का प्रभाव आभासित होता है ।

(१) गो० हरिराय जी का पद-साहित्य, प्रकाशित, पद-१ ।

गोस्वामी हरिराय जी ने जन्म बधाई सम्बन्धी भी कुछ पद लिखे हैं। एक उदाहरण दृष्टव्य है :-

जन्म-बधाई :-

सुनि गोपी जन मन आनंद भई हो, हरि जू की जनम बधाई।
करि सिंगार चारु आँगन में, देति असीस सुहाई।
बदन तमोल, नैंन अंजन दै, सिंदुर माँग भराई।
पिय अनुराग सुहाग भई नव कुंकुम आड़ दिवाई।
अंबर तर कुंडल छवि झलकत, परत कपोलन झाँई।
मानो भोर भयो रवि, कंजन किरन पियूष पिवाई।
छूटत कुसुम गुथित कबरी तैं चरनन पंथ बिछाई।
मनों मेघ मोहे नलिनी पैं, फूल फूलि बरसाई।
मनिगन हार बिराजत उर पर कंचुकी नील कसाई।
मनो स्याम प्रगट हिरदै भयो, उर पर झलकत झाँई।
झनकत बलय कुंज नूपुर धुनि, मोहत श्रवन सुहाई।
मंगल थार सँभार दोऊ कर, मंगल गावत आई।
मंगल बदन निहारत, वारत, तन मन धन बिसराई।
मंगल पूरव मिले सनेही, मंगल रूप कहाई।
मंगल तैल हरदि चूरन जल, सींचत हरष बढ़ाई।
मंगल नंद यशोदा रानी, मंगल निधि प्रगटाई।
मंगल गोप प्रगट भये नाचत, मंगल दधि ढुरकाई।
मंगल भूषन वसन पहरि सब, मंगल दरस दिखाई।
मंगल श्री ब्रज श्री गोबरधन, मंगल पुंज भराई।
मंगल पुलिन सुभग जमुना तट, लता द्रुम मंगल छाई।
मंगल श्री वल्लभ निधि मंगल, पद-रज सीस चढ़ाई।
नित मंगल 'रसिकन' कौ जीवन, मंगल लीला गाई॥

गोस्वामी हरिराय जी ने कृष्ण जन्म की इन प्रारम्भिक लीलाओं के वर्णन में कृष्ण को एक सामान्य शिशु की भाँति ही चित्रित किया है। मंगल बधाई, नाँच-गान, सामुहिक उल्लास आदि का वर्णन तत्कालीन समाज के प्रचलित रीति रिवाजों की ओर ही संकेत करता है। कृष्ण-जन्म की लीलाओं के वर्णन में कवि ने कहीं भी कृष्ण का अलौकिक-स्वरूप प्रस्तुत करने की चेष्टा नहीं की।

-:: ढ़ाढ़ी - ढ़ाढ़िन ::-

जन्म बधाई के अतिरिक्त गोस्वामी हरिराय जी ने ढ़ाढ़ी ढ़ाँढ़िन के भी पद लिखे थे। इस प्रसंग में कुल दो पद प्राप्त हैं। इसमें ढ़ाँढ़ी ढ़ाँढ़िन को भाट-भाटिन के रूप में प्रस्तुत किया गया है, प्रकारान्तर से इसे चारण -दम्पति भी माना जा सकता है। तत्कालीन संस्कृति के अनुसार पुत्र - जन्म के अवसर पर ये ढ़ाढ़ी ढ़ाढ़िन आकर वंश का यशोगान करते हुए, पुत्ररत्न के दीर्घआयु होने की कामना करते थे। गोस्वामी हरिराय जी के ढ़ाढ़ी ढ़ाढ़िन ने नन्द के घर में कृष्ण जन्म के अवसर पर नन्द वंश का यशोगान किया है। इस प्रसंग में कवि ने कृष्ण को तथा कृष्ण के पूर्वजों को लौकिक रूप में ही प्रस्तुत करने का यत्न किया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है :-

श्री वल्लभ पद वंदि के कहौं सुजस इकसार ।
पुत्र भयौ श्री नंद कैं, बढ़ी बेस ततकार ।
स्रवन सुनत ढ़ाढ़ी चल्यौ सुत दारा लै साथ ।
नृपगन मनि श्री नंद कौं, आयि भुकायौ माथ ।
रूप सौ सुन्दर सोहिनौं, भूषन बसन सुदेस ।
ढ़ाढ़ी बरनत विरद जस, मानौं नगर नरेस ।
बड़े बड़े सब गोप मधि, राजै श्रीमान नन्द ।
ज्यौं उडुगन की मंडली, राजत पूरन चन्द ।।

इस पद में कृष्ण के वंश का वर्णन इस प्रकार किया गया है:-

बंदन करि सब साधु कुल बरनत बंस उदार ।
जनम मरन ते छूटि हैं, गाएं सुनैं नर नारि ।
आभीन मान सुभान तैं, भये सुजान उदार ।
अतिविचित्र कत लौं कहौं स्गुन अमित अपार ।
बसत महावन सुचि सुथल, जो हरि को निजधाम ।
घोष लोक गोकुल अधिक , लीला अति अभिराम ।
- - - - - - - - - ।
तिनमैं सूरज चन्द भये, जैसे चन्द प्रकास ।
उनमैं मीलक बाहु भ्ये, चारो चक्र उजास ।
कानन ससि तिनके भये, कंजनाभ तिहिजान ।
वीरभान तिनके भये महा नृपति बहुमान ।
धरन धीर तिनकैं भये, सर्व धरम जा मांहि ।
तिनकैं भये कलिंद जू सो लंक दुहाई जाहि ।
कलिंद जू के दस पुत्र भ्ये, तेजभान गुनमान ।
धरमधीर बलवीर बहु, सील संतोषहि जान ।
जे तन ते वन वल कहैं जे कृत जैसी होई ।
कंठ भान महा बुद्धि जो मन तेरे पुनि सोई ।
मनोरथ बारंगद भये, चित्र सैन लघु जान ।
महापुन्ज के पुन्ज को जिहि नव नंद बखान ।
नवो नंद आनंद निधि प्रगटे जिनके बाल ।
नाम लेत आनंद मन, मिटत तिमिर कलिकाल ।
सुनंद जानि उपनंद जू महान्द कलिनन्द ।
नंद वधू नव नन्द जे , नन्द नन्द प्रतिनन्द ।

महाभाग्य महिमा अमित, ज्यौं सरदै पून्यौचंद ।
भक्ति तपस्या तेज तैं, प्रगट भये श्री नन्द ।
- - - - - - - - ।
नन्द घरनी आनन्द मय, जायौ मोहन पूत ।
यह सुनि सब परिवार लै, अपुनि घरनि संपूत ।।१

अन्य भक्त कवियों ने उपर्युक्त विषय का प्रारम्भ नव नंदों से किया है, किन्तु गोस्वामी हरिराय जी ने इस प्रसंग में नंद वंश का पूरा इतिहास ही प्रस्तुत कर दिया है ।

गोस्वामी हरिराय जी ने कृष्ण की बाल-लीलाओं को अधिक विस्तार नहीं दिया । प्रमुख - प्रमुख प्रसंगों को ही इसमें संगृहीत किया गया है । बाल-लीलाओं से इतर कृष्ण के यौवन की घटनाएँ उन्होंने अधिक रुचि से चित्रित की हैं । उनकी रचनाओं में युगल-दम्पति के संयोग व वियोग के चित्रण ही अधिक प्राप्त होते हैं । गोस्वामी हरिराय जी ने सूर, परमानन्ददास, नन्ददास आदि की भाँति कृष्ण के जन्म, अन्नप्राशन, घुटुअन चलन, तुतलाती बोली, आदि के वर्णन में वैविध्य के साथ वर्णन नहीं किया, अपितु बाल-लीला के प्रमुख अंशों को ही उन्होंने स्पर्श किया है । अत: गोस्वामी हरिराय जी की प्रवृत्ति बाल-लीलाओं के सर्वांगीण चित्रण में अधिक नहीं रमी है ।

-:: बाल - क्रीड़ा::- गोस्वामी हरिराय जी ने यद्यपि कृष्ण की बाल-लीलाओं को मानव-प्रवृत्ति के अनुरूप ही चित्रित किया है, तथापि कृष्ण के प्रति उनके पूज्य भाव का स्वरूप उनके पदों की अन्तिम पंक्ति में देखा जा सकता है । वैसे तो सूरदास जैसे कवि मनीषी से इस

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद-५ ।

इस विषय में कहने को कुछ शेष नहीं छूटा, फिर भी गोस्वामी हरिराय जी के भक्त हृदय की अभिव्यक्ति इस विषय में 'चर्चित' अवश्य है। बाल-क्रीड़ाओं के यत्किंचित जो भी वर्णन उन्होंने किए हैं वे बड़े ही सरस व सुन्दर बन पड़े हैं। एक चित्र दृष्टव्य है :-

सुमरौ नन्द राज कुमार ।
नन्द आँगन करत रिंगन बदन बिथुरे बार ।
चरन नूपुर किंकनी कटि कंठ कठुला - हार ।
करन पहौंची, उरसि बघनां, तिलक चारु लिलार ।
सुनत फिरिकैं चकित चित निज किंकनी झनकार ।
ठिठति दौरत करत कौतुक, हँसत परम उदार ।
पंक लेपन अंग कीन्हैं, नचत नयन सुढार ।
करि बड़ाई लेत जननी, गोद, मोद - अपार ।
गहत बछरा पूँछ , राजत रूप, जीत्यौ मार ।
देख परबस हँसत गोपी, मुग्ध तजत अगार ।
- - - - - - - - ।
वारि डारौ निरखि सोभा, रसिक बारँबार ।।१

गोस्वामी हरिराय जी ने अन्य कृष्ण भक्त कवियों की भांति कृष्ण की सभी लौकिक- अलौकिक घटनाओं को ग्रहण नहीं किया। उनके कृष्ण व्रजरज खाकर अपने मुख में त्रिलोकी के दर्शन कराने के लिये आतुर प्रतीत नहीं होते। वे विकराल राक्षसों से जूझने को भी उत्सुक प्रतीत नहीं होते।

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, (प्रकाशित), पद- १०
-- सम्पादक श्री प्रभुदयाल मीतल ।

गोस्वामी हरिराय जी ने कृष्ण को अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न करके चमत्कृत करने की चेष्टा नहीं की, वरन् उनके कृष्ण माँ यशोदा के लाड़िले, अल्हड़ बालक हैं। बाल-स्वभाव के अनुरूप कवि का यह सुकुमार कृष्ण कभी धूल और कीचड़ में सन जाता है तो कभी 'कूर के ढिंग जात खेलन' में भी अपनी सहज लौकिक वृत्तियों के अनुरूप विचरण करता प्रतीत होता है। उनका कृष्ण 'तोतर बतियाँ' में बात भी करता है और अँगूठे का रसपान भी। यह बालक कृष्ण सर्वथा स्वाभाविक वातावरण में ही पल्लवित हुआ है। माँ यशोदा इसे अपार ममत्व देती है और ब्रजांगनाएं उनके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाती हैं, किन्तु 'पूतना' जैसी राक्षसी उसे दुग्ध पान कराने कभी नहीं आती। गोस्वामी हरिराय जी ने अन्य कृष्ण भक्त कवियों की भाँति कृष्ण के बाल-चरित्र को अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन देकर अलौकिक सिद्ध करने की चेष्टा नहीं की। उनके कृष्ण की स्वाभाविक चेष्टाएं एक ही पद में देखी जा सकती हैं,--

'बोल सुनावो तोतर बतियाँ, सीतल करो लाल मेरी छतियाँ।
बोलि लेहि बाबा कहि तातहि, मैया कहि जु राम मुसक्यातहि।
- - - - - - - - ।
हँसत जात ढिंग चुकटी बजावैं, करि कंठहि गुलगुली हसावैं।
देखों मेरे सुत, हौं फिर की फिराऊँ, नीके करि भुनभुना बजाऊँ।
कबहुंक दरपण कर लै दिखावै, अँगुरिन गहि यह कौन कहावै।
कबहुंक दृग मीड़ै दोऊ कर सौं, पोंछत जननी छोर अंचर सौं।
कबहुंक कर लै अंगूठा चूसै, ब्रज जन के तन मन धन मूसै।
कर - पहोंची फुंदना मुख मेलै बदन जम्हाई मुग्ध तन खेलै।
चरन-कमल दोऊ कर पकरै, नूपुर धुनि सुनि स्रवन मन धरै।
करवट लेत किंकिन धुनि बाजै, सब्द सुनत कोकिल मन लाजै।।

> कब मेरो छोटा पांइन चलि है, बल संग ले बैरी दल दलि है ।
> तेरे पास रखी तेरी लकुटी, लेकर लाल चढ़ाओ भृकुटी ।
> इति विधि कहत जननी ब्रजरानी, 'रसिक प्रीतम' बोलत रसवानी ।।१

माँ यशोदा अपने इस बोध बालक से भविष्य के सुखदायी स्वप्नों की कल्पना करती है । कंस के अत्याचारों से त्रस्त माँ का मन अपने पुत्र से यही आशा करता है कि--

> कब मेरो छोटा पाइन चलिहै, बल संग लै बैरी दल दलि है ,
> तेरे पास रखी तेरी लकुटी, लेकर लाल चढ़ाओ भृकुटि ।

अन्य भक्त कवियों की भाँति गोस्वामी हरिराय जी के कृष्ण माँ की वात्सल्य - भावनाओं के केन्द्र ही बनकर नहीं रह गए । उनके चरित्र नायक की माँ यशोदा केवल माखन और गो-चारण के प्रसंगों की ही कल्पना नहीं करती, किन्तु तत्कालीन व्यावहारिक परिस्थिति से त्रस्त इसका हृदय अपने पुत्र को 'रक्षक' के रूप में भी देखता है । मानव हृदय की कुंठित भावनाओं का कवि ने बड़ा ही सहज वर्णन किया है ।

गोस्वामी हरिराय जी ने कृष्ण की बाल-लीलाओं से संबंधित पैंजनिया,[2] वंशी,[3] दरपन-प्रतिबिंब,[4] माखन चोरी,[5]

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, (प्रकाशित), पृष्ठ- २५
(२) वही, पृष्ठ- ३८
(३) वही, पृष्ठ- ३६
(४) वही, पृष्ठ- ४१
(५) वही, पृष्ठ- ४३ ।

कलेऊ[1], छाक,[2] गो-चारन[3] आदि विविध विषयों का संक्षिप्त में वर्णन किया ~~गया~~ है । गोस्वामी हरिराय जी ने गो-चारण तथा गो-दोहन प्रसंग का सुंदर वर्णन किया है ।--

मैया या ते भई अबेर ।
आवत भाजि गई एक गैया, भाजि गई बन फेर ।
दौरे ग्वाल-बाल वाके पाछें, पकरन की करि आस ।
चढ़ि कदंब पीताम्बर फेरत, आइ गई मो पास ।
हौं चुचकार पीठकर फेर्यो, लैंहहे लई लगाइ ।
बतियां सुनत 'रसिक प्रीतम' की फूलत जसुमति माय ।।४

गाय का बिछुड़ कर वापस बन में भाग जाना उसके पीछे ग्वाल-बालों का भागना, कृष्ण का कदंब पर चढ़कर पीताम्बर फेरना, जिसे देखकर गाय का पुन: वापस आजाना, आई हुई गाय को पुचकार कर पीठ पर हाथ फेरना, फिर उसे अन्य गायों के झुंड में मिला लेना । कृष्ण के द्वारा दी गई 'यह सफाई' निश्चय ही कहीं से 'बनावटी' प्रतीत नहीं होती । एक अन्य पद में मां यशोदा की वात्सल्य - भावनाओं का यथार्थ चित्रण देखिये :-

कहाँ कान्ह गैया कित बिडरानी ?
कहां चलाइ, चराइ कौन विधि, कहां पिवायो पानी ।
भई साँझ, बन मांझ फिरत हौं, बोलत पंछी कोऊ न बानी ।
'रसिक प्रीतम' तुम भूले से फिरत कहा, बात तिहारी न जानी ।।५

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, (प्रकाशित), पृष्ठ- ४७
(२) वही, पृष्ठ- ५१
(३) वही, पृष्ठ- ५६
(४) वही, पृष्ठ- ५६
(५) वही, पृष्ठ- ५५ ।

इस प्रकार के वर्णन सूक्ष्म-भावाभिव्यंजना से अलंकृत संख्या में अधिक नहीं हैं। गोस्वामी हरिराय जी ने यद्यपि कृष्ण -चरित्र का क्रमागत विकास किया है, किन्तु कृष्ण के बाल - जीवन में अधिक रुचि न रमा कर वह शीघ्र ही उनके शृंगार - वर्णन में रस लेते हुए प्रतीत होते हैं। उनके द्वारा कृष्ण के चरित्रांकन में 'बाल-लीला' को कदाचित क्रम -पूर्ति के लिये ही प्रस्तुत किया जान पड़ता है। यह क्रम कृष्ण के बाल-स्वरूप को उसके यौवन-वय तक लाने का एक माध्यम भर ही कहा जा सकता है।

कृष्ण-चरित्र के वर्णन में कवि ने कथा वस्तु, अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों से ही ग्रहण की है। लौकिक -वातावरण की सृष्टि करने में कवि ने अपनी काव्य-प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है, किन्तु वर्ण्य विषय की दृष्टि से इनकी रचनाएँ परम्परा से पूर्णत: प्रभावित हैं।

भगवान कृष्ण का अलौकिक चरित्र लोक - रक्षक के रूप में सामने आता है। "भगवान भक्तों की अलौकिक रूप से रक्षा करते हैं।"१ यह मान्यता पूर्ववर्ती आचार्यों से पुष्ट होकर जन-प्रांगण में समाहित हो गई थी। गोस्वामी हरिराय जी ने कृष्ण के अलौकिक चरित्र में कृष्ण को लोक-रक्षक के रूप में स्वीकारा अवश्य है किन्तु इस प्रसंग को उन्होंने अधिक महत्ता नहीं दी और न इस विषय को उन्होंने वैविध्य के साथ प्रस्तुत ही किया है। माखन चोरी करते समय कृष्ण की क्रियाएँ मानव-वृत्ति के कितने निकट की हैं, यह इस पद से स्पष्ट होता है,-

---

(१) देखिये-- सर्वोत्तम, सम्पादक गोस्वामी श्री ब्रजभूषण लाल जी, पृष्ठ- 35
-- प्रकाशन मथुरा, द्वि० संस्क० संवत् २०३० ।

भावै हरि जू की उहि हेरनि ।
जब चोरी मिस धंसत भवन मैं, चारहु ओर दृगन भुज फेरनि ।
गनि गनि धरत चरन धरनी मैं, चकित विलोकनि अंगुरिन टेरनि ।
'रसिक प्रीतम' की बानिक निरखत, रहिन सकत हियरा औसेरनि ।।१

गोस्वामी हरिराय जी का कृष्ण ब्रज के गोप-गोपिकाओं में से एक गोप-शिशु के रूप में ही अधिक विचरण करता जान पड़ता है । इस कृष्ण को न तो अपने विविध अलौकिक चरित्रों से अपने समाज को प्रभावित करना है और न ही अपनी शक्ति सामर्थ्य से किसी को डराना या धमकाना है । कवि ने जहाँ कृष्ण-चरित्र को अलौकिकता प्रदान की है वहाँ कवि का दृष्टि-कोण कृष्ण को मात्र परब्रह्म, परमेश्वर, सर्व शक्तिवान ही सिद्ध करना नहीं रहा, अपितु कथा के क्रम में प्रसंग वश ही उन्होंने ऐसे वर्णन प्रस्तुत किए हैं ।

कृष्ण की अलौकिक-क्रीड़ाएँ

धेनुकासुर, बकासुर, सकटासुर आदि असुरों का अपनी अलौकिक शक्ति से संहार करने वाले कृष्ण सूरदास, परमानन्द दास आदि कवियों के लिए विशेष चमत्कृति के विषय भले ही रहे हों, किन्तु गोस्वामी हरिराय जी के कृष्ण को इन सभी चमत्कारों को प्रदर्शित करने का समय ही नहीं था । गोस्वामी जी ने मात्र एक ही पद में इस प्रकार की घटना का संकेत किया है । अन्यथा कवि का यह चरित्र - नायक इन प्रपंचों से सर्वथा दूर ही रहा है,--

देख्यौ एक अचंभौ आज ।
धेनु चरावत धेनुक आयौ, दैत्य रूप धरि मारन काज ।

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ- ४२ ।

किनहु न लख्यौ, लख्यौ बल भैया, मारौ छिन ही मांफ ।
रहे सकल बन बालक खेलत, निकसे व्हांते सांफ ।
'रसिकसिरोमनि' सुत की बातें, सुन सुन फूलत मात ।।१

इस पद के अतिरिक्त अन्य किसी भी पद में इस प्रकार का असुर-वध प्रसंग नहीं आया। इससे इतर कृष्ण की कुछ लोक-प्रसिद्ध कथाओं में वर्णन अवश्य ही कुछ अलौकिक होगया है। इस प्रसंग में कृष्ण की दामोदर लीला, गोवर्द्धन लीला, आदि को रखा जा सकता है।

दा मो द र
ली ला

'दामोदर लीला' में प्रारम्भ से अन्त के कुछ समय पहले तक कथा - प्रसंग में कृष्ण का चरित्र लौकिक ही रहा है, किन्तु बाद में यमुलार्जुन-मोक्ष के संदर्भ में वातावरण कुछ अलौकिक हो जाता है। यह रचना एक आख्यानक रचना है। रचना का प्रारम्भ बड़े ही सहज ढंग से हुआ है। एक पद की कुछ पंक्तियां दृष्टव्य हैं, जिसमें माता यशोदा की मानसिक- दशा का मार्मिकवर्णन हुआ है :-

इतने मांफ दूध कौ चरुआ, चूल्हे ताप धर्यौ है ।
सौ यह घर में उफनत देख्यौ, जानौ दूध जर्यौ है ।
अध भूखे लरिका कौ धरिकैं, जसुमति घर में दौरी ।
दूध पूत जुग एकैं बिरियां, राखन कौं इहि बौरी ।।२

मां यशोदा जब इस प्रकार दूध को उतारने के लिए 'अधभूखे' लरिका को छोड़कर भागती हैं, तब वह चपल बालक रुष्ट हो जाता है, और एक पत्थर

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ-
(२) वही, पृष्ठ-

खींचकर दूध-दही के मटकों पर फेंक देता है। माँ पलट कर आती है और कहती है,--

> कहि रे साँच, मथनियाँ दधि की, तैं काहे ते फोरी ।
> सुनि मैया तू मोहि छोड़िकैं, दूध उतारन दौरी ।
> लागि गयौ तेहरि कौ चूरा, जासौं मथना फूट्यौ ।
> हौं नो तेरे डर के मारे, आपुन ही ते बुहतौ ।
> - - - - - - - ।
> माखन की मटकी छींकैं ते, कहौ लाल किन लीनी ।
> 'चोरी होनहार यह मैया, परमेश्वर नैं कीनीं ।।

इस प्रकार के अनेक रम्य संवादों से सुसज्जित यह लालित्य पूर्ण रचना गोस्वामी हरिराय जी की उत्कृष्ट रचनाओं में से एक है। कथा का अन्तिम चरण यहाँ फिर कृष्ण के अलौकिक रूप को स्पष्ट करता है, - - - - - माँ यशोदा अपने नन्दकुंवर को उसके अभियोगों के प्रति दंडित करती है। इस प्रसंग में वह कृष्ण को रस्सी से बाँध देती है। कृष्ण के उदर में रस्सी अर्थात् दाम बाँधने के कारण इस रचना का शीर्षक ही 'दामोदर लीला' रखा गया है। कथा का अलौकिक अंश इस प्रकार है।--

> गाउँ माँझ की सबै जेवरी एकौ बची न कोई ।
> द्वै अंगुल दामोदर जूं कैं पूरी उदर न होई ।
> थके पाँय गोपिन के दौरत, थके हाथ मैया के ।
> थके देख कैं सब ब्रजजन कौं, ढूरे नैंन छैया के ।।

यह अलौकिक प्रसंग कथा का आवश्यक अंग है। अत: इसे कथा से पृथक् नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार इस पद में अन्य स्थल पर भी एक ऐसा वर्णन है :-

तहाँ द्वै अर्जुन वृक्ष पुराने नन्दलाल नैं देखे ,
तिनके मध्य निकस खैंचत वे गिरत सबन अवरेखे ।

इस `लीला` में यमुलार्जुन-मोक्ष का वृतान्त भी कथा का आवश्यक अंग है । कृष्ण के द्वारा अर्जुन नामक पेड़ों के गिराए जाने पर नलकूबर तथा मणिभद्र, दो व्यक्तियों का मोक्ष हो जाता है, जो अब तक शाप-वश पेड़ों के रूप में खड़े थे ।

गोस्वामी हरिराय जी ने कृष्ण के अलौकिक प्रसंग को भाव-मयी भाषा में व्यक्त किया है,--

जो हरि तीन लोक वासिन के बंधन बेगि छुड़ावे ।
सो जसुधा के हाथ आपुनपों देखो आप बधावे ।।

इस रचना के अन्त में कवि की भक्ति भावना इस प्रकार प्रकट हुई है :-

दामोदर जू की यह लीला, रसिकन दास कही है,
संत जनन की चरन रेनु को तन मन और लही है ।

इस प्रकार रचना के अन्तिम चरण में गोस्वामी हरिराय जी ने अपनी भक्ति भावना को व्यक्त किया है । `भक्त कवियों की रचनाओं को देखने से ज्ञात होता है कि भक्ति उनके जीवन का अनिवार्य अंग बन गई थी, इसी लिये उनकी कृतियाँ भी सहज ही भावोद्रेकदाम बन सकीं ।`१

---

(१) बिहारी का नया मूल्यांकन, - डा० बच्चनसिंह, पृष्ठ- ५६ ।

'दामोदर लीला' की भाँति 'गोवर्धन लीला' का वर्णन भी कुछ भावप्रधान - अलौकिक वातावरण में ही हुआ है। इन लीलाओं में अलौकिक वातावरण की सृष्टि कवि अपने काल्पनिक विचारों द्वारा नहीं करता, वरन् कथानक के परम्परागत निश्चित स्वरूप के अनुसार उसे बाध्य होकर ऐसे प्रसंगों की चर्चा करनी पड़ती है।

गोवर्द्धन लीला

दामोदर लीला की भाँति यह रचना भी गोस्वामी हरिराय जी की आख्यानक रचना है। गोवर्द्धन लीला मूल रूप में श्रीमद् भागवत् से ही ग्रहण की गई है। अष्टछाप के कवियों द्वारा इस विषय में अनेकानेक पद लिखे गये हैं। इन्द्र के कोप के कारण भयंकर वर्षा से व्रज के निवासी त्रस्त हो उठे थे, भगवान् कृष्ण ने अपनी अलौकिक शक्ति से गिरिराज गोवर्धन को अपनी 'छिगुनी' (कनिष्ठिका) पर उठाकर व्रजवासियों की रक्षा की थी। गोस्वामी हरिराय जी की इस रचना में इसी कथा क्रम को अपनाया गया है। इस रचना का प्रारम्भ इस प्रकार है :-

आज कहा संभ्रम है तुमरे घर तात ।
गोप लगे काजन , आनंद ना समात ।
हाथ जोरि ठाढ़े हरि, पूछत हैं आय ।
मोसों यह बात कहो, बाबा व्रजराय ।
बोले नन्दराय, देव इन्द्र बली देहैं ।
बरसै जल नाज निपजि, सुखबरस लौ पैहैं ।
बहुत घोस करन आये पूजा सब कोई ।
अब जो हम छाँड़ि दैहैं तौ न भलौ होई ।।१

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ- ७३ ।

अपने पूर्वजों के अंधानुकरण पर कृष्ण की आस्था नहीं टिक पाती । समाज के अन्ध-विश्वास का साहस के साथ वे विरोध करते हैं । कथा में नन्दराय जी के उपर्युक्त तर्क के प्रति कृष्ण की विवेक-शील प्रज्ञा इसका निराकरण करती है :-

बोले हरि सुनो तात, बात एक मेरी ,
करम बस सबै जु होत मिलि सुभाव हेरी ।
कृत के आधीन देव कहो कहा करिहैं ।
मन की कछु चलै नाहि करम बिनु न सरिहै ।
जो तुम ईसादि जानि, पूजत सुख चाहीं ।
कौन काज बाके, गोचारन बन जाहीं ।।

'कर्मण्येवाधिकारस्तु' के अनुरूप गोस्वामी हरिराय जी ने कृष्ण के रूप को गीता के कथन में ढालने की चेष्टा की है । गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी 'कर्म प्रधान जोई जस राखा' कह कर कर्म की महत्ता प्रतिपादित की है ।

'गोवर्द्धन लीला' में गोस्वामी हरिराय जी के कृष्ण ने स्पष्टतया देव पूजा का निषेध कर कर्म को प्रमुख माना है । यह कवि की जागरूक लेखनी का प्रमाण है । कवि, इस प्रकार के रूढ़ वर्णनों को अपने मौलिक विचारों से सम्बद्ध करने में कुशल रहा है । उनके कृष्ण गोवर्द्धन पूजा के लिए अपने 'परिकर' को निर्णयात्मक आदेश देकर अपने देवत्व का ढिंढोरा नहीं पीटते, वरन् वे तो अपने पिता के समक्ष अपने विचारों को बड़ी विनम्रता से प्रस्तुत करते हैं :-

मेरो तो यही मतो, सुनि हो व्रजराज ।
भावै तो कीजै जू, उत्तम यह काज ।

जैसें हरि कह्यौ सबन तैसें ही कियौ ।
रूप बड़ौ धरिकैं, बलि-खात दरस दियौ ।।

यहाँ पर अन्तिम पंक्ति में कृष्ण के देवत्व के प्रति संकेत करने में कवि ने विशेष उत्साह नहीं दिखाया । इस रचना में अलौकिक अंश और भी हैं,-

कोपि इन्द्र पठये घन, बरसौ दिन सात, गिरधर ब्रजवासी राखि-
लीन्हे दुखपात ।
सात दिवस ठाड़े हरि, नाँहि पगु हिलायौ, ऐसौ ब्रजवासी, बहु-
भागन इन पायौ ।
सुरपति कौ गरब गयौ, रह्यौ अति खिसाय, उघर गए मेघ सबै, प्रगट्यौ-
रबि आय ।
बोले हरि निकरौ सब बाहर गयौ मेह, निडर होइ फिरौ गोप, करौ-
जनि संदेह ।
राखौ गिरि भूमि धरि, भैटे ब्रजवासी, पायौ सब परमानन्द, गोकुल-
सुखरासी ।

कृष्ण के इस अलौकिक वर्णन को कवि ने प्रचलित कथा के अनुरूप ही चित्रित किया है । एक विशाल पहाड़ को अंगुली पर उठाकर सात दिन तक एक ही मुद्रा में खड़ा रहना, निश्चय ही मानवीय-शक्ति का सामर्थ्य नहीं, किन्तु कृष्ण-चरित्र का यह अलौकिक प्रसंग पूर्ववर्ती साहित्यकारों ने इतने वैविध्य के साथ प्रस्तुत किया है कि आगे के साहित्य सृष्टाओं को उनका यथावत् अनुगमन करना आवश्यक हो गया । गोस्वामी हरिराय जी ने प्रचलित कथा का ही आधार ग्रहण किया है, किन्तु इस रचना में उन्होंने अपने स्वतंत्र विचारों को भी कुशलता के साथ संन्निहित कर दिया है । कवि चातुरी का यह अच्छा उदाहरण है ।

उपर्युक्त उद्धरणों के अतिरिक्त कृष्ण लीला के अलौकिक प्रसंग गोस्वामी हरिराय जी की रचनाओं में अन्यत्र नहीं मिलते, किन्तु कृष्ण के प्रति अपनी दैन्य भावना वर्णन में अथवा विनय के पदों में अवश्य ही उन्होंने कृष्ण के स्वरूप का व्यापकत्व स्वीकारा है ।

विनय के पद :-

विनय सम्बन्धी रचनाओं में गोस्वामी हरिराय जी ने कृष्ण को पूर्ण प्रभुता सम्पन्न अवतारी पुरुष घोषित किया है । कृष्ण के विविध अलौकिक स्वरूपों का बखान करके कवि ने अपनी दीनता इस प्रकार व्यक्त की है:-

जैसें गजराज राख्यौ धाइ धाम हू तें आइ,
जैसे के सहाइ व्है कें पृथा सुत पारे हैं ।
जैसें महाराज राखी द्रुपद -सुता की लाज ,
जैसे ब्रजवासी गिरिधरि कें उबारे हैं ।
जैसें दैकें संपति सुदामा दुख दूरि कर्यौ ,
जैसें हित संतन के असुर सहारे हैं ।
तैसें राखि लीजे निज वल्लभ के बंश हू कौं,
जैसे तैसे जग में कहावत तिहारे हैं ।।१

'विनय के पद' लिखने का प्रचलन भक्त कवियों में प्रारम्भ से ही देखा जा सकता है । सूर के विनय के पद तथा तुलसी की 'विनय पत्रिका' इस सन्दर्भ में प्रसिद्ध रचनाएँ हैं । गोस्वामी हरिराय जी ने इन कवियों की भाँति इस विषय को विस्तार से तो ग्रहण नहीं किया,

---

(१) गो० हरिराय जी का पद संग्रह,(हस्तलिखित), पत्रा- ४६,
-- गो० ब्रजेश कुमार, (बड़ौदा), के निजी संग्रह से प्राप्य ।

किन्तु उनकी यत्किंचित रचनाएँ इस विषय में उत्कृष्ट अवश्य हैं । इस संदर्भ में उन्होंने कृष्ण-महिमा के अतिरिक्त राधा का गुणगान भी किया है :-

मेरी मति राधिका चरन रज में रहौ ।
इहैं निस्चै करौ अपुने मन में धरौ ,
भूलि के कोऊ कछू और हू फल कहौ ।
करम कोऊ करौ, ज्ञान हू अनुसरौ ,
भक्ति के जतन करि, वृथा देही दहौ ।
'रसिक' वल्लभ चरन-कमल जुग परि सरन,
आस धरि यह महा पुष्टि पथ फल लहौं ।।१

कृष्ण के प्रति उनके पूज्य - भाव इस प्रकार व्यक्त हुए हैं :-

सनेही साँचे नन्द कुमार ।
और नहीं कोई दुख को बेली, सब मतलब के यार ।
मनुष जाति को नहीं भरोसो, छिन विहार, छिन पार ।
चित्त वचन को नहीं ठिकानों छिन-छिन पलट विचार ।
मात, पिता, भगिनी, सुत, दारा, रतिन निभत एक तार ।
सदा एक रस तुमहिं निभावौ, 'रसिक' प्रीतम प्रति पार ।।२

गोस्वामी हरिराय जी ने विनय के पदों में अपनी दीनता प्रकट करते हुए लिखा है :-

अहो हरि दीन के जु दयाल ।
कब देखोगे दसा हमारी, ग्रसति है कलि काल ।

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ- २६१
(२) वहीं, पृष्ठ- २६१ ।

कहा सुमिरन करौं तिहारौ, परौ अति जंजाल ।
काढ़िवे कौं नाँहि समरथ, तुम बिना नंदलाल ।
सकल साधन रहित मोसौ, और नहिं गोपाल ।
करत अति विपरीत साधन, चलत चाल कुचाल ।
कहौ का सौं जाय ब्रजपति, आपुनौ यह हाल ।
हँसत कहा जु हरहु आरत 'रसिक' करौ निहाल ।।१

विनय के पदों में कवि ने विशेष महत्वपूर्ण कुछ भी नहीं लिखा । इस प्रकार के पदों में न तो प्रभावोत्पादकता ही है और न इनकी कुछ मौलिक देन ही । गोस्वामी हरिराय जी ने विनय के पदों में अपने वंशधरों के कृत्यों का बड़ा ही स्पष्ट वर्णन किया है :-

मारग-विरोधी अविवेकी अपराधी मूढ़,
महा अहंकारी दुराचारी लोग भरे हैं ।
विषयी, बहिर्मुख, लखैं ना तिहारौ रूप, ।
ताते नित पावैं दुख सोच सिंधु परे हैं ।
धनमद अंध, पचे संसार के धंध महा ,
कथा गुनगान सेवा रूप हू ते टरे हैं ।
तऊ निज वल्लभ के वंश भये जानि जिय,
राखि लीजै आपुने हू भाँति भाँति डरे हैं ।।२

इस रचना से ज्ञात होता है कि गोस्वामी हरिराय जी के समय में अन्य वल्लभ वंशानुयायियों में से कुछेक आचार्य उपर्युक्त अवगुणों के शिकार हो चुके थे ।

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ- २६०

(२) वही, पृष्ठ- २६१ ।

धन-मद तथा विलासिता के इस रूप से रुष्ट गोस्वामी हरिराय जी ने इन सभी के मोक्ष हेतु कृष्ण से प्रार्थना की है। जहाँ एक ओर अन्य कवियों ने स्वयं अपने मोक्ष हेतु कृष्ण का गुणगान किया है, वहाँ गो० हरिराय जी ने अपने अन्य वंशधरों की दुर्नीति पर तरस खाकर कृष्ण से उनके मोक्ष की याचना की है। इससे गोस्वामी हरिराय जी के हृदय की विशालता और उनके स्वभाव की उदारता का परिचय मिलता है।

गोस्वामी हरिराय जी की भक्ति परक रचनाओं के उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि कवि ने इन रचनाओं में कृष्ण को मानव-वृत्तियों के अनुरूप ही अधिकांश में चित्रित किया है। उनके समग्र काव्य में कृष्ण के लौकिक चरित्र को ही अधिक स्पर्श किया गया है। जहाँ भी कृष्ण की अलौकिक लीलाओं का वर्णन किया गया है, वहाँ कवि ने कृष्ण को यत्न भर लौकिक बनाये रखने की चेष्टा अवश्य की है, किन्तु कुछ प्रसंगों में वह लोक-प्रसिद्ध कथाओं को नये मोड़ देने का साहस नहीं कर सका और यह उसके लिए सम्भव भी न था। 'दामोदर-लीला', 'गोवर्द्धन लीला' आदि में कवि ने कृष्ण के देवत्व को प्रसंगवश ही स्वीकार किया है, अन्यथा विनय, आश्रय, दीनता, भक्ति निवेदन आदि अल्प वर्णनों के अतिरिक्त कहीं भी कवि ने कृष्ण को देवत्व प्रदान करने का आग्रह नहीं किया। 'गोवर्द्धन लीला' में कृष्ण के देवत्व का वर्णन विविध कवियों ने व्यापक रूप से किया है, यथा--

तब हरि कियौ विचार, मतौ एक नयौ उपायौ ।
इनमें माया फेरि, करौं अपुनौ मन - भायौ ।
सुनौ तात एक बात हमारी, मानौ जोई ।
गिरिवर पूजा कीजिए, इनतै सब सुख होई ।।१

---

(१) परमानन्द सागर,- सम्पादक डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल, पद सं० २७२ ।

उपर्युक्त पद में परमानन्द दास जी ने 'इनमें माया फेर' का ही सहारा लेकर अपनी अलौकिक शक्ति से कृष्ण के द्वारा ब्रजवासियों को विभ्रमित किया है। उनके कृष्ण अपने 'तात' से अपनी बात कहते भी हैं और उसे मनवाने के लिए आदेशात्मक सम्बोधन का प्रयोग भी करते हैं, 'मानो जोई' में उनका आदेश अधिक मुखर हो उठा है। इससे सर्वथा इतर गो० हरिराय जी के कृष्ण ने देव पूजा के स्थान पर कर्म की महत्ता प्रतिपादित की है। उनके कृष्ण अपने पिता को आदेश न देकर उनको ब्रजपति के सम्माननीय सम्बोधन से ही इंगित करते हैं :-

'मेरो तो यही मतो, सुनि हो ब्रजराज,
भावै तो कीजे जू, उत्तम यह काज।

अपने पिता 'ब्रजराज' नन्दराय जी के लिए इन्होंने पूर्ण सम्मान सूचक सम्बोधनों का प्रयोग किया है। परमानन्द जी की भाँति गोस्वामी हरिराय जी के कृष्ण 'इनमें माया फेर' की शक्ति को ग्रहण करके अपना देवत्व प्रदर्शन नहीं करना चाहते। इस प्रकार गोस्वामी हरिराय जी ने नन्दनन्दन कृष्ण को एक साधारण मानव के रूप में अंकित करने का अधिक यत्न किया है, किन्तु वे जिस वातावरण में पल रहे थे, उससे पूर्ण विद्रोह करना उनके लिये सम्भव न था। अत: कृष्ण के लोक-विश्रुत कथानक को उन्होंने ज्यों का त्यों भी चित्रित किया है।

'दामोदर लीला' में सूरदास जी तथा अन्य अष्टछाप के कवियों ने जिस प्रकार कथा प्रारम्भ की है, गोस्वामी हरिराय जी का कथा प्रसंग उन सबसे भिन्न है। सूरदास जी ने 'दामोदरलीला' की पृष्ठ भूमि रचते हुए कृष्ण को वही माखन चोरी, गोप-गोपिकाओं के उलाहने आदि के रूढ़ प्रसंगों से जोड़ दिया है :-

'ग्वालि उरहनौ मोरहिं ल्याई, जसुमति कहँ तेरौ गयौ कन्हाई ।
भलौ काम तैं सुतहिं पढ़ायौ, बारे हू ते मूड़ चढ़ायौ ।
माखन मथ भरि धरी कमोरी, अब ही सो हरि लै गयौ चोरी ।
यह सुन-तहिं जसुमति रिस मानी, कहाँ गयौ यह सारंग पानी ।।१

सूरदास जी ने वही उलाहने ; माखनचोरी आदि को इस घटना से जोड़ दिया है, किन्तु गोस्वामी हरिराय जी ने मानव जीवन की दैनिक क्रियाओं के अनुरूप रचना की पृष्ठ-भूमि निरूपित की है :-

इतने मांफ दूध को चरुआ, चूल्हे ताप धर्यो है ,
सो यह घर मैं उफनत देख्यौ, जान्यौ दूध जर्यो है ।

इस प्रकार गोस्वामी हरिराय जी ने अपने कथानक का वातावरण यथाशक्य लौकिक बनाये रखने का ही यत्न किया है । उनका कथ्य मानव प्रकृति के बहुत निकट है ।

उपर्युक्त विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कृष्ण की अलौकिक लीलाओं के बहुत ही कम प्रसंग गो० हरिराय जी की रचनाओं में दृष्टिगत होते हैं । कवि मानव प्रवृति से पूर्ण विज्ञ है । उनके कृष्ण अधिकतर मानवीय धरातल पर ही विचरण करते रहे हैं ।

गोस्वामी हरिराय जी की भक्ति परक रचनाओं में अधिकतर मुक्तक पद ही प्राप्त होते हैं, इनके अतिरिक्त दामोदर लीला, गोवर्धन लीला, नित्यलीला, सनेहलीला, आदि उनकी आख्यानक रचनाएँ हैं, जो वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुयायी वैष्णवों में पर्याप्त चर्चित हैं ।

श्रृंगारपरक पद्य रचनाएं

सर्व विदित है कि वल्लभ-सम्प्रदाय में महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने कृष्ण के 'बाल-स्वरूप' को ही सम्प्रदाय का आराध्य स्वीकार किया था । गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने चिन्तन के स्वरूप को विस्तार देने के लिए, 'युवा - कृष्ण' के प्रति अपनी रुचि प्रदर्शित करते हुए 'श्रृंगार -रस -मंडनम्' नामक ग्रन्थ की रचना की थी । यह सत्य है कि गुसाईं जी ने महाप्रभु वल्लभाचार्य के अनुरूप बाल-कृष्ण को सेव्य-स्वरूप स्वीकार किया था, किन्तु कृष्ण के युगल -स्वरूप की ललित फांकी ने उनके विचारों को पर्याप्त प्रभावित किया । गुसाईं जी के परवर्ती साहित्यकारों को इस सन्दर्भ में प्रोत्साहन मिला और सम्प्रदाय के कवियों ने श्रृंगार - वर्णन में अपनी रुचि का विस्तृत एवम् व्यापक परिचय दिया ।

गोस्वामी हरिराय जी भी उसी श्रृंखला की एक कड़ी थे । विविध संदर्भों से यह सिद्ध हो जाता है कि भक्ति पूर्ण रचनाएं गोस्वामी हरिराय जी के प्रारम्भिक जीवन की रचनाएं हैं, क्योंकि जीवन के प्रथम -चरण में गोस्वामी हरिराय जी संस्कारगत मनोभावों से पूर्णतया प्रभावित थे । कवि -हृदय के लिये उस समय भगवान् कृष्ण की लीलाओं का वर्णन ही पूर्ण भावुकता का आश्रय था । श्रृंगार -परक रचनाएं कवि की प्रौढ़ -लेखनी की परिचायक हैं । इन रचनाओं में अनुभूतिजन्य परिपक्वता एवं अध्ययनगत सूक्ष्म दृष्टि उनकी प्रौढ़ावस्था की ओर ही संकेत करती हैं ।

श्रृंगार काव्य लेखन की परम्परा गोस्वामी हरिराय जी तक पूर्ण परिपक्व हो चुकी थी । फिर भी गोस्वामी

हरिराय जी ने अपने अधिकांश श्रृंगार-काव्य में भक्ति का साहचर्य ग्रहण किया है। यह प्रभाव उनके पद -प्रातिष्ठ्य के अनुरूप था। उन्होंने आलम्बन, उद्दीपन के वही रूप ग्रहण किए जो उनसे पूर्ववर्ती साहित्य - सृष्टाओं में प्रचलित थे। भगवान कृष्ण के 'युगल-स्वरूप' को नायक - नायिका के रूप में प्रस्तुत करने का प्रभाव कवि ने अपनी युग -परम्परा से ग्रहण किया था। उनके श्रृंगार वर्णन में संयोगजन्य मान के पद साहित्य प्रेमियों में प्रभूत रूप से चर्चित हैं।

गोस्वामी हरिराय जी रीति-कालीन श्रृंगारिक कवि न थे, और न ही उन्होंने आचार्यत्व प्राप्ति की आकांक्षा से कोई रीति-ग्रन्थ ही लिखा था। उनकी रचनाओं में नायिका-भेद, संयोग, वियोग, मान आदि के प्रसंग उनके कवि हृदय की सहजोन्मुखी अभिव्यक्ति ही है। कवि ने श्रृंगार वर्णन में अधिकांशतः भगवान् कृष्ण की विविध लीलाओं को आधार बनाया है। इनमें छेड़-छाड़, मुरली-हरण, दान-लीला, दाम्पत्य-प्रेम, नायिका भेद, युगल-विहार, निकुंज लीला, नव विलास, वर्षा, झूला आदि के विविध सरस प्रसंगों पर कवि ने विशेष रूप से लिखा है।

गोस्वामी हरिराय जी की श्रृंगार परक रचनाओं के वर्ण्य विश्लेषण हेतु पूर्व प्रदत्त विभाजन के आधार पर हमें यहां विचार करना अभिप्रेत है।

<u>संयोग श्रृंगार</u> (लीला -परक) :-

कहा जा चुका है कि गोस्वामी हरिराय जी एक भक्त कवि थे, अतः उनके अधिकांश साहित्य में भक्ति के प्रति विशेष

आग्रह सन्निहित रहा है। गोस्वामी हरिराय जी ने अपनी शृंगारिक रचनाओं में लीला-विषयक संयोग वर्णन को अधिक विस्तार नहीं दिया। उन्होंने कृष्ण की सभी शृंगारिक -लीलाओं का वर्णन न करके विशेष लीलाओं को ही व्यक्त किया है।

गोस्वामी हरिराय जी ने लीला विषयक संयोग शृंगार के वर्णन में सामग्री का अधिग्रहण पूर्ववर्ती परम्परा से किया है। इस प्रसंग में उनकी दान लीला, होली लीला, नवविलास, दसउल्लास, आदि प्रसिद्ध रचनाएं हैं। इन रचनाओं को कथाक्रम की दृष्टि से आख्यानक रचनाएं कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछेक लीलाओं के कुछ मुक्तक-पद भी प्राप्त होते हैं। सर्व प्रथम उनकी आख्यानक रचनाओं का वर्ण्य-विश्लेषण किया जारहा है।

दान लीला

दान लीला की कथा श्रीमद् भागवत् से अवतरित है। अष्टछापी कवियों ने इस विषय में पर्याप्त लिखा है। गोस्वामी हरिराय जी कृत दान लीला, इस परम्परा में एक विशिष्ट रचना है।

विषयवस्तु के अनुसार दान--कर का ही एक रूप है। ऐसा कहा जाता है कि उन दिनों जब कोई भी व्यापारी क्रय-विक्रय की दृष्टि से ग्रामीण बस्तियों में परिभ्रमण करता था, तब उसे 'कर' के रूप में अधिकारी व्यक्तियों को कुछ न कुछ देना पड़ता था। गिरिराज पर्वत की दान-घाटी, मान-घाटी, गह्वर-वन आदि विशेष मार्ग थे, जहां भगवान् कृष्ण अपने सखाओं को साथ लेकर खड़े हो जाया करते थे, और ब्रजबनिताओं से गो-रस ले जाने के कारण 'दान' मांगा करते थे।

दान के रूप में नायक कृष्ण `गो-रस` की इच्छा करते हैं, किन्तु उनका लक्ष्यार्थ इससे भिन्न (गो=इन्द्रिय), `इन्द्रियों के रस की याचना` से ग्रहण किया गया है। `गो रस के मिस जो रस चेहत, वो रस नैकु न पैहउ लाला`, के तर्क को लेकर वाद-विवाद प्रारम्भ हो जाता है। प्राय: दान-लीला विषयक इन रचनाओं का अन्त मान - मर्दन के रूप में ही हुआ है।

गोस्वामी हरिराय जी कृत `दान-लीला` में `रास-रसिक` मनमोहन अपने सखाओं को लेकर गिरिराज पर्वत पर चहुं - ओर आवृत हो जाते हैं। प्रात: काल की सुरम्य बेला में दूसरी ओर से ब्रज-ललनाएं अपने सुभग-शीशों पर दधि-दूध की मथनियां रखे हुए चली आरही हैं। ग्वाल-बाल प्रथम प्राप्य निर्देशानुसार उन-ब्रज -बनिताओं का मार्ग अवरुद्ध कर लेते हैं, किन्तु यौवन-प्रमत्त वे चपल गोपिकाएं, उन ग्वाल-बालों से कब रुकने वाली थीं? ग्वाल-बाल उन्हें रोकने में असमर्थ हो कृष्ण को बुलाते हैं :-

`ग्वालिन रोकीं ना रुकैं, ग्वाल रहे पचिहारि ।
अहो गिरधारी दौरियो, सो, कहत न मानत ग्वारि ।
नागरि दान दै ।`

कृष्ण स्वयं पर्वत-शिखर से उतर आते हैं। उन्हें देखकर ब्रजांगनाएं `मोहन जानि दे` के सामूहिक स्वर का उच्चरण करने लगती हैं। कृष्ण आते हैं और आकर अंचल पकड़ कर रोक लेते हैं :-

`चली जाति गोरस मदमाती, मनो सुनति नहिं कान ।
दौरि आए मनभांवते, सो, रोकी अंचल तान ।
नागरि दान दै` ।

केवल अंचल ही नहीं ताना, साथ में अपने अधिकार का प्रदर्शन करते हुए :-

'एक भुजा कंकन गहे, एक भुजा सौं चीर ।
दान लेन ढाड़े भए सौ, गहवर कुंज कुटीर ।
मोहन जानि दै' ।

कवि ने इस प्रसंग में गोपिकाओं के रूप वर्णन के लिए जो छवि अंकित की है, वह बड़ी ही रमणीय बन पड़ी है :-

'रस निधान नव - नागरी निरखि बदन मृदु बोल ।
क्यों मुरि ठाढ़ी होत हो, घूंघट पट मुख ओल ।
हरखि हियैं कर करखियैं, मुख तैं नील - निचोल ।
पूरन प्रगट्यौ देखियै, मनौ चन्द घटा की ओल ।
नागरि दान दै ।'

'नील परिधान बीच सुकुमारि, खिल रहा ज्यों बिजली का फूल', 'प्रसाद' की यह कल्पना चाहे मौलिक कही जाती हो, किन्तु गोस्वामी हरिराय जी की यह ब्रजांगना भी अपनी अनूठी चितवन के साथ घटाओं से झांकती पूर्ण चन्द्र-सी प्रतिभासित होती है ।

इस युगल-दल के वार्तालाप का एक उद्धरण प्रस्तुत है । गोपिकाएँ कहती हैं:-

'या मारग हम नित गईं, कबहूं सुन्यौ नहिं कान ।
आजु नई यह होति है, सो, मांगत गोरस दान ।
मोहन जान दै ।

कृष्ण का उत्तर भी इसी के अनुरूप ही है :-

'तुम नवीन नव नागरी, नूतन भूषन अंग ।
नयौ दान हम मांगही, सो, नयौ बन्यौ यह रंग ।
नागरि दान दै ।
चंचल नयन निहारियै, अति चंचल मृदु वैन ।
कर नहिं चंचल कीजियै, तजि, अंचल चंचलनैंन ।
मोहन जानि दै ।
सुन्दरता सब अंग की बसनन राखी गोय ।
निरखि निरखि छवि लाड़ली, मेरौ मन आकरषित होय ।
नागरि दान दै ।

किन्तु यह नागरि भी इतनी सीधी-सादी, भोली-भाली भी नहीं । यह इतनी सरलता से दान नहीं दे सकती । जब स्वयं मन मोहन कृष्ण ही हाथ में लकुटि लेकर सन्मुख आ खड़े होते हैं तब इस साधारण गोपांगना का 'चित्त' कैसे संयत रह सकता है :-

'लै लकुटी ठाड़े भए , जानि सांकरी खोरि ।
मुसकि ठगौरी डारिकैं, मोसो लई सकति रति जोरि ।
मोहन जानि दै ।'

कृष्ण के प्रेम-रस में पगी यह विव्हला-नायिका ऊपर से कितनी सतर्क प्रतीत होती है :-

'नैंक दूरि ठाड़े रहौं, कुछ रहौ सकुचाय ,
कहा कीयौ मन -भांवते , मेरे अंचल पीक लगाय ।
मोहन जानि दै ।

जब नायिका ही कह रही है कि उसके हृदय- देश में अनुराग की लालिमा

नायक द्वारा ही आरोपित की गई है, तब मला नायक अपने मनोभावों को कैसे शान्त रख सकता है :-

'कहा भयौ अंचल लगी, पीक हमारी जाय ।
याके बदले ग्वालिनी, मेरे नैनन पीक लगाय ।'

वाक् चातुरी के ये प्रसंग बड़े ही हृदय-ग्राही बन पड़े हैं । विषय के मूल को लेकर कवि 'दान' का प्रयोजन भी बतलाता है :-

'लिएं जात हौ श्री फल कंचन, कमल -बसन सौं ढांकि ।
दान जु लागत ताहि कौ, जु दै कैं जाहु निसांकि ।'

कृष्ण के द्वारा इस प्रकार की 'अन्योक्तियों' को सुनकर ये बृज की चंचल - किशोरियां भला चुप कैसे रह सकती थीं :-

'गोरे श्री नंदराय जू, गोरी जसुमति माय ।
तुम या ही ते सांमरे, सो, ऐसे लच्छिनु पाय ।
मोहन जानि दै ।'

यह उक्ति रूढ़ है । गोस्वामी हरिराय जी के पूर्ववर्ती अन्य अनेक कवियों ने इस उक्ति को इसी ढंग से कहा है :-

'गोरे नन्द, यशोदा गोरी, तू कत स्याम सरीर'।

गोपियों के इस कटु प्रहार का उत्तर अन्य कवियों के कृष्ण कहीं नहीं दे सके किन्तु गोस्वामी हरिराय जी के कृष्ण बड़ी प्रगल्भता से गोपियों के प्रहार का समुचित उत्तर देने में समर्थ प्रतीत होते हैं :-

'मन मेरो तारेन बसै, अरु अंजन की रेख ।
चोखी प्रीत हिये बसै, तासौ सांवल भेख ।'
नागरि दान दै ।

मेरा मन तुम्हारी आँख के तारे में निवास करता है, जहाँ `अंजन` की रेखा खिंची हुई है। उस कज्जल-रेख के सानिध्य में रह कर ही मेरा शरीर स्याम हो गया है। हम `चोखी-प्रीत` निभाने वालों का यही हाल होता है।

इस प्रकार के मनोहारी वार्तालापों के अन्त में `मान-मर्दन` के साथ कविता समाप्त होती है :-

> अंस भुजा गहि लै चले, प्यारी चरन निहोर ।
> निरखत लीला `रसिक` जू, जहाँ दान मान की ठौर ।

`दान -लीला` के वर्णन में अन्य कवियों ने श्रृंगार के स्थूलतम् चित्रों की योजना भी की है :-

> `दही लेत हो छीनि, दान अंगन को लैहौं ।
> लैहौं रूपहि दान, दान जोवन पै कैहौं `।।१

यहाँ पर कवियोंने दान का अभिप्राय बड़ी ही `भौंडी` भाषा में व्यक्त किया है, जब कि गोस्वामी हरिराय जी ने :-

> `लियो जात हो श्रीफल कंचन, कमल बसन सों ढांकि` ।

कह कर `दान`केअभिप्राय को कितने सार्थक रूप से प्रस्तुत किया है। एक तो स्वर्ण-मण्डित श्रीफल, उस पर भी `कमल` वसनों से ढककर ले जाना वस्तुत: अभियोग ही है।

`दान-लीला` में प्राय: दो स्थितियाँ पाई जाती हैं, -- प्रथम- इस प्रसंग में राधा-कृष्ण के अतिरिक्त उनके साथ गोपियाँ तथा

---

(१) सूरसागर-- नागरी प्रचारिणी सभा, सम्पा० नन्ददुलारे बाजपेयी, प्रथम संस्क०, भाग-१ पृष्ठ- ७६७ ।

ग्वाल भी रहते हैं। द्वितीय--- केवल राधा एवं कृष्ण ही इस लीला में भाग लेते हैं। गोस्वामी हरिराय जी की दान-लीला प्रथम कोटि की है, क्योंकि इसमें राधा कृष्ण के अतिरिक्त अन्य गोप गोपियाँ भी हैं, यथा :-

'ग्वालिन रोकी नां रुकै, ग्वाल रहे पचिहारि'

'ग्वालिन' तथा 'ग्वाल' शब्द का प्रयोग होने से इसके पात्रों का परिमाण जाना जा सकता है। डा० जगदीश गुप्त ने इसे द्वितीय कोटि में रखा है- 'वे रचनाएं जिनमें दान का प्रसंग केवल राधा कृष्ण के बीच की घटना है, ब्रजभाषा के 'हरिराय' तथा गुजराती के 'नरसी' की रचनाएं इसी वर्ग में हैं।'१

गोस्वामी हरिराय जी की यह रचना वल्लभ-सम्प्रदाय के कीर्तन-साहित्य में विशेष प्रख्यात है। इसमें 'संभोग शृंगार तथा माधुर्य-भक्ति की ही व्यंजना' मानी गई है।२ कुछ विद्वान इसे वल्लभ-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से संयुक्त मानते हैं।३ इस विशिष्ट रचना से प्रभावित होकर कुछ विद्वानों ने इस पर टिप्पणी तथा व्याख्यायें भी लिखी हैं।४

---

(१) गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन,
-- डा० जगदीश गुप्त, पृष्ठ- १२६

(२) मध्य कालीन कृष्ण-काव्य, - कृष्णदेव भारी, प्रका० पटना, पृष्ठ- १५६

(३) गोस्वामी हरिराय जी 'रसिक' रचित ब्रजभाषात्मक 'दान-लीला',
- गोस्वामी श्री ब्रजभूषण लाल जी महाराज, प्रस्तावना से।

(४) -- श्री ब्रजराय जी महाराज अहमदाबाद वाले, कृत दान लीला की संस्कृत व्याख्या, पं० जवाहर लाल जी चतुर्वेदी, मथुरा, कृत दानलीला की हिन्दी व्याख्या तथा श्री गोकुला नन्द तैलंग, कांकरौली कृत एकांकी-नाटिका। सभी ग्रन्थ प्रकाशित।

गोस्वामी हरिराय जी की दान लीला सम्बन्धी उक्त सभी पुस्तकें सरस्वती भंडार कांकरोली में सुरक्षित हैं ।

`दान-लीला` के सम्बन्ध में इस आख्यानक रचना के अनन्तर कवि ने इस विषय में और भी अनेक फुटकर पद लिखे हैं । कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं :-

अरे तू, काहे कौं ब्रजराज गरवीले, माँगत दान गो-रस कौ ?
कब ते लागत ? जब ते तू देख्यौ, मैं न सुन्यौं, ताते मैं
सुनायौ, कहा सुख ? तेरे दरस कौ ।
- - - - - - - - .
`रसिक प्रीतम` करि बचनन चातुरी, आतुर करि दीनी,
सो है रस नव नेह परस कौ ।१।

कवि ने `दान-लीला` की भाँति अन्य लीला परक रचनाओं में भी अपनी प्रतिभा का उन्मेष किया है । संयोग - श्रृंगार के प्रसंग में कवि द्वारा सृजित `होली वर्णन` भी दान लीला के अनुरूप सुगठित रचना है । `होली वर्णन` में कवि ने ब्रज की सांस्कृतिक झांकी का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है ।

होली वर्णन

गोस्वामी हरिराय जी कृत `होली-वर्णन` का वृत्त भी परम्परा-बद्ध ही है । अष्टछाप आदि के विविध कवियों ने इस प्रसंग में पर्याप्त लिखा है । यह वर्णन लीलापरक होता हुआ भी श्रृंगार के स्वच्छन्द वर्णनों से परिपूर्ण है । यह एक आख्यानक रचना है ।

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० १०६, ।

सामूहिक उल्लास से भरपूर इस रचना का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है :-

अहो हो हो होरी बोलै ।
गोकुल गली सखा संग लीन्हैं, अति मदमातो डोलै ।
ढप, बीना, सुरबीन बसुरिया, ताल मृदंग बजावे ।
ऊँचे सुर ह्वै गीत उघारे, सवन सुनावत गावें ।।१

कवि ने इसी प्रसंग में नायक के रूप-वर्णन में सिख-नख वर्णन प्रारम्भ किया है, किन्तु अन्त तक उसका नियम -बद्ध निर्वाह वह नहीं कर पाया है:-

बंदन विन्दु बदन पर राजत, कछु उपमा जिय होति ।
मानहु मंजु जुवतिन के देखन, लागि रही दृग जोति ।
तापर लग्यौ अबीर बिराजत, सोभा बढ़ी अपार ।
मनहु गगन तारागन ढापे, बदरा बरसन हार ।
मुख माड्यौ सब को मन - मोहन, सोहत सुरंग गुलाल ।
मनहु किरन नीरज पर पसरी, रवि उदयो तत्काल ।
अरुन नयन रसमसे महा, मदमाते करत किलोल ।
मानहु मधुप स्रवन सर सरजित, रंग रस लेत अमोल ।
तिलक बन्यौ बिच भाल रुचिर कुंकुम को आली कियौ ।
मानहु मदन बेधि जुवती हिय, अनल निकारि लियौ ।।

इस प्रकार बदन, मस्तक, नासापुट, अरुन अधर, चारु-अलक, शीश, पगिया, आदि वर्णन करने के साथ ही कवि चरण - वर्णन पर आ जाता है :-

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ३६१ ।

बागौ बन्यौ अबीर, गुलाल, अगर रस केसर भीनौ ।
मनहु जुवति जन दृष्टि परन कौं मैन बिछौना कीनौ ।
चरण कमल सित अरुन स्याम रँग रंगे लसत चितचोर ।
मानहु साँझ, रैनु, दिन तीनहुं, आय भए इक ठौर ।
इहि विधि रूप देखि परवस व्है, सबै जुबति ढिंग आईं ।
बैन बजाइ मंत्र पढ़ मानहु, हरि आकरषि बुलाईं ।।

संयोग श्रृंगार में निमग्न सुरति - वर्णन का यह चित्र भी कितना सजीव बन पड़ा है :-

कोऊ आइ बैत भुज भरि कैं, नैनन नैन मिलावै ।
मनहु पवन चलत अति चंचल, कमल कमल ढिंग आवै ।
कोऊ बदन - कमल पर, अपनौ कर जुग हुलसि फिरावै ।
कोऊ आइ एक दिसि हरि के आपु अंग परसावै ।
ढिंग बैठाइ बिछाइ आपने बसननि, करत सिंगार ।
मानहु निज सैना बिच बैठ्यौ रस-स्वरूप धरि मार ।
अपने सकल बसन आभूषन पहिराइ पिय अंग ।
अंजन नैन भाल दै बिंदुली, परवस भई अनंग ।

यह स्पष्ट है कि कवि ने इन लीला विषयक पदों में श्रृंगार को गौण तथा भक्ति को प्रधान रूप देने की चेष्टा की है, किन्तु जहाँ भी उसने श्रृंगार वर्णन में स्वच्छन्दता पूर्वक अपनी लेखनी उठाई है वहाँ निश्चय ही कविता सजीव हो उठी है, तथा प्रभावोत्पादकता बढ़ गई है ।

इसके अतिरिक्त कवि ने स्याम सगाई, सनेहलीला, नवविलास, दस उल्लास आदि लम्बी रचनाओं में श्रृंगार के अच्छे-अच्छे चित्र प्रस्तुत किए हैं । इनमें

कवि ने श्रृंगार वर्णन के लिये प्राय: सांकेतिक शब्दावली का प्रयोग किया है, तथापि कहीं कहीं स्थूल चित्र भी मिल जाते हैं :-

मंदिर देवी गान करत जस, आइ मिले गिरधारी ।
मन कौ भायौ भयौ सबन कौ, काम वेदना टारी ।
स्यामा कौ सिंगार स्याम कियौ, ललिता नीवी खोली ।
लीला निरखत दास 'रसिक' जन श्री मुख स्यामा बोली ।।

\+ \+ \+

सघन कुंज रस पुंज अलि गुंजत, कुसुमन सेज संभारे ।
रतिरन सुभट जुरे पिय प्यारी, काम वेदना टारे ।।१

लीलापरक संयोग - श्रृंगार के वर्णन में कवि ने नव-विलास, दस उल्लास का सृजन परम्परा के अनुरूप ही किया है, इसमें कुछ नवीनता या विशेष तथ्य दृष्टिगत नहीं होते । कवि कहीं-कहीं स्थूलतम चित्रों के सम्पादन में ही लीला को विस्तार देता प्रतीत होता है । इस प्रकार श्रृंगार के लीलापरक संयोग वर्णनों में कवि ने अधिकतर परम्परा का ही प्रश्रय लिया है । कवि की काव्य प्रतिभा से रचनाएँ अवश्य ही सजीव एवं रोचक बन पड़ी हैं । कहीं-कहीं भाव-प्राबल्य के कारण ही कवि ने लौकिक-वातावरण का अतिरेक किया है, अन्यथा सभी स्थलों पर इस प्रकार की लौकिक वातावरण सम्बद्ध रचनाएं ही अधिक प्राप्त होती हैं ।

संयोग श्रृंगार की स्वच्छन्द रचनाएं :-

इस प्रकार की रचनाओं में कृष्ण की प्रचलित तथा एक निश्चित घटना से सम्बन्धित लीलापरक रचनाओं को छोड़कर अन्य प्रसंगों को

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ३१२ ,

लिया गया है । यह सत्य है कि छेड़-छाड़, मुरली हरण, युगल विहार, दाम्पत्य आदि प्रसंग भी कृष्ण की लीलाओं के अन्तर्गत ही आते हैं। किन्तु दान-लीला, होली-लीला, की भाँति कवि ने इन विविध वर्णनों को परम्परावत एक निश्चित सूत्र में बाँधने की चेष्टा नहीं की । दान-लीला, होली लीला, आदि का वृत्त पूर्ववर्ती कवियों के द्वारा इतना अधिक चर्चित हुआ है कि उसमें आकार परिवर्तन की सम्भावना ही नहीं रह पाती । फिर भी कवि की अन्य शृंगारिक रचनाओं में भक्ति का सामंजस्य होने पर भी कृष्ण के चरित्र को लेकर स्वच्छन्द अभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं । गो० हरिराय जी की स्वच्छन्द रचनाओं में राधा और कृष्ण को साधारण नायक और नायिका के रूप में ही चित्रित किया गया है । इस प्रसंग में कवि ने फुटकर पदों का ही सृजन अधिक किया है । सर्व प्रथम रूपाकर्षण के चित्र दृष्टव्य हैं :-

रूपाकर्षण:-

पिय तेरी चितवन ही में टोना ।
तन, मन, धन विसर्‌यो जब ही तें, निरख्यो बदन सलोना ।
ढिंग रहिवे को होत विकल मन, भावत नांहिन भौना ।
लोग चवाव करत घर घर प्रति, धरि रहिए जिय मौना ।
छूटी लोक लाज सुत पति की, और कहा अब होना ।
'रसिक' प्रीतम की बानी निरखत, भूल गई गृह गौना ।।१

+ + + +

माई मेरो मन मोह्यो सांवरे, मोहि घर अंगना न सुहाइ ,
ज्यों ज्यों आँखिन देखिए मेरी त्यों त्यों जिय ललचाइ ।

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ- १०२ ।

हेली मनमोहन अति सोहनौ मारग इत निकस्यौ आइ ।
मोहि देखि ठाढ़ौ भयौ चित यौं री मुरि मुसिकाइ ।
हेली रूप ठगौरी डारि के चल्यौ अंग छवि छैल दिखाइ ।
नैंन सैन दै सांवरौ , मन लै गयौ संग लगाइ ।
हेली लोक लाज कुल कानि की, मेरे जीय न कछू ठहराइ।
लैके चलि मोहि स्याम पै के स्यामहिं आनि मिलाइ ।
हेली प्रान प्रति परवस परे अब काहू की न वस्याइ ।
रसिनिध बालक नन्दलाल पैं 'रसिक' सदा बलिजाइ ।।१

रूपाकर्षण के पश्चात् अनुराग की प्रारम्भिक स्थिति का सौन्दर्यंकिन भी रोचक बन पड़ा है :-

अनुराग - लाड़िली लालन देखत ठाढ़े ।
मोहन मुख देखनि कौं आवति घूंघट पट दै आड़े ।
कबहुक हरि कौ मुख देखन कौ अपनौ बदन उघाढ़े ।
'रसिक प्रीतम' सौं इहि विधि भामिनी अधिक बढ़ावत चाढ़े ।।२

अनुराग के प्रारम्भ मैं ही उत्कंठिता नायिका की भाव-प्रवणाता देखने योग्य है :-

मेरी अंखियन की पलकन सौं डगर बुहारूंगी ।
जो या घरी मेरौ पिय आवे, तन मन जोवन वारूंगी ।
सेज संवारौं, चरन तलासौं, और मधुरे सुर गाऊंगी ।
'रसिक' प्रीतम प्रभु अब कैं मिले तो नैनन सौं समुझाऊंगी ।।३

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित पृष्ठ सं० ६७ ।
(२) वही, पृष्ठ- ८२ ।
(३) वही, पृष्ठ- १११ ।

जहाँ यह नायिका अनुराग की प्रारम्भिक अवस्था में ही नायक के रूपाकर्षण में निमग्न हो जाती है, वहाँ आसक्ति की यह भावुक स्थिति भी मनोहारी प्रतीत होती है :-

<u>आसक्ति-</u>

बैठी पिय को बदन निहारै ।
लालन ऊपर वारि वारि मन तन धन जौवन वारै ।
कबहुँक निकट जाय प्रीतम के पगिया पेच सुधारै ।
कबहुँक चुंबन करत कपोलनि, हेरि चन्द उजियारै ।
कबहुँक प्रीतम अधर सुधारस भेंटत अंग उघारै ।
'रसिक 'प्रीतम के संग में प्यारी पूरब विरह विसारै ।।१

गोस्वामी हरिराय जी ने 'आसक्ति' के इन चरणों को मात्र काल्पनिक धरातल पर ही प्रस्तुत नहीं किया, अपितु वास्तविक अनुभूतियों के सहज प्रकाशन भी इन शब्द चित्रों से स्पष्ट होते हैं :-

रहत करि नीची नीची नारि, रूखी-रूखी अँखियन
देख रही पिय ओर ।

बदन निहारत अंचरा खैंचत, ठिठक रही लाज जोर ।
आलिंगन देत, लेत उसास, सकुचत जिय जानि कुच कठोर ।
'रसिक' प्रीतम के अंग परसि, रस परवस भई क्रीड़त है गयो भोर।।२

गो० हरिराय जी ने सुरति प्रसंग में कहीं-कहीं अति स्थूल वर्णन भी किए हैं:-

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ- १०८

(२) वही, पृष्ठ- ८७ ।

कुसुम सेज पिय प्यारी पौढ़े करत हैं रस बतियाँ ।
हँसत परस्पर आनंद हुलसत लटकि लटकि लपटावति छतियाँ ।
अतिरस रँग भीने रीभै री रिभवार, एक तन मन भई
एक मति गतियाँ ।
'रसिक' सुजान निरमय क्रीड़त दोऊ अंग अंग प्रतिबिंबित
दोउन के बसन मतियाँ ।।१

सुरति में तादात्म्य की स्थिति भी दृष्टव्य है :-

नवल नागरि नवल नागर किसोर मिलि ।
कुंज कोमल कमल सिज्या रची ।
गौर साँमल अंग रुचिर तापर मिले ।
सरस मानों नीलमनि मृदुल कंचन खची ।
सुरत नीबी बंध हेत प्रिय भामिनी कुच भुजन में ।
स्रमजल कलह मोहन मची ।
सुभग श्रीफल उरज पानि परसत, रोस हुंकार ।
गर्व जुत अंग भामिनी लची ।
कोक कोटिक कला रहत मन पीय कों, विविध कल-माधुरी ।
रति काम नाँहिन बची ।
प्रनय में 'रसिक' ललतादिक सखी, सब, ।
पियत मकरंद सुखरासि अंतर नची ।।२

इस प्रकार के पद कवि की रचनाओं में अधिक संख्या में प्राप्त होते हैं । कवि ने संयोग-पक्ष की सभी संभावनाओं एवं क्रियाओं का स्वच्छन्दता-पूर्ण वर्णन किया है । इसके अतिरिक्त कवि ने संयोग पक्ष में ही 'सुरतान्त' के भी वर्णन किए हैं :-

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य , प्रकाशित, पृष्ठ- ८५

(२) वही, पृष्ठ- ८६ ।

आलस मोर उठी री सेज ते कर सौं मीड़त अँखियाँ ।
सिगरी रेंन जगी पिय के सँग, देख चकित भई सखियाँ ।
काजर अधरन लीक लगी है, रची महावर नखियाँ ।
'रसिक प्रीतम' दरपन ले प्यारी, चीर सँभारि मुख ढकियाँ ।।१

'सुरतान्त' में नायिका जब 'दरपन' में अपना प्रतिबिम्ब देखती है, तब सुरति-जन्य चिन्हों को अपने बदन पर देखकर वह वस्त्रों को सँभालती है, तथा लज्जा से मुँह को ढँक लेती है । नारी-वृत्ति का बड़ा ही सहज चित्रण कवि द्वारा प्रस्तुत किया गया है ।

इसके अतिरिक्त गोस्वामी हरिराय जी ने अपने युगीन-साहित्य से प्रेरित होकर भी कुछ रचनाओं का सृजन किया है । चौरासी कवित्त में कवि की इसी प्रकार की रचनाएं सन्निहित हैं । इस प्रसंग में एक उदाहरण दृष्टव्य है:-

आँखिन सुरमभार, सिरकेस पास भार,
गरें भूषन हार, जासें नासा सकुचति है ।
हिये में उरोजभार पाछें ते नितंब भार,
उरहार भार, ताते अधरा डसति हैं ।
नाभि नीवी भार, कटि किंकनी को अति भार,
चरन महावर के भार उससति हैं ।
एते भार भरी न 'रसिक' कटाक छरी,
कैसे कें उलायली चलति गजमति है ।।२

प्रस्तुत छन्द में कवि का वाक्-चातुर्य्य युगीन प्रभाव से ही प्रेरित ज्ञात होता है । कविवर गंग, विहारी, देव आदि की कविताओं में इसी प्रकार की

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ- ६३
(२) गो० हरिराय जी के चौरासी कवित्त- गो० ब्रजेश कुमार शर्मा से प्राप्त-कोटा की प्रतिलिपि से ।

उक्तियाँ प्राप्त होती हैं । नायिका के चरणों में लगा महावर भी यदि कवि को भार लग सकता है, तब आखों में काजल के भार को उसकी कमनीय-कामिनी कैसे वहन कर सकती है ? इतने सब भारों को सहन करने वाली कवि की यह 'छटाँक छरी' यदि 'गजमति' की चाल से चलती है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है । छन्द के अन्त में ऊहात्मक कथ्य-प्रयोग भी कवि के युग की काव्य-प्रवृत्ति के सूचक हैं ।

गोस्वामी हरिराय जी ने संयोग की भाँति 'वियोग' वर्णन की भी पर्याप्त रचनाएँ की हैं । इस सन्दर्भ में कवि की रचनाएँ युगीन - साहित्यधारा से अधिक स्पर्शित जान पड़ती हैं । 'वियोग-वर्णन' की रचनाओं के वर्ण्य विश्लेषण हेतु चार अवस्थाओं के अन्तर्गत ही अध्ययन किया जा रहा है । पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करुण । प्राय: सभी आचार्यों ने वियोग की ये ही चार - अवस्थाएं स्वीकार की हैं ।१

वियोग वर्णन :-

गो० हरिराय जी ने वियोग वर्णन में अधिकतर स्वच्छन्द शृंगारिक रचनाओं का ही सृजन किया है । अत: उनकी वियोग-शृंगार की स्वच्छन्द रचनाओं का विवेचन करना ही अभिप्रेत है । वियोग - वर्णन में सर्व प्रथम पूर्वानुराग की रचनाएँ द्रष्टव्य हैं :-

पूर्वानुराग

कुछ आचार्यों ने विरह-जन्य काम की दस-अवस्थाओं को पूर्वानुराग के अन्तर्गत ही स्वीकार किया है ।२ कुछ, इन

---

(१) हिन्दी साहित्य कोश - पृष्ठ- ७१६

(२) साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, ३।१८४ ।

अवस्थाओं को प्रवास विरह के अन्तर्गत मानते हैं।१ वस्तुत: पूर्वानुराग की स्थिति में काम की दसों अवस्थाओं का निर्वाह नहीं हो पाता, इस स्थिति का पूर्ण निर्वाह प्रवास विरह के अन्तर्गत ही भली भाँति हो पाता है। पूर्वानुराग में विगत प्रणय का स्मरण मात्र ही सन्निहित है, किन्तु प्रवास-विरह में इन सभी अवस्थाओं का विधान है। पूर्वानुराग के अन्तर्गत तो आसक्ति का प्रथम चरण ही देखा जा सकता है। इस स्थिति के अनुरूप कवि ने बहुत कम पद लिखे हैं। कवि की इस प्रकार की रचनाओं का परिमाण-बाहुल्य तो मान के पदों में देखा जा सकता है।

पूर्वानुराग में, प्रियतम की प्रथम दृष्टि में ही प्रियतमा का मंत्र-मुग्ध हो जाना, इस स्थिति का विरहावस्था में चिंतन करना, प्रणय की प्राथमिक अवस्था में ही संयोग की सतरंगी कल्पनाएँ सजाना आदि को कवि ने भाँति-भाँति से चित्रित किया है।

इस विषय के लीला-परक पदों का गोस्वामी हरिराय जी की रचनाओं में सर्वथा अभाव है। उद्धव -गोपी संवाद, सनेह-लीला, दाम्पत्यलीला, आदि रचनाएं रूढ़ कथानकों पर ही अधिक आश्रित हैं। इन रचनाओं का प्रस्तुतीकरण भी परम्परावद्ध ही है। अत: इनका पृथक् महत्व प्रतिपादित नहीं किया जा सकता। पूर्वानुराग में कवि ने स्वच्छन्द कल्पनाओं को कृष्ण चरित्र से संबंधित रखते हुए भी परम्परागत निश्चित घटनाओं से भी सम्बद्ध नहीं रखा। प्रथम घटना के पश्चात् ही नायिका की यह आसक्ति कितनी स्वाभाविक है :-

---

(१) गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा और आचार्य कवि गोविन्द गिल्लाभाई --डा० मानिकलाल चतुर्वेदी, प्रका०, मथुरा, पृ० ३६२।

पिय तोहि नैनन ही में राखूं ।
तेरी एक रोम की छवि पर जगत वारि सब नाखूं ।
भेटों सकल अंग सांवल को, अधर सुधारस चाखूं ।
'रसिक प्रीतम' संगम की बातें काहू सो नहीं भाखूं ।।१

इसके अतिरिक्त नायिका की पूर्व-प्रणय के पश्चात की स्थिति कितनी स्वाभाविक बन पड़ी है ।-

कहां पाऊं पीय कों रे, लाग्यो जासों मन मेरो ।
क्योंहूं मेरो मन समझ समझाऊं कहि हारी घनेरो ।
जा दिन तें नैनति पथ आयो ताही ते भयो चारन तेरो ।
'रसिक प्रीतम' जाइ अटक्यो मन क्यों हू न होत निवेरो ।।२

पूर्वानुराग के अनुरूप ही कवि ने मान - के पदों में भी 'नारी-सुलभ-वृत्तियों' का बड़ी ही सहजता से वर्णन किया है ।

मा न

मध्य-युगीन भक्ति साहित्य में 'मान' की अनेक रचनाएं, अपने उत्कृष्ट भावों से सम्पन्न, उपलब्ध होती हैं । रीति-काल में भी श्रृंगारिक कवियों की प्रतिनिधि रचनाएं मान पर ही अधिक विस्तार से लिखी गई हैं । मान के चित्रण में कवियों ने विविध प्रकार से नायक और नायिकाओं की मानसिक अवस्थाओं का सुन्दर वर्णन किया है । गोस्वामी हरिराय जी के मान संबंधी पद भी अपने भाव वैविध्य के लिए प्रख्यात हैं ।

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ- १०७ ।
(२) वही, पृष्ठ- १०२ ।

कवि की नायिका विरहाग्नि में प्रज्वलित रहने पर जब संयोग की कल्पना करती है, तब उसे सर्व प्रथम मानाभास ही होता है :-

सखी री हौं तो रूसी रहौंगी ।
जो पै स्याम मनोहर आवैंगें, तो मैं बांके बांके बचन कहूंगी ।
जो वे मनावैं मैं तौ हू न मानूंगी, मदन के बान सहूंगी ।
'रसिक प्रीतम' प्रभु पांयन परैंगें, तो मैं रूठ न करूंगी ।।१

इसी तरह नायिका का गुरु-मान भी कवि ने सरस ढंग से व्यक्त किया है :-

विरहिणी नायिका अपने प्रियतम से रूठकर सुधि-बुधि खोई-सी रात भर बैठी रहती है, उसे यही नहीं ज्ञात होता कि कब रात गई और कब सुबह हुई ? जब आभूषण में लगा हुआ सुवर्ण प्रात: कालीन शीत-वायु के कारण ठंडा पड़ जाता है और बार-बार शरीर का स्पर्श करता है, तब उस ठंडे सुवर्ण के स्पर्श को अनुभव करके ही नायिका जान पाती है कि सुबह हो गई है । मान में भी तन्मयता की कितनी प्रगाढ़ स्थिति है:-

'लागत सोनो सियरो, रैन विहानी मैं जानी ।
नैनन नैकु न आवत झपकी, तन न कछू अरसानी ।
जे तुम कहीं अटपटी बातैं, अनेक जनम करिकै बिसरानी ।
'रसिक प्रीतम' आप चलिये, रस बस करि मोहि लीजो महरानी।।२

\+ +   + +   + +

सखी री, मोहि सोनो सीतल लाग्यौ ।
मिल रस सदा प्रेम आतुर व्है, चारिजाम पिया जाग्यौ ।
करि मनुहारि वहोरि हौं पठई, अधर सुधा रस माँग्यौ ।

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ- १२५ ।
(२) वही, पृष्ठ- १२६ ।

`रसिक प्रीतम` पिय वो रस नायक, तेरे प्रेम रस पाग्यौ ।१

गोस्वामी हरिराय जी ने `मान` के प्रसंग में मानाभास, गुरुमान, मान-मनामन, मान - मोचन, दूति प्रसंग आदि सभी पदों का वर्णन किया है। इस प्रकार के वर्णन उनके फुटकर पदों में ही अधिक मिलते हैं। `चौरासी कवित्त` नामक ग्रन्थ में भी मान संबंधी अच्छे-अच्छे छन्दों का संकलन पाया जाता है। कवि ने प्रवास विरह में भी सुन्दर रचनाएं की हैं।

<u>प्रवास विरह</u>

बावरी भई है बाम, बिसर गई है धाम,
आठौं जाम तू अनाम बक, बक करति है।
बन बन डोलै, अनबोलैन सौं बोलै, बूझै-
द्रुम, बेलि, टोलि, दुख मन में धरति है।
बिथुरे हैं बार, दृग भार लैन बार - बार,
बिरह अपार मधु उठनि परति है ।
कैसैं कर जीवै जो न पीवै सुधा अधरन की,
`रसिक` वियोग देह दु:ख में गरति है ।। २

इस`बावरी बाम` का `अनबोलैन` से बोलना, 'बन-बन' में विव्हल होकर घूमना, निज धाम को भूल जाना, प्रवास विरह के प्रसंग में बड़े ही स्वाभाविक वातावरण की सृष्टि करते हैं। जब इस प्रमत्त नायिका की अलकावलि बिखर कर नयनों के भार को हरने की चेष्टा कर रहे हैं, जब `रति रस सागर` के

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ- १२५
(२) चौरासी कवित्त, गो० हरिराय जी कृत, गो० व्रजेशकुमार जी से प्राप्य।

स्मरण में मधु की तरंगें उठ-उठ कर गिर रही हैं । जब इस नव-यौवना की सुकुमार देह विरहाग्नि के ताप से प्रज्वलित हो सूखती चली जारही है, तब यह व्याकुल विरहिणी अपने प्रियतम के अधरों का रस-पान किये बिना कैसे जीवित रह सकती है ।

विरह का चरम उत्कर्ष रूप प्रवास विरह में ही दिखाई देता है । कवि ने विरह के अनेक पद लिखे हैं, प्रवास विरह के भी पद सुंदर बन पड़े हैं । प्रवास विरह के अन्तर्गत काम की सभी (दसों) अवस्थाओं के चित्र उनकी रचनाओं में प्राप्त होते हैं । फिर भी गो० हरिराय जी द्वारा सृजित ये विविध चित्र शास्त्रीय रीति के अनुकूल होने पर भी यत्नसाध्य नहीं हैं । अन्य भक्त-कवियों की भांति 'उन्होंने कला के प्रदर्शन की दृष्टि से कविता नहीं की, इनका काव्य अनुभूति प्रधान है । यद्यपि यह शास्त्रीय कौशल के उद्गारों से भरा पड़ा है, तथापि वे सभी अयत्न-साध्य बिना प्रयास के ही, स्वाभाविक रूप में उनके हृदय से निकले हुए उद्गार मात्र हैं ।१

-:: प्रवास विरह ::-

अभिलासा चिन्ता स्मृति गुण उद्वेग प्रलाप ,
उन्मादन व्याधि जड़त मूर्छा मरण -विलाप ।

काम की उक्त सभी अवस्थायें गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में देखी जा सकती हैं ।

<u>अभिलाषा:-</u>

मेरे सांमरे मोहि दीजे दरस ।
इतने ही तें निहाल होउंगी, छांड़ो हो अंग को परस
पलकन मग की धूरि भारिहों, स्रवन बचन सुनों सरस

---

(१) भक्त कवि व्यास जी, - वासुदेव गोस्वामी- पृष्ठ- १४८ ।

'रसिक प्रीतम' प्यारे मोहि तुम बिनु, पल पल होत है बरस ।१

चिन्ता:- ना जानों किन कान्ह भरे री सखि प्रीतम अनत ढरेरी ।
रस के समय कहे जो मो सों, तेहू बोल बिसरे री ।।२

स्मृति:- कैसे के बिसरति हैं, आली वे बातें ।
मोहन ब्रज चलत कहीं, मोतें मुसकातें ।
सैनन हौं बोलि लई, गोधन संग जाते ।
लोक लाज आढ़ भई, रहि गई पछिताते ।।३

गुणाकथन:- बहुरि कब देखौं नन्द कुमार ।
लकुटि लिए धावत ब्रज-वीथिन, बालक अति सुकुमार ।
बिथुरी अलक लटन लटकट सिर, राजत मुक्ता हार ।
कंठ बघनखा कर पहोंची सोहन, बाजूबंद सुचार ।।४

उद्वेग:- लालन आउ रे, आउ रे, मोहि अब की बेर जिवाउ रे ।
तू अपनो दरस दिखाउ रे, मोहि मुरली नाद सुनाउ रे ।।५

विलाप:- विरहिन कौन नींद निसि सोवै ।
सुमिर नाथ ब्रजनाथ प्रानधन, कहि उर अंतर रोवै ।।६

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ- १३६
(२) वही, पृष्ठ- १३७
(३) वही, पृष्ठ- १३८
(४) वही, पृष्ठ- १३५
(५) वही, पृष्ठ- १३८
(६) वही, पृष्ठ- १३३ ।

उन्माद :- ढूंढ़त बन बन फिरत अकेली ।
हरि गयौ सखी हर किहि मारग, बूझत यौं द्रुम बेली।
अति अकुलात सुहात नहीं कछु, कहा ठगोरी मेली ।
'रसिक प्रीतम' के विरह विकल तन, भूली संग सहेली ।।१

व्याधि:- विरह व्यापो मेरे सब अंग ।
हौं तो परी चेतना तजि के सब विधि भई अपंग ।।२

जड़ता :- सोचत पिय को बदन निहारि ।
सूखि गई, रही ठाढ़ी ज्यौं, अनल लपट सुकुमारि ।
पलक न परैं, सीस नहीं डोलै, चरन चलै न विचारि ।
कहि न सकी मन की बतियां कछु, रही विरह मन मारि।
भई दसा ज्यौं चित्र पूतरी, सकी न वसन संभारि ।
'रसिक प्रीतम' बिछुरन तिय जिय की, दीनीं प्रति उघारि ।।३

मूर्च्छा :- छूटे बार, सुरत नहीं कछुए, डोलत बन ब्रजनाथ पुकारैं ।
गिरि गिरि परत विकल अति, प्रीतम प्रगट दुहू कर धारैं ।।४

मरण :- ता दिन तै हौं विरह जरी ।
- - - - - ।
'रसिक प्रीतम' कहि वेगि आइ हैं, अब यह जीवन पहर घरी ।।५

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ- १४५
(२) वही, पृष्ठ- १४६
(३) वही, पृष्ठ- १३३
(४) वही, पृष्ठ- १३४
(५) वही, पृष्ठ- १४१ ।

उपरिनिर्दिष्ट उद्धरणों से ज्ञात होता है कि गोस्वामी हरिराय जी का श्रृंगार-काव्य साहित्य- शास्त्र की दृष्टि से पूर्ण सम्पन्न है। कवि के ये वर्णन यत्न-साध्य न होते हुए भी विषयगत विवेचन में कहीं भी 'दरिद्र' नहीं जान पड़ते। कवि ने प्राय: परम्परागत वर्णनों को ही अधिक अपनाया है, किन्तु कुछ स्थलों पर उसकी मौलिक कल्पनाओं और अभिव्यंजनाओं ने काव्य को नए रूप में भी प्रस्तुत किया है। श्रृंगार के इन विविध वर्णनों में कवि ने नायिका भेद के भी विविध रूप प्रस्तुत किए हैं। इनमें रूप गर्विता[१] प्रेम-गर्विता[२] आगम-पतिका[३] वासक सज्जा[४] उत्कंठिता[५] धीरा[६] अधीरा[७] खंडिता[८] मानिनी[९] आदि के अतिरिक्त प्रेम-पत्र[१०] दूती[११] आदि का भी सरस वर्णन मिलता है।

गोस्वामी हरिराय जी के समस्त श्रृंगार-साहित्य के अवलोकन से ज्ञात होता है कि कवि ने इस संदर्भ में विप्रलम्भ श्रृंगार का वर्णन सूक्ष्म दृष्टि तथा व्यापकता से किया है। श्रृंगार के संयोगपरक वर्णनों में, वियोग-वर्णन जैसा न तो वैविध्य ही है और न ही सरसता। श्रृंगारिक

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, सम्पा० श्री प्रभुदयाल मीतल, पृ० १०६
(२) वही, पृष्ठ- १०६
(३) वही, पृष्ठ- ११०
(४) वही, पृष्ठ- १११
(५) वही।
(६) वही, पृष्ठ- ११२
(७) वही, पृष्ठ- ११३
(८) वही, पृष्ठ- ११५
(९) वही, पृष्ठ- ११८
(१०) वही, पृष्ठ- ११०
(११) वही, पृष्ठ- १०६।

रचनाओं में कवि ने स्फुट पद ही अधिक संख्या में लिखे हैं, यत्र-तत्र जो आख्यानक रचनायें मिलती हैं उनका निर्देश किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त कवि के 'चौरासी कवित्त' संग्रह में भी श्रृंगार-परक छन्द ही अधिक हैं। कवि की वृत्ति श्रृंगार वर्णन में अधिक रमी है, यह उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है।

गोस्वामी हरिराय जी वल्लभ सम्प्रदाय में अपने समय की द्वितीय गद्दी के अधिकारी आचार्य थे। उनकी रचनाएं वैष्णव समाज में उपदेश तथा प्रेरणा का विषय समझी जाती थीं, यही कारण है कि कवि के श्रृंगारिक वर्णनों में भी कृष्ण लीलाओं के संकेत निहित हैं। कवि के कुछ स्फुट छन्द विशुद्ध श्रृंगारिक हैं। चौरासी कवित्त संग्रह में हम इसी प्रकार के छन्द देखते हैं।

गोस्वामी हरिराय जी ने कृष्ण की श्रृंगारिक लीलाओं को इतने वैविध्य के साथ प्रस्तुत किया है कि उनके साहित्य में शास्त्रीय नियमों का परिपालन-सा प्रतीत होता है, किन्तु यह आभास निश्चय ही यत्न-साध्य न होकर स्वाभाविक ही है।

सम्प्रदाय विधानपरक :-

गोस्वामी हरिराय जी ने श्रृंगार वर्णन के अतिरिक्त सम्प्रदाय के लिये भी कुछ स्फुट पद लिखे हैं। पूर्वोक्त वर्गीकरण के अनुसार उनकी सम्प्रदाय सम्बन्धी रचनाओं को दो भागों में बांटा गया है, सेवा-विधि तथा बधाई।

सेवा-विधि

वल्लभाचार्य द्वारा संस्थापित पुष्टि-मार्ग को गुसाईं विट्ठलनाथ जी ने

संवर्द्धित किया । उन्होंने स्वरूप-सेवा के विस्तार में राग, भोग एवं श्रृंगार के क्षेत्र को अधिक महत्ता दी । राग के लिए उन्होंने `अष्टछाप` की स्थापना कर संगीत तथा साहित्य का अद्भुत सामन्जस्य कर, व्यापक प्रसार किया । भोग के लिए विविध व्यंजनों के विधान रचे तथा श्रृंगार के लिए नित्य नए दर्शनों तथा वस्त्रों, अलंकारों आदि की व्यवस्था की । उन्होंने अपने विविध ग्रन्थों, उपदेशों एवं व्यवहारों से अपने सिद्धान्तों को क्रियान्वित रूप दिया । सेवा-विधि के क्षेत्र में प्रसिद्ध है कि`सेवा की यह अद्भुत रीति विट्ठलेश सों राखे प्रीति ।१`

`पुष्टिमार्ग की सेवा प्रणाली में कृष्ण की दिनचर्या और ब्रज के वार त्योहार और पर्व आदि का समावेश किया गया है । मंगला से लेकर शयन पर्यन्त की सेवा कृष्ण की दिन-चर्या की भावना से ऋतु अनुसार की जाती है और उत्सव, त्योहार, पर्व आदि की सेवा अन्य शास्त्रीय एवं ब्रजीय लोक भावनाओं के अनुसार होती है ।`२ इस प्रकार वल्लभ सम्प्रदाय की सेवा-विधि को दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है,-

१- नित्य की सेवा-भावना ।
२- उत्सवों व त्योहारों की सेवा भावना ।

सम्प्रदाय में इस प्रकार की रचनाओं को`नित्य के पद` तथा `वर्षोत्सव के पद` के नाम से जाना जाता है । गोस्वामी हरिराय जी ने नित्य तथा वर्ष के विविध प्रसंगों पर पद लिखे हैं । उनकी कुछ रचनाएं अन्य परम्परागत रचनाओं से विशिष्ट भी हैं, किन्तु प्राय: अधिकांश रचनाओं में कवि ने

---

(१) श्री विट्ठलेश चरितामृत- पृष्ठ- ५
(२) परमानन्द सागर, सम्पादक डा० गोवर्द्धन नाथ शुक्ल, पृष्ठ-

अपने पूर्ववर्ती पदकारों का ही अनुगमन किया है। फिर भी अपनी परम्परा में गोस्वामी हरिराय जी एक विशिष्ट कवि कहे जाते हैं।

नित्य के पद :- `नित्य के पद` का तात्पर्य है कि वल्लभ - सम्प्रदाय में मंदिरों की ठाकुर - सेवा हेतु एक दिन में आठ फांकियों का विधान प्रचलित है। यह व्यवस्था गुसाईं विट्ठलनाथ जी से ही प्रचलित है। सम्प्रदाय के मतानुयायी सभी भक्त कवियों ने इन फांकियों के स्वरूप वर्णन हेतु काव्य रचना की है। नित्य की इन अष्ट-फांकियों के सम्बन्ध में लिखे गये पदों को ` `नित्य के पद` कहा जाता है।

सर्व प्रथम वल्लभाचार्य जी ने कुंभन दास जी की नियुक्ति श्रीनाथ जी के मन्दिर में कीर्तनकार के रूप में की थी। कीर्तनकार भगवान की आठों फांकियों के गान हेतु पदों की रचना करते थे। कालान्तर में उन पदों का वाद्य-यन्त्रों के साथ गान किया जाने लगा। ये कीर्तनकार प्राय: अच्छे कवि भी हुआ करते थे, जो भिन्न-भिन्न राग-रागनियों में सुन्दर पदों की रचना करते थे। अष्टछाप के प्राय: सभी कवियों में ये दोनों विशेषतायें पाई जाती थीं।

वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रचलित आठों फांकियों के नाम इस प्रकार हैं:-

१- मंगल भोग ।
२-श्रृंगार -भोग ।
३- ग्वाल ।
४- राज-भोग ।
५- उत्पादन ।
६- भोग ।
७- संध्या आरती, एवं
८- शयन ।

वल्लभ-सम्प्रदाय के कीर्तन साहित्य में `नित्य-के पद` नाम से हजारों पद संग्रहीत हैं। सैकड़ों हस्तलिखित प्रतियाँ, कीर्तन-साहित्य की आज भी उपलब्ध हैं। कीर्तन साहित्य की अनेक प्रकाशित पुस्तकें आज जगह-जगह पर देखी जा सकती हैं। कीर्तन की इन सभी पुस्तकों में गोस्वामी हरिराय जी के पद भी प्राय: मिल जाते हैं।

नित्य-लीला के पदों में सम्प्रदाय के भक्त, कीर्तन-साहित्यकारों ने आठों भाँकियों के पृथक्-पृथक् वर्णन किये हैं। सर्व प्रथम `मंगला-भोग` का प्रसंग आता है। जब भगवान् कृष्ण सुबह होने पर भी `आलस बस` जागते नहीं हैं, तब माँ यशोदा अपने सुकुमार नन्दकिशोर को बड़े लाड़-प्यार से जगाती हैं। गोस्वामी हरिराय जी ने माता यशोदा के स्नेह-भावों को अपने काव्य में इस प्रकार प्रकट किए हैं।-

`लालन जागो हो भयो भोर।
दूध, दही, पकवान, मिठाई, लीजै माखन रोटी बोर।
निकसे कमल विमल वाणी सब, बोलन लागे पंछी चहुँओर।
`रसिक प्रीतम` सों कहत नंदरानी उठ बैठो हो नंदकिशोर`।।१

नित्य के पदों में गोस्वामी हरिराय जी की `नित्य-लीला` नामक एक विशिष्ट रचना सम्प्रदाय के वैष्णव समाज में अत्यन्त प्रख्यात है। `नित्य-लीला` आकार तथा विषय की दृष्टि से एक आख्यानक रचना है। इस रचना में कवि ने आठों भाँकियों के चित्र समन्वित कर दिये हैं। अष्टछाप आदि के कवियों ने जहाँ अष्ट-भाँकियों की सेवा-विधि के लिये अनेक पदों

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ- ४४।

की रचना की थी, वहाँ गो० हरिराय जी ने इस 'नित्य-लीला' नामक रचना में सभी झाँकियों का समन्वित वर्णन बड़ी कुशलता के साथ कर दिया है। इस रचना का कुछ अंश द्रष्टव्य है :-

मंगल भोग :-

प्रात समै उठि ब्रज बाला, गावत मंगल गीत रसाला ।
करि सिंगार मथनियाँ धोवैं, ठौर ठौर सब दही बिलोवैं ।
मथन करैं, मोहन जस गावैं, सुमरि सुमरि गुन, मन सचु पावैं ।
माखन मिश्री दह्यौ मलाई, औट्यौ दूध कपूर मिलाई ।
कछुक मनोरथ को पकवान, थार सजोवत सुंदर बाम ।
नए बसन - भूषन हरि लायक, लैन चलीं सुंदर सुखदायक ।
- - - - - - - - - -।
कोऊ हरि कै तैल लगावै, परसत अंग परम सुख पावै ।
कोऊ बैनी करिकै धरै, ताऊपर पुनि कंगई करै ।।१

शृंगार :-

रतन जटित मुरली कर दई मोहन परम प्रीति सौं लई ।
सँमुख आय रही ब्रजनारी, दर्पन देखहु कुंज विहारी ।
तब आई वृषभान कुमारी, छवि पर वारौं कोटिक मार ।
- - - - - - - ।
मधू मेवा पकवान मिठाई, मुदित जसोमति गोद भराई ।
वे तो हरि कमल रस चाख्यौ, कै विनि अमृत मधुवृत माख्यौ ।।

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ- ५१३ ।

शयन :-

ग्वाल भोग लीनौ रस - रीति, बृजवनिता की जानी प्रीति ।
सबहिंन कौ कीयौ मन भायौ, जा कारन यह ब्रज में आयौ ।
जसुमति भोजन कीनौ साज, बैगि आइयौ मोहन आज ।
जमुना- जल सौं भारी भरी, लै उठाई हरि पाछै परी ।
- - - - - - - - - - ।
सुख सैया पौढ़े हरिराय, चांपत चरन जसोदा माय ।
भांति भांति की कहानी कहै, हरि हुंकारी फिर फिर लहै ।।

इस प्रकार एक ही पद में 'मार्ग' सिद्धान्तानुरूप सेवा-पद्धति का प्रस्तुतीकरण कवि ने बड़े ही रोचक ढंग से किया है। सर्वांग सेवा का एक ही पद में वर्णन कर देना गोस्वामी हरिराय जी की प्रतिभा का परिचायक है। सूरदास जी ने भी 'नित्य-लीला' नाम से एक वृहद् पद का सृजन किया है, किन्तु उसरचना का वृत्त गोस्वामी हरिराय जी की रचना से सर्वथा पृथक् है। सूरदास जी की रचना इस प्रकार है :-

भजो गोपाल, भूलि जिनि जायौ, मनुष्य जन्म कौ पहिलै लावौ ।
गुरु-सेवा करि भक्ति कमाई, कृपा भई तव मन मैं आई ।
- - - - - - - - - - ।
जिन ठाकुर कौ चरणामृत लीनौं, बैकुंठ मैं अपनौ घर कीनौ ।
जो हरि आगे बाजि बजावे, तीन लोक की रजधानी पावै ।।१

सूरदास जी की इस रचना को 'सेवा-फल' कहना अधिक समीचीन होगा। इसमें भाव प्रबलता के कारण लोकोत्तर फल-लाभ का वर्णन किया गया है,

---

(१) श्री वल्लभ विलास- सम्पा० बाबू ब्रजभूषन दास, भाग-३।४, बनारस --- पृष्ठ- ६५।६६

जब कि गोस्वामी हरिराय जी ने कृष्ण के लोकोत्तर स्वरूप को भी लौकिक धरातल पर प्रतिष्ठित करने का यत्न किया है । `नित्य-लीला` में कवि ने सर्वत्र मानव-प्रकृति के अनुरूप ही चित्र निरूपित किए हैं । कवि ने इस रचना में नित्य की झाँकियों के वर्णन के साथ - साथ पुष्टि मार्ग में व्यवहृत सेवा-भावना को भी सहज ढंग से सुस्पष्ट कर दिया है ।

`नित्य-लीला` की इस विशेष रचना के अतिरिक्त कवि ने `कृष्ण-स्वरूप` की आठों झाँकियों के वर्णन हेतु और भी अनेक स्फुट पदों का सृजन किया है, किन्तु वे विशेष महत्व प्रतिपादित नहीं करते । इस विषय में `नित्य लीला` के अनुरूप और कोई भी रचना विशेष उल्लेखनीय नहीं है । नित्य लीला के अतिरिक्त गोस्वामी हरिराय जी ने वर्ष भर के उत्सवों के विषय में भी पद रचनाएँ की हैं ।

वर्षोत्सव के पद:-

वल्लभ सम्प्रदाय के सभी मन्दिरों में वर्ष में होने वाले प्राय: सभी उत्सवों के भिन्न-भिन्न पद गाये जाते हैं । ये पद`कृष्ण की अवतार लीलाओं के उत्सव, षट्-ऋतुओं के उत्सव, लोक-व्यवहार और वैदिक पर्वों के उत्सव तथा अवतारों की जयन्तियों के भाव-मयी गान हेतु रचे गए हैं ।[१] `वर्षोत्सव` में वर्ष में होने वाले उन्हीं उत्सव व पर्वों को ग्रहण किया गया है, जो पुष्टिमार्गीय मन्दिरों में मनाये जाते हैं । उदाहरण के लिए मत्स्यावतार, वाराहावतार आदि के उत्सव इस सम्प्रदाय में नहीं मनाए जाते, एतदर्थ इस सम्बन्ध में कीर्तनकार भी मौन ही रहे हैं । सम्प्रदाय के भक्त कीर्तनकारों को तो पुष्टि-मार्गीय मन्दिरों में होने वाले उत्सवों तथा पर्वों का ही गायन करना था । अन्य विषयों से उनका सम्बन्ध न था ।

---

(१) सूर और उनका साहित्य, - डा० हरवंश लाल शर्मा, द्वि० संस्क०, -- पृष्ठ- ५६ ।

इससे यह भी विदित होता है कि इन भक्त कीर्तनकारों ने अपने साहित्य का मान-दण्ड वल्लभ सम्प्रदाय में व्यवहृत सेवा-भावना को ही माना है। गोस्वामी हरिराय जी के अधिकांश साहित्य से यह परिलक्षित होता है।

वल्लभ सम्प्रदाय में व्यवहृत वर्षोत्सव का क्रम इस प्रकार है :-

"जन्माष्टमी से--- बधाई, छठी, पालना, ढाँढी, दसौंधी, मास-दिना, अन्नप्राशन, कर्ण-वेध, नामकरण, मृत्तिका भक्षण, करवट, ऊखल, बाल-लीला (पूतना वध, सटकासुर वध, वक, तृणावर्त, दावानल, कालिय दमन आदि), चन्द्रावलि जू की बधाई, ललिता जी की बधाई, राधिका जी की बधाई, राधिका जी की ढाँढी, राधिका जी को पलना, राधिका जी की बाल-लीला, बाल नागरी, दान, साँझी, नव-विलास, देवी पूजन, मुरली, करखा, दसहरा, रास, मान, पौढ़ना, धन-तेरस, रूप चौदस, दिवारी, गाय-खिलायवो, कान-जगायवो, हटरी, अन्नकूट, गोवर्द्धन पूजा, भाई-दौज, इन्द्रमान भंग, गोचारण, देव-प्रबोधिनी, व्हाह, मान, मकर-संक्रान्ति, होरी और धमार, पाटोत्सव संवत्सर, गनगौर, जमुना जी की बधाई, शृंगार, व्यारू, चंदन, नरसिंह जयंती, नाव के पद, गंगा-दसमीं, स्नान यात्रा, रथयात्रा, मल्हार कसूमी, छाक, घटा, चूनरी लहरिया, हिंडोरा, पवित्रा, कूल्हे ।।१

गोस्वामी हरिराय जी ने उपर्युक्त सभी प्रसंगों पर क्रम-बद्ध रचनाएं नहीं कीं, फिर भी अधिकांश उत्सवों पर उनकी रचनाएं मिल जाती हैं। उन्होंने वर्षोत्सव की दृष्टि से पद लिखे अवश्य हैं, क्योंकि 'वर्षोत्सव के पद' नाम से इनके पद संग्रह हस्तलिखित रूप में प्राप्त होते हैं।२ लेकिन वर्षोत्सव के सभी प्रसंगों के पद इनमें नहीं मिलते।

---

(१) सूर और उनका साहित्य, डा० हरवंश लाल शर्मा, द्वि०सं० पृ० ५६
(२) वल्लभ विलास सम्पा० बाबू ब्रजभूषन दास, भाग-३, पृ० ६२ से ८६।

गोस्वामी हरिराय जी ने अपने ब्रजभाषा गद्य ग्रन्थ ; `वर्षोत्सव को भाव` में निम्नलिखित उत्सवों का उल्लेख किया है:-

`जन्माष्टमी को वितार । राधा जन्मोत्सव । दान लीला । वामन-जयन्ती । नव-विलास । दसहरा । रासोत्सव । धनतेरस । रूपचतुर्दशी । दिवारी । अन्नकूट । भाई दूज । गोपाष्टमी । प्रबोधिनी । गुसाईं जी को जन्मोत्सव । वसंत-पंचमी । श्रीनाथ जी को जन्म । रामनवमी । अक्षय तृतीया । स्नान-यात्रा । रथयात्रा । हिंडोला । पवित्रा-उत्सव । रक्षाबंधन । मकर संक्रान्ति`।१

गोस्वामी हरिराय जी के `पद-साहित्य` में इस क्रम के अनुरूप भी पद नहीं मिलते । पद-साहित्य का क्रम इससे किंचित पृथक् है :-

जन्माष्टमी । ढाँढ़ी ढाँढ़िन । नन्दमहोत्सव । पालनो । बाल-क्रीड़ा । राधाजन्म । दान-लीला । साँझी लीला । नव-विलास । गोवर्द्धन लीला । मुरली । दसहरा । दिवारी । गो पूजन । प्रबोधिनी । वसंत पंचमी । होली । डोल । फूलमंडली । ग्रीष्मोत्सव । चन्दन वागा । गंगा दशहरा । जल-क्रीड़ा । खसखाना । रथयात्रा । कसूंबी घटा । झूला । श्रावण तीज । पवित्रा - एकादसी । हिंडोला । घटा ।२

इस प्रकार गोस्वामी हरिराय जी ने वर्ष के प्राय: सभी मुख्य-मुख्य उत्सवों का वर्णन किया है । इनमें भाव पक्ष का आधिक्य तथा सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का विवेचन अधिक है । गोस्वामी हरिराय जी ने इस सन्दर्भ में अनेक स्फुट-पद भी लिखे हैं :-

---

(१) वल्लभ-विलास- सम्पा० बाबू ब्रजभूषन दास, भाग-३, प्रका० बनारस -- पृष्ठ- ६२ से ८६

(२) निजी पुस्तकालय,नाथद्वारा, बंध सं० १७ पुस्तक सं० ३ ।

कृष्ण जन्म :-

- जसुमति सुत जनम सुनि, फूले ब्रजराज हो ।१

\+ \+ \+ \+

- जनम सुत कौ होत ही, आनंद भयो नन्दराय ।२

\+ \+ \+ \+

- नन्दराय के भौन बधाई ।३ आदि ।

राधा जन्म :-

- रावल श्री राधा प्रगट भई ।४

\+ \+ \+ \+

- राधा रावल में प्रगट भई ।५ आदि ।

दान लीला:-

कान्हा कैसो मांगत दान दूध - दही कौ ।६

इसी प्रकार अन्य उत्सवों का भी क्रम-बद्ध वर्णन किया गया है । गोस्वामी हरिराय जी ने इन स्फुट पदों के अतिरिक्त 'सेवा-भावना' नामक एक आख्यानक रचना का भी सृजन किया है । इस प्रकार कवि ने

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ- २१
(२) वही, पृष्ठ- २६
(३) वही, पृष्ठ- २१
(४) वही, पृष्ठ- ६१
(५) वही, पृष्ठ- ६१
(६) वही, पृष्ठ- ७२ ।

'नित्य लीला' की भाँति इस 'सेवा-भावना' नामक एक ही पद में वर्ष के सभी उत्सवों का वर्णन किया है। इस रचना में वल्लभ सम्प्रदाय में व्यवहृत सेवा विधान का रोचक वर्णन किया गया है :-

रह्यौ मोहि श्री वल्लभ गृह भावै ।
सुनि मैया तू मो हर माखन, दूध दह्यौ जु छुपावै ।
तू अति क्रूर कृपन हौं कहा कहौं, निज प्रति मोहि खिजावै ।
मेरो प्रान-जीवन धन गोरस, मो कौं नित प्रति भावै ।
खीर खाड़ पकवान विविध है, प्रातहि मोहि जगावै ।
तेल सुगंध लगाय प्रीत सौं ताते नीर न्हवावै ।
भूषन वसन विविध मन भाए पलटि पलटि पहरावै ।
नैंना आँज तिलक दै, मृग मद- दरपन मोहि दिखावै ।

इस रचना में शृंगार की इस सेवा भावना के पश्चात् कवि ने वर्षोत्सव के प्रसंगों को इस प्रकार स्पर्श किया है :-

जनम-दिवस आवत जब मेरो, आँगन चौक पुरावै ।
बाजे बजत बहु विधि द्वारे, बंदन वार बंधावै ।
डोल झुलावत, रथ बैठावत, हिंडोरा पलना झुलावै ।
रितु वसंत जानि जिय अपने, लै सुगंध छिरकावै ।
\+ + + + + +
मेरे लिए पवित्रा, राखी, अति सुन्दर बनवावै ।
\+ + + + + +
रावल में राधा मंगल जस, सरस बधाई गावै ।
\+ + + + + +
वामन रूप धर्यौ पृथवी में बलि के द्वारे आवै ।
तीन पैंड धरती माँगी पै, सो हरि कहूँ न समावै ।

लीला-दान महा रजनी में करि, सिर मुकट धरावै ।
दानी-राय नाम धरि मेरौ, कर में लकुटि गहावै ।

गोस्वामी हरिराय जी ने इस पद में सभी उत्सवों के सांकेतिक वर्णन किए हैं, किन्तु सम्प्रदाय में प्रचलित सेवा-भावना के व्यवहृत रूप को उन्होंने पूर्ण रूप से व्यक्त कर दिया है। कवि स्वयं सम्प्रदाय का आचार्य है। अत: सम्प्रदाय के अंग-अंग से पूर्ण परिचित है। यही कारण है कि इतनी सरलता से इस व्यापक विषय को एक ही पद में परिपूर्ण कर दिया गया गया है। पद के अन्तिम चरण में कवि का 'विशेष-कथन' अर्थात् अभिप्राय दृष्टव्य है :-

यह विधि नित नूतन सुख मोकौं वल्लभ लाड़ लड़ावै ।
मैं जानूं के वल्लभ जानैं, के निज जन मन भावै ।
अति मति मंद कर्म जन कलि के, मिथ्या जनम गमावै ।
'रसिक' कहै श्री बल्लभ कृपा विन, यह फल कवहुन पावै ।

कवि ने कृष्ण-लीला के विविध वर्णनों में तथा वर्षोत्सव के अनेक प्रसंगों में कृष्ण की महत्ता के साथ-साथ वल्लभाचार्य जी की महत्ता भी प्रतिपादित की है। इस उद्धरित पद में प्रारम्भ में भी 'रह्यौ मोहि श्री वल्लभ-गृह भावै' कह कर कवि ने आचार्य महाप्रभु को ही अधिक सम्मान दिया है।

सेवा विधि के इन विविध पदों के अतिरिक्त गोस्वामी हरिराय जी ने यमुना जी, गिरिराज जी, ब्रज, ब्रजवासी आदि का वर्णन भी पूज्य-भाव से प्रेरित होकर किया है। यह वर्णन प्राय: सभी पुष्टि-मार्गीय साहित्यकारों ने किए हैं। यमुना, गिरिराज को देव रूप में वर्णन करने की पद्धति पौराणिक परम्परा से चली आरही है। इस विषय में कवि के स्फुट पद ही पाए जाते हैं। कुछ पद इनमें से अति लोक

प्रसिद्ध भी हैं, जिनका नित्य पाठ वल्लभ सम्प्रदायी वैष्णवों द्वारा घर-घर में किया जाता है।

यमुना-गिरिराज महिमा :-

वल्लभ सम्प्रदाय में यमुना जी एवं गिरिराज जी को भी पूज्य भाव समर्पित किए गए हैं। महाप्रभु वल्लभाचार्य से ही सभी आचार्यों ने इस विषय में रचनाएं कर अपने श्रद्धा-भावों को व्यक्त किया है। गोस्वामी हरिराय जी ने भी इस सन्दर्भ में स्फुट पद लिखे हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

तरहटी श्री गोवर्द्धन की रहिये ।
नितप्रति मदन गोपाल लाल के चरन कमल चित लहिये ।
तन पुलकित ब्रज रज में लोटत, गोविंद कुंड में नहिये ।
'रसिक प्रीतम' हित चित की बातें, श्री गोवर्द्धन सों कहिये ।१

इसी प्रकार गोस्वामी हरिराय जी ने यमुना जी की भी महिमा का गान किया है। यमुना, गिरिराज महिमा के साथ-साथ कवि ने वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी वैष्णवों का भी गुणगान किया है :-

हों वारी इन वल्लभीयन पर ।
मेरे तन को करों बिछौना सीस धरों इन चरननि तर ।२

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ- २१८
(२) वही, पृष्ठ- २८५ ।

उपर्युक्त उद्धरणों से ज्ञात होता है कि गोस्वामी हरिराय जी ने सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को सर्वांगीण रूप से विवेचित कर `मार्ग` के स्वरूप को जन सामान्य के लिये सुलभ बनाने का यत्न किया था । कवि ने इन विविध सैद्धान्तिक विवेचनों के अतिरिक्त अपने पूर्वज आचार्यों की महत्ता प्रतिपादित करने के लिये कुछ बधाई-पद भी लिखे हैं । गोस्वामी हरिराय जी द्वारा रचित पद प्राय: सभी वैष्णव भक्तों के समक्ष गाये जाते थे, इसलिये इन पदों में अपने पूर्वज आचार्यों की महत्ता प्रतिपादित कर उनके प्रति श्रद्धा-प्रसार करना उनका एक वैयक्तिक-कर्त्तव्य था ।

बधाई :-

सम्प्रदाय की सेवा-विधि के अतिरिक्त गो० हरिराय जी ने अपने पूर्वज आचार्यों की बधाई में भी अनेक पदों की रचना की है । ये बधाइयाँ पूर्वज आचार्यों के स्मरणार्थ ही गाई जाती हैं । इस प्रसंग में वल्लभ सम्प्रदायी मन्दिरों में वर्ष में एक बार इन गो-लोकस्थ आचार्यों का उत्सव भी मनाया जाता है, उसी दिन उनकी बधाइयाँ भी गायी जाती हैं । अष्टछाप के अधिकांश कवियों ने इस प्रकार की रचनाएँ की हैं । गोस्वामी हरिराय जी ने इस विषय में कुछ नवीन नहीं लिखा । इन बधाइयों का भाव-पक्ष ही सबल है, अन्यथा कला की दृष्टि से इनका महत्व नहीं । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

भूतल महा महोच्छव आज ।
श्री लछमन गृह प्रगट भए हैं । श्री वल्लभ महाराज ।१

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ- २३७ ।

गोस्वामी हरिराय जी ने इन बधाई पदों के माध्यम से सम्प्रदाय के सिद्धान्त पक्ष को भी स्पष्ट करने की चेष्टा की है :-

भाग्यन श्री वल्लभ जनम भयौ ।
सुभ वैसाख कृष्णा एकादसी, पूरन विधु उदयौ ।
संतन मन माया मत कौ, अति गहवर तिमिर गयौ ।
रस सरूप ब्रज-भूप सुवन कौ, रूप-प्रकास छयौ ।
सेवक नैंन -चकोर सदामृत, दरसन रस अचयौ ।
भजन किरन करि पुष्टि भक्ति रस सब जग माँहि दयौ ।
भाव-रूप कौं भाव रूप ही भजन पंथ जतयौ ।
सबै सिरावहु नैन आपुने, दुरलभ पाय लयौ ।
रस सिंगार एक उदबोधक, विरह ताप नसयौ ।
'रसिकन' के मन बसौ दिवस निसि प्रभु आनंद भयौ ।।१

उक्त पदों के अनुरूप ही गोस्वामी हरिराय जी ने अन्य आचार्यों की भी 'बधाइयाँ' लिखी हैं । इनमें श्री गोपीनाथ जी, श्री पुरुषोत्तम जी, श्री विट्ठलनाथ जी, श्री गिरधर जी, श्री गोविन्दराय जी, श्रीबालकृष्ण जी, श्री गोकुलनाथ जी, श्री रघुनाथ जी, श्री यदुनाथ जी, श्री घनश्यामजी आदि के बधाई के पद प्राप्त होते हैं । ये सभी पद परम्परावत ही रचे गये हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोस्वामी हरिराय जी के समग्र-साहित्य में 'भक्ति' को किसी न किसी रूप में ग्रहण किया ही गया है । उनकी भक्ति परक रचनाओं में लीला

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ- २३६ ।

> तथा विनय दोनों प्रकार के वर्णन किये गये हैं। कवि ने लीलापरक रचनाओं में कृष्ण को लौकिक वातावरण में ही अधिक रखने का प्रयास किया है, सम्भवत: यही कारण है कि उनके काव्य में पूतना बध, सटकासुर, बकासुर, कंसबध आदि के प्रसंग नहीं मिलते। दामोदर लीला तथा गोवर्द्धन लीला जैसे अलौकिक वातावरण सम्मत कथानक को भी कवि ने यथा-सम्भव लौकिक बनाये रखने की ही चेष्टा की है। कवि ने विनय के पदों में अपने सम्प्रदाय के वातावरण का तटस्थता सेवर्णन किया है, जहाँ पर कवि ने अपने 'कुटुम्बियों' में त्रुटियाँ देखी हैं, उनका खुलकर वर्णन किया है। इस सन्दर्भ में कवि की निर्भय लेखनी के प्रमाण मिलते हैं।

श्रृंगारपरक रचनाओं में कवि की वृत्ति वियोग-वर्णन में अधिक रमी है। संयोग-वर्णन में कवि ने प्राय: प्रचलित कथांशों को ही चित्रित किया है। अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों के अनुरूप ही उन्होंने श्रृंगार में भक्ति को समन्वित कर दिया है। श्रृंगार के संयोग पक्ष में कवि ने कहीं-कहीं अति स्थूल चित्रों की योजना भी की है, किन्तु अधिकांश वर्णन स्वाभाविक तथा मानव प्रकृति के अनुकूल ही हैं। कवि का वियोग-वर्णन अत्यन्त सरस बन पड़ा है। काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तों का इनमें परिपालन-सा प्रतीत होता है, किन्तु कवि ने किसी भी नियम को आधार बनाकर इस प्रकार की रचनाएं नहीं कीं। इनकी कविताओं की ये विशेषताएं स्वभाव-जन्य ही हैं। विप्रलम्भ प्रसंग में विरह-जन्य सभी अवस्थाओं का कुशल वर्णन किया गयाहै। इस सन्दर्भ में कवि ने राधा-कृष्ण को नायक-नायिका के रूप में ही स्वीकारा है। यह प्रभाव उनकी युगीन-साहित्य-धारा से प्रेरित जान पड़ता है।

सम्प्रदाय सम्बन्धी रचनाओं में कवि ने 'नित्य' तथा 'वर्ष' के सम्बन्ध में विविध स्फुट पदों की रचना की है। ये पद परम्परावत् ही हैं, किन्तु 'नित्य के पदों' में 'नित्य-लीला' नामक रचना तथा 'वर्षोत्सव के पदों' में सेवा-भावना, उनकी विशिष्ट रचनाएं हैं। इन दोनों रचनाओं में कवि ने सम्प्रदाय में व्यवहृत प्राय: सभी सेवा-भावना का मनोहारी वर्णन किया है। अन्य स्फुट पद पूर्ववर्ती पदकारों के अनुरूप ही हैं। कवि के 'बधाई के पद' विशेष उल्लेखनीय नहीं हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोस्वामी हरिराय जी अपने पूर्ववर्ती-साहित्यकारों से पर्याप्त प्रभावित थे। उनकी रचनाओं में उनके युग की प्रचलित साहित्य धारा का यत्किंचित प्रभाव भी आभासित होता है। कवि ने अनेक स्थलों पर अपनी काव्य प्रतिभा का यथेष्ट परिचय दिया है। कवि की शृंगारिक रचनाएं इस विषय में विशेष उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त समग्र विवेचन में गोस्वामी हरिराय जी के काव्यगत वर्ण्य विषय को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। आगामी पृष्ठों में गोस्वामी हरिराय जी की गद्य कृतियों के वर्ण्य विषय को स्पष्ट किया जारहा है।

गद्य-साहित्य :- 'कृति परिचय' संबंधित अध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है कि गो० हरिराय जी ने जितनी क्षमता से ब्रजभाषा में पद्य साहित्य का सृजन किया, उतनी ही क्षमता से उन्होंने गद्य साहित्य की भी रचना की थी। परिमाण की दृष्टि से उनके गद्य साहित्य के ग्रन्थों की संख्या पद्य साहित्य के ग्रन्थों की संख्या से अधिक है। गो० हरिराय जी जिस युग के लेखक थे, उस युग की दृष्टि से उनके गद्य साहित्य का ऐतिहासिक महत्व है। ब्रजभाषा गद्य के प्रारम्भिक चरण में सृजित हुआ उनका कृतित्व निश्चय ही अपने समय का प्रतिनिधित्व करता है। ब्रजभाषा गद्य का जो परिष्कृत रूप उनके साहित्य में उपलब्ध है, उसे ब्रजभाषा का उत्कृष्टतम स्वरूप कहा जा सकता है। इसका अधिक स्पष्टीकरण अन्यत्र किया जायेगा।

गोस्वामी हरिराय जी का गद्य-साहित्य अधिकांशतः भावना-प्रधान है। उनके ग्रन्थोंमें पुष्टि-मार्गीय भक्ति एवं दर्शन के सिद्धान्तों की ही विविध शैलियों में विवेचना की गई है। कुछ टीका-ग्रन्थों के अतिरिक्त और भी अनेक ऐसे छोटे-छोटे गद्य ग्रन्थों का गोस्वामी हरिराय जी ने सृजन किया है, जिनका वर्ण्य विषय की दृष्टि से पृथक् महत्व नहीं है, जो ग्रन्थ आकार में अति लघु हैं, उनका वर्ण्य कृति परिचय नामक अध्याय में ही स्पष्ट किया जा चुका है। गोस्वामी हरिराय जी के प्रमुख गद्य ग्रन्थों का वर्ण्य विषय स्पष्ट करना ही यहां अभिप्रेत है।

उत्सव भावना :-

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इस ग्रन्थ में पुष्टि-मार्गीय वर्षोत्सवों की पृथक् - पृथक् भावनायें निर्दिष्ट की गई हैं। प्रत्येक उत्सव में उससे सम्बन्धित सभी वस्तुओं के भाव, साम्प्रदायिक मान्यतानुसार प्रस्तुत किए गए हैं। उद्धरण दृष्टव्य है :-

'पंचामृत अष्णान में लाल दरिआई की पीताम्बर पहिरत हैं । सो तो व्रज भक्तन को जनावत हैं । जो हमारो प्राकट्य केवल तुम्हारे अनुराग ते भयो है । न तु कछु और भाँति ।'१

'य यथा मां प्रपद्यन्ते' के अनुरूप यहाँ गोस्वामी हरिराय जी नेकहा है कि कृष्ण का अवतार उनके भक्तों के लिये ही हुआ है । यही कृष्ण का भक्तों के प्रति अनुग्रह है और पुष्टि मार्ग का मूल तत्व भी । इस प्रकार गोस्वामी हरिराय जी ने इस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर सम्प्रदाय सम्बन्धित सिद्धान्तों को स्पष्ट किया है । अध्यात्मपरक विचारों का भी यत्र-तत्र स्पष्टीकरण किया गया है ।-

'अथ भाद्रपद शुक्ल ८ । को श्री स्वामिनी जी को प्राकट्य । सो तो केवल व्रज पति के रमण लीला सिध्यर्थ ही प्राकट्य है । ए दोउ स्वरूप आनन्द मात्र कर पद मुखोदरादि अहर्निस परस्पर लीला निमग्न ही हैं, और कार्य सों सब स्वरूप भेद ते होत हैं । यह जाननो । ता दिन श्री स्वामिनी जी अकेले दूध सों अस्नान करत हैं । ताको अभिप्राय यह जो सब द्रवी भूत रस को मुख्य रस दूध है । और रस रूप जो सब व्रज--जन तिनको मुख्य स्वरूप श्री स्वामिनी जी हैं । सो जन्मत ही भगवत स्नेह में द्रवीभूत हैं । यह जनाइवे को प्रथम दूधस्नान और केसरी साड़ी सो तो आप ही के श्री अंग को वर्ण और स्याम कंचुकी सो श्री ठाकुर जी को वर्ण । या तें यह जान्यो पड़त है जो ए दोउ स्वरूप एक क्षण न्यारे नहीं । जन्म समय गूढ़ रीति सो प्राकट्य एकठो है । तासो केसरी साड़ी रूप सो तो प्रसिद्ध । और स्याम चोली रूप श्री स्वामिनी जी के हृदयस्थाई श्री ठाकुर जी सो तो गुप्त रीति सों विचारिए ।'२

---

(१) श्री वल्लभ विलास- प्रका० बनारस सं० १६४५, पृष्ठ ६२ से उत्सव-भावना ।
(२) वही, पृष्ठ- ६२ ।

विशेष रूप से इस ग्रन्थ में वर्षोत्सव सम्बन्धित ठाकुर सेवा का पुष्टि-मार्गीय विधान ही वर्णित है। इस प्रसंग में गो० हरिराय जी ने कथ्य को प्रभावित बनाने के लिये उसे अनेक उपमा, रूपक, व्याजस्तुति, अन्योक्ति आदि अर्थों में प्रयुक्त किया है। लेखक कल्पना का धनी है तथा स्वमार्गीय सिद्धान्तों का विज्ञ भी। यह इस ग्रन्थ से जाना जा सकता है।

सेवा का विधान इस प्रकार वर्णित है :-

'श्री ठाकुर जी ता दिन साक्षात आपनो जन्म दिवस मानि सब साज जन्माष्टमी कौ धरत हैं। और पाग नई धरत हैं ताकौ अभिप्राय जो श्री स्वामिनी जी द्वारा अब ते नित्य नौतन वस्त्र की प्राप्त होयगी। ताते नौतन पाग सर्वांग में श्रेष्ठ है। अंग जो मस्तक ता पर धारत हैं। तादिन श्री स्वामिनी जी कौ तिलक आरती भेंट स्त्रीजन करत हैं।'१

इस ग्रन्थ में वर्षोत्सव में समाहित पर्व इस प्रकार हैं - जन्माष्टमी। राधाष्टमी। दान लीला। बामन जयन्ती। नवरात्रि। दशहरा। रासोत्सव। धनतेरस। रूप चतुरदसी। दिवाली। अन्नकूट। भाई दूज। गोपाष्टमी। प्रबोधिनी। विट्ठलनाथ जी को उत्सव। वसंत पंचमी। अक्षय तृतीया। स्नानयात्रा। रथ यात्रा। हिंडोला। पवित्रा। रक्षा बन्धन तथा मकर - संक्रान्ति।

अन्त में गोस्वामी हरिराय जी ने अपना उद्देश्य भी प्रति-पादित किया है।-

---

(१) श्री वल्लभ विलास, प्रकाशन, बनारस संवत्- १९४५, पृष्ठ- ६२ ।

'भाव बिना क्रिया करिये सो बृथा श्रम जाननौं । यह मार्ग और या मार्ग की क्रिया सब फल रूप हैं। परन्तु जब श्री महाप्रभु । तथा श्री मत्प्रभु कौ शरण सम्बन्ध दृष्टि राखि ब्रज भक्तन के भाव सौं सेवा करे तब फलरूप होय अरु अलौकिक लीला अनुभव वेगि ही दान करें प्रभु, यामें संदेह नहीं।'

गोस्वामी हरिराय जी ने यत्र-तत्र अपने विचारों को पुष्ट करने के लिये अपने स्वयं के कुछ पद भी उद्धृत किये हैं। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं:-

बिजै दसमी परम सुहाई, बागौ अगुआ दियौ पठाई ।
गोप सकल बैठे हैं अथाई, कुशल मनावहु शुभ दिन भाई ।
ब्रजरानी ब्रजराज कुंवर कौं, ललिता कीरत न्यौत बुलाई ।
आजु हमारे बड़ो परव है । तुम सब जेवन आओ उहाँहीं ।
करत श्रृंगार गिरिधरन चंद कौ, चन्द्रावलि सरस सुखदाई ।
सूथन पीत श्वेत बागा खुल्यौ लाल पाग सिर पर थहराई ।
काजर आँजि भौंह मटुका दै त्रिनु तौरत अरु लेत बलाई ।
रसिक प्रीतम प्रभु विजय कियौ वृषभानु कुंवरि जहाँ मत भाई।।१

\+ + + + + +

सुभग महूरत विजय दसमी प्रथम समागमन पिय हुलास ।। २

\+ + + + + +

मैया रथ चढ़ि हौं डोलौंगो ।।३

---

(१) श्री वल्लभ विलास, प्रकाशन, बनारस, सं० १६४५, पृष्ठ- ८६ ।
(२) वही, पृष्ठ- ६६ ।
(३) वही, पृष्ठ- ७८ ।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि गो०हरिराय जी ने इस ग्रन्थ में पुष्टि-मार्ग में प्रचलित सेवा-विधान तथा भक्ति-सिद्धान्त को सुलभ बनाने का यत्न किया है।

डोलोत्सव की भावना :-

'डोल उत्सव की भावना' नामक इस ग्रन्थ में गोस्वामी हरिराय जी ने होली के बाद पड़ने वाले एक त्यौहार-विशेष की चर्चा की है। इसमें उन्होंने 'भावना' को प्रधान रूप दिया है। कुछ सैद्धान्तिक समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत किया है :-

'तातें श्री पूर्ण पुरुषोत्तम प्रसन्न होंय, डोल उत्सव श्री गिरिराज पर किए। तहाँ यह संदेह होय, जो श्री गोकुल में बाल-लीला है। सो डोल को उत्सव कैसें सम्भवे। किसोर लीला में प्रसिद्ध ही है। तातें डोल की रचना में तो केवल रहस्य लीला है।'१

डोल उत्सव की पृष्ठ भूमि तैयार करते हुए गोस्वामी हरिराय जी ने लिखा है:-

> 'बाल भाव सों श्री ठाकुर जी हठ करिकें मुग्ध भाव सों कहत हैं। हे मैया। मैं यह वृषभान की बेटी के संग डोल झूलोंगो। और मैं खेलूंगो। तब श्री यशोदा जी अत्यन्त मुग्ध बालक जानि मन में प्रसन्न होइ कें दोऊ स्वरूप को सिंगार करिकै डोल उत्सव की रचना करत हैं।'२

प्रसंगवश सैद्धान्तिक व्याख्यायें भी हुई हैं :-

---

(१) बसंत होरी की भावना, सम्पा० निरंजन देव शर्मा, मथुरा पृष्ठ- ११७ ।
(२) वही, पृष्ठ- १२१ ।

'या प्रकार सौं नाम मात्र श्री ठाकुर जी के परिक्रिया भाव सौं रस सास्त्र मैं मुख्य कहे है । सोऊ लीला कैरनी है । ताके अर्थ ब्रज भक्तन कौ व्याह भयौ है । '१

--'भगवद् इच्छा ते माया कौ यह सामर्थ्य है जो कोटा-निर्क्कोटि ब्रह्माण्ड एक छिन मैं प्रगट कर सकैं ।---- प्रभु की लीला कौं कौन पार पावे । कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुम् सर्व सामर्थ्यवान हैं । तातैं या करि कैं प्राकृत प्रसिद्ध करनार्थं व्रज भक्तन के पुत्रादिक हैं । और सिद्धान्त करिकै देखिये तौ वेद की रिचा सर्व ब्रज भक्त हैं ।'२

सँयोग शृंगार की सिद्धान्तगत व्याख्या करते हुए गोस्वामी हरिराय जी ने लिखा है :-

'खेल सौ रस की वृद्धि होय, उद्दीपन होइ । श्री स्वामिनी जी के तीन रूप ब्रज मैं मुख्य हैं :- विहार समय प्रगटी हैं कुमारिका कुंडे मर्दन प्रभु किए तहाँ ते प्रगटी हैं । ताते छोटी हैं श्री यमुना जी । श्रुति सुमृति ते प्रगटीं ताते तीन्यौन कौ विहार प्रिय है और या भाव ते डोल कौ खेल है ।'३

एक स्थान पर गोस्वामी हरिराय जी ने अपना स्वरचित पद भी उद्धृत किया है:-

'झूलत डोल राधिका सँग ।
गोवर्द्धन पर्वत के ऊपर खेलत अति रस रँग ।
प्रथम खेल राधे सँगहु रच्यौ सरल परत अंत रँग ।

---

(१) बसंत होरी की भावना, सम्पा० श्री निरंजन देव शर्मा, मथुरा पृ० १२८ ।
(२) वही, पृष्ठ- १२६ ।
(३) वही, पृष्ठ- १३१ ।

दूजो खेल रच्यो चन्द्रावलि अबीर गुलाल सुरंग ।
तीजो खेल कियो ललितादिक, अग्नि कुमारी संग ।
चौथो खेल कियो वृन्दावन, पिय मोहे 'रसिक' अनंग ।।१

अन्त में भाव-प्रवणता के महत्व को प्रतिपादित करते हुए गोस्वामी हरिराय जी लिखते हैं, डोल उत्सव के अनेक भाव हैं । तामें कछू एक कहे हैं । जासू श्री आचार्य जी श्री गुसाईं जी की कृपा से हृदय में भाव-भावना की वृद्धि होय ।'२

स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ में गोस्वामी हरिराय जी ने 'डोल उत्सव' के महत्व को बतलाते हुए भावना के महत्व को भी सुस्पष्ट किया है । इसमें सैद्धान्तिक पक्ष को भी स्पर्श किया गया है ।

द्विदलात्मक स्वरूप विचार :-

यह ग्रन्थ विशुद्ध सैद्धान्तिक विवेचन पर आधारित है । ब्रह्म द्वारा अवतार के कारण की शास्त्र सम्मत विवेचना करते हुए गोस्वामी हरिराय जी ने प्रारम्भ में ही लिखा है कि -

कोटि कंदर्प लावण्य साक्षात्कार रसात्मक स्वरूपा आनंद मात्रकर पाद मुखोदरादि ऐसे जो पूरन पुरुषोत्तम जो प्रथम रस रूप आप ही हते । और श्री स्वामिनी जी के संग अन्तर लीला को अनुभव

---

(१) बसंत होरी की भावना, सम्पा० श्री निरंजन देव शर्मा, मथुरा, पृ० १३२ ।
(२) वही, पृष्ठ- १३४ ।

करते परि बाहर प्रगट न हते । सो एक समय वो पुरुषोत्तम के स्वरूप में अपनो श्री मुख दर्पन में देख्यो सो कोई एक अद्भुत स्वरूप गर्वित नायक को सो देखि अत्यन्त अनिवर्चनीय लावण्यता और शोभायुक्त देखिकें अपने स्वरूप में आप मोहित होइकें अपने हृदय में ते भाश्य अपने मुख द्वारा प्रगट कियो ।'१

ग्रन्थ के मध्य में कुछेक वस्तुओं की भावनाएँ भी बतलाई गई हैं ।--'

'जो तुलसी को स्वरूप है सो साक्षात श्री स्वामिनी जी के अंग को सुगंध सौरभ है । तुलसी को स्वरूप है । अतएव जब तुलसी कों भगवद् चरणारविंद पर धारत हैं तब पहिले विज्ञप्ति करत हैं । श्लोक - - - - - - - । या करि यह विचारनो जो जैसे हैं पूर्ण पुरुषोत्तम के अंग ते श्री स्वामिनी जी स्थिति हैं तैसे हीं उनके अंग सौरभ आप जो तुलसी ताऊ की स्थिति जाननी । यह तुलसी को सौरभ भाष्यदीप्त प्रगट हुई । रमण की इच्छा प्रागट्य कीनी यह भाव विचारनो ।'

कथन पुष्टि के लिये यथोचित शास्त्रों के प्रमाण भी दिए गए हैं :-

'यह न्यून भाव सर्वथैव सम्भवे ना हीं । -- जो कीट भ्रमर न्यायेन अरु स्याम कटाक्ष के अखण्ड ध्यान में आप हू तद्रूपा स्याम स्वरूप होय कैं गए । श्री गुसाईं जी ने प्रभु के आगे नमन समय विज्ञप्ति कीनी है । - - - - - - प्राप्ततम् निज रूपाय गोविन्दाय नमो नम: ।' यह विचार करनो ('

---

(१) गो० रतन लाल जी, वृन्दावन वाले, की प्रति ।

'- - - - श्री मद् भागवत् में पंचाध्याई में कह्यो है रैमे रमे सो ब्रज सुन्दरी भिर्यथकस्व प्रतिबिंब विभ्रम' यह विचार करनो '।

अन्त में कहा गया है, लीला मध्य पाती लीला सामग्री दासत्व रूप सो है, याही ते तादृशी वैष्णव को भगवद रूप कहियतु हैं।'

इस प्रकार इस ग्रन्थ में सिद्वान्तों की शास्त्रीयविवेचना के अतिरिक्त भाव-प्राधान्यता तथा वैष्णव महत्ता का भी निर्देश किया गया है।

नवग्रह आकार :-

इस ग्रन्थ में गोस्वामी हरिराय जी ने वल्लभ सम्प्रदाय में प्रचलित नवग्रह पूजन विधि पर प्रकाश डाला है। प्रसंग वश सिद्वान्तों का भी उल्लेख हुआ है :-

> 'अथ पुष्टि-मार्गीय वैष्णव कों नवग्रह पूंजन करिवे को प्रकार। भगवदीयन को लौकिक विग्रह कहा करि सके। भगवदीय तो श्री ठाकुर जी को अंश हैं। श्री महाप्रभु जी जाकें हृदसा में विराजत होंय तिनको अन्य सम्बन्ध कछू नांय होय। सो अपरस काहू वस्तु को न राखे।'

विषय सीमित होने से ग्रन्थ का आकार भी छोटा है। अधिकांश में नवग्रह पूजन विधि पर ही प्रकाश डाला गया है।

वशंत होरी की भावना :-

ग्रन्थ के नामानुरूप गोस्वामी हरिराय जी ने इसमें होली-उत्सव का भावमयी वर्णन किया है। जहाँ भी लेखक ने सम्प्रदायगत तथ्यों का भावात्मक उल्लेख किया है, वहाँ उनका सिद्वान्त-पक्ष भी सुगमता से स्पष्ट होता चला गया है। 'वशंत होरी की भावना' में उन्होंने होलिका-

उत्सव का वर्णन ब्रज-संस्कृति के अनुरूप ही किया है। ग्रन्थ आकार में बड़ा है, अत: भावों का विस्तार सहित वर्णन किया गया है। स्थान-स्थान पर दार्शनिक विवेचन भी हुआ है। प्रारम्भ में गोस्वामी हरिराय जी ने वशंत पंचमी की आध्यात्मिक व्याख्या करते हुए लिखा है :-

'अब बसंत पंचमी के दिन प्रथम काम को जन्म भयो है। ताते बसंत रितु और कामदेव आपुस में परम मित्र हैं। जहाँ कामदेव प्रथम मोहिवे को जात है तहाँ बसंत रितु को प्रथम प्रकास करत हैं। ताते बसंत पंचमी के खेल द्वारा काम कों प्रागट्य है। ताते होरी में ममता होत है। तहाँ बसंत के खेल प्रथम दिन १० को खेल और महीना १ ताको अभिप्राय यह है जो बसंत दिन १० में उद्दीपन लीला है और महीना १ आलंबन क्रीड़ा है, तथा वसंत सूँ पूनमताँई दस दिन में दस प्रकार के भाव हैं। तथा बसंत पंचमी के भाव हैं, सो काम कों पूजन करत हैं। बहुतक कामलोक विषै हू अध्यात्मक को महादेव जी ने जराइ दीयो। आदि दैविक कामरूप भगवान आप हैं साक्षात् मन-मथ के मनमथ। ताते दस दिन चार्‌यो भक्तन को मनोरथ है। ४० दिन ताते बसंत के दिन दस सात्विकी भक्तन के हैं। पाछे फागुन वदि १० ताईं दिन दस राजसी भक्तन के हैं। पाछें दिन दस तामसी भक्तन के फागुन सुदी ५ ताईं ता पाछे दिन दस निर्गुन भक्तन के तातें बसंत ते भारी खेल के गुन कहे न जाँहि'।१

'बसंत उत्सव' का आद्यन्त वर्णन भाव प्रधान ही है, तथापि इसमें ब्रज का सांस्कृतिक स्वरूप भी प्रकट होता है। वशंतोत्सव मनाने का सांगोपांग वर्णन इस ग्रन्थ में मिलता है:-

---

(१) वशंत होरी की भावना, सम्पादक श्री निरंजन देव शर्मा, मथुरा, पृष्ठ-१।

'एक कंचन कौ कलस जामैं जल कुंज रूप तापर खजूरि की हार सो हस्तरूप तामैं बौर सो आभूषन रूप। तापर सरस्यौं के फूल मुखारविंद रस मैं फूल हैं और फूल आदि तथा भ्रमरी भक्त रूप हैं। और ऊपर लाल वस्त्र वेष्टित सारी रूप। और ऊपर गुलाल अबीर छिरके हैं, ऊपर पीरौ वस्त्र अपने अंचल सौं कुछ रूप ढांपे हैं। जो केवल प्रभु अंगीकार करवे योग्य हैं। यह बसंत की सामग्री प्रभु को दिखाई अपने हृदय को अभिप्राय जनायौ।'१

ग्रन्थ मैं प्रसंग वश वशंत खेल के शब्द चित्र बड़े ही सजीव बन पड़े हैं :-

'या प्रकार गोप गोपी सखा श्री ठाकुर जी श्री बलदेव जी सहित गोकुल की गलिन मैं पधारे। किलकारी सुनत ही अपने अपने द्वार ते स्त्री पुरुष बसंत खेलन को निकसे। तब श्री ठाकुर जी ललिता जी की गोद मैं ते उतर कैं श्री बलदेव जी के पास आइकैं कही। अरे भैया हो मेरे बाबा की ओर के सखा जो हौं सो मेरी ओर आवो। और बृषभान पुरा की गोपी सो सगरी एक ओर होऊ। तब बशंत खेलिये'।२

'इतनौ सुनत ही श्री स्वामिनी जी अत्यन्त प्रशन्न होइ कैं अपने सखीन के झुंड सहित श्री ठाकुर जी के सन्मुख ठाड़ी भई। और इत माहूं श्री ठाकुर जी श्री बल्देव जी सखान सहित अपने जूथ मैं ठाड़े भए। तब ठाकुर जी नैं प्रथम केसरि की पिचकारी भरि कैं चलाई। पाछे अबीर गुलाल की पोटरी चलाई, पाछैं श्री बलदेव जी नैं सखान सहित गुलाल उड़ायौ सो गगन मैं मानो अरुण, स्वेत, पीरे बादर छाइ रहे हैं। ऐसौ गुलाल उड़ायौ सो सूर्य छिप गयौ। तब श्री ठाकुर

---

(१) बसंत होली की भावना, सम्पा० श्री निरंजनदेव शर्मा, मथुरा, पृष्ठ- ६
(२) वही, पृष्ठ- ११ ।

> जी नैं अपने श्री हस्त की छोटी पिचकारी श्री यशोदा जी नैं दई हती, सो धरि कैं, श्री दामा के हस्त मैं बड़ी पिचकारी हती, सो लेकैं फट गोपिन के फुंन्ड मैं पैठि गए'।[१]

गोस्वामी हरिराय जी ने प्रारम्भ मैं ही स्पष्ट कर दिया है कि यह उत्सव काम के प्राबल्य का द्योतक है। प्रसंग पूर्ति हेतु उत्सव वर्णन मैं भी कुछ इसी प्रकार के चित्र देखे जा सकते हैं :-

> 'सो (कृष्ण नैं) काहू के हार तोरे। काहू की चोली फारी। काहू की भुजा मरोरी। काहू के कपोल चुंबन किए। काहू के कपोलन मैं गुलाल लगायो। काहू के अंचल उलटे किए, फारे, काहू को केसर रंग सो भिजाय काहू को आलिंगन दीये। काहू कौं अधरामृत पान कराये'।[२]

कृष्ण की युगल बिहार लीलाओं के भाव-मय वर्णन मैं ही ग्रन्थ का वृत्त निरूपित हुआ है। गोपिकाओं के प्रेम का महत्व बतलाते हुए, होली वर्णन मैं पुष्टि मार्ग मैं व्यवहृत अन्य उत्सवों का भी उल्लेख किया गया है। ग्रन्थ के मध्य-भाग मैं मुरलीहरण,[३] निकुंज लीला,[४] मनिहार लीला,[५] मानलीला,[६] पनघट लीला,[७] विरह,[८] संयोग[९] आदि विविध लीलाओं का वर्णन किया गया है।

---

(१) वशंत होरी की भावना, सम्पा० श्री निरंजन देव शर्मा, मथुरा, पृ० १२
(२) वही, पृष्ठ- १२
(३) वही, पृष्ठ- ३२
(४) वही, पृष्ठ- ३३
(५) वही, पृष्ठ- ३९
(६) वही, पृष्ठ- २४
(७) वही, पृष्ठ- ४३
(८) वही, पृष्ठ- ८०
(९) वही, पृष्ठ- ८३।

इस ग्रन्थ में दानलीला का वर्णन बहुत कुछ उनकी पद्य रचना `दान-लीला` से मिलता-जुलता है । दोनों रचनाओं का भावैक्य द्रष्टव्य है :-

गद्य में- `मारग में लकुटिका आड़ी करि श्री स्वामिनी जी श्रीचन्द्रावली जी आदि सबन को रोके`।१

पद्य में- `लै लकुटी ठाढ़े भए, जो जानि सांकरी खोर`।२

`(भगवान् ने) कह्यौ हमारो दान दिए बिना सदां निकसि जाति हौ, सो आज सगरे दिन को मांगत हौं`।

बहुत दिना तुम बचि गईं, दान हमारो मारि ,
आजु हौं लेहुंगो आपुनो, दिन दिन को दान संभारि ।

`स्वामिनी जी ने कही जो तुम कौन रीत सू दान मांगत हौ`।

या मारग हम नित गईं , कबहु सुनहु नहिं कान,
आजु नई यह होति है, सो मांगत गो-रस दान ।

`तब ठाकुर जी कहे - - - - सो सगरे ब्रज को हमकों राज दियो है`।

`यहां हमारो राज है, ब्रज मंडल सब ठौर`।

`(राधिका जी कहती हैं ) नन्द यशोदा हू आइ हमारे पिता की छांह बसे हैं, - - - - ताते बोहोत ढिठाई सों मति बोलो ।`

-`जानत हो यह कौन है, ऐसी ढीठ्यो देत`।

`ठाकुर जी ने कही सूधे दान देइ के जाऊ`।

---

(१) बशंत होली की भावना, प्रका० बजरंग पुस्तकालय, मथुरा, पृष्ठ- ४१
(२) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० १०४ ।

इस प्रकार गोस्वामी हरिराय जी ने इस ग्रन्थ में दान लीला का वर्णन अपनी पद्य रचना 'दान-लीला' के अनुरूप ही किया है। कवि ने बीच-बीच में अपने दार्शनिक विचार भी प्रस्तुत किए हैं :-

> 'तब श्री कालिन्दी जी द्वारा सब कौं आदि दैविक स्वरूप दो स्वरूप देखे हैं। उद्धव कुसुमोखर पर प्रगट होइ श्री भगवान् ते कहैं सो ब्रज में आधि दैविक उद्धव जी हू हैं। अध्यात्म से बद्रिकाश्रम गए। तैसें ही पुष्टि श्रुति ब्रज भक्तन में श्री ठाकुर जी भोग और मरजादा श्रुति रूप ब्रज में श्री बल्देव जी के भक्त तातें श्री रेवती जी द्वारिका में हैं। तिनकौं आधि दैविक श्री रेवती जी अपने जूथ सहित मर्यादा श्रुतिरूप ब्रज में हैं। तिनसौं नित्य श्री बल्देव जी सौं विहार है। और औतारादिक हू आधि दैविक हैं। नरसिंघ, परसुराम, श्रीरामचन्द्र जी, श्रीबावन सब हरि मर्यादा रूप हैं। याही भाँति द्वारका की लीला हू मर्यादा रूप है।'१

एक स्थान पर गोस्वामी हरिराय जी ने अपना स्वरचित पद भी उद्धृत किया है:-

> जागि कह्यौ जननी सो मोहन ।
> आजु कहा मोहि बेगि जगायौ, सो कारन कहिये सब सोहन ।
> तब जसुमति कह्यौ आज पूरण दिन, पून्यौ सुख की रासी ।
> डाँडो रोपन नन्द जाएंगे संग लिएँ ब्रजवासी ।
> - - - - - - - - -
> सैंनन में सब भेद कह्यौ तब मुसिकाइ मोहन मन लीयो ।
> 'रसिक प्रीतम' सो जानत अंतरंग तिन मन भायौ सब कीयो ।।२

---

(१) बसंत होरी की भावना, सम्पादक श्री निरंजन देव शर्मा, मथुरा, पृ०-१६

(२) वही, पृष्ठ- २१ ।

वर्षोत्सव की भावना :-

'उत्सव-भावना' की भाँति इस ग्रन्थ में भी गो० हरिराय जी ने सम्प्रदाय में प्रचलित वर्ष के उत्सवों का भाव स्पष्ट किया है। 'उत्सव-भावना' ग्रन्थ में उत्सवों की महत्ता प्रतिपादित करते हुए वस्तु-स्थिति का भाव मयी वर्णन है, किन्तु वर्षोत्सव की भावना में सेवा के व्यवहृत विधान का उल्लेख किया गया है। इस ग्रन्थ में किस-किस दिन 'ठाकुर जी' के लिए क्या-क्या श्रृंगार किया जाय, इसका स्पष्टीकरण है। प्रारम्भ से ही सेवा विधान का वर्णन इस प्रकार है :-

> 'भाद्रवदी ७।। कों पाग पिछोरा कसूमल धरिये। याते जो अनुराग सूचक है। जन्म के पहले ही तथा सप्तमी कों श्रृंगार अष्टमी के मंगलताई रहैं, सो कसूमल शुभ कों सूचक है। सगरे ब्रज भक्तन कों अनुराग रूप राज भोग में कछु सामग्री विशेष काहे ते श्री यशोदा जी की कूँख में प्रभु हैं।'

प्रसंग वश वस्त्राभूषणों की भावनाएं भी स्पष्ट की गई हैं :-

> ' छटी कों श्रृंगार, बीच में सिंदूर, काजर, लाल पीरे पटका, खड़ी लगावत हैं। पीरे मुख श्री स्वामिनी जी स्वेत श्री चन्द्रावली जी, लाल कुमारिका, स्याम श्री यमुना जी, सिंदूर सकल ब्रजभक्तन के सौभाग्य रूप हैं। यह श्रृंगार समस्त ब्रज अनुराग संयुक्त फूल्यो है। फूल के भूमिका बांधत हैं सो भक्तन के आभूषन कों भूमिका है।'

गोस्वामी हरिराय जी ने अन्य ग्रन्थों की भाँति इस ग्रन्थ में भी अपने सैद्धान्तिक विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया है :-

'वे श्रुतिरूपा कुमारिका सगरी अनुराग करत हैं। वे श्रुति हैं, वे रिषि हैं। सर्व रीति कौ ज्ञान हैं। दिया (दीवा) घृत कौ तामैं बाती चारि लगावत हैं। चार्यौ के भाव ते भाव उद्दीपन भयौ है। कछू दोय के दीवा हैं। विरह रूपी अंधकार भयौ।'

सेवा वर्णन के प्रसंग में भी बीच-बीच में सिद्धान्तों का वर्णन है :-

'चकई फिरावत हैं, सो श्री चन्द्रावली जी गोप-भार्या हैं। तामैं डोरी है सो भक्तन को चीर है। सो अंचल प्रभु पकरे हैं। भक्त अपने घर कौं जात हैं। तब प्रभु अंचल पकरि कैं खैंचत हैं। तब भक्त फेर प्रभु पास आवत हैं। चकई पर रंग है सो भक्तन के वस्त्र हैं। चकई मैं रवा है सो भक्तन के आभूषन हैं।'

'दान-एकादशी' के वर्णन में कवि ने दान लीला की आध्यात्मिक कल्पना इस प्रकार की है:-

'दान-एकादशी' दान के मुखिया श्री चन्द्रावली जी हैं। ताते इनके भाव ते हैं। उद्दीपन भाव हास्य कटाक्ष करि निकुंज लीला सिद्ध करत हैं। दूध श्री स्वामिनी जी कौ अधरामृत, दही श्री चन्द्रावली जी कौ अधरामृत प्रभु दान के मिस मांगत हैं।'

गोस्वामी हरिराय जी ने भक्ति का महत्व प्रतिपादित करते हुए लिखा है :-

'महाप्रभु के प्रगटे पाछे श्रुतिरूपा के भाव सौं सेवा कौ विस्तार राख्यौ। ताते पुष्टि-मार्ग मैं श्री ठाकुर जी कौ नाम अष्ट-मंदिर आदि मैं कृष्ण नाम नाहीं। ते सेई वल्लभ कुल मैं सात स्वरूप मैं केवल कृष्ण नाम नाहीं धरे। सो याते पुष्टि-मार्ग मैं

भक्ति मुख्य है। प्रभु एकेले एक छिन हू नाहि रहत हैं।'

इस ग्रन्थ में वर्णित उत्सवों की सूची 'कृति परिचय' नामक अध्याय में निर्दिष्ट की जा चुकी है। ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर गोस्वामी हरिराय जी ने प्रसंगानुरूप अपने स्वरचित पद भी उद्धृत किए हैं।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थ में गोस्वामी हरिराय जी ने पुष्टि-मार्गीय मन्दिरों में प्रचलित उत्सवों का वर्णन करते हुए सेवा-विधान का भी उल्लेख किया है। सिद्धान्त एवं दर्शनगत विचार भी प्रसंगवश स्पष्ट किए गए हैं।

श्री स्वामिनी जी के चरण चिन्ह की भावना:-

इस ग्रन्थ में गोस्वामी हरिराय जी ने राधिका के चरणों में अंकित रेखा चिन्हों की भावात्मक कल्पना की है। ग्रन्थ में राधा की महत्ता स्पष्ट करने के लिये ही इन चिन्हों का काल्पनिक वर्णन किया गया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में स्वामिनी जी अर्थात् राधा जी के महत्वगान के पश्चात् चरण चिन्हों की भावना का प्रारम्भ इस भाँति हुआ है।-

'ताते भावना में श्री स्वामिनी जी के चरण चिन्ह कौ आश्रय कीयौ है। अब चरण कमल में चिन्ह पन्द्रह हैं। तिनकौ अपनी बुद्धि के अनुसार भाव सहित वर्णन करत हैं। तहाँ प्रथम दक्षिण चिन्ह वर्णन करत हैं। ताकौ भाव यह है कि जैसे श्री ठाकुर जी की बाम अंग पुष्टि श्रेष्ठ है। ताते दक्षिण चरण चिन्ह कौ पहले वर्णन करत हैं। प्रथम दक्षिण चरण में छत्र कौ चिन्ह है। ताकौ अभिप्राय यह जो श्री गोवर्धन नाथ जी सगरे अवतारादि सुर, असुर, नर, नाग, इन्द्र,

ब्रह्मादि तथा श्री रामचन्द्रादि के अवतारादि सबन के अवतारी भूत रक्षा कर्ता ऐसे पूर्ण पुरुषोत्तम हैं। तिनहूं के ऊपर श्री स्वामिनी जी पुरुषोत्तम जी की रक्षा करत हैं। ताते छत्र को चिन्ह चरण कमल में धरि कैं यह जताये जो पूर्ण पुरुषोत्तम कों जो छत्र नीचे आये ते सगरो सुख मिलैगो। सब मनोरथ पूर्ण होंयगे। मान रूप विरह ताप में ये ही छत्र छाया ते रक्षा होत है। ताते जो कोई छत्र को आश्रय करें तिनकों बिना जतन प्रभु छत्र नीच आये ते आप रहैगो। ताते छत्र को चिन्ह ताको सदां चिन्तन करनो कर्त्तव्य है।'

दक्षिण चरण चिन्हों में अन्य चिन्ह इस प्रकार हैं- (२) चक्र। (३) ध्वजा (४) कमल (५) जव (६) अंकुस (७) ऊर्द्ध रेखा।

इसी प्रकार 'वाम चरण' में भी चिन्हों का वर्णन किया गया है - (१) गदा (२) कमल (३) रथ (४) शक्ति (५) मीन (६) बेंदी (बिंदु) (७) कुंडल (८) नग।

गोस्वामी हरिराय जी ने अपनी वृत्ति के अनुरूप इस ग्रन्थ में भी अपने भक्ति-सिद्धान्तों को विवेचित किया है :-

'और श्री स्वामिनी जी के दस अंगुली चरण में हैं, तिनके भाव जवारा दसों अंगुली श्री ठाकुर जी के ऊपर धरि कैं श्री ठाकुर जी को नवधा भक्ति और प्रेम लक्षणा अपनी निकुंज संबंधी पुष्टि रस रूप दीनी।' तब सबरी गोपी श्री स्वामिनी जी सों प्रार्थना करी जो हम अनेक उपाय करि कैं हारी परन्तु कहूं रस को अनुभव नांही भयो। ताते हम तुम्हारी शरण हैं। हमकों कृपा करिकैं स्वरूपानन्द को अनुभव करावो।'

गोस्वामी हरिराय जी ने अनेकानेक उदाहरणों से अपने कथन को पुष्ट करने का यत्न किया है। सारांश रूप में कहा जा सकता है कि गोस्वामी हरिराय जी ने इस ग्रन्थ में स्वामिनी जी के चरणों में अंकित चिन्हों की भावात्मक व्याख्या की है। आवश्यकतानुसार अनेक उदाहरण देकर कथन को पुष्ट किया है। सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का भी उल्लेख हुआ है।

सात बालकन की भावना :-

गो० हरिराय जी ने इस ग्रन्थ में, अपने पूर्वज आचार्यों की महत्ता का वर्णन किया है। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सात बालकों का इस ग्रन्थ में भावात्मक वर्णन है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही अपने पूर्वजों का सम्मान प्रदर्शित करते हुए उन्होंने लिखा है :-

> 'श्री वल्लभ श्री विट्ठल श्री गिरधर, यह मूल वस्तु है। इन समान और कोउ बालक कों कहनो परमापराध है। अग्नि ते दीपक प्रगट प्रकास श्री गुसाईं जी तिनतें दीपक प्रगट प्रकाशक रूप श्री गिरधर जी पुष्टि मार्गीय लीला रसात्मक, ज्ञान प्रकाशक रूप श्री गिरधर जी बड़े छहों शास्त्र के वक्ता याही ते भए।'

सातों पुत्रों का भाव प्रस्तुत करते हुए गोस्वामी हरिराय जी ने लिखा है:-

> 'श्री गुसाईं जी के सात बेटा भए सो रास मंडल को प्रकार है एवं षोडस गोपिकानाम् मध्ये अष्टः कृष्णा भवंती। यह श्री आचार्य जी पंचाध्यायी विषै कहे हैं। ताते श्री गुसाईं जी सहित अष्ट हैं।

महाप्रभु वल्लभाचार्य तथा गुसाईं जी के विषय में उन्होंने लिखा है :-

'तै श्री आचार्य जी, भक्ति मार्ग प्रगट कीनो । श्री गुसाईं जी अनुभव कीनों पाछे श्री गिरधर जी समें जैसे सूर्य तपत है । थोरी सो कमल जैसे क्रम ते मुदित होत है तैसे भक्ति रूप श्री आचार्य जी मुख कमल सो तब ताईं सानुभाव हतो'।

विषय सीमित होने से ग्रन्थ का आकार भी छोटा ही है । विशेषकर महाप्रभु जी, गुसाईं जी तथा गिरधर जी का ही महत्व प्रतिपादन किया गया है । वर्णन में भाव-प्रवणता होने के कारण, अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन कहीं-कहीं अस्वाभाविक सा प्रतीत होता है ।

सेवा-भावना :-(प्रथम)

इस नाम के दो ग्रन्थों का उल्लेख 'कृति-परिचय' में किया जा चुका है । सेवा-भावना (प्रथम) में गोस्वामी हरिराय जी ने भावात्मक-सेवा का उल्लेख किया है, इसमें जब वैष्णव या आचार्यों के पास उनके सेव्य-स्वरूप न हों, तब साक्षात सेवा संभव न होने के कारण सेवा की भावना-विधान ही वर्णित की गई है । ग्रन्थ के प्रारम्भिक अंश से ही ग्रन्थ का विषय स्पष्ट हो जाता है :-

'प्रात काल उठि भगवन्नाम लेकरि । पाछें देह कृत्य करि "जल परदेशादिकन में साक्षात सेवा न होय तब केवल भावना करनी । ब्रज भक्त अपने घर घर प्रति जागि गृह मंडन करि सर्वत्र दीप करि मंगल आर्ती के दीप हू सिद्ध करि भगवद् गुण-गान करत उच्चस्वर सों सर्वाभरण भूषित होइ, वियोगावस्था भूलि ठाकुर घर में भाव रीति सों विराजत है यह जानि भगवदर्थ नवनीतादि सिद्धर्थ दधि मंथान करत हैं'।

गोस्वामी हरिराय जी ने इस ग्रन्थ में भावमयी सेवा का ही वर्णन विस्तार के सहित किया है ।

श्रीनाथ जी की भावना :-

यह ग्रन्थ भी भावना-प्रधान है । इसमें गोस्वामी हरिराय जी ने 'नाथद्वारा' स्थित श्रीनाथ जी के मन्दिर की प्रत्येक वस्तु की भावना व्यक्त की है । ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर दोहा भी लिखे गए हैं । प्रश्नोत्तर रूप से प्रत्येक शंका का समाधान किया गया है । यथा--

'श्री नाथद्वार नाम कैसे है ?
दोहा-- नाथद्वारा भावना कही प्रेम के साथ ।
राधारानी स्वामिनी स्वामी हैं श्रीनाथ ।।

अर्थ-- श्री स्वामिनीजी को नाम श्री राधिका जी है । और स्वामी श्रीनाथ जी । श्री यशोदा जी के लाल हैं । वे यहां अजब कुंवर बाई के तांई पधारे हैं । यहां वाको घर है, जहां श्रीनाथ जी ने अपनो धाम कीनो, तासों याको श्री जी तथा श्रीनाथ द्वार हू कहत हैं ।'

'नाथद्वारा' स्थिति स्थान-विशेषों की भावना के अतिरिक्त, मन्दिर की वस्तु-स्थिति तथा मन्दिर में प्रयुक्त प्रत्येक वस्तु की भावनाएँ भी वर्णित हैं :-

'पातर घर की भावना । पातर घर को यह भाव जो कि पातर घर श्री यमुना जी की कोठरी है । तहाँ सब बासन खाना होत है । ये बासन हैं सो सब ब्रज भक्तन के हस्तांजली

के स्वरूप हैं । वैष्णवन कूं जब बासन माँजने होंय तो पहले
उनकी प्रार्थना करिकैं पाछैं माँजने चाहिये ।`

ग्रन्थ में शंका समाधान की शैली इस प्रकार प्रस्तुत की गई है :-

`शंका-- जगमोहन लम्बो कहा भाव सो है ?
समाधान-- ये श्री महाराणी जी के भाव सों है । उष्णाकाल में
यहाँ जल भर्यो जाय सो साक्षात श्री यमुना जी पधारत हैं ।
श्री यमुना जी की लहरें लंबी होत हैं । याही सो येहु लंबो
है जगमोहन में जो कीर्तनियाँ गली की आड़ी वारी, सो कन्दरा
के भाव से है ।` - - - - - ।

मुख्य रूप से इस ग्रन्थ में श्रीनाथ जी के मन्दिर के प्रति लेखक ने अपने श्रद्धा-भाव प्रेषित किए हैं ।

सेवा-भावना-(द्वितीय) :-

प्रथम सेवा-भावना में जिस प्रकार बिना ठाकुर-स्वरूप के सेवा की भावना का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार इस ग्रन्थ में ठाकुर स्वरूप (देव-विग्रह) पास होनेपर इसी रूप में सेवा का क्रियान्वित विधान स्पष्ट किया गया है । इस ग्रन्थ में तनूजा सेवा का विधान वर्णित है, जबकि प्रथम सेवा-भावना ग्रन्थ में मानसी सेवा का ही प्राधान्य दर्शाया गया है । ग्रन्थ के प्रारम्भ से ही विषय-वस्तु स्पष्ट हो जाती है:-

`प्रात काल खाट ते उठि रात्रि वस्त्र बदलि, आचमन करि,
श्रीजी के सन्मुख बैठि तथा श्री ठाकुर जी को नाम लैकरि ।
`बंदे नन्द ब्रजस्त्रीणाम् ।` इन दो श्लोकन कर नमस्कार करि

> रात्रि कौ जौ कृत्य विचार सोचौ होइ भगवत् संबंधी और सब सुद्धि करि तदुपरान्त देहि कृत्य करि, माटी सौं हाथ पाँव धोइ दाँतुनि करि शुद्ध होय चरणामृत लेकरि के मुख सुद्ध अर्थ बीड़ा तथा लवँग लेकरि तेल लगाइ स्नान करि तिलक करि अवकास होइ तौ शंख चक्र धरे। नहीं तौ नाम मुद्रा देइ करि मँदिर के द्वार जाइ पाँव धोइ मँदिर कौ नमस्कार करि मँदिर मैं पैठि पाछे ठाकुर के जल सौं हाथ धोइ शैया निकट जाइ रात्रि के गडुआ बीड़ा भोग सामग्री माला होइ सो काढ़िये।'

ठाकुर जी की सक्रिय सेवा के अनुसार इस ग्रन्थ मैं वैष्णवैं के धर्म संबंधी नित्य कृत्यौं पर प्रकाश डालागया है। इस ग्रन्थ को सेवा-प्रकार भी कहा गया है।

पुष्टि दृढ़ाव की वार्ता :-

गोस्वामी हरिराय जी का यह ग्रन्थ सिद्धान्त प्रधान है। पुष्टि मार्गीय भक्ति सिद्धान्त एवं दार्शनिक विचारों का इस ग्रन्थ मैं स्पष्टी करण किया गया है। वैष्णवैं के कर्त्तव्य, सेवा-प्रकार आदि पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ मैं ही विषय की ओर संकेत कर दिया गया है, :-

> 'जाकौं पुष्टि अंगीकार होयगो सो जानैंगो। जीव कौं उद्यम करनौं। उत्तम भगवदीय की संगति मिलनौं अरु वाके करे को विश्वास राखनौं तथा विश्वास उपजे। तब जानिये जो श्री जी ने कृपा करी।'

ग्रन्थ में मुख्य रूप से पुष्टि-मार्गीय वैष्णव के कर्त्तव्य एवं धर्म के प्रति विस्तार से प्रकाश डाला है। यथोचित सिद्धान्तों को भी स्पष्ट किया गया है। वैष्णवों का महत्व इंगित करते हुए गोस्वामी हरिराय जी लिखते हैं, 'जो भगवदीय हैं सो श्री जी कौ स्वरूप है। भगवदीय के

बचन सों श्री जी के बचन जानने। भगवदीयन के हृदय में आपकें प्रभु जी बोलत हैं।'

सिद्धान्त पक्ष को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है :-

'और जो स्नेह उपजे तो श्री ठाकुर जी अपने रसात्मक स्वरूप को दर्शन देंहि। अरुदास करि राखें। ताते सखी भाव राखनों। जैसें पुरुष की पति-ब्रता टेक राखे। तासों कहा कहिये। पुरुष तो एक पुरुषोत्तम है। अरु तिनके ऊपर जे रसिक हैं तिनको स्त्री ही जानते।'

अनेकानेक उदाहरण से अपने कथन की पुष्टि की गई है। ग्रन्थ में वैष्णवों को ही अधिक सम्बोधित किया गया है।

महाप्रभु जी की प्राकट्य वार्ता :-

नाम के अनुरूप इस ग्रन्थ में महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के जीवन वृत्त पर प्रकाश डाला गया है। यह ग्रन्थ सम्प्रदाय में पर्याप्त चर्चित है। इस ग्रन्थ के वर्ण्य विषय के प्रति भी कुछ विद्वानों ने स्पष्टीकरण किया है। डा० हरिहर नाथ टण्डन ने इसका विस्तार से विवरण दिया है।१ अतः इस ग्रन्थ के विषय में अधिक लिखना मात्र पिष्ट-पेषण ही होगा।

---

(१) वार्ता साहित्य एक वृहद् अध्ययन - डा० हरिहरनाथ टण्डन, पृ० १३०, १८६।

निजवार्ता घरूवार्ता :-

इस ग्रन्थ के वर्ण्य विषय पर भी डा० हरिहर नाथ टण्डन ने अपने शोध ग्रन्थ में विवरण प्रस्तुत किया है ।१ गोस्वामी हरिराय जी ने महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के जीवन वृत्त तथा अन्य प्रासंगिक घटनाओं की चर्चा इस ग्रन्थ में की है । लेखक ने अधिक स्पष्टीकरण हेतु 'भाव-प्रकाश' द्वारा कथन के संदेहास्पद स्थलों को सुलभ बनाने की चेष्टा की है, यथा---

'भाव-प्रकाश -- ताको हेत कहा । जैसें श्री ठाकुर जी श्री कृष्णावतार में सब जगत कों दर्शन देते । तामें असुर हू दर्शन करते। ये भक्त बिना दर्शन को फल न होइ । सो सूरदास जी कहे हैं--'भक्त बिना भगवंत सुदुर्लभ कहत निगम पुकारि' जिनको श्री ठाकुर जी ऊपर स्नेह है और भक्ति हैं, और श्रीठाकुर जी के स्वरूप को ज्ञान है, ते अनावतार दसा में हूं सदैव दर्शन करत हैं । और भगवान् की लीला नित्य है । नित्य ब्रज में विहार करत हैं ।'२

'वार्ता- साहित्य' के अनुरूप ही इस ग्रन्थ की रचना हुई है, इसमें वार्तायें संख्यानुक्रम से ही सम्पादित की गई हैं । कथन की पुष्टि के लिये चौरासी वैष्णवन की बार्ता का भी उल्लेख किया गया है । प्रधान रूप से महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के जीवन चरित्र को ही स्पष्ट किया गया है ।

समर्पण गद्यार्थ :-

यह ग्रन्थ टीकानुरूप है, इसका अपेक्षित परिचय कृति-परिचय

---

(१) वार्ता साहित्य, एक वृहद् अध्ययन,- डा० हरिहरनाथ टण्डन, पृ० १२८ ।
(२) निजवार्ता एवं घरूवार्ता, सम्पा० श्री द्वारकादास परिख, मथुरा,पृ० १२ ।

नामक अध्याय में दिया जा चुका है । आध्यात्मिक विचारों के साथ समर्पण विधा का शास्त्रीय विवेचन ही इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है ।

श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता :-

इस ग्रन्थ में गोस्वामी हरिराय जी ने पुष्टिमार्ग के मुख्य देव-स्वरूप श्रीनाथ जी का इतिहास प्रस्तुत किया है । मुगल आक्रमण के समय श्रीनाथ जी की मूर्ति को किस प्रकार ब्रज से मेवाड़ तक लाया गया, इसका ऐतिहासिक वृतान्त इस ग्रन्थ में स्पष्टकिया गया है । इस ग्रन्थ की विशेष रूप से चर्चा डा० हरिहर नाथ टंडन[1] डा० दीनदयालु गुप्त[2] प्रभृति विद्वानों ने की है । ग्रन्थ इतिहास प्रधान है । ग्रन्थ में घटनाओं का संवत्, मिति, वार आदि का पूर्ण उल्लेख किया गया है ।

ब्रह्मस्वरूपाख्यान :-

इस ग्रन्थ में गोस्वामी हरिराय जी ने ब्रह्म के स्वरूप की दार्शनिक व्याख्या की है । दर्शन-प्रधान यह ग्रन्थ सम्प्रदाय के भक्ति सिद्धान्तों को भी स्पष्ट करता है। विषय वस्तु का संकेत प्रारम्भिक अंश से ही ज्ञात हो जाता है :-

'अथ ब्रह्म स्वरूप को व्याख्यान लिख्यते । ब्रह्म के स्वरूप तीन क्षर (२) अक्षर (३) अक्षरातीत । तहाँ प्रथम अक्षरातीत को व्याख्यान करत हैं । तहाँ मार्ग तीन पुष्टि प्रवाह मर्यादा (३) पुष्टि-मार्ग अक्षरातीत को मार्ग है । पुष्टि-मार्ग के स्वामी अक्षरातीत हैं । पूर्णानन्द गोवर्द्धन

---

(१) वार्ता साहित्य, एक वृहद् अध्ययन ।

(२) अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय ।

धरन परब्रह्म श्री कृष्ण जिनके धाम में जीव जाइ सदा आनंद में रहै ।`

`जिनके पास मुक्ति है चार प्रकार की सालोक्य ।सारूप्य । सामीप्य । सायुज्य । इन मुक्तिन में दोय मुक्ति मुख्य हैं । सायुज्य और सामीप्य । सो काहे ते । सायुज्य मुक्ति को प्राप्ति जाय अक्षर ब्रह्म के पास बैठे और सालोक्य सारूप्य में जाइ तो लीन होइ, अक्षर में जो लीन भयो तो सुख कहा जैसे अग्नि में अग्नि मिल जाय तो कछु सुख कहा ।`

इस प्रकार पुष्टि मार्गीय सिद्धान्त का विवेचन करते हुए गोस्वामी हरिराय जी ने इस ग्रन्थ में अपने दार्शनिक विचारों का ही प्रमुख रूप से स्पष्टीकरण किया है ।

उपर्युक्त विवरण में प्रमुख-प्रमुख ग्रन्थों का वर्ण्य विषय स्पष्ट किया गया है । इसके अतिरिक्त `कृति परिचय` नामक अध्याय में जिन ग्रन्थों को संदिग्ध माना गया है, उनका वर्ण्य विषयक विवरण देना यहां अपेक्षित नहीं । जो ग्रन्थ आकार में अति लघु हैं तथा विषय में भी सीमित हैं, उनका वर्ण्य `कृतिपरिचय` के विवरण से ही स्पष्ट हो जाता है ।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि गोस्वामी हरिराय जी ने अपने गद्य-ग्रन्थों में निम्नलिखित विषयों को ही स्पर्श किया है :-

-- कृष्ण की विविध लीला ।
-- सम्प्रदायगत भावना तथा आचार्यों का महत्व ।
-- सम्प्रदायगत सिद्धान्त ।
-- सम्प्रदायगत दर्शन, तथा --
-- सेवा-प्रकार के विभिन्न रूप ।

जैसा कि प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है, गोस्वामी हरिराय जी के गद्य-ग्रन्थों में अधिकांश ग्रन्थ भावना-प्रधान हैं। विविध भावनाओं से सम्प्रदाय की सेवा-व्यवस्था, सिद्धान्त एवं दर्शन पर भी प्रकाश डाला गया है। सिद्धान्त ग्रन्थों में पुष्टि-मार्गीय भक्ति सिद्धान्तों के व्यावहारिक पक्ष की ओर संकेत किया गया है। दर्शन-प्रधान ग्रन्थों में शुद्धाद्वैत की शास्त्रीय व्याख्या की गई है। गोस्वामी हरिराय जी ने गद्य-ग्रन्थों में अपने कथन को अधिक प्रभावक बनाने के लिए अनेक शास्त्रोक्त उद्धरणों को प्रमाण रूप में प्रयुक्त किया है।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि गोस्वामी हरिराय जी के गद्य - ग्रन्थों में पुष्टि-मार्गीय स्वरूप की विवेचना ही प्रधान रूप से व्यक्त हुई है।

गोस्वामी हरिराय जी के साहित्य का वर्ण्य विषय स्पष्ट कर देने के पश्चात् उनके कृतित्व के सम्यक् मूल्यांकन हेतु आवश्यक है कि उनके साहित्य का भाव एवं कला पक्ष पृथक्-पृथक् रूप से स्पष्ट कर लिया जाय।

उनके कृतित्व के साहित्यिक मूल्यांकन हेतु ही अगले अध्याय में उनके काव्य के भाव-सौन्दर्य पर विचार किया जायगा।

Chapter-5

पंचम - अध्याय

भाव-पक्ष

"गोस्वामी हरिराय जी का श्रृंगार काव्य परम्परागत होते हुए भी अपनी निजी विशिष्टता रखता है। भक्ति एवं दर्शन के विविध प्रभाव उनके श्रृंगारपरक वर्णन में समाहित हो गये हैं"।

गोस्वामी हरिराय जी का काव्य-सौरभ भाव-सम्पदा के वैभव से जितना अभिमंडित है, उतना ही रसाप्लावित भी है। प्रस्तुत विवेचन में गोस्वामी हरिराय जी के काव्य की विभिन्न भाव-भूमियों का समाकलन ही अधिक समीचीन होगा।

भाव:-

भाव शब्द 'भू' धातु से करण अर्थ में निर्मित हुआ है तथा आचार्य भरत के अनुसार भावित, वासित तथा कृत उसके समानार्थक हैं। नाट्यशास्त्र में इसे स्पष्ट करने के लिये आचार्य भरत ने लिखा है कि 'लोक में यह प्रसिद्ध है --- अहो इस गंध से और इस रस से सब कुछ भावित हो गया है। अत: भावित का अर्थ होता है परिव्याप्त होना'। १

---

(१) 'भू इति करणे धातुस्तथा च भावितं वासितं कृतमित्यनर्थान्तरम्। लोकेऽपिच प्रसिद्धम्। अहो ह्यनेन गंधेन रसेन वा सर्वमेव भावितमिति। तच्च व्याप्त्यर्थम्'।

-- नाट्यशास्त्र, आचार्य भरत, अध्याय ७, कारिका १ ।

भावों का स्पष्टीकरण करते हुये आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है, "किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति किसी की जो मानसिक स्थिति होती है, उसे भाव कहते हैं"। १ आचार्य शुक्ल के अनुसार "काव्य का लक्ष्य भावों के उपयुक्त विषयों को सामने रखकर सृष्टि के नाना रूपों के साथ मानव-हृदय का सामन्जस्य स्थापित करना है। भाव ही कर्म के मूल प्रवर्तक और शील के संस्थापक हैं। २ इस प्रकार आचार्य शुक्ल के काव्य में भावों को मानव हृदय की सम्पर्क-साध्य श्रृंखला माना है। ये भाव मन के कुछ विकार हैं जो अवसर आने पर प्रकट हो उठते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में यह पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है कि भाव वस्तु-तत्व में संपृक्त एक निश्चित मन: स्थिति है जो रचना करने से पूर्व रचनाकार के हृदय में आलोड़ित हुआ करती है। रचनाकाल के समय कवि का मन उस विशेष प्रकार की मनोदशा से आवृत्त हो जाता है। आचार्य भरत ने इस स्थिति के लिये "परिव्याप्त" शब्द का प्रयोग किया है।

"कृत" शब्द को आचार्य भरत भाव का समानार्थक मानते हैं। इसे स्पष्ट करने के लिये इस तथ्य को यदि इस प्रकार रखा जाये, तो सुगमता से स्पष्ट हो सकता है -- शोककृत, वात्सल्यकृत, हास्यकृत। इसका आशय हुआ कि भाव शोक, वात्सल्य, हास्य आदि का गुण है। उसका पृथक् कोई अस्तित्व न होकर, वह किसी अवस्था-विशेष का विशेषणात्मक अनुवर्ती स्वरूप है।

---

(१) देखिये - वाङ्मय विमर्श, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र,
- संस्क० द्वितीय, पृ० १०५।

(२) देखिये - रस मीमांसा - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,
- संस्क० द्वितीय, पृ० १६१।

सैद्धान्तिक दृष्टि से इस कथ्य का औचित्य भी निर्विवाद है। कोई भी कवि कविता करने से पूर्व अपने मन में किसी अवस्था विशेष की अवधारणा करता है। यह अवधारणा ही `भाव` है। इनसे कवि का मन भावित, वासित अर्थात् विभावित, सुवासित हो जाता है और वह स्थिति उसके मानस-लोक में परिव्याप्त हो जाती है।

आचार्य भरत कृत नाट्यशास्त्र के हिन्दी अनुवादक डा० ब्रजवल्लभ मिश्र ने भावों की विशद् व्याख्या करते हुए लिखा है, `स्थायी भाव कवि के हृदय की रचना काल की वह अनुभूति है, जिससे प्रेरित एवं प्रभावित होकर कवि अपने कृतित्व की सृष्टि करता है। इसे स्थायी भाव इसलिये कहा गया है कि रचना के रूप में कवि के हृदय का वह प्रारम्भिक भाव लिपिवद्ध होकर स्थायित्व प्राप्त करता है। युग बदल जाने पर, ग्रन्थ के संस्करण बदल जाने पर और प्रयोक्ताओं की पीढ़ी बदल जाने पर भी कवि का वह भाव स्थायी रूप से उस रचना में विद्यमान रहता है। कालिदास कृत `मेघदूत` के यक्ष की विरह-व्यथा कालिदास द्वारा विरचित शब्दावलि में स्थायी रूप से आरक्षित है। उसे किसी भी युग में कोई भी व्यक्ति पढ़े, उससे करुण रस के स्थायी भाव `शोक` की ही अनुभूति का आभास होगा। क्योंकि रचना के समय कालिदास के हृदय में `शोक` की स्थिति ही परिव्याप्त थी`।१

विभाव:-

विभाव का अर्थ है हृदय का प्रभावित होना। स्थायी भाव से जब किसी का संबंध स्थापित होता है, उस समय उसका हृदय विषय की मूल अनुभूति से विभावित होने लगता है। सीधे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि विभाव हृदय के किसी स्थायी भाव से सराबोर होने की क्रिया का नाम है। काव्य शास्त्रियों ने इसके आलंबन और उद्दीपन दो विभेद किये हैं। आलंबन के अन्तर्गत आश्रय को स्वीकार किया गया है।

---

(१) हिन्दी नाटकों में अभिनय तत्व, - डा० ब्रजवल्लभ मिश्र (अप्रकाशित) पृ० ८६।

अनुभाव :- 'वाणी, अंग तथा सत्वविहित अभिनय जिसके द्वारा अनुभावित हो उसे अनुभाव कहते हैं'।-१ अर्थात् भावों की अभिव्यक्ति के लिये तद् विषयक अनुकरण-परक चेष्टाएं अनुभाव कहलाती हैं।

संचारी भाव :- संचरणशील वे भाव जो समय-समय पर स्थायी भाव को पुष्ट करते रहते हैं, उन्हें संचारिभाव कहा जाता है। संचारीभावों की संख्या आचार्यों ने तैंतीस बतलाई है, - निर्वेद आवेग, दैन्य, श्रम, मद, जड़ता, उग्रता, मोह, विबोध, स्वप्न, अपस्मार, गर्व, मरण, आलस्य, अमर्ष, निद्रा, अवहित्था, औत्सुक्य, उन्माद, शंका, स्मृति, मति, व्याधि, त्रास, व्रीड़ा, हर्ष, असूया, विषाद धृति, चपलता, ग्लानि, चिन्ता, एवं वितर्क।२

कथ्य एवं अन्वेषण :-

गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में भक्तिजन्य वात्सल्य, शृंगार एवं शांत नामक रसों का प्राधान्य रहा है। सर्व प्रथम उनके काव्य में व्यवहृत वात्सल्य रस के भावों पर विचार प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

(१) 'वागंगाभिनयेनेह यतस्त्वर्थो अनुभाव्यते। वागंगोपांग संयुक्तस्त्वनुभावस्तत: स्मृत:
- आचार्य भरत, नाट्य शास्त्र, अध्याय ७, श्लोक ५।

(२) 'निर्वेदग्लानिशंकाख्यास्तथासूया मद: श्रम:। आलस्यं चैव दैन्यं च चिन्ता मोह: स्मृतिर्धृति:। व्रीड़ा चपलता हर्ष आवेगो जड़ता तथा, गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्रापस्मार एवच। सुप्तं विबोधो अमर्षश्चाप्यवहित्थमथोग्रता। मतिव्याधिस्तथोन्मादस्तथा मरणमेव च। त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिण:'। - वही, अध्याय ६, श्लोक १८ से २१ तक।

-::वात्सल्य::- साधारण अर्थ में वात्सल्य का तात्पर्य शिशु-स्नेह से ग्रहण किया जाता है। हिन्दी के भक्ति साहित्य में वात्सल्य-भाव के अनुसार भक्त आराध्य के प्रति, अपने शिशु की भाँति प्रेम व्यक्त करता है। वह शिशु जानकर ही अपने आराध्य की सेवा-शुश्रूषा करता है, उसे लाड़ लड़ाता है। ब्रजभाषा के कृष्ण-भक्त कवियों ने इसी भाव को अधिक महत्व दिया है। सूरदास, नन्ददास, परमानन्द दास आदि अष्टछापी कवियों का काव्य इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय है। गोस्वामी हरिराय जी ने भी इस बहु-चर्चित प्रसंग को बड़े ही सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया है।

कृष्ण जन्मोत्सव के समय कवि अपनी उपस्थिति का आभास कभी नन्द-यशोदा के माध्यम से कराता है तो कभी ढाँढ़ी-ढाँढिन के द्वारा। कभी वह गोप-ललनाओं के यूथ में खड़ा इस नटखट नन्द-किशोर के दर्शन करता है तो कभी अनेकानेक ग्वालबालों के झुन्ड में सम्मिलित होकर उस आनन्द का रस-पान करता है। तात्पर्य यह है कि गोस्वामी हरिराय जी बालक कृष्ण के रूप-माधुरी के उपासक हैं और उनकी शिशु - छवि का पान करते वह अघाते नहीं हैं, इसके लिए उन्हें चाहे गोपियों के मध्य में जाना पड़े, चाहे ग्वाल-बाल के समूह में सम्मिलित होना पड़े और चाहे नंद-यशोदा ही क्यों न बनना पड़े। उनका मन बालक कृष्ण की रूप माधुरी का पान किये बिना नहीं रह पाता। इसी प्रकार का एक पद दृष्टव्य है, जिसकी प्रत्येक पंक्ति में कवि की वात्सल्य-जन्य भावनायें मुखर हो उठी हैं :-

बारी बारी ब्रजराज कुमर, झूलो पलना।
छोड़ो किन आर ऐसी, मेरे ललना ।।
देखो देखो ब्रज-जुवती जन ठाढ़ी मुख देखें ।
नैन खोलि, मधुरे बोलि, जनम करो लेखें ।।

हाँ हाँ हरि नैक रहौ, विनवत तेरौ तात ।
रौस कीजै, तन छीजै, काहे ना मुसकात ।।
मेरौ जानि टार्यौ कह्यौ तेरी हौ मात ।
चाहैं सौ माँगि लेहु मन की कहौ बात ।।
अँसुआ भरे दृगन हँसे, आयि गरे लागे ।
'रसिक प्रीतम' करुनाकरि जननी प्रेमपागे ।।१

पद का प्रारम्भ माँ के समर्पण-भाव से होता है । माँ अपने सुकुमार पुत्र पर न्यौछावर हो रही है, वह अपने शिशु को अनेक उपायों से मना रही है । 'हाँ हाँ हरि नैक रहौ विनवत तेरौ तात' में दैन्य-भाव की झलक देखी जा सकती है । 'रौस की जै तन छीजै' में माँ एक शास्वत-सत्य के द्वारा कृष्ण को बहला रही है कि रोने से तुम्हारा सुकुमार शरीर क्षीण हो जायगा । वह कृष्ण से कहती कि मैं तेरी माँ हूँ अतः तू मेरा कहा मत टाल, इसमें कृष्ण को मनाने का यत्न किया गया है । मातृत्व में सर्व-समर्पण के भाव निहित रहते हैं, इसी से माँ कहती है कि तुझे जो भी अच्छा लगे, मुझसे माँग ले । पद के अन्त में सात्विक-भावों की योजना कर कवि ने आश्रय को अभीष्ट की प्राप्ति करा दी है अर्थात् माँ यशोदा अपने पुत्र को मनाने में सफल हो जाती है, कृष्ण हँस कर उसके गले से लग जाते हैं । इस पद में अनेक भावों को योजित किया गया है । स्थायीभाव के रूप में शिशु-स्नेह यहाँ प्रमुख है । आलम्बन यहाँ कृष्ण है, आश्रय माँ- यशोदा हैं । पुत्र से आलिंगन, अंगस्पर्श आदि अनुभाव हैं, दैन्य, चिन्ता आदि संचारी भाव हैं । पुत्र का रोना यहाँ उद्दीपन है, इनसे पुष्ट होकर स्थायीभाव (अपत्य-स्नेह) रस कोटि तक पहुँचता है ।

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० १८ ।

जहाँ कवि ने एक ही पद में अनेक भावों को संयोजित किया है, वहाँ एक ही पद में किसी विशेष भाव के चित्रण में भी कवि ने रुचि प्रदर्शित की है। प्रस्तुत पद में हर्ष को प्राधान्य दिया गया है :-

जसुमति सुत जनम सुनि फूले ब्रजराज हो ।
बड़े भाग खुले करन आये सुर- काज हो ।।
गाय ब्रज सिंगरी सब, बसन भूषन साज हो ।
देखन कों आय जुरे, गोप गोपि समाज हो ।।
सिगरे मिलि गावें नाचे, छाँड़ि लोक-लाज हो ।
दूध, दही, मक्खन ले छिरकें करि गाज हो ।।
नन्द सबन दीने बहु धेनु बसन नाज हो ।
प्रगट भये 'रसिक प्रीतम' गोकुल सिरताज हो ।।१

इस पद में सामूहिक उल्लास से हर्ष के भाव तो व्यक्त होते ही हैं, साथ ही कवि ने, वातावरण को उद्दीप्त करने के लिए विभिन्न उद्दीपनों की भी योजना की है, इसमें गायों को अलंकृत करना, गोप-गोपि समाज का आकर एकत्र होना, सभी का उमंग में नाँचना गाना, दूध, दही छिड़कना आदि प्रसंग वातावरण को उद्दीप्त करते हैं।

वात्सल्य-वर्णन में कवि ने कृष्ण की विविध झाँकियाँ प्रस्तुत करके अनेक भावों को चित्रित किया है। इसमें गर्व, हर्ष की भाँति मोह, आवेग, औत्सुक्य, चपलता, चिन्ता आदि विविध भावों को कवि ने कुशलता से अंकित किया है। छोटे-छोटे वाक्यों की सरस पदावली में कवि ने वात्सल्य-भावों को अनेक रूप में उभारा है। वात्सल्य के स्वाभाविक वर्णन में भी कवि की सूक्ष्म दृष्टि भाव-सम्पादन में पर्याप्त सफल रही है। इसी प्रकार का एक पद द्रष्टव्य है :-

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० १७ ।

हाँ हाँ लेहु एकौं कौर ।
बहुत बेर भई है भूखें, देख मेरी ओर ।
मेलि मिसरी दूध औट्यौ, पियौ होइ है जोर ।
अब हीं खेलनि टेरि हैं, तेरे ग्वार भयौ अति भोर ।
बैठि जननी गोद जैंमन लगे, गोविन्द थोर ।
'रसिक' बालक सहज लीला करत माखन चोरर ।।१

इस पद में गोस्वामी हरिराय जी ने 'हाँ हाँ 'शब्द के माध्यम से वात्सल्य-स्नेह को पुष्ट करने का यत्न किया है। शिशु की वर्जना में माँ का आग्रह इन शब्दों से और भी मुखरित हो उठा है। कृष्ण बार-बार मना कर रहे हैं कि अब उन्हें भूख नहीं है, किन्तु माँ अपने पुत्र को एक ग्रास ही खिलाने की चेष्टा में आतुर है।

माँ यशोदा अपने पुत्र को अत्यधिक स्नेह करती है, वह अपने पुत्र की हर क्रिया पर न्यौछावर है। कभी वह अपने पुत्र के पैर पकड़ कर विनय करती है तो कभी उसे विविध व्यंजन खिला कर प्रसन्न रखने का यत्न करती है। इसी प्रकार माँ की अभिलाषाओं को व्यक्त करता हुआ यह पद भी द्रष्टव्य है :-

कब मेरो ढ़ोटा पाइन चलि है, बल संग ले बैरी दल दलि है।
तेरे पास रखी तेरी लकुटी, लेकरि लाल चढ़ाओ भ्रकुटी ।।२

पुत्र भावी जीवन के लिये सुख प्रदान करने वाला होता है। हर माता-पिता की दृष्टि उसके ऊपर अवलम्बित रहती है, माँ यशोदा भी कृष्ण से आकांक्षा करती है कि भविष्य में वह समर्थ होकर उसकी पूर्ण रक्षा करेगा। प्रस्तुत पद

---

(१) गो॰ हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५६ ।
(२) वही, पद संख्या- २१ ।

में गोस्वामी हरिराय जी ने माँ के आकांक्षा भावों को ही अधिक व्यक्त करने की चेष्टा की है ।

माँ यशोदा अपनी भूत-कालीन घटनाओं से परिचित होने के कारण भविष्य के प्रतिशंकित है, उसकी कोख में कृष्ण का जन्म बड़े दु:खों के पश्चात् हुआ है:-

क्यों रोवे मेरो बहोत दुखन को ।१

इस पंक्ति में माँ-यशोदा बालक कृष्ण को क्रोधित हुआ जानकर उसे हँसने मुस्कराने के लिये प्रेरित करती है । गोस्वामी हरिराय जी ने मातृ-हृदय के चित्रण करने में बड़ी कुशलता प्रदर्शित की है । वात्सल्य के संदर्भ में स्नेह-शिक्त अनुरोध, आशा, आकांक्षा, चिन्ता, बालक को डराना, पुचकारना, मनाना, मोह ग्रस्त होना आदि भाव समाविष्ट हैं ।२

'दामोदर लीला' में माँ-यशोदा अपने वत्स कृष्ण को रस्सी से बाँध कर उसे डराना धमकाना चाहती हैं, किन्तु अपने सुकुमार को त्रास देकर उसका हृदय विक्षोभ से भर उठता है । वह न चाहते हुए भी अपने पुत्र को शारीरिक दंड देती है, किंतु कुछ समय पश्चात् ही उसका वात्सल्य पूर्ण हृदय अपने इस कार्य को निंदनीय घोषित कर देता है । माँ का ममत्व अपने बेटे के रुदन को सुनकर द्रवित हो उठता है । उसके हृदय में मोहवश चिन्ता का उदय होता है । चिन्ता का एक और रूप माँ के हृदय में तब उत्पन्न होता है, जब वन से गाय चराकर कृष्ण विलम्ब से लौटते हैं । माँ उस समय चिन्ता से आतुर जान पड़ती है, वह अपने

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० १६ ।
(२) वही ।

पुत्र के विलम्ब से भीन लौटने पर बेचैन हो उठती है ।--

जसुमति अति औसेर करै ।
अजहु न आये बन ते मोहन बार-बार मन सोच धरै ।
छिन-छिन बूझत सब सखियन सौं, दोऊ नैनन नीर ढरै ।
देखन पठवति बार बार ही दूरि जहाँ लौं खरिक परै ।
अति आतुर मुरली की धुनि सुनि, व्याकुल क्यौं हू न हृदै ठरै ।
'रसिक सिरोमनि' मिले नंद सुत, बदन चूमि के अंक भरै ।।१

इस स्थल पर मातृ-हृदय को अनेक भावों से अभिमंडित दिखलाया गया है । 'चिन्ता, आतुरता, मन की अस्थिरता तथा आवेग जैसे भाव उद्दीप्त होकर माँ के अन्तश: को झंकृतकरते रहते हैं । पुत्र के विछोह से व्याकुलता बढ़ती जाती है, अन्त में अभीष्ट की प्राप्ति पर हर्ष जन्य आवेग की स्थिति आजाती है और माँ अपने कृष्ण को आलिंगन में बाँध कर उसका मुख चूम उठती है । इस प्रकार कवि ने एक ही प्रसंग के सीमित वर्णन में भी अनेक भावों की सृष्टि कर काव्य को मधुर और उत्कृष्ट बना दिया है ।

गोस्वामी हरिराय जी द्वारा वात्सल्य रस के प्रसंग में कृष्ण द्वारा प्रकटित भावों का प्रकाशन भी अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से हुआ है ।

गाय चराते समय कृष्ण को भूख लग उठती है, किन्तु उनके नियत समय पर 'छाक'[२] नहीं पहुँच पाती, इससे कृष्ण व्याकुल हो उठते हैं । प्रमुख रूप से औत्सुक्य[३] भाव प्रस्तुत पद में देखे जा सकते हैं :-

---

(१) गोस्वामी श्री हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ६४ ।
(२) छाक - 'कलेवा' सम्बन्धी एक विशेष प्रकार का भोज्य प्रसाधन ।
(३) 'अभीष्ट की प्राप्ति में विलम्ब का न सहसकना 'औत्सुक्य' कहलाता है'।
-- काव्य शास्त्र की रूप रेखा - पं० श्यामनन्दन शास्त्री, पृष्ठ- ११६ ।

मैया हौ, अबहु छाक न आई ।
भई अबेर भूख लागी है, काहे बेर लगाई ।
देखौं तौ मारग में सब मिलि, कौ नहि आज पठाई ।।१

कवि ने स्वाभाविक घटनाओं के माध्यम से ही विविध भावों को उभारा है कहीं-कहीं कुछ विचित्र घटनाओं का वर्णन भी कवि ने स्वाभाविक रूप से ही कर दिया है, बालक कृष्ण माता-यशोदा के पुण्य प्रताप को स्वीकारते हुए कहते हैं :-

देख्यौ एक अचंभो आज ।
किनहुं न लख्यौ, लख्यौ बल भैया, मारौ छिन ही माँझ ।
धेन चरावत धेनुक आयौ, दैत्य रूप धरि मारन काज ।
रहे सकल ब्रज-बालक खेलत , निकसे व्हाँते साँझ ।
कुशल परत है तेरे पुन्यन, जहाँ जहाँ हम जात ।
'रसिक सिरोमनि' सुत की बातें सुनि-सुनि फूलत मात ।।२

कवि की प्रांजल मेधा ने इस पद में दो रसों का सुन्दर ढंग से समन्वय किया है । इस पद में प्रारम्भिक पंक्तियाँ अद्भुत रस के स्थायी भाव विस्मय से अभिमंडित हैं, तदनंतर अन्तिम पंक्तियों में वात्सल्य का सुन्दर निर्वाह हुआ है । गोस्वामी हरिरायजी द्वारा दो विभिन्न रसों का एक ही सीमित-पद में निरूपण करना उनकी समाहार-शक्ति का अद्वितीय प्रमाण है ।

गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में सुखेतर भावों को अधिक स्थान नहीं दिया गया । विस्मय, क्रोध, त्रास, शंका, व्याधि आदि संचारी भावों का उनके काव्य में कम ही प्रयोग हुआ है । वात्सल्य रस में हर्ष, गर्व, आवेग जैसे सुखद

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ५८ ;
(२) वही, पद सं० ७६ ;

भावों का ही अधिक प्राबल्य रहा है । अन्य भाव यत्किंचित ही हैं और विशेष महत्वपूर्ण भी नहीं । गोस्वामी हरिराय जी के काव्य-सृजन का मुख्य ध्येय कृष्ण की लीलाओं का गान करना ही था, इस प्रसंग में भाव-प्रवणता के स्थलों पर कवि अधिक संवेदनशील हो उठा है, यही कारण है कि भावाभिव्यक्ति अपने उत्कृष्ट रूप में विद्यमान है ।

वात्सल्य के अतिरिक्त गोस्वामी हरिराय जी ने शृंगार एवं शान्त रस के भावों का भी अपने काव्य में कुशलता से चित्रण किया है । वात्सल्य के पश्चात् शृंगार रस के कुछ भाव-चित्र भी दर्शनीय हैं :-

-:: शृंगार ::-

गोस्वामी हरिराय जी ने अपने दार्शनिक विचारों के अनुसार गोपीभाव से कृष्ण की उपासना की थी । गोपांगनाओं के यूथ में सम्मिलित हो अपने 'रसिक -सिरोमणि' की सरस क्रीड़ाओं का वह आस्वादन करता रहा है । यही कारण है कि कवि के काव्य में रस-प्रवाह का जो प्रबल-वेग शृंगारपरक रचनाओं में दिखाई देता है, वह अन्यत्र नहीं ।

शृंगार वर्णन में वियोग-पक्ष का चित्रण भाव-वैविध्य की दृष्टि से पूर्ण सम्पन्न है, किन्तु संयोग पक्ष के चित्र भी बड़े सजीव भावों से अनुरंजित हैं । गोस्वामी हरिराय जी ने परम्परा का अवलम्ब ग्रहण करते हुए भी यत्र-तत्र अपने मौलिक उद्गारों को भी विविध चित्रों में व्यक्त किया है. संयोग के कुछ भाव-चित्र द्रष्टव्य हैं :-

-:: संयोग ::-

संयोग में लज्जा, संकोच, अधीरता जैसे अनुभावों का आभास प्रणय की प्रारम्भिक अवस्था में होने लगता है । विवाह के उपरान्त नव-वधू अपने पति के सन्मुख बैठी हुई भोजन करने में अत्यधिक सकुच रही है । दूसरी ओर कृष्ण प्रेमाधिक्य के कारण बार-बार राधा की मनुहार कर रहे हैं कि वह भोजन करे, किन्तु राधा हर बार बर्जना

ही करती जा रही है, अन्त में बड़ी ही लज्जा से आवृत हो भोजन प्रारम्भ करती है :-

जैंमत लाल लाड़ली राजे ।
करि मनुहार जिमावत प्यारी, प्यारी जैंमत लाजे ।१

आगे चल कर यही रति-रस निमग्ना राधा अपने इस संकोच को धीरे-धीरे त्यागने लगती है । वह किंचित लज्जा तथा कृष्ण को अपने हाथ से खिलाती है और स्वयं उनके हाथ से खाती भी है ।--

जैंमत ललना लालन संग ।
मनिमय महल विराजत दोऊ, परदा परे हैं सुरंग ।
प्यारी कौर देत पिय के मुख, प्यारी मुख में मेलें ।
'रसिक प्रीतम' रस रीति पियारी, रति-प्रति कँठ भुजा दोऊ मेलें ।।२

यह स्थिति एकान्त की है, यहाँ राधा को न तो गुरुजनों का भय ही है और न ही सामाजिक-भर्त्सना का 'खटका' । अभी यह नि:संकोच की स्थिति स्थायित्व ग्रहण नहीं कर पायी, यही कारण है कि अचानक प्रिय के आ जाने पर चौंक कर पुन: लजा जाना उसकी प्रकृति से विलग नहीं हो पाया है :-

आवत ही पिय के चौंक लजावन लागी ।।३

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० १२७ ।
(२) वही, पद संख्या- १३१ ।
(३) वही, पद संख्या- १३७ ।

धीरे-धीरे प्रिय के निरंतर सानिध्य में रहने से संकोच का पर्दा उठ तो जाता है,किन्तु फिर भी नारी-सुलभ वृत्तियों के अनुरूप विशेष वातावरण में लज्जा तथा संकोच अचानक ही प्रकट हो उठते हैं। वृन्दावन की निकुंज में प्रात: काल दोनों उठ कर खड़े हुए हैं। दोनों हाथों को बांध कर अगड़ाई लेते ही, विगत सुरति-रस का स्मरण हो उठता है, तत्काल ही स्वाभाविक लज्जा के वशीभूत होकर नायिका संकोच का अनुभव करने लगती है, कवि ने इस चित्र को बड़े ही सजीव ढंग से प्रस्तुत किया है :-

श्री वृन्दावन नव-निकुंज, ठाड़े उठि भोर ।
बाहैं जोरि, बदन मोरि, हंसत सुरति रस विभोर ।
सकुचत पुनि कछु लजात, नैनन की कोर ।।१

पति का सहवास लज्जावश उत्पन्न संकोच को कम करने लगता है, एक समय यही लज्जा के भाव पूर्णत: विलीन हो जाते हैं। कभी यह प्रमोन्मत्ता-नायिका प्रियतम का सानिध्य पाकर लज्जा का अनुभव करती थी, वह अब प्रिय का सानिध्य पाकर अत्यन्त अधीर हो उठती है, वह अपने तन-मन की सुधि ही विसरा देती है :-

पान खवावत करि करि बीरी ।
इकटक व्है मोहन मुख निरखत, पलक न परत अधीरी ।
हंसत निहारत बदन स्याम को, तन की सुधि विसरीरी ।
'रसिक प्रीतम' के अंग संग मिलि छतियां भई अतिसीरी ।।२

यहां नायिका की अधीरता प्रिय के सामीप्य में भी प्रकट हो रही है, किन्तु स्वेच्छा की पूर्ति होने पर यही उद्वेग लज्जा के सरल वातावरण में परिवर्तित

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० १३८ ;
(२) वही, पद संख्या- १३२ ;

हो जाता है । उपर्युक्त पद में औत्सुक्य, आवेग, मोह, उन्माद, हर्ष, आदि विविध संचारी भावों को समन्वित किया गया है ! इस पद में केवल संचारी भावों के प्राबल्य से ही रस-परिपाक सम्भव हो सका है । इस पद में संचारी भावों के वृत्त में ही अन्य भावादि अंतर्भूत हैं । यहाँ रति स्थायी भाव है, आलम्बन नायक और आश्रय नायिका है । उद्दीपन विभाव में नायिका की चेष्टाएं देखी जा सकती हैं, उद्वेग, स्नेह-स्निग्ध अवलोकन आदि अनुभाव हैं, जिनके संयोग से श्रृंगार रस पुष्ट हुआ है ।

दाम्पत्य प्रेम में लज्जा एवं संकोच कुछ विशेष स्थितियों में ही उत्पन्न होते हैं । ये भाव प्रेम की प्रारम्भिक अवस्था में तथा अभिसार-कालीन हाव-भावों के माध्यम से उत्पन्न होते हैं, किन्तु जब नायिका अन्य सहचरियों के साथ समान रूप से आसक्त होते हुए भावों को प्रकट करती है, वहाँ झिझक, लज्जा, संकोच के भाव न होकर स्वच्छन्द मनोरंजक-उल्लास के भाव परिलक्षित होते हैं ! 'दानलीला' में जब नायक श्रीकृष्ण इन ब्रज वनिताओं को निर्जन-मार्ग में रोक कर इनका अंचल पकड़ते हैं, उस अवस्था में गोप ललनाएं कह उठती हैं :-

> चंचल नयन निहारिये अति चंचल मृदु बैन ।
> करि नहिं चंचल कीजिए, तजि अंचल चंचल-नैन ।।१

यहाँ नायक के द्वारा अंचल पकड़ने पर नायिका क्रियागत यत्न-साध्या न होकर केवल वाणी से ही वर्जना कर रही है, इसमें अंचल पकड़े ही रहने का मूक-समर्थन भी है और प्रेमाभिव्यक्ति का प्रतिकार भी । हाव-भावों के इसी प्रदर्शन में अनुभावों के संकेत भी बड़े सार्थक रूप में व्यक्त हुए हैं :-

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १०४ ।

मोहन कंचन कलसिका, लीन्हीं सीस उतारि ।
चमकन बदन निहारिकैं सो ग्वालिन अति सुकुमारि ।।१

अनुभाव-योजना के अन्य चित्र भी दृष्टव्य हैं :-

-- नई हँसनि, चितवन नैनन की, अधरन फरकत न्यारी ।।२
-- आवत ही पिय के चौंकि लजावन लागी ।
देह प्रस्वेद मानो रस सागर में बोरि काढ़ी ।।३
-- फरकत बाँईं आँख, अधरा हू फरकत , अरु फरकत बाँईं बाँह ।।४

इस प्रकार कवि ने पूर्ण रस संचार के लिए स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, संचारिभाव, सात्विक भावों के साथ-साथ आलम्बन,उद्दीपन आदि सभी रस-उपकरणों पर ध्यान रखते हुए भावों के विभिन्न रूप गठित किए हैं ।

रस-परिपाक में सहायक अन्य भावों की तरह उद्दीपन विभाव के चित्र भी कुशलता से अंकित हुए हैं । संयोगावस्था में उद्दीपक वातावरण की सृष्टि में कवि ने विशेष चित्र निरूपित नहीं किये, किन्तु इस प्रसंग में उसके यत्किंचित चित्र भी प्रभावशाली बन पड़े हैं । एक पद में संयोग वर्णन के उद्दीपक विभावों का स्वरूप दृष्टव्य है :-

दोऊ मिलि पौढ़े एक ही संग ;
सियरी ब्यार, फरोखन आवत, करत केलि रस रंग ।
गरजत गगन, दामिनी कौंधत, फलकत दोऊ अंग ।
'रसिक प्रीतम' ललतादिक गावैं, मधुरी तान तरंग ।।५

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १०४ ।
(२) वही, पद संख्या- १३४ । (४) वही, पद संख्या- २२१ ।
(३) वही, पद सं० - १३७ । (५) वही, पद संख्या- २०१ ।

इसी प्रकार का एक अन्य चित्र भी प्रस्तुत है :-

सबद सुनायौ दादुर मोर ।
ठौर ठौर मेघ मलार गायौ ।
'रसिक प्रीतम' तुम बिन ऐसे समै ।
कैसे हो तुम न भायौ ।।१

इन पदों में स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि सभी की स्थिति अन्तर्भूत है, किन्तु आलम्बन और उद्दीपक -विभाव अपने प्रबल स्वरूप को व्यक्त कर रहे हैं। ऐसे प्रसंग में केवल उद्दीपक विभावों के सम्बल पर ही अन्य भाव-अनुभावों को बल मिलता है और मूल भाव स्थायित्व ग्रहण करके रस कोटि तक पहुंचने में समर्थ होता है। उपरिलिखित प्रथम पद में उद्दीपक विभाव मूल भाव रति को उभारने में सहायक सिद्ध हुए हैं, अनुभाव, संचारी-भाव, आलम्बन, आश्रय आदि की स्थिति पर विशेष ध्यान न देकर कवि ने यहां केवल उद्दीपक विभावों को ही प्रधानता दी है, इन्हीं के सहारे भावों को रस कोटि तक पहुंचाने में सफलता प्राप्त की है। गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में इस प्रकार की भाव-योजना अपने तीक्ष्ण प्रभाव को लिए हुए प्रकट हुई है, जिससे पाठक का मानस-पटल पद-पद पर रस सिक्त होकर काव्य - सरिता में मन्थर-मन्थर गति से तैरता चला जाता है।

गोस्वामी हरिराय जी ने भक्ति निहित शृंगार को वैविध्य के साथ प्रस्तुत किया है। कहीं-कहीं उन्होंने शृंगारिक-वर्णनों में अति स्थूल चित्र अपनी रसिक वृत्ति के अनुरूप निरूपित किए हैं। कहीं-कहीं कवि विशुद्ध नायक व नायिका के क्रीड़ा-विलास में भी निमग्न दृष्टि-गोचर होता है, किन्तु अधिकांश में उनका अभीष्ट कृष्ण चरित्र की रसमयी फांकी को विविध रूपों में चित्रित करना ही रहा है। यही कारण

---

(१) रसिक बानी- लेखक का निजी संग्रह, पद संख्या- ३७ ।

है कि शृंगारिक रचनाएं स्वच्छन्दतापूर्वक लिखी गई हैं, और विशेष आकर्षक बन पड़ी हैं ।

गोस्वामी हरिराय जी की शृंगारिक रचनाएं हाव एवं अनुभाव की विविध अवस्थाओं को व्यक्त करती हैं । इनमें हाव के चित्र विशेष सशक्त जान पड़ते हैं ।

अनेक आचार्यों ने काव्य-सिद्धान्तों के सन्दर्भ में हावों की चर्चा

०::हाव::० की है ।१ संयोगावस्था में स्त्रियों की चेष्टा-विशेष को हाव कहा जाता है । डा० नगेन्द्र के अनुसार,`भृकुटी तथा नेत्रादि के विलक्षण व्यापारों से संभोगेच्छा प्रकाशन भाव ही `हाव` कहलाता है । हाव आश्रयगत भी होता है और आलम्बन गत भी । आश्रयगत हाव का दोहरा कार्य होता है, आश्रय की भोगेच्छा का प्रकाशन और आलंबन का`भावोद्दीपन` ।२

गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में शृंगारिक पदों में हावों के सूक्ष्मतम चित्र प्रस्तुत किए गए हैं, सर्व प्रथम संयोग-शृंगार के अन्तर्गत प्रमुख-प्रमुख पर्व व उत्सवों पर सामूहिक केलि विलास में इस प्रकार के मनोहारी दृश्य देखे जा सकते हैं ।

होली उत्सव के अवसर पर प्रथम,नायिका का चित्र प्रस्तुत किया गया है, तत्पश्चात् उसके हावादि स्पष्ट कर उस चित्र को सजीव बनाया गया है :-

---

(१) `भावातिरिक्तं सत्वंहि व्यतिरिक्तं, संयोनिषु ,
नैकावस्थान्तरगतं हावं तमिह निर्दिशेत् ।
-- नाट्यशास्त्र, आचार्य भरत, अध्याय-२४, श्लोक-६

(२) हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, डा० नगेन्द्र,
-- भाग षष्ठ, पृष्ठ- १६३ ।

फागु खेले राधा गोरी ।
श्री वृषभानु नंदिनी, भली बनी यह जोरी ।
चारु अबीर, गुलाल लसत तन, बिच-बिच राजत रोरी ।
- - - - - - - - - - - ।
नूपुर रुनित, कुनित कटि मेखल निरखि मदन मति भोरी ।
रीझि रीझि तब 'रसिकराय' कों मृदु मुसकनि मुख मोरी ।।१

प्रस्तुत चित्र में नायिका का मृदु मुस्कराकर मुख मोड़ना ही नायक के प्रति उसके अभीष्ट का समर्थन है । नायिका का इस प्रकार भाव-प्रकाशन उसके लज्जावृत शील एवं संयोग जन्य विलास हेतु बड़ा ही सूक्ष्म संकेत है । इस प्रकार के हाव शृंगार रस में उद्दीपक विभाव का कार्य सम्पन्न करते हैं । इसी प्रसंग में एक अन्य स्थल पर नायिका की और भी चेष्टाएं दृष्टव्य हैं :-

विविध भाव मनहि मन संचति मुसिकात रति रन धीर ।
दोऊ गहे कर गहें बलि बलि कैं हरखि चलि चन्द्रावलि ।।२

यहाँ पर 'रतिरणधीरा' नायिका द्वारा अनेक भावों को मन में विचार कर मुस्कराना, प्रस्तुत वातावरण की भाव-भूमि को और भी उन्मुक्त तथा सरस बना देता है । इसी प्रकार सामूहिक उल्लास में भी हावों का प्रदर्शन प्रस्तुत है :-

उत तें जाइ नन्द लाडि लौ इततें नन्द कुमार ।
पुलकित तन, निरखति नैंननि करें घूंघट जोर जुहार ।
- - - - - - - - - - ।
कोऊ पिचकारिन छुटात है, मीडित अंग बचाइ ।

---

(१) रसिक बानी- लेखक का निजी संग्रह, पद संख्या- १५ ।
(२) वही; पद संख्या- १६ ।

कौऊ प्यारी उलटि जात है, सरस रंग ले ग्वारि !!१

आँखों के माध्यम से अनेकानेक भावों का अभिव्यक्त होना प्रसिद्ध रहा है । कवि के कथन में भी इसका समर्थन है :-

नैना तेरे अति रसमाते !
इन्ह महिं अरुन अरुन डोरे कछु लागत सहज सुहाते ।
कबहुक इकटक देख रहत, कबहुंक मुरि मुरि मुसकाते ।
'रसिक प्रीतम' संग निसदिन विलसत, नेक नहीं सकुचाते !!२

हावों के द्वारा भावों की अभिव्यक्ति का यह सूक्ष्मतम संकेत निश्चय ही आँखों द्वारा कुशलता से व्यक्त हुआ है । संयोग श्रृंगार के प्रसंग में उन्मुक्त नायिका की ये स्वाभाविक क्रियाएं भी कितनी अर्थ संगत हैं :-

रहत करि नीची नीची नारि, रूखी रूखी अँखिया देखि रही पिय ओर
बदन निहारत अंचरा खैंचत, ठिठकि रही लाज जोर ।
आलिंगन देत लेत उसांस, सकुचत जिय जानि कुच कठोर ।
'रसिक प्रीतम' के अंग परसि , रस परवस भई, क्रीड़त है गयो भोर !!३

इस प्रकार के हाव-भाव नायिकाओं की विभिन्न क्रियाओं द्वारा स्पष्ट होते हैं ! ये हाव जितने सूक्ष्य व सांकेतिक होते हैं, उतने ही सरस व मनोहारी प्रतीत होते हैं । गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में हाव-भावों की सुंदर योजना सम्पन्न हुई है ।

---

(१) रसिक बानी-- लेखक का निजी संग्रह, पद संख्या- १६ !

(२) -- गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० १४० ।

(३) वही, पद संख्या- १५२ !

स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव, संचारीभाव, आदि विविध उपकरणों के सम्पादन से कवि ने अपने अभीष्ट रस को विविध भाँति से पुष्ट किया है। कवि के विविध-भाव अपनी स्वाभाविक गरिमा के साथ पूर्ण सम्पन्न प्रतीत होते हैं। इनमें शास्त्र सम्मत समस्त सिद्धान्तों का सायत्न पालन नहीं किया गया है, यथा संयोग-जन्य लीला, किलकिंचित, विभ्रम, चकित, मद, विच्छप्ति तथा कुट्टमित जैसी स्वाभाविक चेष्टाओं का यत्र-तत्र आभास तो होता है, किन्तु कवि ने इन सभी चेष्टाओं को यथा रूप सालक्ष्य अपने काव्य में प्रयुक्त नहीं किया।

पिछले पृष्ठों पर कहा जा चुका है कि गोस्वामी हरिराय जी एक भक्त कवि थे और `भक्तों का श्रृंगार वर्णन उनकी साधना की आध्यात्मिक पृष्ठ भूमि के अनुसार था। इसलिए शास्त्रीय रीति पर ध्यान देने की उन्हें कोई आवश्यकता न थी।'[१]

संयोग श्रृंगार का प्रारम्भ कृष्ण की बाल-लीलाओं से ही देखा जा सकता है। गोस्वामी हरिराय जी ने श्रृंगार के प्रसंग को किसी नये परिच्छेद में प्रारम्भ से न उठा कर उसे मुक्तक पदों में यत्र-तत्र बिखेर कर रखा है। कृष्ण के बाल चरित्र से ही उनकी रतिकेलि की प्रारम्भिक परिस्थितियों के चित्र देखे जा सकते हैं। `गाय चरावन' के प्रसंग में एक पद दृष्टव्य है :-

गाय चरावन चले प्रभात।
कर गहि बेनु लकुटि कटि बाँधे, पीतांबर फहरात ।
आगे धेनु हाँकि ग्वालन संग, पाछे लगि बतरात ।
दै संकेत चलत बढ़ि आगे, फिर-फिर देखत जात ।
अति आतुर ब्रज जुवतिन कों कछू, सैंन देत मुसकात ।

---

(१) भक्त कवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, पृष्ठ- १५४ ।

नव-निकुंज संकेत ठौर कौ, मिस करि संग लगात ।
अति सुजान काहू न जनावत, अपने मन की बात ।
- - - - - - - ।
'रसिक सिरोमनि' हरि लीला रस, तजि कैं कछु न सुहात ।।१

मध्य-कालीन भक्त कवियों ने कृष्ण के लोक-रक्षक व लोक-रंजक दोनों ही रूपों का वर्णन किया है । तुलसी और सूर की इस उभय-मूर्ति को भक्ति की प्यासी जनता ने सादर ग्रहण किया और अन्य भक्त कवियों ने पृथक्-पृथक् काव्य सृजन कर इन स्वरूपों को और भी व्यापक तथा सरस बनाने का यत्न किया । गोस्वामी हरिराय जी ने कृष्ण के लोक-रंजक रूप को ही विशेष महत्व दिया है । इस प्रसंग में कृष्ण के श्रृंगारिक स्वरूप के प्रति लगाव स्वाभाविक ही था । श्रृंगार वर्णनों में भी उन्होंने अन्य रीति कालीन कवियों की भाँति श्रृंगार के समस्त संभावित शास्त्रीय स्वरूप को ग्रहण नहीं किया, बल्कि स्वेच्छा के प्रवाह पर ही उनकी लेखनी चलती रही थी । यही कारण है कि कृष्ण की बाल लीलाओं में भी इस प्रकार के श्रृंगारिक - भाव निमग्न हैं ।

कवि का हृदय प्रेमा-भक्ति से आसक्त है । इसलिए कृष्ण के समस्त चरित्र में वह अपने भावों को संश्लिष्ट करना चाहता है । इस प्रसंग में कहीं-कहीं वह अपनी प्राचीरों से विलग भी हो जाता है, यथा--

मैया हो अबहू छाक नहिं आई ।
रहे गुपाल अकेले जब तब ग्वालिन निकट बुलाई ।
आलिंगन दै, अधर सुधारस, सीस छाक उतराई ।।२

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पदसाहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५७ ।
(२) वही, पद संख्या- ५८ ।

कृष्ण चरित्र में यहाँ बाल-लीलाओं के अन्तर्गत श्रृंगार की ये चेष्टाएं कवि के रसिक स्वभाव को ही व्यक्त करती हैं। अपनी ग्वाल-मंडली से विलग होकर एकान्त में छाक लाने वाली ग्वालिनी के प्रति उक्त चेष्टाएं, कृष्ण-चरित्र के 'हल्के पन' को ही व्यक्त करती हैं। यहाँ श्रृंगार वर्णन न तो प्रासंगिक लगता है, और न ही उचित।

कृष्ण का युवा-स्वरूप 'गाय चरावन' से ही प्रारम्भ हो जाता है। उनके लिए छाक लाने वाली, लौटने पर अगवानी करने वाली, तथा निर्जन में प्रेमालाप करने वाली प्रमत्त यौवनाएं उनके क्षणिक वियोग से ही विव्हल हो उठती हैं। १ कृष्ण स्वयं भी रात-रात भर इन प्रमोन्मादिनी-कामिनियों के साथ सुरति केलि में निमग्न रहते हैं। २ हर समय गोपिकाएं उनसे भेंट करने के लिए व्याकुल रहती हैं।--

लटकत आवत गोधन के संग, सांझ समै भेटौं कैसें।
तपत सकल अंग तलफत निसदिन जलतै निकरि मीन ज्है जैसें।।३

प्रेमासक्ति का इससे भी प्रगाढ़ रूप छेड़-छाड़ में दिखलाई देता है। यहाँ भी कवि के कृष्ण अपने पूर्ण रसिक रूप में ही प्रस्तुत हुए हैं। पनघट पर ब्रज-ललनाओं को रोकना तथा उनके प्रति अनेकानेक चेष्टाओं से अपने प्रेम को अभिव्यक्त करना, सभी कुछ कृष्ण चरित्र की रसिकता का ही महत्व प्रतिपादित करते हैं।

'छेड़-छाड़' का प्रसंग परकीया-नायिकाओं के मध्य औचित्य के अनुसार ही प्रस्तुत किया गया है। इसमें उभय पक्ष का वार्तालाप श्रृंगार के वातावरण को और भी उद्दीप्त करता है। यथा -

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, संस्पा० श्री प्रभुदयाल मीतल, पद-६६
(२) वही, पद सं० ७२,
(३) वही, पद सं० ७३।

यह कौन टेब तेरी कन्हैयाँ, जब तब मारग रोके ।
कैसे कैं भरन जाँहि पनियाँ जुबति जन,
आड़ौ ठाड़ौ व्है रहै कर लकुटी लिए दृग फीके ।
गगरी डारि देत कबहु पीछैं ते आइ,
ऐसे बजात तारी, जासौं कोऊ चौंके ।
'रसिक प्रीतम' की अटपटी बातैं सुनरी सखी,
समभी न परत याकी नीकें ।।१

इस प्रकार के चित्र वातावरण में शृंगार की पृष्ठ भूमि को उद्दीप्त ही कर पाए हैं, किन्तु रस-कोटि तक नहीं पहुंच पाए । कुछ चित्र संयोगावस्था के स्थूल रूप को लिए हुए रस-कोटि तक पहुंचने में पूर्ण समर्थ हैं :-

गेंद तक मारी संवलिया नट नागर चित चोर ।
भयो निसंक अंक भर लीनी भृकुटी नयन मरोर ।।२
+ + + + + +
नातर होती लराई दृगन में लाजहि बीच परी ।
घूंघट पट मेरो सरकायो मुरली अधर धरी ।
फेरि मारग दिस खेल लगाई, भँमर करी चकरी ।।३

इस प्रसंग में मुरली हरण, गोवर्द्धन लीला आदि के विविध चित्र प्रस्तुत किए गए हैं । दान-लीला में परकीया-रति का प्रगाढ़तम रूप प्रस्तुत हुआ है । कवि ने इसे युगल-पद्य की वाक्-चातुरी से और भी रमणीय बना दिया है । स्वकीया-प्रेम में 'राधा का रूप' व 'दाम्पत्य प्रेम' के पद उल्लेखनीय हैं । दाम्पत्य-

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ६५ ।
(२) वही, पद संख्या- ६७ ।
(३) वही, पद संख्या- ६८ ।

प्रेम में नायिका द्वारा घूंघट निकालना, लज्जा -प्रदर्शित करना आदि स्वाभाविक चेष्टाएं सहज संजोई गई हैं ।

लाड़िली लालन देखत लाड़े ।
मोहन मुख देखन कों आवत घूंघट पर दै आड़े ।
कबहुक हरि के मुख देखन कौं, अपना बदन उघाड़े ।।१

स्वकीया-रति प्रसंग में परकीया-केलि विलास की भांति न तो स्वच्छन्दता ही है और नहीं सरस दृश्यों का बाहुल्य । कवि ने स्वकीया-रति वर्णन बहुत संक्षेप में किया है । यह प्रभावशाली भी नहीं है । कुछ-क पद ही इसमें विशेष प्रिय हैं :-

दुहुन की देख सखी, लपटानि ।
तरु तमाल मानों आलिंगन, लता कनक की आनि ।
जमुना स्याम गौर तन गंगा संगम तीरथ जानि ।
परत तमोल- धार अधरन तैं बीच सरसुति मानि ।।२

इसके अनन्तर परकीया -प्रेम प्रसंग में तो इनका अधिकांश श्रृंगार-काव्य रखा जा सकता है । उनके समस्त श्रृंगार वर्णन में शारीरिक चेष्टाओं की प्रधानता होने के कारण चित्र आकर्षित होते हुए भी स्थूल अवश्य है । ``उत्तर मध्यकाल में विभिन्न परिस्थितियों और प्रेरणाओं के फलस्वरूप अलंकारिक चमत्कार और स्थूल श्रृंगारिकता का प्राधान्य हो गया है, जिस प्रकार से श्रृंगार के लौकिक क्षेत्र में स्थूलता के निषेध की आवश्यकता ही नहीं समझी गई, उसी प्रकार कृष्ण भक्ति काव्य में भी उसका समावेश बिना किसी झिझक के हुआ ।

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १३५ ।
(२) वही, पद संख्या- १४३ ।

धर्म के नाम पर लिखे गये काव्य में स्थूलता का अति धर्म और काव्य में चित्रीकरण दोनों विकार की चरम सीमा तक पहुँच गए थे। रीति-कालीन कवियों की दृष्टि, विलास और उपभोग प्रधान थी। इसलिए इनकी रचनाओं में पुण्य-प्रेम भाव की परिष्कृत सूक्ष्मताओं का अभाव है, तत्कालीन कृष्ण काव्य परम्परा के कवि भी उसके अपवाद नहीं थे"।१ गोस्वामी हरिराय जी की श्रृंगापरक रचनाओं में यह प्रभाव पर्याप्त रूप से देखा जा सकता है। जहाँ काव्य अनुभूत पक्ष पर विशेष आधारित होता है, वहाँ चित्र अपने स्वाभाविक रूप को प्रस्तुत करने के लिए पूर्ण आकार ग्रहण करता है। यही कारण श्रृंगारिक रचनाओं में स्थूलता का आभास देता है। जिस अनुभूत चित्र को प्रस्तुत करने के लिए कवि का हृदय अधिक रसलीन हो उठता है, वहाँ कवि चित्र के सर्वांग को वैविध्य के साथ प्रस्तुत करता है।

गोस्वामी हरिराय जी ने श्रृंगार-वर्णन में विशेष रस लिया है। उनके चित्र सूक्ष्म से सूक्ष्मतम् भावों में भी व्यक्त हैं और स्थूल से स्थूलतम् भावों में भी। जहाँ कवि एक दिशा में श्रृंगार की पृष्ठ-भूमि में केवल संकेत से ही कार्य चला लेता है, वहाँ दूसरी ओर उस चित्र को स्पष्ट रेखाओं के साथ भी प्रस्तुत करता है। प्रणय की प्रगाढ़ता के प्रति यह सांकेतिक चित्र कितना समर्थ है :-

> जल क्यों न पियो जो तुम हो पिय ! प्यासे।
> समझ सोच भरि लाई जमुना जल, पीवत क्यों अलसासे !
> जल ही मिस तुम उझकत डोलत, नवल तिया रस रासे।
> 'रसिक प्रीतम' जल तुम नहीं पीयो, चाहत अधर सुधारस आसे ।।२

यहाँ अंतिम चरण में कवि अपनी वृत्ति के अनुरूप विषय को फिर स्थूल बना

---

(१) ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प, डा० सावित्री-
-- सिन्हा, पृष्ठ- ५४

(२) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ६६।

देता है । इससे प्रथम तीन चरणों में उक्ति स्वाभाविक होते हुए भी प्रणय व्यापार का दृश्य अति सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत हुआ है । गोस्वामी हरिराय जी की नायिका बिहारी की भाँति विशुद्ध रति-केलि के लिये चुनी गई नायिका ही नहीं, वह कृष्ण की सेविका भक्त भी है । वह कृष्ण के प्रति पूज्य भाव भी रखती है और समाज की प्राचीरों में वह बद्ध भी है । उपर्युक्त उद्धरण में रस का परिपाक पूर्ण रूप से हुआ है, किन्तु जहाँ कवि `रतिकेलि` के स्थूल चित्र प्रस्तुत करता है,वहाँ, रस अपनी पूर्णता पर होने पर भी हृदयग्राही नहीं बन पड़ा । प्रेम की सूक्ष्म झाँकियाँ कथ्य-वैचित्र्य के साथ - साथ रस-प्रगाढ़ की भी परिचायिका होती हैं । यह सौन्दर्य स्थूल चित्रों में प्राप्त नहीं होता है । सूक्ष्म उक्तियाँ विशेषकर `दान-लीला` में देखी जा सकती हैं :-

नैंकु दूरि ठाड़े रहौ, कछुक रहौ सकुचाय ।
कहा कियौ मन भाँमते, मेरे अँचल पीक लगाय ।

यह उक्ति स्वाभाविक होते हुए भी व्यंग्यपूर्ण है । इसका संकेत आगे स्पष्ट होता है, जब कृष्ण इसका उत्तर देते हैं ।--

कहा भयौ अँचल लगी पीक हमारी जाय ।
याके बदले ग्वालिनी मेरे नैंनन पीक लगाय ।।१

`पीक` लाल रंग को व्यक्त करती है और लाल रंग अनुराग का सूचक है । प्रणय-व्यापार में यह विनिमय कितना स्वाभाविक है, जब नायक की पीक बोलते समय नायिका के अँचल पर जा लगती है, तब नायिका नायक से दूर रहने को कहती है कि इस प्रकार अँचल पर दाग लगाना अच्छा नहीं है, किन्तु कृष्ण अपनी स्वाभाविक पटुता के साथ इसका उत्तर देते हैं कि यदि मैंने यह

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १०४ ।

धृष्टता की है तो तुम भी यह उद्दंडता करने के लिए स्वतंत्र हो, तुम स्वयं मेरे नयनों में अपनी पीक भर सकती हो अर्थात् मेरी आँखों में तुम भी अपना प्रणय-रंग घोल सकती हो। यह कथ्य चातुरी रस परिपाक को अधिक पुष्ट करती है। इसमें आश्रय और आलम्बन के कथ्य उद्दीपक बन कर भावों को पुष्ट करते हैं। इसी प्रकार :-

मन मेरो तारेन बसे अरु अंजन की रेख ।
चोखी प्रीत हियें बसे याते सांवल भेख ।।१

कवि ने संयोग शृंगार के अन्तर्गत सुरतान्त स्थिति को भी अनेक रूप में चित्रित किया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :-

लाल संग रस रैन जागी ।
अरुन भए नैन पलकें लगें नां, सुरति रस अरसाई नेह पागी ।
देखियत छंक दसनन के गंड जुग, अधर अंजन उलटि लीक लागी ।।
'रसिक प्रीतम' कियो आयु बस ते सखी कौन तिहु लोक तिय -
तो सी बड़भागी ।।२

सुरतान्त वर्णन में नायक एवं नायिका दोनों की सम्यक् स्थिति को व्यक्त किया गया है, विगत पृष्ठों में हम यह चर्चा कर आए हैं।

शृंगार वर्णन में आसक्ति, व्याकुलता, तन्मयता आदि के विविध चित्र कवि ने रचे हैं। तन्मयता की स्थिति यहां तक पहुंच जाती है कि नायिका स्वयं सामाजिक रीति-रिवाजों को त्याग कर अपने अभीष्ट को सर्वोपरि देखने लगती है। नायिका की यह ढिठाई प्रेम के प्रगाढ़ विश्वास को व्यक्त करती है :-

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १०४ !
(२) वही, पद सं० १६६ ।

माई हौं हरि की, हरि मेरौ, जिनकोउ बीच परौ ।
रस अनरस की हौं ही समझौं, न दुरै प्रीत कोई कछू करौ ।
क्यौं हू न छाड़ौ हरि कौ संग, जु औगुन जीवित धरौ ।
`रसिक प्रीतम` सौं प्रीत हमारी , दुरजन देखि जरौ ।।१

तन्मयता की एक और स्थिति भी दृष्टव्य है, जिसमें विव्हला नायिका अपने तन-मन की सुधि ही बिसरा देती है :-

राखत ही पिय प्रीति गुपत इन नैनन ही हो दई उघारि ।
देखन लगी बदन छबि इक टक, सबहिंन मैं पट घूंघट बिसारि ।
छूटि गई सकुच कुटिल कच देखत, सहचरी सिगरी रहीं विचारि ।
`रसिक प्रीतम` तुम हौ मनमोहन, मन न रुकत हौं रही पचिहारि ।।२

इस प्रकार के संकेत कवि की प्रेमा-भक्ति को व्यक्त करते हैं । वैसे समस्त श्रृंगार वर्णन अपनी परम्परा से प्रभावित होते हुए भी उत्कृष्ट हैं ।

-:: वियोग ::-

गोस्वामी हरिराय जी ने श्रृंगार वर्णन में संयोग पक्ष को विविध रूपों में प्रस्तुत करके वियोग पक्ष को भी अनेक चित्रों में संजो कर रखा है । वियोग के चारों प्रकार के भेदों -- पूर्वानुराग, मान, प्रवास तथा करुण की अनेक झांकियां उनके काव्य में प्राप्त होती हैं । विरह जन्य काम की दसों अवस्थाओं के भी अनेक चित्र उनके काव्य में विद्यमान हैं । जिनका उल्लेख `वर्ण्य-विषय` नामक अध्याय में किया जा चुका है ; इसके अनन्तर भी कवि ने वियोग की स्थितियों को विविधता से प्रस्तुत किया है ।

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- २०० ।
(२) वही, पद संख्या- २०४ ।

'सनेह-लीला' नामक आख्यानक रचना में उद्धव-गोपी संवाद के माध्यम से कवि ने गोपिकाओं के विरह का प्रभावशाली वर्णन किया है। ये गोप कुमारियाँ उद्धव के आगमन से ही विह्वल हो उठती हैं। उपालम्भ की स्थिति में इनके विदग्ध-वाक्य उद्धव जैसे ज्ञानी पुरुष को भी विचलित कर देते हैं। ये गोपिकाएँ अन्य वियोगिनी बालाओं से अपनी तुलना करती हुई कहती हैं :-

यह तो तिनको चाहिए जिनके मन अंतराय ।
दादुर तो जल बिन जियै, मीन तुरत मर जाय।
हैं दोऊ एक ठौर के, दादुर मीन समान ।
वे जल बिन मारुत भखैं, वे बिछुरत तजे प्रान ।।१

नायक कृष्ण के चरित्र को लक्ष्य करती हुई वे कह उठती हैं :-

तन कारो मन साँवरो, कपटी परम पुनीत ।
मधुकर लोभी बास को निमिष एक के मीत ।।२

कहीं-कहीं कवि की यह नायिका जायसी की नायिका की तरह अपने विरह-अनुभूति का अतिक्रमण भी कर जाती है :-

हैं या भीतर दव जरै, धुंवा प्रगट नहिं होय ।
कै जिय जाने आपुनी, कै जिन लागी होय ।।३
+ + ++ + +
जल थोरो नांहिन कछू, सागर नदी नवान।
स्वाँति बूंद चातक हुवै, अरु सब झूंठ समान ।।

---

(१) सनेह लीला- प्रका० वैष्णव हरगोविन्द हरीदास, नाथद्वारा, सं० २००७,
(२) वही ।
(३) वही ।

इस प्रकार के वार्तालाप शृंगार की पृष्ठ-भूमि को उद्दीप्त करते रहते हैं । ऐसे प्रसंगों में ये उद्दीपन विभाव ही अनुभाव, संचारीभाव, विभाव आदि का संकेत करते हुए पूर्ण रसत्व की ओर अग्रसर होते हैं ।

नायिका वियोग के ज्वर से पीड़ित है, उसे अब इस ज्वर के उपचार भी अच्छे नहीं लगते :-

विरह व्यापो मेरे सब अंग ।
सीतल वृथा उपाव करत क्यों , काट्यों मैन भुजंग ।
इन उपाय कहो कैसे उतरे, वह तो सखी अनंग ।
सदा जियावति ही सो तो अब, रही सुधा हरि संग ।
मुरली मंत्र सुनायों कानन, वेदन स्यामा अंग ।।१

इस विरह प्रताड़ित नायिका का विश्वास अब नैराश्य के धुंधलके में भटकता-सा प्रतीत होता है । हताश मन का विवेक और विश्वास अब बुझता- सा ज्ञात होता है ।२ दिन की परिधि युग-युगान्तर की सीमा में परिणित हो गई है ; ३ रात तारों को गिनते-गिनते गुजरती है ।४ 'हारिल की लकड़ी' - सा यह मन अब प्रियतम से विलग नहीं रह सकता ।५ इस वियोग विव्हला-बाला के प्राण अब तक अपने प्रियतम के लिये ही शेष रह पाए हैं, अन्यथा विरह ने तो अपने सभी शस्त्रास्त्र प्रयोग करके देख लिये हैं । अब तो थक कर विरह भी हार मान चुका है ।६

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ३२६ ।
(२) वही, पद संख्या- ३३१ ।
(३) वही, पद संख्या- ३३२ ।
(४) वही, पद संख्या- ३३० ।
(५) वही, पद संख्या- ३३३ ।
(६) वही, पद संख्या- ३३४ ।

पूर्वानुराग की प्रारम्भिक - अवस्थाओं से अन्त तक की सभी अवस्थाओं में नायिका अपने अस्थिर मन के विकल्पों-संकल्पों को अनेक भावानुभावों द्वारा व्यक्त करती रही है। पूर्वानुराग में अभिलाषा, हर्ष, विस्मय, असूया, उत्कंठा, विकलता, धैर्य, विक्षोभ, आवेग, जड़ता, चिंता, स्मृति, अमर्ष हास्य, दैन्य आदि विरह के सभी सोपानों पर यह कमनीयां अपने चरणों को अधिष्ठित कर चुकी हैं। इसके सर्वांग पर विरह-विष का व्यापक प्रभाव चढ़ चुका है। कानों में प्रिय के वचन-श्रवण की लालसा है, तो नयनों में उस मनोहारिणी छवि को अवलोकन की उत्कंठा है। दोनों हाथों में उस मन-मोहन को बाँधने की अभिलाषा है, तो रसना को उसके सुधामय अधरों के पान करने की तड़प।१

रीतिशास्त्र के अनेक सिद्धान्तों का गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में प्रयोग-सा लगता है। मध्यकालीन भक्त-कवियों ने प्रेमा-भक्ति के प्रश्रय में अपने माधुर्य-भावों को व्यक्त करने के लिए शृंगार की जिस रस-सरिता को प्रवाहित किया उसमें किन्हीं निश्चित कगारों का प्रतिबंध नहीं था। उनके हृदय के उद्गार अपने आराध्य के असीम रस में प्लावित हुए, उनकी रसमाधुरी में नि:शंक तैरते रहे हैं। गोस्वामी हरिराय जी ने भी अपने काव्य में शृंगार वर्णन के कुछ ऐसे ही चित्र प्रस्तुत किए हैं। विप्रलम्भ शृंगार में विरहानुभूति की तीव्रता उनकी साँस-साँस से प्रस्फुटित हुई है। वे अपने अभीष्ट के विछोह की कल्पना में जिस दशा की अनुभूति करते आए हैं, वह दशा काव्य शास्त्रियों के शास्त्र मंथन से नहीं प्रकटी, वरन् अनुभूत तथ्यों के प्रत्यक्ष प्रभाव ही ऐसे वातावरण के प्रति संकेत कर सकते हैं।

विरह चित्रण में कहीं-कहीं कवि के कथ्य में असंतुलन का भी आभास होता है। एक पद में विरह की विस्तृत पृष्ठ-भूमि निर्मित करके

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ३३४।

कवि ने अन्त में कृष्णा का संयोग दिखला कर चित्र को अव्यवस्थित-सा कर दिया है, यथा ---

हरि के विरह बिकल ब्रजबाल ।
बिथुरे बार बसन सुधि बिसरी, कहत फिरत बन बन गोपाल ।
कहाँ गए चित हरि लैके हरि, यों बूझत द्रुम, बेली, जाल ।
- - - - - - - - - - -।
कबहुक रोदन करत दीन अति, दीजे दरसन रसिक रसाल ।
अति उदार करुना रस पूरन, प्रगट भए श्रीपति तत्काल ।।१

यहाँ कवि ने विरह की अवस्था का चित्रण किया है । नायिका अपने प्रियतम के विछोह से व्याकुल हो उठी है, इसके केश बिखर गए हैं, सुधि बिसर गई है, वस्त्र अस्तव्यस्त हो रहे हैं, बन-बन में अपने प्रिय को ढूंढ़ती हुई फिर रही है । वृक्षों तथा वल्लरियों से पूछ रही है कि उसका प्रिय कहाँ है ? कभी अतिदीन होकर रो उठती है और कह उठती है कि हे प्राणपति अब मुझे दर्शन दीजिए- कवि ने यहाँ तक का वर्णन वियोग-अवस्था को पूर्ण रूप से चित्रित करने के लिए किया है, किन्तु इस दीन-दुखिया के दर्दको वह अधिक देर सह नहीं पाया और इसी पद के अन्तिम दृश्य में वह नायिका को उसके प्रिय से तुरन्त ही मिला देता है ।

अति उदार करुना रस पूरन, प्रगट भये श्री पति तत्काल ।

यहाँ विरह के प्रसंग में एक दम से संयोग का वातावरण अपनी मर्यादा तोड़ कर उपस्थित हो उठा है ।

प्रकृति जन्य उद्दीपक विभावों में कोई विशेष उल्लेखनीय बात दिखलाई नहीं देती । कुछ-क चित्र नवीन कल्पना से भी अभिप्रेरित हैं ।२

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ३००
(२) वही, पद संख्या- ३४६ ।

तथापि अधिकांश में परम्परा-पालन ही है ।

उपर्युक्त विवेचन में हम देख आए हैं, कि गोस्वामी हरिराय जी ने शृंगार वर्णन में अधिक रुचि प्रदर्शित की है । इनका शृंगार काव्य उनके भक्ति हृदय की अभिव्यक्ति था ; प्रेमा भक्ति जन्य ये माधुर्य-भानुकूल सरस चित्र कवि के दो रूपों को साकार करते हैं ; प्रथम तो कवि के कलाधर-रूप में शृंगार काव्य की विविध झाँकियाँ और उनकी कलात्मक अभिव्यक्ति को तथा दूसरी ओर कवि के भक्ति-भाव जो निरंतर-प्रारम्भ से अंत तक बने हुए हैं । कवि ब्रज-बालाओं में विचरण करता हुआ सा अपने आराध्य के समीप पहुँचने को व्याकुल रहा है ! यही कारण है कि कवि ने स्थल-स्थल पर प्रभु, दयाकर दीन दयाल आदि शब्दों का प्रयोग किया है ! संयोग चित्रण में भी कवि ने अपने आराध्य का सामीप्य प्राप्त कर उसे एकात्म की स्थिति तक पहुंचाने का यत्न किया है । कवि स्वयं की सत्ता को अवसर पड़ने पर उस 'जोति पुंज,' सर्वोपरि कृष्ण की सत्ता में विलय करने को सदैव तत्पर रहा है । यही कारण है कि वह गोपीभाव से रति-केलि में विविध प्रकार से अपने इष्ट को तुष्ट करने की चेष्टा करता रहा है । भावाधिक्य की यही स्थिति शृंगार के स्थूल-चित्रों का भी कारण कही जा सकती है !

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है, कि गोस्वामी हरिराय जी का शृंगार-काव्य परम्परागत होते हुए भी अपनी निजी विशिष्टता रखता है । भक्ति एवं दर्शन के विविध प्रभाव उनके शृंगारपरक वर्णन में समाहित हैं । कवि ने कृष्ण की शृंगार-लीलाओं के प्रसंग में एक सम्पन्न भाव-योजना को गठित किया है, जो पाठक के हृदय को पद-पद पर रस-सिक्त करता रहा है । गोस्वामी हरिराय जी ने कहीं भी किसी प्रकार के नियमों में बंधने की चेष्टा नहीं की, उनका काव्य स्वच्छन्द विचारों का ही वाहक रहा है ।

शृंगार वर्णन का विवेचन कर लेने के पश्चात् गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में समाहित शान्त रस पर भी एक दृष्टि डाल लेना यहाँ अपेक्षित है ।

उनका समग्र काव्य चाहे वह वात्सल्य प्रधान हो अथवा शृंगार-प्रधान या शान्त से युक्त भक्ति की एक सूत्रता सर्वत्र देखी जा सकती है । शान्त भावों के प्रसारण में भी भक्ति की महत्ता ही सर्वोपरि है । शान्त-रस का आधार स्तम्भ ही भक्ति है, अत: भक्ति के महत्व प्रतिपादिन में ही शान्त-भावों को व्यक्त किया गया है ।

-:: शान्त-रस ::-

शान्त रस का समर्थन पंडितराज जगन्नाथ ने किया था, इनके अनुसार भरत मुनि ने आठ रस ही न मान कर शान्त सहित नौ रसों को मान्यता दी है [1]। आचार्य मम्मट ने भी शांत रस की पृथक् सत्ता स्वीकार की है [2]। आचार्य विश्वनाथ ने शान्त एवं वात्सल्य सहित दस रसों का उल्लेख किया है ; [3] संस्कृत के धर्म ग्रंथों में इस रस का पर्याप्त प्रयोग मिलता है । हिन्दी में भक्त कवियों ने इसे प्रमुख रूप से ग्रहण किया है । कृष्ण भक्त कवियों में अष्टछाप के कवियों ने इसे विशेष महत्ता दी है । गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में इस रस का संक्षिप्त रूप से ही प्रयोग हुआ है ।

शान्त रस में शम या निर्वेद स्थायी भाव है । ब्रह्म का स्वरूप-बोध आलम्बन है । विरक्त व्यक्ति इसका आश्रय है । हर्ष जन्य अश्रु, आनन्द, रोमांच आदि अनुभाव हैं । सत्संग, सुखों की क्षणभंगुरता, ब्रह्म का स्वरूप - बोध

---

(१) 'मुनि वचनं चात्र प्रमाणम्'- रस गंगाधर-प्रथमानन, (चौ०सी०पु०)- १२१ ।

(२) 'निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रस: ।'काव्य प्रकाश ४।३५ ।

(३) साहित्य-दर्पण , आचार्य विश्वनाथ, ३।२५१ ।

इसके उद्दीपन विभाव हैं । निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति आदि संचारी भाव हैं ।[१] इस रस के अवगाहन में कृष्ण भक्ति कवियों ने संसार से विरक्ति के भावों को ही अधिक उद्दीप्त किया है, गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में भी यही स्वरूप देखा जा सकता है ।

संसार से विरक्त हरिलीला में निमग्न कवि के भावोद्गार द्रष्टव्य हैं :-

कौन मात-तात,कौन , कहाँ को तू सुत बंधु,
    जो लौं यह देह तो लौं नेह बानो खपनो है ।
नारी हू निराली होत, नारी हू ते न्यारो होत,
    तो हू तू अनारी नारी-नारी लगै जपनो है ।
श्री पुरुषोत्तम सम्हार, अपने जिय में विचार,
    यह संसार सुख सोवत को सपनो है ।
'रसिक' कहैं बार-बार, लाज हू न आवै तोहि,
    हाथ लै कुल्हाड़ी पाँव मारत तू अपनो है ।।[२]

यहाँ निर्वेद का भाव अपने पूर्ण प्रभुत्व पर है, पद का आकार छोटा होने पर भी भाव-प्राबल्य से यहाँ शान्त रस का स्थापन हुआ है । इसी प्रकार अन्य पद में कवि कहता है कि संसार में धन, पत्नी, पुत्र, पिता, माता सब चार दिन की सम्पत्ति हैं, जब यह शरीर पेड़ के पत्तों की तरह टूट कर निर्जीव हो जायगा, तब इसका सम्बन्ध इस पेड़ रूपी परिवार से कभी नहीं जुड़ पायगा, काल का कराल प्रहार जाने कब हो जाए, क्योंकि वह सदैव सिर पर महराता ही रहता है । इसलिए अरे अधम ! तू हरि का गुणगान क्यों नहीं करता :-

---

(१) देखिये- काव्य शास्त्र की रूप रेखा- श्री श्यामनन्दन शास्त्री, पृष्ठ- १३८ ।

(२) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ६६६ ।

जनम पदारथ बह्यौ जात री ।
सुमरन भजन करौ केशव कौ जब लगि येहि नहिं गरत गात री ।
ये संगी सब चारि दिवस के, धन दारा सुत - पिता मात री ।
बिछुर बहोरि मिलन नहिं पावे, ज्यौं तरुवर के खरत पातरी ।
काल कराल फिरत सिर ऊपर, आइ अचानक करे घात री ।
समझत नाहीं मूढ़ बावरे, तजि अमृत फल विषहि खात री ।
'रसिक' कहत तू सर्व छांड़ि कें, गुन गुपाल के क्यौं न गातरी ।। १

जिस प्रकार इस माया-जन्य परिवार के सम्बन्ध का कुछ भी महत्व नहीं है, उसी प्रकार यह संसार भी रात्रि के स्वप्न की भांति है, जिसे हर अवस्था में सुबह होने पर टूटना ही है । इस संसार में यदि कुछ सत्य है तो वह केवल भगवान कृष्ण का रसाप्लावित गुणगान ही है, इसलिए अरे मन ! तू उसी का ध्यान कर :-

बिना गोपाल कोई नहीं अपनौ ।
कौन पिता माता सुत घरनी, ये सब जगत रेन कौ सपनौ ।।२

शान्त रस के संदर्भ में, गोस्वामी हरिराय जीके प्राय: इसी प्रकार के पद मिलते हैं । कवि ने इन थोड़े से ही पदों में अपनी आर्त्त-वाणी को अपने प्रभु के कर्णों तक पहुँचाने का यथाशक्य यत्न किया है । स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी-भाव आदि सभी रसोपकरणों का समन्वय बड़े ही सहज ढंग से हुआ है ।

गोस्वामी हरिराय जी ने शान्त रस को व्यक्त अवश्य किया है, किन्तु इसमें वात्सल्य वर्णन जैसी न तो भाव प्रवणता ही है और न हीं शृंगार वर्णन जैसी सूक्ष्म अभिव्यंजना ।

गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में समाहित वत्सल, शृंगार एवं शान्त रसों के अब तक के विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गोस्वामी

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या-- ६६८ ।
(२) वही, पद संख्या --६६६ ।

श्री हरिराय जी के साहित्य में भक्ति की महत्ता सर्वत्र स्वीकारी गई है। कवि ने जहाँ कृष्ण चरित्र की श्रृंगार लीलाओं को व्यक्त किया है, वहाँ कवि के दो रूप उपस्थित होते हैं। एक तो, जहाँ उन्होंने श्रृंगार के स्थूल चित्रों में संभोग की माँसल अभिव्यक्ति की है, वहाँ कवि का भक्त-रूप इतना दब गया है कि उन रचनाओं को भक्ति रचना स्वीकार करने में हिचकिचाहट होती है। दूसरा स्वरूप यह भी है, कि उन्होंने स्थान-स्थान पर अपनी मर्यादा को रक्षित करने के लिए ऐसे स्थूल प्रसंगों को अधिक महत्व न देकर मौन-संकेतों से ही काम चला लिया है।

> जहाँ तक उनकी श्रृंगार रचनाओं का प्रश्न है, "इन कृष्ण-भक्त-कवियों का उद्देश्य घटना वर्णन अथवा कथा कहना नहीं था, इनका उद्देश्य अपने प्रभु के प्रेम में मत्त होकर उनके सौन्दर्य का वर्णन करते हुए मानस-भाव-रसात्मक को पदों में बहा देना, जिससे सिक्त होकर जन-मनोभूमि में भगवद्-भक्ति का अंकुर फूट निकले"।१

इन भक्त कवियों के श्रृंगार वर्णन को उनकी साधना की आध्यात्मक पृष्ठ-भूमि भी कहा गया है।२ किन्तु जहाँ श्रृंगार वर्णन में संभोग और वासना के नग्न चित्र निरूपित किए गए हैं, वहाँ इस प्रकार की सभी मान्यताएँ खण्ड-खण्ड होकर बिखर जाती हैं। गो० हरिराय जी के पद साहित्य में रति-प्रसंग के कुछ इसी प्रकार के वर्णन मिलते हैं:-

> आज दसहरा सुभदिन नीको, विजय करो पिय प्यारी पै आज ।
> घेरी है विकट मदन गढ़ गाढ़, तोर मैंड़ करो लालन राज ।
> इतनी बात सुनत नंदनंदन , विहँसि उठे दल कीन्हों साज ।
> 'रसिक'प्रभु पिय रति-प्रति जीत्यो, नूपुर किंकनी रुनझुन बाज ।।३

---

(१) सूर और उनका साहित्य, - डा० हरबंश लाल शर्मा, पृष्ठ- २८६ ।
(२) भक्त कवि व्यास जी, - श्री वासुदेव गोस्वामी, पृष्ठ- १५४ ।
(३) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ३७० ।

इस सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि भक्त भगवान् से अनुनय कर रहा है, कि इस विषय-वासना से ग्रसित जाल को ध्वन्स करके आप स्वयं मेरे अन्तस् में प्रविष्ट हो भक्ति के रस में मुझे निमग्न कीजिये। यहाँ तक तो अर्थ-संगति को बलात् घसीटा जा सकता है, किन्तु अन्तिम पंक्ति में 'रसिक प्रभु पिय रति-पति जीत्यौं, नूपुर किंकनी रुन-झुन बाजे' जैसे स्थूल चित्र को आध्यात्म के किसी भी संदर्भ से जोड़ना असंगत ही होगा। इतना ही नहीं कहीं-कहीं तो कवि ने नायक का अति धृष्ट रूप प्रस्तुत करके वासना के मांसल-चित्र निरूपित किए हैं :-

करि डारी चिरकुट चोली की, गहि आलिंगन लीनी।
दै कपोल दोऊ दिस चुंबन, अधर सुधारस पीनी ॥१

कंचुकी को चिथड़े - चिथड़े करने वाला कवि का यह नायक अपनी उद्दंडता का एक और धृष्ट-स्वरूप प्रस्तुत करता है :-

होरी खेलै री नंदलाल।
- -।
हाँ हाँ जुबतिन में धंसि कैं, दै भुज चुंवत गाल।
बदन उघारै, विहँसि निहारै, तिलक बनावै भाल।
कबहुक आलिंगन दै भाजै, आइ मिलै ततकाल।
कबहुक ढिंग व्है अचरा ऐंचै छुवावै नीरज नाल ॥२

आध्यात्मिक दृष्टि से कहा जा सकता है कि ब्रह्म प्राणी के बदन को उघाड़ कर उसके सत्य रूप से उसे परिचित कराता है, तत्पश्चात् पुष्टि सम्प्रदाय में प्रचलित तिलक के प्रति उन्हें आकर्षित करता है। एक ओर वह माया-ग्रसित

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- २१६।
(२) वही, पद संख्या- ३८५।

प्राणी को उसके स्वरूप का साक्षात्कार कराता है, तो दूसरी ओर 'तिलक' के प्रति आकर्षित कर वैष्णव धर्म का संकेत भी करता है। यहाँ तक अर्थ को तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है, किन्तु आगे की पंक्तियों से इस अर्थ का पुन: मेल नहीं मिला जा सकता, प्रत्यक्ष में जब अर्थ सुस्पष्ट है तो उसे आध्यात्मिक संदर्भ से नहीं जोड़ा जा सकता।

जैसा कि पूर्ववर्ती पृष्ठों में कहा जा चुका है कि गोस्वामी हरिराय जी का काव्य उनकी भक्ति-भावना से ही उदित हुआ है। भक्ति के आद्यन्त निर्वाह में उनके कृष्ण-चरित्र का उदाहरण दिया जा सकता है, जो उनके काव्य में सर्वत्र विद्यमान है। कृष्ण-चरित्र के सरस वर्णनों में जहाँ कवि ने कृष्ण की शृंगार लीलाओं का चित्रण किया है, वहाँ वह अपनी पूर्ववर्ती काव्य धारा से पूर्ण प्रभावित दृष्टि गोचर कहा जा सकता है। गोस्वामी हरिराय जी के काव्य के विवेचन से कवि के दो रूप स्पष्ट होते हैं-- घोर शृंगारिक कवि के रूप में तथा भक्त कवि के रूप में। भक्ति यथास्थल गौण अवश्य है, किन्तु उसका तीव्र या मंथर प्रवाह कहीं न कहीं है अवश्य, शृंगार के स्थूल चित्र में भी नायक-नायिका का कृष्ण राधा रूप में होना, भक्ति के प्रति उनके आग्रह को व्यक्त करता है।

अन्त में कहा जा सकता है कि भक्ति उनका धर्म था, जिसका उन्होंने सर्वत्र निर्वाह किया है, और शृंगार उनकी वृत्ति की लालसा थी, जो अपने चरमोत्कर्ष पर विद्यमान रही है। कवि के उभय रूप अपनी-अपनी सीमाओं में पूर्ण सम्पन्न रहे हैं। कवि की अभिव्यक्ति पूर्णतया उसके भावोद्वेगों पर आधारित रही है। जब उसका हृदय भक्ति-भावना के पावन क्षेत्र में विचरण करता है, वह कृष्ण की 'माधुरी-मूरत' के विविध स्वप्नों में निमग्न हो जाता है। जहाँ कृष्ण-चरित्र के वर्णन में भक्ति का उद्वेग रहते हुए भी शृंगार की धारा आ टपकती है, कवि उन क्षणों में अपनी सीमाओं का उल्लंघन न कर, मौन संकेत करके ही रह जाता है, यथा :-

'निस लीला कह्यौ कैसैं कहैं, सो तो निज जन मन मैं लहैं'।।१

इससे इतर जहाँ कवि के भावोद्‌गार श्रृंगार प्रधान होकर व्यक्त हुए हैं, वहाँ भक्ति को गौण बनाकर रति-वर्णन के संदर्भ में चित्र अधिक स्थूल बन पड़े हैं। कवि अपने उभय-स्वरूपों में पूर्ण सफल हुआ है।

अन्त में कहा जा सकता है कि गोस्वामी हरिराय जी का काव्य अपनी भाव-सम्पत्ति के कारण अधिक मार्मिक तथा विविधता युक्त है। कवि ने जहाँ मानसिक वृत्तियों के चित्रण में अपनी कुशलता का परिचय दिया है, वहीं उसने कृष्ण की रूप-छवि का अंकन भी बारीकी से किया है। गो० हरिराय जी का काव्य श्रृंगार और भक्ति रस से आप्लावित तो है ही, किन्तु उसमें वात्सल्य और शान्त रस की छींटें भी कुछ गहराई लेकर पड़ी हैं, जिनके प्रभाव को कम नहीं माना जा सकता, यह दूसरी बात है कि गोस्वामी हरिराय जी का काव्य अधिकांशत: मुक्तक होने के कारण सर्वत्र रस-परिपाक प्रस्तुत नहीं कर सका है, तथापि भाव-वैविध्य अपनी पूर्ण उत्कृष्टता पर आसीन है।

जिस प्रकार कवि के काव्य में विविध भावों की योजना सुन्दर ढंग से हुई है, उसी प्रकार उनके काव्य में कला के विभिन्न उपकरण भी अपने उत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत हुए हैं। अगले अध्याय में गो० हरिराय जी के काव्य में समाहित कला के विविध पक्षों पर विचार किया जायगा।

Chapter-6

षष्ठ-अध्याय

कला-पक्ष

"गोस्वामी हरिराय जी ने अपने काव्य में गुण दोषों पर अधिक ध्यान न देकर अभिव्यक्ति को ही अधिक महत्ता दी है। उनके काव्य का शिल्प भक्ति-कालीन मानदण्डों के अनुसार ही समायोजित हुआ है"।

गोस्वामी हरिराय जी के जीवन का उत्तर-काल हिन्दी साहित्य के कला प्रदर्शन का युग था। रीति-काल अपने पूर्ण यौवन पर था। शृंगारिक-कविताओं में कलात्मकता प्रस्तुत करना उस काल के कवियों की वृत्ति बन चुकी थी। साहित्य, युगीन प्रभाव से अछूता नहीं रह पाता, अत: गोस्वामी हरिराय जी के काव्य पर भी युग-प्रवृत्ति का प्रभाव देखने को मिलता है। गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में अन्य रीति-कालीन कवियों की भाँति कला प्रदर्शन के लिए विशेष आग्रह परिलक्षित नहीं होता। यही कारण है कि उनके काव्य में कला के उपकरण व्यवस्थित तथा क्रमबद्ध रूप में नहीं मिलते। कला के विभिन्न उपकरण उनके काव्य में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं, उन बिखरे हुए कला-उपकरणों को खोज कर उनका विवेचन करना इस अध्याय का अभिप्रेत है।

-: भाषा शिल्प :- भाषा मनुष्य की अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों ही संपृक्त होकर साकार होती हैं। भाषा साहित्य का परिधान ही नहीं अपितु कलेवर भी है। सामान्य भाषा और साहित्यिक-भाषा में अन्तर होता है। साहित्यिक-भाषा के प्रयोग से साहित्यकार की क्षमता का द्योतन होता है, क्योंकि साहित्यकार भावों के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग करता है। भाषा के अन्तर्गत सैद्धान्तिक दृष्टि से अनेक तत्वों का परीक्षण करना होता है।

गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में भक्ति-काल तथा रीति-काल के अन्य कवियों की भाँति विभिन्न भाषाओं के शब्द पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त गोस्वामी

हरिराय जी के काव्य में लोकोक्ति व मुहावरों का भी विशेष प्रयोग मिलता है, जो उनकी लोक-रुचि की ओर संकेत करता है। सर्व प्रथम उनके काव्य में उपलब्ध संस्कृत-तत्सम शब्दों की रूपरेखा द्रष्टव्य है :-

संस्कृत तत्सम शब्द

गोस्वामी हरिराय जी संस्कृत भाषा के उत्कृष्ट ज्ञाता तथा उद्भट साहित्यकार थे। उन्होंने संस्कृत भाषा में अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया था। फलत: उनके ब्रजभाषा काव्य में भी संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। ब्रजभाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग उस समय भाषा की उत्कृष्टता का मान-दंड बन चुका था। "संस्कृत भाषा का ज्ञान, उसकी सूक्तियों का उद्धरण, उसके तत्सम् और पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग विद्वता या पांडित्य का परिचायक समझा जाता था।"[१] गोस्वामी हरिराय जी जिस वातावरण में रहते थे, उसमें संस्कृत के पठन-पाठन का अधिक प्रचलन था। अत: अपनी स्वाभाविक वृत्ति तथा वातावरण के प्रभाव-स्वरूप उनके ब्रजभाषा काव्य में संस्कृत-तत्सम्-शब्दों का प्रयोग स्थान-स्थान पर मिलता है।

गोस्वामी हरिराय जी ने अपने पूर्वज-आचार्यों की 'बधाई-गान' तथा 'आश्रय' आदि के पदों में इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग अधिक किया है। उनके काव्य में प्रयुक्त संस्कृत-तत्सम्-शब्दों के दो रूप प्राप्त होते हैं --- पूर्णतत्सम्-शब्द तथा अर्द्ध-तत्सम् शब्द। पूर्णतत्सम्-शब्दों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं:-

अधरामृत,[३१२] आवृत,[७] कुसुम-ग्रथित,[४] कुण्डल,[७] गिरा,[१३] चित्रसारि,[३७६] चुंवन,[३६४] दृष्टि,[३३८] दुरमद,[५५] नगर-नरेश,[५] नूपुर,[१०] प्रस्वेद,[१४] पल्लव,[५०]

---

(१) सूर की भाषा- डा० प्रेमनारायन टंडन। प्रथम संस्करण- पृष्ठ- ८६।

संकेत :- शब्दों के ऊपर दिये गये अंक, प्रकाशित पद-संग्रह की पद सं० के सूचक हैं।

पीयूष,[४] मम,[४४६] रव,[२७] वचनामृत,[३१६] वलय,[७] वांछित,[३] विग्रह,[२२] वृत्ति,[४०३] वंशी,[३०] स्वस्तिवचन,[७] सुरति,[३१८] संगम[३०६] आदि ।[१]

गोस्वामी हरिराय जी ने इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग यद्यपि स्वाभाविक ढंग से ही किया है, किन्तु कहीं-कहीं ऐसे शब्दों का बाहुल्य अनुपयुक्त भी प्रतीत होता है, यथा-

भयौ यह श्रीवल्लभ अवतार ।
प्राची दिसि ते चन्द्रमा उदयौ, लछमन भूप-कुमार ।
श्री भागवत गूढ़-रस प्रगटन, कारन कियौ विचार ।
हरि लीलामृत सिन्धु संपूरित, भक्त हेत विस्तार ।।[२]

गोस्वामी हरिराय जी ने जहां ऐसे शब्दों का अधिक प्रयोग किया है, वहां काव्य कुछ बोझिल-सा प्रतीत होता है । इस प्रकार के शब्दों की भरमार में मूल-भावों का स्वाभाविक-सौन्दर्य विनष्ट हो जाता है । गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में ऐसे प्रयोग कम ही हुए हैं, तथापि इनमें कवि का पांडित्य - प्रदर्शन-सा आभासित होता है । तत्सम्-शब्दों का बाहुल्य एक अन्य पद में इस प्रकार है :-

वनरसाल पल्लव अरु सिखंडि कमल - ताल ।
पीत-वसन रुचि विचित्र भेद दोऊ माई ।
वन लीला गोपन की सुखद गोष्ठ मधिविराजें !
रंग-मंडप नट की ज्यौं नाचित सुखदाई ।।[3]

प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने कृष्ण के वेणु-वादन प्रसंग को स्पर्श किया है, किन्तु

---

(१) शब्दों के ऊपर दिये गये अंक, प्रकाशित पद-संग्रह की पद सं० के सूचक हैं ।
(२) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५३१ !
(३) वही, पद संख्या- १७१ ।

शब्दों के जाल में उलझा सुकुमार-भाव प्रसंग के स्वाभाविक सौन्दर्य को उभारने में असमर्थ रहा है । गोस्वामी हरिराय जी ने जहाँ एक ओर इस प्रकार के शब्दों का अधिक प्रयोग कर, काव्य को कुछ बोझिल बना दिया है, वहाँ दूसरी ओर इसी प्रकार के शब्दों द्वारा ही काव्य में लालित्य भी बन पड़ा है ।-

रस-निधान नव नागरी निरखि बदन मृदु -बोल ।
पूरन प्रगट्यो देखिये मनु चंद घटा की ओल ।
ललित -बचन समुदित भये, नैति-नैति से बैन ।
उर आनंद अति ही बढ़्यो, सुसुफल भये मिला नैन ।।१

कवि ने इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग लय-प्रवाह बनाये रखने के लिए भी किया है । शृंगार के एक चित्रण में यह पद दृष्टव्य है :-

करत स्नान काम जहाँ श्रम-जल, होत विरह दुख हानि ।
अधर-पान आलिंगन अतिफल, पीवत नाँहि अघानि ।।२

चित्र-योजना में इन तत्सम् शब्दों का प्रयोग-प्राचुर्य समुचित ही हुआ है, दान-लीला, सनेहलीला आदि विशिष्ट रचनाओं में यह प्रभाव देखा जा सकता है ।

तत्सम शब्दों के अतिरिक्त

गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में कुछ ऐसे भी शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो संस्कृत-तत्सम-शब्दों के अति निकट हैं । इन्हें अर्द्ध-तत्सम् शब्द कहा जाता है । "अर्द्ध-तत्सम् शब्दों का प्रयोग साधारणत: उच्चारण की सुविधा-सरलता के लिए किया जाता है"।३ अर्थ-संगति और भावों के अनुकूल

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १०५ ।

(२) वही, पद संख्या- १४३ ।

(३) सूर की भाषा- डा० प्रेमनारायन टंडन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ- १०५ ।

मूल शब्द में कवि अपनी सुविधानुसार किंचित परिवर्तन करता रहा है । गो० हरिराय जी ने इस प्रकार के शब्दों की कोई नवीन सृष्टि नहीं की थी, वरन् रूढ़ शब्दों को ही उन्होंने साधिकार ग्रहण किया था । कुछ शब्द द्रष्टव्य हैं:-

अस्तुति,[६४०] अम्रित,[६६८] अस्नान,[५१३] आभरन,[५१३] कंठाभरन,[१८] करतार,[१२५] करतब,[१७२] तृन,[६५४] थिर,[६६१] दरपन,[३९] धरम,[६०७] पदारथ,[६६८] मरजादा,[६०५] मरम,[६४६] रतन,[७] स्रवन[६६८] आदि ।

-o::o संस्कृत-तद्भव-शब्द o::o-

संस्कृत तद्भव-शब्द ब्रजभाषा की शब्द-सम्पदा हैं । ब्रजभाषा में अधिकांश शब्द संस्कृत के तद्भव ही हैं । गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में इस प्रकार के शब्द सर्वत्र देखे जा सकते हैं । जो शब्द मूल रूप से संस्कृत के होते हैं, किन्तु धीरे-धीरे प्रयोग की सुविधा और उच्चारण की अनुकूलता द्वारा बदलते - बदलते अपना पूर्ण स्वरूप ही परिवर्तित कर लेते हैं, उन्हें तद्भव - शब्द कहा जाता है ! गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में प्रयुक्त कुछ तद्भव शब्द प्रस्तुत हैं :-

जिजमान, मुदरी, गहबर, बैंत, गुसाईं, बिसबास, बिनवत, बमना, अचरज, परजंक, परायन, जीम, विलम, सिधि-रिधि, जाम, परनाम, थापन, आदि ।

::o-देशज-शब्द-o::

लोक में प्रचलित विभिन्न बोलियों से ये शब्द निसृत होते हैं, ब्रज के ठेठ ग्रामीण-शब्दों को हम इस श्रृंखला में रख सकते हैं । गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में अवधी, मारवाड़ी, गुजराती, पंजाबी आदि विभिन्न भाषा, बोलियों के शब्दों के अतिरिक्त ब्रज के कुछ विशिष्ट शब्दों का भी प्रयोग मिलता है । उनके काव्य में व्यवहृत कुछ देशज शब्दों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

अबार,[५०] इतरात,[२९२] औसेर,[६४] ऍबी,[१५६] घैया,[५२] चीतैगौ,[१४] ढ़ाँढ़ीढ़ाँढ़िन,[५] बलाइ,[२३४] नातर,[३५५] लिलार,[२८] सतरात,[२८३] सैंतमैंत,[३७३] आदि ।

इस प्रकार के शब्द कृष्ण की बाल-लीला के प्रसंग में ही अधिक प्रयुक्त हुए हैं। इन शब्दों के प्रयोग से तत्कालीन सांस्कृतिक वातावरण के भी संकेत मिलते हैं। सरल जीवन की ओर संकेत करने वाले ये शब्द, काव्य में स्वाभाविकता तथा शक्तिमत्ता का प्रादुर्भाव करते हैं।

-०।।विदेशी।।०- शब्द

जैसा कि पूर्ववर्ती पृष्ठों पर कहा जा चुका है, गो० हरिराय जी के काव्य में परिस्थितियों के परिणाम-स्वरूप कुछ विदेशी शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। विदेशी शब्द गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में प्रथमवार ही प्रयुक्त नहीं हुए, अपितु उनके पूर्ववर्ती भक्त-कवियों की रचनाओं में भी इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग मिलता है! गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में फारसी, और अरबी के सम्मिश्रित-प्रयोग हिन्दी-भाषा के कलेवर में अपना स्थान पहले से ही नियत कर चुके थे। इससे प्रभावित होकर अवधि, ब्रज आदि भाषाओं के साहित्य में भी इन शब्दों का प्रयोग अनायास ही होने लगा। गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में प्रयुक्त कुछ विदेशी शब्द अरबी तथा फारसी के प्रस्तुत हैं :-

अबीर,[४०३] आशिक,[(८४क)] कागद,[३५३] कुलह५१३, ख्याल.[३८६] खबर,[(८४क)] गुमान,[२७५] गुलाम.[६०७] जबाव.[१२] जहाज,[५८६] जालिम,[६७] दुनियां,[(८४क)] नजर,[४११] महबूब,[(८४क)] महल,[५१५] यार,[६५६] सहनाई,[५९८] सलूक,[६५०] सिरताज,[५८६] इजार,[३९०] हुसुन,[२५०] हौज,[४५१] लायक[६०४] । आदि ।

लौकोक्ति तथा मुहावरे :-

गोस्वामी हरिराय जी ने अपने काव्य में इन विविध शब्दों के अतिरिक्त भाषा को अधिक स्वाभाविक बनाने के लिए स्थान-स्थान पर कहावतों तथा मुहावरों का भी प्रयोग किया है। इन

लोकोक्तियों तथा मुहावरों के संयोग से भाषा की सम्पन्नता बढ़ी है तथा अर्थ सम्प्रेषण में भी सहजता आगई है। गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में प्रयुक्त कुछ मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ द्रष्टव्य है :-

छार परी,[२५४] नाँच नचावे,[२७१] अनखनात बोले,[२७१] जिय फारनी,[२८०] मोल लीनी,[२२६] छतियाँ भई प्रेम रस भीनी,[२६२] मन चीते,[२६३] गाँठ हृदे की,[२६६] मन मारि,[३०४] पाले-जु परी,[३२०] लागी लगन,[३४७] गुरु लागी माँखी[३६१] आदि। इसके अतिरिक्त कंचन मिल्यो है सुहाग,[३८८] ज्यों जल बाहर मीन,[३०६] हारिल की लकड़ी,[३११] तियन पै चूक परति आई है,[३११] जैसे अति-प्रचलित लोक-कथनों को भी उन्होंने अपने काव्य में अपनाया है। अधिकतर गोस्वामी हरिराय जी ने भाषा के लोक प्रचलित स्वरूप को ग्रहण किया है, इसी कारण लोकोक्तियों का उनकी भाषा में समाविष्ट हो जाना स्वाभाविक ही था। लोकोक्ति-निहित एक पद का अंश द्रष्टव्य है :-

कोउ मधुरे सुर बेनु बजावत, कोउ मिला गावत राग ।
'रसिक प्रीतम' प्यारी संग विहरत कंचन मिल्यो है सुहाग ।।१

उपर्युक्त सभी उद्धरणों से ज्ञात होता है कि गोस्वामी हरिराय जी के काव्य की भाषा विविध प्रभावों से आवृत्त थी, इसमें संस्कृत के तत्सम्, तद्भव शब्दों के अतिरिक्त अरबी, फारसी जैसे विदेशी शब्द भी निहित हैं। संस्कृत के तद्भव तथा तत्सम् शब्दों का प्रयोग, कवि की अपनी विशिष्टता न होकर ब्रजभाषा के वृत्त की ओर ही इंगित करता है। जैसा कि कहा जा चुका है ब्रजभाषा में संस्कृत के तद्भव-शब्द प्रचुरता से आये जाते हैं, संस्कृत से निस्सृत ये शब्द ब्रजभाषा की शब्द-सम्पदा हैं। गोस्वामी हरिराय जी के काव्य की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है, अत: तत्कालीन प्रचलित ब्रजभाषा का स्वरूप हमें उनकी रचनाओं में दृष्टिगत होता है। अरबी, फारसी आदि भाषाओं के

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ३८८ ।

शब्द भी तत्कालीन भाषागत प्रयोग के ही सूचक कहे जा सकते हैं। गोस्वामी हरिराय जी ने वृजभाषा के इस सम्पन्न स्वरूप को बड़ी कुशलता से अपने काव्य में अपनाया है। भावों और स्वरों के प्रवाह के अनुरूप उन्होंने शब्दों का प्रयोग किया है।

गोस्वामी हरिराय जी वृज के स्थायी-निवासी थे। वृजभाषा उनकी पैतृक-भाषा बन चुकी थी, फिर वे स्वयं भी संस्कृत के विद्वान, वृजभाषा के प्रवक्ता और एक कुशल साहित्यकार थे: अत: वृजभाषा पर उनका अधिकार था, जो उनके काव्य से ध्वनित होता है। गोस्वामी हरिराय जी ने वृजभाषा के प्रचलित स्वरूप को ही ग्रहण किया था, उनके काव्य में व्यवहृत भाषा की विशिष्टता तत्कालीन वृजभाषा की विशिष्टता है जो अन्य भक्त-कवियों के काव्य में भी देखी जा सकती है।

गोस्वामी हरिराय जी की भाषा में प्रयुक्त विविध शब्दों के विवेचन के पश्चात् उनके काव्य में प्रयुक्त वर्ण मैत्री का अध्ययन करना भी समीचीन प्रतीत होता है।

-:: वर्ण-मैत्री ::-

भाषा में जितना महत्व शब्द-योजना का है उतना ही वर्ण-मैत्री का। किस स्थल पर किस वर्ण का प्रयोग किया जाय। वर्ण को आवश्यकतानुसार किस स्वरूप में ढाला जाय। किस भाव के अनुरूप कौन सा वर्ण अधिक उपयुक्त होगा आदि सभी स्थितियों को ध्यान में रख कर ही कवि ने वर्ण-संयोजन किया है। सर्व प्रथम उनके काव्य में 'बाल-लीला' प्रसंग में प्रयुक्त वर्णों की एक झलक प्रस्तुत है :-

पलना फूल भर्‌यौ नंदरानी ।
ता मधि झूलत छमन मगनवा निरखत नैन सिरानी ।१

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ६ ।

एक ही लय-प्रवाह में मन्थर मन्थर तैरते - से ये शब्द 'छगन मगनवा' तथा 'नैन सिरानी' भावों के सजीव चित्र सामने प्रस्तुत कर देते हैं । इसी प्रकार--

फूली फूली हो नंदरानी ।
अपने लाल कों पलना फुलावत फूले नंद देख रजधानी ।।१

मां के उल्लास को पूर्ण रूप से व्यक्त करने के लिए कवि ने 'फूली' शब्द को पुनरुक्त किया है । कवि ने भाव के अनुकूल वर्णों का चयन बड़ी सावधानी से किया है । चित्रयोजना में भी कवि ने वर्णों की सरल रेखाओं पर सुन्दर-सुन्दर दृश्य अंकित किये हैं । इन्होंने कृष्ण की फांकी प्रस्तुत करने के लिए किसी विशेष वर्ण-जाल का आश्रय नहीं लिया अपितु सरल भाषा में उपयुक्त वर्णों से संक्षेप में ही ये अपने कृष्ण की मनोरम फांकी व्यक्त कर देते हैं-

हरि मुख देख बाबा नन्द ।
कमल नैन किशोर मूरत, कला सोलह चन्द ।।२

जहां कवि ने कृष्ण को पूर्ण यौवन प्रदान किया है वहां उनके कृष्ण की ये कौतुकी क्रीड़ाएं उपयुक्त वर्णों के साहचर्य से सजीव होकर नेत्रों के सन्मुख उपस्थित हो जाती हैं,-

गेंद तक मारी सांवलिया, नट नागर चित चोर
भयो निसंक अंक भरि लीनी, भ्रकुटी नयन मरोर ।।३

गोस्वामी हरिराय जी के कृष्ण इस प्रसंग में निश्चय ही नट-नागर भी हैं और चितचोर भी, जो निशाना बांध कर गेंद फेंकते हैं और टेढ़ी भ्रकुटी कर नव-यौवनाओं

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १३ ।
(२) वही, पद संख्या- ४३ ।
(३) वही, पद संख्या- ६७ ।

को अंक-बद्ध भी कर लेते हैं। यहाँ, गेंद का 'तक' कर मारना तथा नट नागर-चित-चोर का निसंक अंक में भर लेना, सभी दृश्य वर्णों की उपयुक्तता पर गतिशील हैं,। अभिव्यंजना को अधिक तीक्ष्ण बनाने में सहायक वर्णों के सन्तुलित ताल-मेल उपयुक्त वातावरण स्पष्ट करने में सहायक हुए हैं।

कहीं-कहीं तो काव्य का सम्पूर्ण सौन्दर्य वर्णों पर ही आधारित रहता है। कथोपकथन में कुछ वर्णों का संयोजन द्रष्टव्य है, जिसके अवलम्ब पर सम्पूर्ण पद का चमत्कार आरूढ़ है :-

ए हो बृजराज। कहा कहत ?
हौं दान मांगत, काहे को ? तेरे गो-रस को।
कब ते लागत ? जब ते तू देह,
यामें कहाँ सुख तेरे दरस को।
यह न भली। भली सोई कहो।
परस न कर, करहु रस बस को,
रसिक प्रीतम पिय बचन चातुरी,
आतुरी करि लीनी, भावत अंग परस को ।।१

प्रस्तुत पद में एक निश्चित सीमा तथा तुक के बंधन में निबद्ध रहते हुए भी उपयुक्त वर्णों के साहचर्य से भाव अपने सम्पूर्ण रूप में प्रस्फुटित हुए हैं। गोस्वामी हरिराय जी ने इस प्रकार के प्रयोग सम्पन्न किए हैं, एक कुशल जड़िया की भाँति वर्णों को छाँट-छाँट कर जमाये हैं जो उनके कुशल शिल्प के परिचायक हैं।

गोस्वामी हरिराय जी ने वातावरण के अनुरूप ही वर्णों का चयन किया है। प्रकृति-वर्णन, पक्षी-गान, नृत्य, अभिसार, केलि, वियोग, स्तुति आदि विभिन्न परिस्थितियों में प्रयुक्त वर्णों

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १०१ ।

का संयोजन अर्थ और लय के प्रवाह-क्रम को समान रूप से बनाये हुए हैं। एक ही प्रसंग में एक जैसे ही समान वर्णों का प्रयोग करना कवि की वृत्ति बनी हुई है। प्रकृति-वर्णन में दो दृश्यों के अंकन की समान वर्ण-योजना दृष्टव्य है :-

-- दादुर मोर पपैया बोलत, सीतल पवन झकोरे।
तैसेई बरन बरन आये बादर, मंद-मंद घनघोरे ।।१

अन्यत्र-

-- बरन बरन फूली द्रुम बेली, मंद मंद घन घोरें।
तैसी ए रितु सावन मन-भावन बोलत कीर पिक मोरें ।।२

कहना न होगा कि कवि के मस्तिष्क में एक निश्चित वातावरण के लिये निश्चित वर्णों का क्रम पहले से ही पैंठा हुआ था, जो अनुकूल अवसर पर व्यक्त होता रहा है। संयोग शृंगार में प्रणय की प्रथम स्थिति को व्यक्त करने के लिए जब कवि की नायिका कह उठती है :-

स्याम सों लगि लगन मन की ।।३

तब एक छोटे ही वाक्य में कथन की स्वाभाविकता और प्रेमी-हृदय की गहनता उपयुक्त वर्ण-मैत्री के कारण ही सरस रूप में व्यक्त हो उठी है। इसी प्रकार मान-मर्दित नायिका का उद्वेग भी इस पंक्ति में देखिये-

मान तजो, भजो कंट रितु बसंत आयो ।।४

आल्हाद की स्थिति को पूर्ण-रूप से व्यक्त करने के लिए तथा नायिका के विरह-प्रताड़ित हृदय के आवेग को प्रस्तुत करने के लिए सामूहिक स्वर में वर्णों का यह ताल-मेल निश्चय ही हृदय ग्राही बन पड़ा है। संयोग-शृंगार के वर्णन में

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ४७३।
(२) वही, पद संख्या- ४५६।
(३) वही, पद संख्या- ४६२।
(४) वही, पद संख्या- ४१०।

भाव-प्राबल्य के क्षणों में भी कवि ने वर्णों की ओर विशेष ध्यान दिया है :-

तुम नवीन नव नागरी, नूतन भूषन अंग ।
नयौ दान हम मांगही, नयौ बन्यौ यह रंग ।
चंचल नयन निहारिये, अति चंचल मृदु बैन ।
करि नहिं चंचल कीजिये, तजि अंचल-चंचल नैन ।।१

यहाँ गोस्वामी हरिराय जी ने `नूतन-भूषन` से अलंकृत जिस `नवीन, नव नागरी` के अछूते सौन्दर्य को चित्रित किया है, वह वर्णों के उपयुक्त स्कंधों पर ही आरूढ़ हैं। `चंचल` और `अंचल` शब्द के सार्थक प्रयोग से कविता का भाव-सौन्दर्य भी बढ़ा है और अभि-व्यंजना सामर्थ्य भी। इसी प्रकार गोस्वामी हरिराय जी ने साधारण बात को भी बड़े ही मनोरम वर्णों से सुसज्जित करके व्यक्त किया है:-

चतुर चितै चित चोर लियौ ।
चपल कटाक्ष सुलतान मिलिकै, छिन मैं विकल कियौ ।।२

भावों के आरोह अवरोह के साथ-साथ वर्ण भी अपने क्रम के अनुसार बदलते रहते हैं। नायिका द्वारा नायक को प्रसन्न कर कुछ विशेष कथ्य स्वीकार करवाने के लिए प्रस्तुत पद की वर्ण-मैत्री विशेष दृष्टव्य है :-

मेरी सौं, मेरी सौं, प्यारे । मोसौं कहौ उह बात ।
हाहा परौ पांयन पिय तेरे, मेरौ जिय अकुलात ।
`रसिकराय` प्रीतम सौं सब सुख, पावै मेरौ गात ।।३

इस पद में `मेरी सौं, मेरी सौं` तथा `हा हा परौं पांयन` जैसी साधारण उक्तियों के प्रयोग से काव्य में स्वाभाविक गरिमा आगई है। वर्ण-योजना का एक विशिष्ट-

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १०४ ।
(२) वही, पद संख्या- १८४ ।
(३) वही, पद संख्या- २३० ।

रूप हमें गोस्वामी हरिराय जी की संगीत प्रधान रचनाओं में मिलता है । गो० हरिराय जी एक कुशल कवि होने के साथ ही सुयोग्य संगीतज्ञ भी थे । अपने पूर्ववर्ती कवियों की भांति उन्होंने भी अनेकानेक राग-रागनियों का अपने पदों में निबन्धन किया है । राग-रागनियों के अनुसार वर्णों के संतुलित प्रयोग स्वरों के आरोह-अवरोह के साथ-साथ चलते हैं । कहीं-कहीं वर्ण स्वयं ही संगीत - प्रधान वातावरण को उद्दीप्त करने में सहायक हुए हैं । एक पद द्रष्टव्य है :-

सप्तसुर, तीन ग्राम, इकईश मूरछना ।
तान उनचास मिलि मंडल मधि गावै ।
चारि करन, हस्तक, सिर, नैन भेद बहु भांति ।
ताल सुरन उपजत गति नृत्य कर नचावै ।
ता तक थिंग किट थोंग थोंग कुकुफं कुकुफं ।
फनकिट धिनकिट धिम् धिम् मृदंग बजावै ।
'रसिक प्रीतम' छबि निरखत देव जुवती मोहीं ।
तन मन उमंगि उमंगि विविध कुसुम बरसत सुखपावैं ।।१

इस पद में वर्णों के उपयुक्त संपादन से ही चित्र में गति आगई है । शब्दों के ध्वन्यात्मक प्रयोग से संगीत के वातावरण निर्माण में सहायता मिली है । वाद्य स्वयमेव झंकृत हो उठे हैं, नृत्य की गति और भी तेज हो उठी है । कवि ने वर्ण-मैत्री के प्रयास में कुछ शब्दालंकारों का भी प्रयोग किया है, यथा--

श्री गोवर्द्धन सुभग सिखर पर, रच्यो जु डोल विसाल ।
कदली, कदम, कैतकी, कूज्यो, वकुल मालती जाल ।।२

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, पद संख्या- १७० ।

(२) वही, पद संख्या- ४१५ ।

तथा-

विछुरत ब्रजनाथ बाल विकल भई, तन बेहाल ।
बिथुरे रहे बार, धार दृगन नीर बरसै ।।१

अनुप्रास के अतिरिक्त कहीं-कहीं उन्होंने शब्दों का पुनुरुक्त प्रयोग भी किया है-

-- वे हरिनि हरिनी न रहाई ।२
-- स्रवन सुनत स्रवनत के मारग, ब्रजजन हिरदै आवै ।३
-- अहो मैं क्यौं हूं, क्यौं हूं करि कै मनाई ।४

कहीं-कहीं गोस्वामी हरिराय जी ने मात्र तुक जोड़ने के लिए जिन वर्णों का प्रयोग किया है, वे निरर्थक - से जान पड़ते हैं, ऐसे पदों में अस्वाभाविकता भी आ गई है, यथा--

बँसी मेरी प्यारी दीजे प्रान प्रान प्रान ।
यहि ठौर काल्हि भूल्यौरी, सुखदान दान दान ।
नहि काम की तिहारी दीजै आन आन आन ।
जाते करूँ मैं तेरौ री, गुन - गान गान गान ।
विनती सुनो हमारी, दे - कान कान कान ।
कीजै कृपा 'रसिक' पै जन - जान जान जान ।।५

उपरिनिर्दिष्ट सभी उद्धरणों से देखा जा सकता है कि कवि ने अपने काव्य में वर्ण-मैत्री का विशेष ध्यान रखा है । वातावरण और प्रसंग के अनुरूप वर्णों का ताल-मेल बैठाया गया है । संगीत-प्रधान पदों में उन्होंने स्वरों के आरोह-अवरोह के अनुसार ही वर्णों का प्रयोग किया है । उपयुक्त वर्णों के संयोजन से

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ३०१ ।
(२) वही, पद संख्या- ३३८ ।
(३) वही ; पद संख्या- १६६ ।
(४) वही , पद संख्या- २६४ ।
(५) वही , पद संख्या- १०१ ।

उनके शब्द चित्र गतिशील हो उठे हैं, नृत्य की विभिन्न मुद्राओं, कटाक्षों, वाद्य स्वरों, पक्षी कलरवों, प्रकृति के विभिन्न दृश्यों, कृष्ण की बाल-लीलाओं आदि विभिन्न पक्षों का गोस्वामी हरिराय जी ने सर्वथा उपयुक्त वर्णों के प्रयोग द्वारा कुशल चित्रण किया है। जहाँ कवि ने केवल तुकबन्दी के उद्देश्य से समान उच्चरित वर्णों को प्रयुक्त किया है, वहाँ काव्य में चमत्कार नहीं दीख पड़ता, वर्ण अपना विशेष प्रभाव प्रतिपादित नहीं कर पाते।

गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में वर्ण-मैत्री पर विचार करने के पश्चात् उनके काव्य में समाहित शब्द-शक्तियों की एक झलक भी प्रस्तुत है :-

०१।०
-::०शब्द-शक्तियाँ०::-

"कृष्ण भक्ति काव्य में ऋजु-तत्वों के प्राधान्य के कारण अभिधा-शक्ति का ही प्राचुर्य है। लक्षणा-शक्ति का प्रयोग अधिकतर चित्रांकन के लिए किया गया है। सूक्ष्म लाक्षणिकता तथा प्रतीकात्मकता का उसमें प्राय: अभाव है। उनकी शैली लाक्षणिक, और सांकेतिक नहीं है, क्योंकि अमूर्त के मूर्तिकरण अथवा मूर्त के अमूर्तिकरण करने का अवसर इन कवियों के प्रतिपाद्य में अधिक नहीं था। अपार्थिव के पार्थिव रूप के निर्माण में अदृश्य सांकेतिकता नहीं, दृश्य साकारता है, इसलिए लक्षणा की सूक्ष्म बारीकियाँ इस काव्य में नहीं मिलतीं"।१

कृष्ण-भक्त कवियों के अधिकांश काव्य में कथन की स्पष्टता होने के कारण प्राय: अभिधा शक्ति का ही प्रयोग मिलता है, तथापि शृंगार के कुछ प्रसंगों में लक्षणा-शक्ति का साहचर्य भी ग्रहण किया गया है।

अभिधा :- अभिधा-शक्ति के प्रयोग में विशेष चमत्कार स्वभावोक्ति में ही आता रहा है, अन्यथा अन्य वर्णन नीरस-से जान पड़ते हैं; एक

---

(१) ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना- शिल्प।
-- डा० सावित्री सिन्हा, पृष्ठ- ४७५

पद बाल-लीला के सन्दर्भ में अभिधार्थ में ही कितना मनोरम बन पड़ा है :-

आगैं दै गाय बुलाय सखा संग,
बेनु बजाय चले बन कौं ।
कर-तारी दैं, नाँचत रँग भरे,
धरि भेष गुपाल को खेलन कौं ।
चढ़ि दौर कदँब- पीताम्बर फेरत,
टेरत गैयन दोहन कौं, ।
ऐसी भाँति सखी, कैसै देखन पैये,
जो भई अति आतुरता मन कौं ।।१

इसके अनन्तर जहाँ कवि ने स्थूल दृश्यों के अंकन सीधे अभिधा में ही किए हैं, वे कुछ रोचक नहीं बन पड़े, यथा--

चौकी धरी चौक मध्य, मंजन को साज किए,
भरे धरे कुंभ तहाँ शीतल उष्णोदक ।
आनंद विलास-सौं विलसै पिय अंग अंग,
शोभा विराजै आइ प्रेम को प्रमोदक ।
मुसकात मुसकात, कहत माधुरी बात,
मधुर वचन अति, रसिक विनोदक ।
मंजन करत प्रान, वल्लभ को देखे त्रिय,
मंजन करत अति रसिक रसोदक ।।२

प्रात:क्रिया का यह सीधा-सादा वर्णन अपने कथन में प्रभाव-शाली नहीं बन पड़ा । इसी प्रकार -

बैठि ब्रजजन खिलावति हैं, नेह करि आधीन ।
लैकर लड़ुआ कहत नाँचो, गावत - परवीन ।

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी के चौरासी कवित्त, संख्या- ४३ ।
(२) रसिक बानी, लेखक के निजी संग्रह से, छंद संख्या- ५३ ।

पादुका उदपान -पीठक, लै आवौ हम पास ।
गहि उठावत बाँह हरि तब, गहत मनहि हुलास ।
बदन चुंबत उर लगावत, मोद हिये अपार ।
कबहु भेंटत भुज पसारत, गोविन्द परम उदार ।
कहा बरनौ बाल-लीला, कहत आवे छेह ।
'रसिक 'आनंद परम हीसौं, खेलत ब्रजजन गेह ।।१

इस प्रकार के वर्णन कवि के छन्द परिमाण को ही बढ़ा पाये हैं। इनमें न तो काव्यगत-गरिमा ही है और न भाव-गत प्रभावोत्पादकता ही ।

इस संदर्भ में जहाँ गोस्वामी हरिराय जी ने मानसिक,-प्रक्रिया का चित्रण किया है, वहाँ कथन भी प्रभाव-शाली बन पड़ा है :-

देखि दरपन में कहत गुपाल ।
अरी मैया यह कौन दूसरौ, मोही- सौ तेरौ लाल ।।२

जहाँ कवि ने चित्र-योजना में अभिधा का साहचर्य ग्रहण किया है, वहाँ वर्णन भी सजीव बन पड़े हैं :-

बिथुरे बार, सुथरी सारी, सिर तें उतारि,
लगत पुतरी -सी जु ठाड़ी ।।३

\+ + + + + +

पान चबावत कर करि बीरी,
इक टक व्है मोहन मुख निरखत, पलक न परत अधीरी ।।४

\+ + + + + +

रहत करि नीची नारि, रूखी रूखी अँखियन देखि रही पिय और ।

---

(१) गो: हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- २६ ।
(२) वही, पद संख्या- २८ ।
(३) वही, पद संख्या- १३७ ।
(४) वही, पद संख्या- १३३ ।

बदन निहारत अँचरा खैंचत, ठठकि रही लाज जोर ।
आलिंगन देत लेत उसासैं, सकुचत जिय जानि कुचकठोर ।
`रसिक प्रीतम` के अंग परसि रस परबस भई, क्रीड़त है गयौ भोर ।।१

`अभिधा` के यदि इस प्रकार के प्रयोगों का वर्णन किया जाय तो गोस्वामी हरिराय जी का अधिकांश काव्य प्रस्तुत किया जा सकता है । प्राय: सभी कृष्ण-भक्त कवियों ने सीधी-सादी रेखाओं और स्वाभाविक रंगों से कृष्ण-लीला के विविध चित्र अंकित किये हैं, अत: अभिधा शक्ति का उनके काव्य में प्राधान्य रहा है ।

-o:: लक्षणा ::o-

गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में लाक्षणिक प्रयोग प्राय: शृंगार वर्णन में प्राप्त होते हैं। शृंगार वर्णन के भी विरह, मान तथा खण्डिता के प्रसंग में इस प्रकार के प्रयोग अधिक हैं । गोस्वामी हरिराय जी ने इस प्रकार के प्रयोग सीधी व सरल शब्दावलि में किये हैं । एक उदाहरण द्रष्टव्य है :-

जल क्यौं न पियौ, जो तुम ही पिय प्यासे ।
समझ सोच भरि लाई जमुना-जल, पीवत क्यौं अलसासे ।
जल ही मिस तुम उझकत डोलत, नवल तिया रसरासे ।
`रसिक प्रीतम` जल तुम नहीं पीयौ, चाहत अधर सुधारस आसे ।। २

यहाँ कथन तो जल- पिलाने का है, किन्तु इस सीधी-सादी क्रिया में नायिका के कहने का लक्ष्य कुछ इतर ही रहा है । वह कृष्ण के प्रति `अधर सुधारस` की बात कह कर अपनी आन्तरिक इच्छाओं का प्रकाशन भी कर रही है । इसी प्रकार अन्य स्थल पर:-

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १५२ ।
(२) वही, पद संख्या- ६६ ।

सुघर तिय कौन, वाही पै उतारौं राई नौन ।
नागर नटवर तनिक चितवन मैं, बसैं बाही के मौन ।।१

यहाँ नायिका की यह उक्ति सहज होने पर भी इसमैं अपनी पराजय की तथा अन्य सखी की 'विजय' की भावना भी गौण रूप मैं विद्यमान है । इसी प्रकार खंडिता के प्रसंग मैं भी कृष्ण के स्वरूप का वर्णन कर उनके कृत्य के प्रति संकेत करना लाक्षणिक अर्थों मैं ही प्रयुक्त हुआ है ।२

'दान-लीला' मैं इस प्रकार का एक पद्यांश प्रस्तुत है जिसमैं नायक अपनी मनोभावनाओं को कथ्य मैं अन्य के माध्यम से प्रस्तुत करता है :-

कहा भयौ अंचल लगी, पीक हमारी जाय ।
याके बदले ग्वालिनी, मेरे नैंनन पीक लगाय ।।
++ ++ ++
मन मेरौ तारैन बसैं, अरु अंजन की रेख ।
चौखी प्रीत हिये बसैं, याते सांवल भेख ।। ३

गोस्वामी हरिराय जी ने ऐसे कथनों मैं कुछ प्रचलित लाक्षणिक शब्दों का भी प्रयोग किया है । इस प्रकार के प्रयोगों से काव्य मैं रोचकता बढ़ती है, साथ ही कवि को अपना लक्ष्य इंगित करने मैं भी सुविधा रहती है ।

लक्षणा-शक्ति की भाँति गोस्वामी हरिराय जी ने अपने काव्य मैं व्यंजना-शक्ति, का प्रयोग यत्किंचित ही किया है । उनके अधिकांश काव्य मैं अभिधा का ही प्राचुर्य है, तथापि

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- २२८ ।
(२) वही, पद संख्या- २३७ ।
(३) वही, पद संख्या- १०४ ।

कुछ लाक्षणिक प्रयोग भी सुन्दर बन पड़े हैं । व्यंजना का तो उनके काव्य में अभाव-सा है ।

विगत पृष्ठों पर हम कह आये हैं कि अपार्थिव के पार्थिव रूप निमार्ण में दृश्य-साकारता होने के कारण गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में व्यंजना शक्ति की सूक्ष्म बारीकियाँ नहीं पाई जाती, तथापि उनके दार्शनिक विचारों से संबंधित कुछ पदों में इस प्रकार के संकेत मिलते हैं जो नगण्य हैं ।

गोस्वामी हरिराय जी के काव्य की भाषा संबंधी विवेचना से ज्ञात होता है कि कवि ने उपयुक्त शब्दावलि के माध्यम से मनोरम दृश्यों का अंकन किया है । उनका काव्य चित्रात्मक अधिक है । अत: भाषा संबंधी विवेचन के पश्चात् गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में व्यवहृत चित्र-योजना पर भी एक दृष्टि डाल लेना अपेक्षित है ।--

-!! चित्रात्मकता !

काव्य और चित्र एक दूसरे से जुड़े हुए हैं । अनुभूतियों का कोई भी आकार नहीं होता इसलिये कवि उन्हें साकार व सादृश्य प्रस्तुत करने के लिये ही चित्र-योजना का अवलंब ग्रहण करता है । "अनुभूति को आकार देने का सबसे सहज माध्यम है चित्र, क्यों कि आकार मूलत: चित्र रूप ही होता है, अनुभूति निराकार होती है, उसका चित्र तो सम्भव नहीं, उसको व्यक्त करने के लिये कलाकार या तो अनुभोक्ता की मूर्त्त-चेष्टाओं का अंकन करता है या फिर अनुभोक्ता की वासना में रंगे हुए अनुभूति के विषय अथवा पात्र के रूप का चित्रण"।१ काव्य के माध्यम से कवि अपनी अनुभूतियाँ को आकार प्रदान करने की चेष्टा करता है । इससे उसके अनुभूत-दृश्य अन्य के सम्मुख स्पष्ट हो उठते हैं । इसलिये कवि को जब-जब अपनी अनुभूतियाँ के प्रकाशन की उत्कंठा बलवती जान पड़ी, उन्होंने एक निश्चित आकार तथा रूप-रेखा उसके लिए निश्चित की और अनुभूतियाँ का अंकन कर डाला ।

---

(१) देव और उनकी कविता- डा० नगेन्द्र, तृतीय संस्करण, पृष्ठ- १८१ ।

बेन जान्सन के अनुसार कविता और चित्र एक प्रकार की कल्पनाएँ हैं और दोनों ही अनुकरणमें संलग्न हैं। कविता शब्द-चित्र है तो चित्र मूक कविता।१

गोस्वामी हरिराय जी का काव्य भी अनुभूति प्रधान होने के कारण चित्रात्मक अधिक है। उन्होंने सरल रेखाओं में बड़े ही स्वाभाविक चित्रों की सृष्टि की है। चित्र-योजना का प्रारम्भ कृष्ण की बाल-लीलाओं से ही देखा जा सकता है। डा० सावित्री सिन्हा ने काव्य में चित्र-योजना को चार खण्डों में विभाजित किया है।-

१- आलम्बन-चित्र
२- अनुभाव-चित्र
३- प्रकृति चित्र तथा
४- वातावरण चित्र ।२

इस प्रकार के चित्रों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, १- लक्षित चित्र योजना तथा २- उपलक्षित चित्र योजना। उपलक्षित या अप्रस्तुत चित्र-योजना के अन्तर्गत अलंकारों का प्रयोग हुआ है तथा लक्षित वा प्रस्तुत चित्र-योजना में भाव-चित्र, ध्वनि चित्र, तथा वर्ण चित्र तीन प्रकार के रूप मिलते हैं। गो० हरिराय जी के काव्य में चित्र-योजना का विवेचन इसी क्रम से किया जा रहा है।

आलम्बन चित्र:- आलम्बन चित्र योजना में गोस्वामी हरिराय जी ने आलंबन

---

(1) 'Poetry and picture are arts of like nature and both are busy about imitation. It was excellently said of Plutarch- Peetry was a speaking picture and picture a mute poetry.- -Discoveries.'
-Loci, Critici- Saintsbury, 1931 Ed- Page: 114.

(२) ब्रजभाषा के कृष्ण-भक्ति काव्य में अभिव्यंजना-शिल्प- पृष्ठ-२०० (

की विविध चेष्टाएं, मुद्राएं, स्वभाव आदि का चित्रण बड़े ही सहज ढंग से प्रस्तुत किया है। गोस्वामी हरिराय जी ने जहाँ इस प्रकार के चित्र प्रस्तुत करने के लिए विशेष वर्ण-योजना का अवलम्ब ग्रहण किया है, वहाँ चित्रों में कुछ कृत्रिमता का आभास होता है। फिर भी इनके अधिकांश शब्द-चित्र अपनी स्वाभाविक गरिमा से पूर्ण सम्पन्न हैं। सर्व प्रथम भाव-चित्रों की योजना प्रस्तुत है!

:- भाव चित्र -:

इस प्रसंग में कृष्ण की बाल-लीला का एक चित्र द्रष्टव्य है :-

बुलावति जसुदा तोतरे बोल ।
अपने सुत की करत प्रसंसा, दुहुं कर परस कपोल ।
कर अँगुरी गहि निरखि नचावति, आनंद हृदै अतोल ।
- - - - - - - - ।
कबहुक लै हिरदै सों चांपत, चुंबन देत तमोल ।
'रसिक सिरोमनि' धन ब्रज भूषन, बालक अँग-अँग लोल ।।१

स्वाभाविक रूप से खींची गई इन सरल रेखाओं में माँ का वात्सल्य-भाव और शिशु की भाव-भंगिमाओं का चित्रण कवि के शिल्प-चातुर्य को व्यक्त करता है! माँ का अपने शिशु के कपोलों को दोनों हाथों से स्पर्श करना, अंगुली पकड़ कर नँचाना, हृदय से लगा लेना, चुंबन करते समय तमोल का रँग लगा देना आदि अनेक भाव इस सहज कथन में साकार हो उठे हैं। इन चित्रों में न तो विशेष वर्णों की ही आवश्यकता है और न विशेष रँगों की।

कहीं-कहीं कवि ने चित्र-योजना में जिन रेखाओं को उभारा है, उनमें अनेकानेक रँग अपनी पूर्ण गरिमा के साथ अनायास ही सुशोभित हो उठे हैं!--

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- २८।

-- अँसुआ भरे दृगन हँसे, आयि गरें लागे ।१

शिशु की आँखों में अश्रु प्रवाहित हैं, फिर भी वह हँस रहा है। कवि ने आलम्बन की चेष्टाओं में गति ही प्रदान नहीं की, वरन् मानव-स्वभाव की सूक्ष्म प्रकृति का भी इसमें दिग्दर्शन कराया गया है।

इसी प्रकार माँ का शिशु के समीप जाकर चुटकी बजाना, उसके गले में अँगुलियाँ चला कर उसे हँसाना, भाँति-भाँति के खेल-खिलौनों से उसे बहलाना आदि का चित्र माँ और शिशु की क्रियाओं को एक चल चित्र की भाँति साकार कर देता है।--

हँसत जाय ढिंग चुकटी बजावै, करि कँठहि गुलगुली हँसावै ।
देखौ मेरे सुत, फिर की फिराऊँ, नीकैं करि भुनभुना-
बजाऊँ ।
कबहुक दरपन करले दिखावै, अँगुरिग गहि यह कौन कहावै ।
कँसत बदन लखि लेत बलैया, जानि लगौ दीठि सुतहि मेरी दैया ।
कबहूँ दृग मीड़े दोऊ कर सौं, पौंछत जननि छोर अँचर सौं ।
कबहुक करलै अँगूठा चूसै, ब्रजधन के तन-मन धन मूसै ।
कर पौंहची फुदना मुख मेलै, बदन जम्हाई मुग्ध तन खेलै ।
चरन कमल दोऊ कर पकरै, नूपुर ध्वनि सुनि सुवन मनधरै ।
करवट लेत किंकिनि धुनि बाजै, शब्द सुनत कोकिल मन लाजै ।।२

इस प्रकार के चित्रों से पाठक स्वयं प्रेक्षक बनकर कृष्ण की कौतुकी-क्रीड़ाओं का साक्षात् अवलोकन करने लगता है। वह यशोदा के वात्सल्य में स्वयं के भावों को अन्तर्हित कर बैठता है। यही कवि के चित्रों की विशेषता है जो साकार होकर पाठक के हृदय में पैठ जाते हैं।

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १८ ।
(२) वही, पृष्ठ संख्या- २१ ।

शृंगार-वर्णन में भाव-चित्रों की व्यंजना विशेष रूप से सफल हुई है। नायक-नायिकाओं के विविध भावों को प्रस्तुत करने में कवि ने जिन चित्रों की योजना की है, उनमें किसी भी बलात्-यत्न का आभास नहीं होता :-

एक भुजा कंकन गह्यो, एक भुजा सों चीर ।
दान लैन ठाड़े भये, सो गहबर कुंज कुटीर ।
+ + + + + +
लै लकुटी ठाड़े भए, जानि साँकरी खोर ।
मुसकि ठगोरी डार कैं, मोसों स्कत लई रति जोर ।।१

नायक द्वारा एक हाथ से नायिका का कंकण पकड़ना तथा दूसरे हाथ से वस्त्र खींचकर गहन कुंज में खड़े रहना, 'दान-लीला' के सम्पूर्ण चित्र को व्यक्त कर देता है। साफ- और सपाट कागज पर सीधी पंक्तियों से बने ये चित्र अपने सम्पूर्ण वातावरण को इस प्रकार व्यक्त कर देते हैं, जैसे रंग मंच से एक दम परदा हट जाता हो, और अभिनेय दृश्य साकार हो उठता हो ;

भावों की सूक्ष्म व्यंजना के लिए भी कवि ने किसी विशेष उपकरण का साहचर्य ग्रहण नहीं किया। इसी प्रकार का एक भाव-चित्र प्रस्तुत है :-

रहत करि नीची नारि, रूखी-रूखी अँखियन देखि रही पिय-ओर ।
बदन निहारत अँचरा ऐंचत, ठठकि रही लाज जोर ।
आलिंगन देत, लेत उसास, सकुचत जिय जानि कुच कठोर ।
'रसिक प्रीतम' के अंग परसि, रस परबस भई, क्रीड़त है गयो भोर ।।२

नायिका द्वारा नायक की ओर रूखी-रूखी आँखों से देखने में अतृप्ति तथा तृष्णा की जिस अभिव्यंजना का संकेत है, वह इन सहज रेखाओं से स्पष्ट हो उठी है।

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १५२ ।
(२) वही, पद संख्या- १०४ ।

इसी प्रकार 'सकुचत जिय जानि कुच कठोर', में नायिका के स्वाभाविक उद्भावों को भी मनोरम ढंग से चित्रित कर दिया गया है। आलिंगन-काल में नायिका के सूक्ष्मतम भावों को साकार करने में कवि पटु रहा है।

नायिका का इसी प्रकार का एक अन्य चित्र भी दृष्टव्य है :-

रही दृग दोऊ नीचे ढारि ।
मन में सोच करत मिलवे कों, कर कपोल तर धारि ।।१

वातावरण द्वारा मन पर आरोपित आन्तरिक भावों का भी इन पंक्तियों से आभास होता है। इस प्रकार गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में भाव-चित्रों को आकार देने की पूर्ण क्षमता निहित है। सरल-सरल रेखाओं से ही कवि ने उत्कृष्ट चित्रों को निर्मित करने में सफलता प्राप्त की है।

ध्वनि-चित्र :- गोस्वामी हरिराय जी ने अपने काव्य में कुछ विशिष्ट शब्दों के माध्यम से ध्वनि-चित्रों की भी योजना की है, किन्तु इस प्रकार के चित्रों की संख्या कम ही है, जो वातावरण को ध्वनित करते हुए दृश्यों को साकार कर सके हैं।

इस प्रकार के शब्द चित्र प्राय: वाद्य-यंत्रों के वर्णन में हुए हैं :-

ता तक धिंग किट थोंग कुकुभं-कुकुभं,
झनकिट धिनकिट धिम् धिम् मृदंग बजावै ।२

कुछ इसी प्रकार के चित्र कृष्ण की बाल-लीला में भी प्रस्तुत हुए हैं :-

झूलौ पालनै नंदनंदा ।
खन खन खन खन चूरा बाजे, मन में अति आनंदा ।
ठुन ठुन ठुन ठुन घुंघरू बाजे, तनन तनन सी बंसी ।

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- २०७ ।
(२) वही, पद संख्या- १७० ।

नैन कटाक्ष चलावत गिरधर, मंद मंद मुख हँसी ।
खट खट खट खट लकुटी बाजे, चटक चटक बाजे चुटकी ।
नँद महर घर सोभा निरखत, मोहन मन में अटकी ।
कुहुकुहु कुहुकुहु कोकिल बोले, भनन भनन बोले भौंरा ।
पी पी पी पी पपैया बोलें, संगिति सुर दौरा ।
फूफू फूफू फुन फुन बाजे, फिरक फिरक फिरै फिरकी ।
गुड़ गुड़ गुड़ गुड़ गुड़ की बाजे, प्रेम मगन मन निरखी ।
ढ़ो ढ़ो ढ़ो ढ़ो ढ़ोलक बाजे, गुनन गुनन गुन गावै ।
राधिका गिरधर की बानिक पर `रसिकदास` बलि जावै ।।१

इस प्रकार के वर्णनों में कुछ विशेष चमत्कार प्रतीत नहीं होता, अनेक वाद्यों या कोयल, पपीहा, आदि के स्वरों को प्रचलित सम्बोधनों में ज्यों के त्यों रखने में ध्वनि चित्र तो उपस्थित होते हैं, किन्तु इन ध्वनियों में विशेष आकर्षण प्रतीत नहीं होता ।

सामूहिक पर्वों के चित्रण में भी कवि ने कुछ ध्वनि चित्रों को योजित किया है, किन्तु वहाँ भी वह विशेष सफल नहीं हो पाया है, यथा--

-- तारी दै, नाँचत हो हो कहि, स्याम मिले हम माँही ।२
-- नूपुर रुनित, कुनित कटि मेखल, निरखि मदन मति भोरी ।३
-- कटि किंकनी झन्कार झनकत, संगीत उठत तरंग ।४
-- गैया घेरि घेरि राखीं, तरनि -तनया तट, कूल कालिंदी बैठे रहत,
हूँकि हूँकि फिर-फिर चितवत ब्रजनाथ कों, उनकी ओर न ही-
हेरवो चहत ।

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १७ ।
(२) वही, पद संख्या- ३६१ ।
(३) रसिक बानी, पद संख्या- १५ ।
(४) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ४३ ।

इस प्रकार के ध्वन्यात्मक-शब्दों का प्रयोग अष्टछाप के कवियों ने भी किये हैं, उन्होंने विशेष कर पावस-वर्णन में मोर, कोकिला, पपीहा आदि के गान व्यक्त करने में, घटा के घहराने में, शिशु के विभिन्न आभूषणों के झंकृत होने में, किसी को सम्बोधित करने में इस प्रकार के ध्वनि-प्रधान शब्दों का प्रयोग कर चित्र में ध्वनि को स्थान दिया है। गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में ध्वनि-चित्रों का परिमाण अत्यन्त सीमित है, और विशेष उल्लेखनीय भी नहीं।

वर्ण-चित्र (रंग विधान):- चित्र-योजना में गोस्वामी हरिराय जी वर्ण-चित्र प्रस्तुत करने में अधिक सफल हुए हैं। उपयुक्त स्थानों पर उपयुक्त रंगों के प्रयोग से चित्र को आकर्षक बनाने में वे कुशल रहे हैं।

राधिका के पालने का एक चित्र इस प्रकार है :-

नवल कनक को पालनों, प्यारी, रतन जटित जराय ।
गजमोतिन की झूमका, प्यारी, लटकत परम सुहाय ।
आस पास झालर बनी, प्यारी, पीत जरी की कोर ।
पचरंग फोंदा पाट के, प्यारी, सोभित हैं चहु ओर ।।१

इस तरह के वर्णन प्राकृतिक-चित्रों के निरूपण में भी देखे जा सकते हैं :-

-- सखी हरियारो सावन आयो ।
हरे हरे मोर फिरत मोहन संग, हरे बसन मन भायो ।२
-- रही झुकि लाल गुलाबी पाग ।
ता पर एक चन्द्रिका राजत, लाल तिलक छवि भाग ।३

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पदसाहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ६१ ।
(२) वही, पद संख्या- ४८३ ।
(३) वही, पद संख्या- ४६४ ।

--सावन की पूनों, मन-भावन हरि आए घर,
फूलूँगी पचरंग डोरी, बाँधोंगी हिडोरे !
पहरोंगी कसूमी सारी, कंचुकी कसि बाँधों कारी,
हीरा के आभूषन सोहैं अंग गोरे !!१

गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में उपलब्ध ऐसे चित्र प्राय: वर्णनात्मक प्रसंगों में ही अधिक प्राप्त होते हैं। शृंगार के विविध चित्रों में वर्णों का प्रयोग विशेष चातुरी से निरूपित किया गया है।

कृष्णाभिसारिका नायिका का यह चित्र कितना रोचक बन पड़ा है:-

पावस रात अमावस की,
पिय पास चली तन स्याम ही सारी।
नील-मनी हू के भूषन अंग,
तजो मुख-हास, परी न सँवारी ।
स्याम चुरी गहरे रंग रेखत,
बेर भई अँस छबि न्यारी ।
एते उपाय किये तन कैसे,
दुराय सके मुख चन्द उजारी !!२

इसी तरह खंडिता के चित्रों में भी रंगों के माध्यम से चित्रों को सरस बनाया गया है :-

बदन की काँति मोपै बरनी न जात ।
अधरन पीक, लीक पलकन, उरबिन गुन माल सुहात ।!३

गो० हरिराय जी ने इसी के अनुरूप 'सुरतांत' में नायिका का चित्र भी विविध चित्रों से सुसज्जित किया है।--

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ९८८ ।
(२) रसिक बानी; पद संख्या-, १५ ।
(३) गोस्वामी हरिराय जी के चौरासी कवित्त, संख्या- ३३ ।

आलस भोर उठी री सेज तें, कर सों मीड़त अखियाँ ।
सिगरी रैन जगी पिय के संग, देख चकित भई सखियाँ ।
काजर अधर कपोलन लीक लगी है, रची महावर नखियाँ ।
'रसिक प्रीतम' दरपन लै प्यारी, चीर सँभार मुख ढ़कियाँ ।।१

जहाँ कवि ने वर्णों का प्रयोग आलंकारिक रेखाओं में व्यक्त किया है, वहाँ चित्र चमत्कृत भी हो उठे हैं :-

कोमल अरुन चरन जुग सोहैं, दस नख की अरुनाई ।
मनहु भक्ति अनुराग इक ठौरे, व्है इहाँ देत दिखाई ।
- - - - - - - - - ।
पीताम्बर ढाँपत अंग जननी, चरनन देत उठाय ।
मनहु नील धन छाँह दामिनी, बिच बिच प्रगट लखाय ।।२

कवि ने इस तरह के रंगों का प्रयोग सयत्न किया है, यही कारण है कि इन चित्रों में चमत्कृति होते हुए भी स्वाभाविक लालित्य नहीं है । ऐसे स्थलों पर कृत्रिमता ही अधिक दिखलाई देती है ।

वर्ण-चित्रों में प्राय: चार प्रकार के चित्र मिलते हैं, १- अनुरूप वर्ण-चित्र, २- मिश्रित वर्ण चित्र, ३- विरोधी वर्ण चित्र, तथा ४- रंगों के प्रतिकार्थ ।

अंग-अंग प्रतिबिंबित दोउन के बसन भतियाँ ।३
(अनुरूप वर्ण चित्र)

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- २३६ ।
(२) वही, पद संख्या- १६५ ।
(३) वही, पद संख्या- २० ।

पीत पट सुभ कंध सोहै, घन छटा मनो संग ।
मुक्ति गुंजा-माल उर पर किधौं त्रिवेनी गंग ।।१
(मिश्रित वर्ण चित्र)

नव निकुंज में अति रसमाते गौर-स्याम सम जोरी ।।२
(विरोधी वर्ण योजना)

सारी सेत पहिर तन सुख की, औलि गुलाल करैये ।
'रसिक प्रीतम' प्यारे सौं मिलियै अन्तर भाव जनैये ।।।३
(रंगों के प्रतीकार्थ)

उपर्युक्त उद्धरणों के अन्तिम चरण में नायिका अपने अन्तरभावों को व्यक्त करने के लिये ही स्वेत साड़ी पहिन कर उसे गुलाबी आभा देने को यत्नशीला रहा है ! इससे रंगों के रूढ़ प्रतीक स्पष्ट हुए हैं ।

गोस्वामी हरिराय जीने जहां भी चित्र योजना में अलंकरण हेतु या स्वभावोक्ति के निरूपण में वर्णों का चयन किया है, वहां निश्चय ही वे सफल हुए हैं, किन्तु जहां उन्होंने केवल वातावरणको स्थूल रूप में व्यक्त करने के लिए वर्णों का प्रयोग किया है, वहां उनके रंग चित्रों को प्रभावशाली नहीं बना पाए हैं । अनुभावों के चित्रण में संहिता तथा सुरतांत के चित्र अधिक रोचक हैं । प्रकृति के चित्रों में कुछ उल्लेखनीय महत्व नहीं है ! वातावरण के चित्र भी अधिक महत्व प्रतिपादित नहीं कर पाये । सामूहिक पर्वों तथा त्यौहारों पर उन्होंने चित्र सहज ढंग से ही प्रस्तुत किए हैं, किन्तु उनमें कवि की कुछ विशेष देन नहीं ।

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १४५ !
(२) वही, पद संख्या- ४३ ।
(३) वही, पद संख्या- ४०३ ।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में चित्र-योजना अपने स्वाभाविक रूप में सम्पन्न हुई है। चित्र योजना में उन्होंने सूक्ष्मतम रेखाओं का सहारा भी लिया है और स्थूल रेखाओं का भी। विविध रंगों के प्रयोग से उन्होंने इस चित्र-योजना को अलंकृत भी किया है, तथापि रंगों के प्रयोग प्रतीकार्थ में ही अधिक सफल हुए हैं। कवि ने चित्रों की योजना सयत्न भी की है और उसके शब्द चित्र अपनी स्वाभाविक सरल रेखाओं से अनायास भी व्यक्त हुए हैं।

गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में चित्र-योजना का विवेचन कर लेने के पश्चात् उनके काव्य में व्यवहृत अलंकारों पर भी एक दृष्टि डाल लेना समीचीन प्रतीत होता है।

-o:: अलंकार ::o-

काव्य में सौन्दर्य-वर्द्धन हेतु अलंकारों का प्रयोग होता आया है। "रस-समाहित-चेता कवि जब अपने मन को रस-केन्द्रित करता है तो अलंकारों का औचित्य-पूर्ण विन्यास अपने आप जाता है"।१ कवि के हृदयस्थ उद्गार जब प्रकाशन के लिए वाणी का साहचर्य ग्रहण करते हैं, तब कवि उन्हें पाठकों को सुलभता और रोचकता से ग्राह्य बनाने के लिए अभिव्यक्ति को विशेष रूप प्रदान करता है। इस प्रक्रिया में भाव और विचारों की दृष्टि से भाषा का स्वरूप भी परिवर्तित करना पड़ता है। कवि की वाणी को अधिक सरस बनाने के लिए तथा उसमें अधिक प्रेषणीयता समाहित करने के लिए ही इन अलंकारों की सहायता लेता है।

'वर्ण-योजना' के अन्तर्गत गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में समाहित कुछ शब्दालंकारों का उल्लेख किया जा चुका है, यहाँ

---

(१) तुलनीय – सूर और उनका साहित्य, डा० हरवंशलाल शर्मा, पृष्ठ – २६६।

उनके काव्य में समाहित अर्थालंकारों का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

उपमा :-

गोस्वामी हरिराय जी ने अपने काव्य में उपमा अलंकार का यत्किंचित ही प्रयोग किया है । इस संदर्भ में एक उदाहरण द्रष्टव्य है :-

यौं लगि रही स्याम के चरनन, ज्यौं गुरु लागी माखी ।१

यहाँ कवि ने कृष्ण को गुड़ के समान सरस बताकर नायिका को मक्खी की तरह रस-याचिका कहा है । गुड़ पर मक्खी का लालायित होना स्वाभाविक होते हुए भी उपमा की दृष्टि से विशेष महत्व प्रतिपादित नहीं कर पाती । यहाँ कवि ने मौलिक-कल्पना का सृजन अवश्य किया है, किन्तु मक्खी के गुण-धर्म को देखते हुए ये 'हीनोपमा' यहाँ उपयुक्त प्रतीत नहीं होती । इस प्रकार की मौलिक कल्पनाएं उनके काव्य में यत्किंचित ही हैं, अन्यथा उन्होंने परम्परावत् कल्पनाओं को अधिक ग्रहण किया है । कहीं-कहीं तो रूढ़ उपमानों के प्रयोग प्रभावहीन- से जान पड़ते हैं, यथा --

-- जैसे लगि हारिल की लकड़ी सुआ रहत दै चौंच ।२
-- चित्र-लिखी सी रही ठाढ़ी सब । ३

गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में अन्य अलंकारों की अपेक्षा उत्प्रेक्षा का अधिक प्रयोग हुआ है । उत्प्रेक्षा के माध्यम से कवि ने कुछ नवीन कल्पनाओं का भी प्रकाशन किया है । कहीं-कहीं तो कवि ने प्रसंगवश उत्प्रेक्षाओं की लड़ी-सी लगा दी है, जिसमें अभिनव कल्पनाओं की भी झलक दिखाई देती है ।

उत्प्रेक्षा :-

उत्प्रेक्षा अलंकार का एक उदाहरण प्रस्तुत है, जिसमें गोस्वामी

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ३६१ ।
(२) वही, पद संख्या- ३३३ ।
(३) वही, पद संख्या- ४६६ ।

हरिराय जी ने कुछ नवीन कल्पनाओं को स्पर्श किया है:-

पीताम्बर ढांपत अंग जननी चरनन देत उठाय ।
मनहुं नील-घन छांहि दामिनी, बिच बिच प्रगट लखाय ।
कर अंगुरी मुदरी दस राजे, नख चन्द्रन के पास ।
मानहु मणिधर पियन चले हैं, सुधा महारस आस ।
दुहुं कर पहोंची, रतन जटित नग, ता ढिंग फुदना लटके ।
मानहु अलिकुल सब इकत्र व्है, चलत द्वार पैं अटके ।
बाजूबन्द जरे नग-हीरा, उठत अनूपम जोति ।
मनहुं स्याम रस महासिंधु तें, सुधा प्रगट सी होति ।।१

उपर्युक्त सभी उत्प्रेक्षाएं कवि की स्वस्थ कल्पना-शक्ति की परिचायक हैं। कहीं-कहीं कवि ने नवीन कल्पनाओं को आग्रह पूर्वक ग्रहण कर काव्य में क्लिष्टर्थ भी उत्पन्न कर दिया है :-

मलयज तिलक बीच मृगमद को, ता मधि मुक्ता बिन्दु ।
रद-गयंद अलि भज्यो हरपि, मनो गढ़ में घुसि रह्यो इन्दु ।।२

इस पद्यांश में कवि कहता है कि कृष्ण के ललाट पर शुभ्र चन्दन का तिलक अंकित है, इस तिलक के केन्द्र में कस्तूरी की बिन्दु सुशोभित है, कस्तूरी-बिन्दु के भी मध्य में एक मुक्ता जड़ा हुआ है, कवि इस स्थिति की उत्प्रेक्षा करता हुआ कहता है कि ऐसा प्रतीत होता है मानो हाथी के दातों के मध्य में फंसा हुआ भ्रमर, चन्द्रमा के गढ़ में घुस आने से उड़ गया हो। यहाँ शुभ्र चन्दन के तिलक को रद गयंद कहा गया है, तिलक के मध्य में कस्तूरी-बिन्दु को भ्रमर माना गया है तथा इसके मध्य में जड़ा हुआ मुक्ता, चन्द्रमा के समान सुशोभित कहा गया है। यहाँ तिलक के मध्य में मुक्ता के अवस्थित होने से कस्तूरी बिन्दु की आभा दब गई है, कवि कहता है, चन्द्रमा के गढ़ में घुस आने से यह भ्रमर उड़ गया

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- २० ।
(२) वही, पद संख्या- ३८६ ।

है, इसे संशय है कि चन्द्र के आगमन से रात्रि हो गई होगी और वह अनायाश ही सरोज-सम्पुट में बंदी न बन जाय।

गोस्वामी हरिराय जी ने ऐसे स्थलों पर अपनी चमत्कारित- प्रतिभा का प्रदर्शन तो किया है, किन्तु कल्पनाएं मौलिक होते हुए भी अर्थ ग्रहण में क्लिष्ट बन पड़ी हैं।

कवि ने 'रूप-वर्णन' के संदर्भ में भी कुछ नवीन कल्पनाओं का सृजन किया है--

मुख माड्यौ सबको मनमोहन, सोहत सुरंग गुलाल,
मनहुं किरन नीरज पै पसरी, रवि उदयो तत्काल।
- - - - - - - - -।
तिलक बन्यौ बिच भाल रुचिर कुंकुम को आली कियौ।
मानहु मदन बेधि जुवतीजन, अनल निकारि लियौ ।।१

होली के प्रसंग में क्रीड़ा-मग्ना नायिका के भाल पर रक्तिम तिलक ऐसा प्रतीत होता है, मानो कामदेव ने उस कमनीया के हृदयमें स्थित विरह-ज्वाल को निकाल कर उसके भाल पर अंकित कर दिया हो।

संयोग के सामूहिकप्रसंग में भी नायिका के हृदय की उत्कंठाएं उसके श्रृंगार के माध्यम से इसीभांति प्रस्फुटित हुई हैं। कहीं-कहीं तो कवि ने उत्प्रेक्षाओं के चयन में प्रकृति के नियम भी अपने हाथ में ले लिए हैं :-

चरन-कमल सित अरुन स्याम रंग, रंगे लसत चितचोर।
मानहुं सांझ रैन दिन तीनहु, आय जुरे इकठौर ।।२

प्रस्तुत उद्धरण में सुबह, सांझ और रात्रि को एक ही स्थान पर संयोजित किया गया है, जो प्रकृति के नियमों के विरुद्ध है, किन्तु कवि की कल्पना में इस प्रकार

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ३६१।
(२) वही।

के विम्ब बड़े ही सार्थक रूप में प्रयुक्त हुए हैं । गोस्वामी हरिराय जी ने अपने काव्य में, यत्र-तत्र रूढ़ उपमानों को भी नये ढंग से प्रस्तुत करने का यत्न किया है । कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं :-

कोउ जाइ लेत भुज भरि कैं, नैनन नैन मिलावै ।
मानहुं पवन चलत अति चंचल कमल कमल ढिंग आवै ।।१

यहाँ नयनों की तुलना कमल से रूढ़ होने पर भी, पवन के झकोर से एक कमल के पास दूसरे कमल का आना, प्रकृति के स्वाभाविक-सौन्दर्य को व्यक्त करता है । इस प्रकार के प्रयोग कवि की कथ्य-चातुरी को स्पष्ट करते हैं ।

गोस्वामी हरिराय जी ने उत्प्रेक्षा का प्रयोग बाल-लीला वर्णन तथा श्रृंगार-वर्णन में ही अधिक किया है, इनमें भी रूप-वर्णन तथा सामूहिक उल्लास के क्षणों में उत्प्रेक्षाएं अधिक की गई हैं । कहीं-कहीं कवि ने उत्प्रेक्षाओं के चयन में अमूर्त उपमानों को मूर्त रूप देकर भी प्रस्तुत किया है :-

चिबुक मध्य हीरा की चमकन, सोभा देत अपार ।
मानहुं हरि के मुख पैं प्रगट्यो, मूर्तिवंत श्रृंगार ।।२

गोस्वामी हरिराय जी ने जहाँ उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग अपनी विशेष प्रतिभा के प्रदर्शन हेतु किया है, वहाँ कल्पनाएं मौलिक होते हुए भी दुरूह बन पड़ी हैं । उत्प्रेक्षा की भाँति रूपक अलंकार का भी उन्होंने प्रचुरता से प्रयोग किया है ।

रूपक :- रूपक के संदर्भ में कवि ने प्राय: रूढ़ प्रयोगों को ही ग्रहण किया है । इस प्रसंग में कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ४०१ ।
(२) वही, पद संख्या- ४०३ ।

चरनकमल[१], ब्रजचन्द[२], बदन-चन्द[३], लोचनचारु-चकोर[४], बदन विधु[५], बदन-कमल[६], हस्त-कमल[७], वचनामृत[८], कचघन उनये बदन-गगन पर[९], नयन-हिंडोरे[१०], मधुप दृग[११] आदि प्रयोग मध्य-युगीन कृष्ण-भक्त कवियों के काव्य में भी पर्याप्त रूप से प्रयुक्त हुए हैं।

गोस्वामी हरिराय जी ने इसी प्रसंग में कुछ सांग-रूपकों का भी प्रयोग किया है, ऐसे स्थलों पर कवि अधिक सफल हुआ है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

बानिक बेनी को लागत आली नीको ।
अंचरा ओर, माथें सीसफूल, मानो मनि भुजंग कंचुली को,
अलक व्याल विधु बदन पै विथुर रहे, मानो तकि आसरो अमी को ।
नासा सुक मानो बिम्बक अधर पर नव-रस पिवत अमी को ।
'रसिक प्रीतम' जब गहि हैं सुरति करि जैहैं डर सबही को ।।१२

उक्त पद में कवि ने यत्र-तत्र 'मानो' शब्द का प्रयोग कर उत्प्रेक्षा की ओर संकेत किया है, किन्तु पद के प्रारम्भ से उसने जिस रूपक को ग्रहण किया है, उसे अंत तक पूर्ण रूप से निभाया है। सांग रूपक का एक अन्य चित्र भी द्रष्टव्य है :-

---

(१) रसिक बानी, लेखक के निजी संग्रह से- पद संख्या- ६० ।
(२) वही, पद संख्या- ५८ ।
(३) वही, पद संख्या- १९ ।
(४) वही, पद संख्या- १९ ।
(५) वही, पद संख्या- ५५ ।
(६) वही, पद संख्या- २६ ।
(७) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या -५४९ ।
(८) वही, पद संख्या- ५४७ ।
(९) वही, पद संख्या- ५७४ ।
(१०) वही, पद संख्या- ४७१ ।
(११) वही, पद संख्या- २४७ ।
(१२) वही, पद संख्या- १२३ ।

अरी माई नई नई धरती दुलहिन होइ रही,
मेघ मल्हार आये व्याहन ।
इन्द्र के नगारे बाजे, बूंदन के सेहरा, बादर बराती आये ।
बरन - बरन ।
दादुर पपैया बोलैं, कोइल करत रोर, मोर कुहूं कुहूं
लगे करन ।
'रसिक प्रीतम' की बानिक निरखत, रति-पति काम
लग्यौ हरन ।।१

+ + + + + +

झूलत तेरे नयन हिंडोरे ।
स्रवन खंभ, भ्रू भई मयार, दृष्टि करन डाँड़ी चहु ओरे ।
पटुली-अधर, कपोल -सिंहासन, बैठे युगन रूप रति जोरें ।
बरुनी-चँवर ढुरत चहु दिसितैं, लर लटकन फुंदना चहुंओरें ।
जुरि देखत अलकावलि अलि कुल, लैत सुगंधित पवन झकोरें ।
कचघन आढ़ दामिनि दमकत, मानौं इन्द्र धनुष अनुहोरें ।
- - - - - - - - - ।।२

गोस्वामी हरिराय जी ने प्रकृति के चित्रण में भी कुछ इसी प्रकार के सांग-रूपकों का प्रयोग किया है :-

रैनि अंधेरी, दुराय सरूप, चढ़ी मानो मैन चमू पर री ।
तब सांवरी ही भई आय जुरे, रस रूप तिया तन हू पर री ।
स्याम सजे लखि छूटी है धार, कटाछन की पय भूपर री ।
बरसे बरसाने की गोरी घटा, नंदगांव के सांवरे ऊपर री ।।३

कवि ने रूपक अलंकारों का प्रयोग यत्र-तत्र पारस्परिक कथनों में भी किया है । इस प्रकार के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :-

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ४४२ ।
(२) वही, पद संख्या- ४७१ । (३) चौरासी कवित्त, संख्या- १७ ।

-- नैन हमारे मधुकरा, आनंद कृष्ण -सरोज । १

-- हैं या भीतर दवजरे, धुंवा प्रगट नहिं होय । २

-- प्रेम बनज कीनो हुतो, नेह नफा जिय जानि,
उद्धव अब उलटी भई, प्रान - पूँजि में हानि ।।३

उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा आदि के अतिरिक्त गोस्वामी हरिराय जी ने अपने काव्य में संदेह, भ्रान्तिमान आदि अलंकारों का भी प्रयोग किया है। इस संदर्भ में कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जारहे हैं :-

-- आज मैं दोऊ देखे एक ।
- -।
एक होइ सो द्वै क्यों लखियत, सोहत रूप अनेक । ४

--'रसिक प्रीतम' छवि निहार, प्रगट्यो रवि जिय विचार ।
बारबार उमंगि तहाँ नाचत है मोर ।।५

(भ्रान्तिमान)

हौं तो लिखि-लिखि हारी पतियाँ, उत्तर न एको पायो ।
कहा भयो बीचहि किन हू उन्ह, कागद लै जु दुरायो ।
किधौ जानि रुख सुमुखि रावरो, और बाँचि सुनायो ।
किधौं दियो कहूं डारि देखि कैं, दोष हृदै सुधि आयो ।
किधौं देखि विनती आरति की, जानि कैं विफल बनायो ।
किधौं दिखायो है ही नाहीं, बातन ही लुभियायो ।

---

(१) सनेह लीला ।
(२) वही ।
(३) वही ।
(४) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- २३६ ।
(५) वही, पद संख्या- २३८ ।

किधौं कहूँ धरि भूल्यौ प्यारौ, बहुरिन मन मैं आयौ ।
'रसिक प्रीतम' विरहानल उर मैं, दूनौ बढ़ि न समायौ ।।१

(संदेह)

फलनत द्रुम पल्लव अति सोहत,कर, अँगुली की नाँई ।२

(प्रतीप)

-- छिनु छिनु अधिकहि जोति होत, तिय सन्मुख लाजत सुन्दरन -
रूप सदन की ।३

-- तव मुख चंद सहज सीतलता जामैं, विधुतै और-हि भाँति,
डर नहिं राहु, कलंक दोष नहिं, बढ़त नित्य-प्रति काँति ।४

(व्यतिरेक)

भाग्यवान वृषभानु सुता-सी, को तिय त्रिभुवन माँही ।५

(अनन्वय)

सबै भूलि अपने ही बोल की गहोगे टेक,
तौ हरि हमसे अनेक लोग टरि हैं ।६

(परिकराँकुर)

मधुकर अंतर कठिन है, कठिन बात कहि जात,
भूखौ मरै दिन सात लौं, सिंह घास नहिं खात ।७

(दृष्टान्त)

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ३५३ ।
(२) वही, पद संख्या- ३६६ ।
(३) वही, पद संख्या- १२२ ।
(४) वही, पद संख्या- १२१ ।
(५) वही, पद संख्या- १४१ ।
(६) वही, पद संख्या- ६५६ ।
(७) सनेह लीला ।

जैसे गजराज राख्यौ धाइ धाम हू ते आइ,
जैसे के सहाइ ठहै कै पृथा -सुत पारे हैं ।।१

(उदाहरण)

रही दृग दोऊ नीचे ढारि ।
मन मैं सौच करत मिलवे कौ, कर कपोल तर धारि ।।२

(स्वभावोक्ति)

लियैं जात हौ श्रीफल-कंचन, कमल-बसन सौं ढाँकि,
दान जु लागत ताहि कौ, जु दैकैं जाउ निसाँकि ।।३

(वक्रोक्ति)

बाढ़ बाढ़त नैन -सरिता, जीय मन अकुलाय ,
तुम न बूझी बात ब्रज की, विरह दैत हुवाय ।।४

(अतिशयोक्ति)

श्री वल्लभ कौ नाम लेत, श्री वल्लभ कौ ध्यान धरत,
श्री वल्लभ, श्री वल्लभ, श्री वल्लभ गुन - गाऊँ ।।५

(वीप्सा)

गोस्वामी हरिराय जी ने इस प्रकार के अनेक अलंकारों का प्रयोग अपने काव्य में किया है, जिनसे सुसज्जित हो उनका पद्य साहित्य लालित्य से परिपूर्ण हो उठा है ।

उपर्युक्त उद्धरणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि गोस्वामी हरिराय जी ने अपने काव्य में अलंकारों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है, तथापि उनका

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पदसाहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ६५८ ।
(२) वही, पद संख्या- २०७ ।
(३) वही, पद संख्या- १०४ ।
(४) वही, पद संख्या- ३०७ । (५) वही, पद संख्या- ५४८ ।

ध्येय काव्य में मात्र अलंकार प्रदर्शन नहीं था । अपने आराध्य के सौन्दर्य में निमग्न उनके अन्तश् से निकली वाणी में इन अलंकारों का समावेश सहज रूप में ही हुआ है । कृष्ण-लीला को विविध एवं सरस रूप में व्यक्त करने की कवि-लालसा ही इन अलंकारों का कारण कही जा सकती है ।

गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकारों का आधिक्य है, जो कृष्ण की सौन्दर्याभिव्यक्ति में अधिक सहायक सिद्ध हुए हैं । इनके अतिरिक्त और भी अनेक अलंकार उनके काव्य में समाविष्ट हैं । उनके काव्य में प्रयुक्त भ्रान्तिमान और संदेह अलंकार अभिव्यंजना-सौन्दर्य में सहायक सिद्ध हुए हैं, उत्प्रेक्षा तथा रूपक भावोत्कर्ष एवं रूपाभिव्यक्ति को प्रभावक बनाते हैं । अन्य अलंकार कवि के कथ्य-चातुर्य को व्यक्त करते हैं ।

अनेक अलंकारों का व्यवस्थित-रूप कवि की शास्त्रीय काव्य-चेतना का परिचायक अवश्य है, किन्तु कविका मुख्य ध्येय कृष्ण की सरस-क्रीड़ाओं को विविध रूप में अभिव्यक्त करना हीरहा है ।

जिस प्रकार गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में अनेक अलंकारों का समावेश अपने उत्कृष्ट-रूप में विद्यमान है, उसी प्रकार उनका पद साहित्य अनेक सुन्दर-सुन्दर छंदों में निबद्ध है । कवि ने छंदों का प्रयोग भी बड़ी ही कुशलता से किया है, जिससे भावों की अभिव्यंजना में कलात्मक - चारुता आगई है ।

"जो रचना छंद निबद्ध है, वह पद्य है तथा मात्राओं वा वर्णों की रचना गति तथा यति (विराम) का नियम और चरणांत में समता जिस कविता में पाई जाए उसे छन्द कहते हैं ।"[1] गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में अभिव्यक्ति को

---

(१) छन्दः प्रभाकर- श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु, संस्क० सं० २०१७, पृ० १३ ।

भावानुकूल दे स्वरूप देने के लिये जिन छंदों का प्रयोग अपने काव्य में किया है,उनका संक्षिप्त रूप से विवरण देना यहाँ समीचीन प्रतीत होता है ।

-o:: छंद ::o-

अपने पूर्ववर्ती कवियों की भाँति गोस्वामी हरिराय जी ने भी अपने काव्य में पद शैली को ही प्रधान रूप से ग्रहण किया है, ``कवि के लिये यही स्वाभाविक है कि वह उसी छन्द का विशेष प्रयोग करे, जो उसकी प्रभावक परम्परा में विशेष रूप से प्रयुक्त हुआ है``।१ गोस्वामी हरिराय जी ने कृष्ण-चरित्र के लीला-वर्णन में इस पद-विधा को अपनाया है । पद विभिन्न मात्रिकछंदों के योग से गठित होते हैं । इनमें एक ही पद में अनेक मात्रिक-छंदों का भी निर्वाह सम्भव हुआ है, तो कहीं-कहीं एक पद में एक छंद का ही पूर्ण रूप से परिपालन नहीं मिलता । वैसे लीला के पदों का अधिक प्रचलन `अष्ट-छाप` से माना जा सकता है, `` लीला के पद कब लिखे जाने लगे यह कुछ निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता, परन्तु दसवीं, ग्यारहवीं शताब्दी में मात्रिक छंदों में श्रीकृष्ण लीला के गाने की प्रथा चल पड़ी थी । इसमें कोई संदेह नहीं । जयदेव का `गीत गोविन्द` इसी प्रकार के मात्रिक छंदों में लिखा गया है``।२ गोस्वामी हरिराय जी तक यह परम्परा अपने पुष्ट रूप में विद्यमान थी, पद लेखन का अधिक प्रचलन अष्टछाप से हुआ था, किन्तु इससे पहले भी पदों के परिष्कृत तथा पुष्ट रूप के निर्माण में संगीतज्ञ कवि खुसरो, बैजू बावरा, गोपाल नायक, हरिदास, तानसेन आदि का भी प्रचुर योग रहा है ।३ गो० हरिराय जी तक कृष्ण भक्ति काव्य में पदों का ही प्राधान्य रहा है । अभिव्यंजना की दृष्टि से पदों में भाव-प्रसारण के लिए उपयुक्त क्षेत्र निहित रहता है । पदों का कोई निश्चित स्वरूप न रहने से कवि उसे भावों के अनुकूल छोटा या बड़ा आकार प्रदान कर सकता है । अन्य छन्दों में पद की तरह आकार की यह स्वतंत्रता नहीं रहती । पदों की एक निश्चित परिभाषा भी नहीं है ।

---

(१) हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, (षष्ठ-भाग), डा० नगेन्द्र, पृ० २२२

(२) हिन्दी साहित्य का आदि-काल, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ११६

(३) देखिये-- सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, डा० शिवप्रसाद सिंह, -- प्रथम संस्करण, पृष्ठ- ३४३ ।

अनेक छंदों से युक्त होकर ये पद आवश्यकतानुसार आकार ग्रहण क कृष्ण-भक्त कवियों को कृष्ण की विभिन्न लीलाओं को स्वच्छन्द करने के लिए पद जैसा सरल दूसरा अभिव्यक्ति का माध्यम न मिल सका, इस प्रकार भक्ति-काल का अधिकांश काव्य पदों में ही समाविष्ट है ।

किसी भी गेय पद्य-रचना को पद कहा जा सकता है । पद वस्तुत: गीति-काव्य की एक प्रमुख शैली है । इसमें गेय-तत्व की प्रधानता रहती है । गोस्वामी हरिराय जी के पद भी अनेक राग-रागनियों में निबद्ध कीर्तन हेतु, विशेष रूप से रचे गये थे, इसलिए उनमें छंद-विधान का विशेष ध्यान नहीं रखा गया, तथापि उनके काव्य में अनेक छंदों का परिष्कृत रूप देखने को मिलता है ।

गोस्वामी हरिराय जी ने अपने काव्य को मुख्य रूप से तीन प्रमुख शैलियों में ही समाविष्ट रखा है, --- आख्यान शैली, मुक्तकपद शैली, तथा कवित्त सवैया शैली । आख्यान शैली में उन्होंने कृष्ण की आख्यानक कथाओं को वृहद् पदों में समुपस्थित किया है । मुक्तक पद शैली में कृष्ण के विविध लीलाओं के स्फुट प्रसंगों को ग्रहण किया गया है, तथा कवित्त-सवैया शैली में कृष्ण की वात्सल्य तथा श्रृंगारपरक चेष्टाओं का अंकन किया है । इस सम्बन्ध में गोस्वामी हरिराय जी का 'चौरासी कवित्त' संग्रह विशेष रूप से देखा जा सकता है ।

गोस्वामी हरिराय जी ने इन तीन शैलियों में ही अपना काव्य प्रस्तुत किया है, इन शैलियों में ही उन्होंने अनेक छंदों का प्रयोग किया है । एक ही पद में अनेक छंदों का भी प्रयोग मिलता है, तो कहीं-कहीं एक पद में एक छंद का भी पूर्ण रूप से निर्वाह नहीं मिलता । पदों में अनेक छंदों का प्रयोग प्रारम्भ से ही चला आ रहा है । पद में वर्णों के आकार के अनुसार ही मात्रिक छंदों का प्रयोग पाया जाता है । 'सूर सागर' के पदों में अधिकांश सार, सारसी, विष्णुपद, हरिपद, लावनी, ताटंक, तोमर, हरिप्रिया, आदि छंदों का प्रयोग हुआ है ।

अष्टछाप के सभी कवियों ने इसी भाँति अनेक छंदों का निर्वाह पदों में किया है । डा० हरवंश लाल शर्मा ने सूर-सागर में प्रयुक्त निम्नलिखित छंदों का उल्लेख किया है :-

"चन्द्र, भानु, कुंडल, सुखदा, राधिका, उपमान, हीर, तोमर, शोभन, रूपमाला, गीतिका, विष्णुपद, सरसी, हरिपद, सार, लावनी, वीर, समान सवैया, मत्त सवैया, हंसाल और हरिप्रिया "।१

गोस्वामी हरिराय जी ने अपनी प्रभावक पृष्ठ-भूमि से प्रेरित हो अपने पदों में भी इसी प्रकार अनेक छंदों का प्रयोग किया है । इस संदर्भ में कुछ उद्धरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं !--

-।।० मात्रिक छंद ०।।-

१- उपमान :- "इसमें कुल २३ मात्राएं होती हैं । १३ और १० के पश्चात् यति का विधान है, अन्त में दो गुरू होते हैं ।२

भोजन वहु विधि सौं कर्यौ, घृत सौं सरसानौ ।
भोग धर्यौ दधि दूध कौ, करि कैं पकवानौ ।। ३

२- कुंडल :- (१२-१०-अन्त में दो गुरू) ।४

बन सोभा निरखि-निरखि , पथिकन दुख पायौ ।
फूली बनराइ जाइ, मधुकर लिपटायौ ।।५

---

(१) सूर और उनका साहित्य, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ- ३०३ ।
(२) छन्द: प्रभाकर, श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु, संस्करण संवत्- २०१७, पृ० ५६ ।
(३) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ११२ ।
(४) छन्द: प्रभाकर, श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु, पृ० ५८ ।
(५) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५०६ ।

३- गगनांगना :- (१३-१२- अन्त में गुरु लघु गुरु) ।१

बूझत हौं पिय अब ही तुमकों, उत्तर न आवै ।२

इस छंद में अन्तिम मात्राएं छंद के अनुरूप नहीं हैं । छंद का अन्य वृत्त गगनांगना की उपर्युक्त परिभाषा के अनुरूप ही है ।

४- ताटंक :- (१६-१४-अन्त में लघु तथा गुरु) ।३

करौ विहार आज या उपबन, सुनौ कुंवर जिय -
भावत है ।।४

५- मत्त सवैया :- (१६, १६- अन्त में गुरु तथा गुरु) ।५

बार -बार कर अंचल फेरै, अलकन की विथुरन मुख हेरै ।६

६- मुक्तामणि :- (१३-१२ अन्त में गुरु तथा गुरु) ।७

छांड़े हू छूटत नहीं, परी प्रेम फांसी हो ।८

---

(१) छंद: प्रभाकर, श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु, - पृष्ठ- ६३ ।
(२) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- २४१ ।
(३) छंद: प्रभाकर, पृष्ठ- संख्या- ७० ।
(४) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ४११ ।
(५) छंद: प्रभाकर, पृष्ठ- संख्या- ७४ ।
(६) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १४ ।
(७) छंद: प्रभाकर, पृष्ठ- संख्या- ६३ ।
(८) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ३५२ ।

७- रुचिरा :- (१४, १६ अन्त में लघु तथा गुरु)।१

लालन आउ रे आउ रे, मोहि अबकी बेर जिवाउ रे ।२

८- रूपमाला :- (१४, १० अन्त में गुरु तथा लघु) ।३

नन्द आँगन करत रिंगन, बदन विथुरे बार ।
चरन नूपुर, किंकनी कटि, कंठ कठुला हार ।।४

९- विधाता :- (१४, १४ अन्त में गुरु तथा लघु) ।५

प्यारी दरस ही की खैंचि, काहे न लेहु प्रान खैंच ।६

१०- विष्णुपद :- (१६, १०, अन्त में गुरु)।७

मेरी अँखियन की पलकन सौं, डगर बुहारूंगी ।८

११- समान सवैया :- (१६। १६ अन्त में लघु तथा लघु) ।९

रति उपजावति भावति मन में, गृह बिसरावति दै दै सैननि ।१०

---

(१) छंद: प्रभाकर, श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु, पृष्ठ- ७१ ।
(२) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित , पद-सं० -३२३ ।
(३) छन्द: प्रभाकर, पृष्ठ- ६२ ।
(४) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- २२ ।
(५) छन्द: प्रभाकर, पृष्ठ- ६८ ।
(६) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ३३३ ।
(७) छन्द: प्रभाकर, पृष्ठ- ७० ।
(८) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० २२४,
(९) छन्द: प्रभाकर, पृष्ठ- ७४ ।
(१०) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १२२ ।

१२- सरसी :- (१६, ११ अन्त में गुरू तथा लघु) ।१

दरसन सुख नैनन कों दीन्हों, रसना कों गुनगान ।२

१३- सार :- (१६, १२ अन्त में गुरू तथा गुरू) ।३

मोहन मुख देखन कों आवत, घूंघट पट दे आढ़े ।४

१४- सुखदा :- (१२, १० अन्त में लघु तथा गुरू) ।५

गिरि कानन राखत हैं, पूजो ता ईस ,
सो तो द्विज देव गाय, ठाकुर जगदीश ।।६

१५- शंकर :- (१६, १० अन्त में गुरू तथा लघु)।७

प्रमुदित प्रिय बानी रस बरसत, आनंद नैन भरे ।८

१६- शुभगीता :- (१५, १२ अन्त में लघु तथा गुरू) ।९

हुर हुर परत राधिका ऊपर, जागृत शिथिल गवन तें ।१०

---

(१) छन्द: प्रभाकर, श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु, पृष्ठ- ६६,
(२) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- २१६,
(३) छन्द: प्रभाकर, श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु, पृष्ठ- ६७,
(४) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पदसंख्या- १३५,
(५) छन्द: प्रभाकर, श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु, पृष्ठ- ५८,
(६) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, पद संख्या- १०४,
(७) छन्द: प्रभाकर, श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु, पृष्ठ- ६४
(८) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं०- १४७,
(९) छन्द: प्रभाकर, श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु, पृष्ठ- ६६,
(१०) गोस्वामी हरिराय जी का पद सनहित्य, प्रकाशित, पद सं०- १६८ ।

१७- शुद्ध गीता :- (१४, १३ अन्त में गुरु तथा लघु)।१

जे निरखत तिन्ह के मन बस करि, सौंपत हैं ले मैन ।२

१८- हरि गीतिका :- (१६, १२ अन्त में गुरु तथा लघु)।३

इत देखौं तौ हरि उत राधा, क्यौं हू न होइ विवेक।४

१९- हरि प्रिया :- (१२, १२, १२, १० अन्त मे गुरु)।५

वल्लभ कौ नाम लेत, वल्लभ कौ ध्यान धरत,
श्री वल्लभ, श्रीवल्लभ, वल्लभ गुन गाऊं ।।६

गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में इस प्रकार के अनेक छन्दों के उदाहरण देखे जा सकते हैं। उपर्युक्त मात्रिक छन्दों के अतिरिक्त उनकी मुक्तक रचनाओं में कुछ वर्णवृत्तों का भी प्रयोग मिलता है। उनके 'चौरासी कवित्त संग्रह' में सवैया, घनाक्षरी, मनहरण आदि का प्राचुर्य है। इसके अतिरिक्त दोहा, चौपाई, सोरठा आदि का भी प्रयोग मिलता है।

पूर्ववर्ती पृष्ठों पर हम कह आये हैं कि गोस्वामी हरिराय जी ने कविता को साधन माना है, जिससे वे अपने अभीष्ट 'कृष्ण-चरित्र' का गुणगान करते रहे हैं।

---

(१) छन्द: प्रभाकर, श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु, पृष्ठ- ६४।
(२) गोस्वामी हरिरराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १८०।
(३) छन्द: प्रभाकर, श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु, पृष्ठ- ६७।
(४) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १३६।
(५) छन्द: प्रभाकर, श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु, पृष्ठ- ७८।
(६) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५४८।

गोस्वामी हरिराय जी ने अपने पदों की रचना कीर्तन के दृष्टिकोण से की थी और उसके लिए उन्हें साहित्य के 'रीति-ग्रन्थों' का अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं थी । उनका भावोद्वेलित हृदय अपने आराध्य की लीलाओं में सदैव निमग्न रहता था । हृदय से निकली वाणी को काव्य-चमत्कार प्रस्तुत करने का अवकाश ही नहीं था, तथापि भावों के प्रबल आवेग से व्यंजना अपने प्रखर रूप में प्रस्फुटित हुई और कला के सभी उपकरण उनके काव्य में सहज रूप से ही समन्वित हो उठे । तन्मयता की यह सिद्ध स्थिति थी, जहाँ भक्त के हृदय से निकली वाणी काव्य के उत्कृष्ट रूप में प्रकट हुई है । जहाँ कवि ने काव्य में कलागत उपकरणों को संचित करने का स्वयं यत्न किया है, वहाँ उसका काव्य इतना आकर्षक नहीं बन पड़ा जितना भाव-प्रावल्य के क्षणों की सहज उक्ति में बन पड़ा है ! छन्द-योजना में भी कवि की इसी वृत्ति का अवलोकन होता है । छन्द प्रयोग में कवि ने कुछ छन्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी है, जिससे उच्चारण की एक-रसता स्थापित हुई है । मात्रिक छन्द में 'दोहा' को उन्होंने अपनाया अवश्य है, किन्तु इसमें संगीतत्व भरने के लोभ से कुछ शब्द और भी जोड़ दिए हैं ! एक उदाहरण प्रस्तुत है :-

> गोवर्द्धन की सिखर ते मोहन दीनी टेर ।
> अंतरंग सों हम कहत हैं, सो ग्वालिन राखौ घेर ।।१
> ।।नागरि दान दै ।।

प्रस्तुत दोहा में प्रथम पंक्ति तो छन्द नियम के अनुसार ही है, (दोहा-कुल २४ मात्राएँ, १३ तथा ११ मात्रा पर यति)।२ किन्तु दूसरी पंक्ति में 'सो' शब्द तथा अन्तिम अंश ''नागरि दान दै'' अलग से जोड़ा गया है, जो गीतात्मकता के लिए ही विशेष रूप से प्रयुक्त हुआ है । इस प्रकार के प्रयोग अन्य पूर्ववर्ती कवियों ने भी किये हैं !--

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १०४ ।

(२) काव्य विवेचन, डा० विपिन विहारी त्रिवेदी, डा० उषा गुप्ता,पृ०२२७।

सूरदास :-

इहि मग गोरस लै सबै, दिन प्रति आवहिं जाँहि ।
हमहि छाप देखरावहु दान चहत केहि पाँहि ।
कहत नंद लाड़िले ।।

नन्ददास :-

प्रेम भुजा, रस रूपनी, उपजावति सुख पुँन्ज ।
सुन्दर स्याम विलासिनी, नव वृन्दावन कुंज ।।
सुनौ ब्रज नागरी ।।

गुजराती कवि प्रेमानन्द का भी इसी प्रकार का एक दोहा दृष्टव्य है:-

देवकी कहे साँभलो, पूरा थया दस मास ।
उदर माँहि त्यां गर्भ धर्यों छे, ते करसे तेज प्रकास ।
पीउ जी ए शूँ कहिब ।।

मात्रिक छन्दों के अतिरिक्त गोस्वामी हरिराय जी ने कुछ मुक्तक छन्दों का भी प्रयोग किया है । ``मुक्तक छन्द वे हैं, जिनके प्रत्येक चरण में केवल वर्णों की संख्या का ही प्रमाण रहता है`` ।१ गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में इसके नौ भेदों में से मन-हरण, रूपघनाक्षरी तथा देवघनाक्षरी का ही अधिक प्रयोग मिलता है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

मनहरण :-

(३१ वर्ण तथा १५,१६ पर यति अन्त में गुरू)

जैसें गजराज राख्यौ धाइ धाम हू ते आइ
जैसें कें सहाइ व्है के पृथा - सुत पारे हैं

---

(१) काव्य विवेचन - डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी, डा० ऊषा गुप्ता, पृष्ठ- २३४ ।

जैसें महाराज राखी द्रुपद सुता की लाज,
जैसें ब्रजवासी गिरि धरि कैं उबारे हैं।
जैसें देके संपति सुदामा दुख दूरि कर्यौ ,
जैसें हित संतन के असुर संहारे हैं।
तैसें राखि लीजे निज वल्लभ के बंश हूं कौं ,
जैसें तैसे जग में कहावत तिहारे हैं।।१

रूप घनाक्षरी :- (१६, १६ मात्राओं परयति)

बावरी भई है बाम, बिसर गई है धाम ।
आठौं जाम तू अनाम बकि बकि करतु है ।।२

रूपघनाक्षरी के नियम के अनुसार चरण के अन्त में लघु वर्ण होता है, किन्तु प्रस्तुत छंद के अन्त में गुरु-वर्ण प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार कवि ने छन्द-शास्त्र के नियमों के प्रति विशेष आग्रह प्रकट नहीं किया।

गोस्वामी हरिराय जी के पूर्ववर्ती कवियों ने प्राय: पद शैली में ही रचनाएं की थीं, कवित्त-सवैया जैसे छंदों का प्रयोग उनसे पहले अष्टछापादि कवियों के काव्य में यत्किंचित ही प्राप्त होता है, अन्यथा कवित्त-सवैया जैसे मुक्तक-छन्दों का प्रयोग रीति-कालीन कवियों ने अधिक किया है। रीति-काल का अधिकांश काव्य इन्हीं छन्दों में निबद्ध है। गोस्वामी हरिराय जी ने इन छंदों के प्रयोग की प्रेरणा संभवत: श्रृंगारिक कवियों के काव्य से ग्रहण की होगी। अन्यत्र कहा जा चुका है कि गोस्वामी हरिराय जी के समय तक रीति-काल अपने पूर्ण यौवन पर अधिष्ठित हो चुका था,

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ६५८ ।
(२) गोस्वामी हरिराय जी के चौरासी कवित्त, संख्या- ५२ ।

अत: रीतिकालीन प्रचलित छंदों का प्रभाव गोस्वामी हरिराय जी पर भी पड़ा, 'चौरासी कवित्त' में उन्होंने इन्हीं छंदों को अपनाया है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि गोस्वामी हरिराय जी ने जहाँ एक ओर अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्रभावित होकर पद शैली को अपनाया है, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने अपने समुपस्थित वातावरण को भी समझा है और उससे प्रभावित भी हुए हैं।

गोस्वामी हरिराय जी का काव्य जहाँ एक ओर भाव और कला की उत्कृष्ट गरिमा से युक्त है वहाँ दूसरी ओर उनके काव्य में कुछ दोष भी उपलब्ध हैं, जो कवि की, काव्य सिद्धान्तों के सम्बन्ध में असावधानी का द्योतन कराते हैं।

-:: दोष :-

गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में न्यून पदत्व, अधिक पदत्व, छन्दोभंग आदि दोषों का बाहुल्य है। अन्य दोषों में भाषागत पद-दोष, अर्थदोष आदि भी पाए जाते हैं। उनके काव्य में समाहित कुछ दोष निम्नलिखित रूप में देखे जा सकते हैं :-

१- पद दोष :- पद दोषों में काव्य में समाहित शब्द के अनुचित प्रयोग को लक्षित किया जाता है। गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में कहीं-कहीं श्रुति-कटत्व तथा क्लिष्टत्व दोष देखे जाते हैं।

श्रुतिकटत्व - कुछ शब्द अनुपयुक्त स्थान पर प्रयुक्त होने से कर्ण-कटु प्रतीत होते हैं, जैसे :-

-- काज विसरत सबै गृह के विग्रहता के भार ।१

-- जाइ जुही चमेली चम्पा कनैर सुरंग सुहायौ ।२

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- २२ ।

(२) वही, पद संख्या- ८ ।

इन पंक्तियों में गृह, विग्रहता तथा कनेर शब्द सुनने में मधुर नहीं लगते, कनेर के स्थान पर यदि कमल, केसर, कुसुम आदि शब्द प्रयुक्त होते तो कहीं अधिक कर्ण-प्रिय लगते । इस प्रकार के दोष गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में कम ही मिलते हैं ।

क्लिष्टत्व दोष - क्लिष्टत्व दोष में कुछ शब्दों के क्लिष्ट होने से अर्थग्रहण में दुरूहता आ जाती है, यथा--

-- सात परवत तिलन के करि रतन-घोस मिलाय ।१

-- रद-गयंद अलि मज्यौ हरपि, मनौ गढ़ में घुसि रह्यौ इन्दु ।२

यहाँ रतन-घोस तथा रद-गयंद शब्द काव्य-प्रवाह में क्लिष्टत्व उत्पन्न करते हैं ।

२- अर्थ दोष :- अर्थ दोषों में दुष्क्रमत्व तथा कष्टार्थत्व दोषों के उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

हौं तौ अकेली, द्रुम बेली लौं काँपति,
सीतल पवन, भीजैं बसन सारे ।
'रसिक प्रीतम' आइ, मोहि उढ़ाओ अपनौ पीताम्बर,
मेरे तौ विरह अँग अँग जारे ।३

यहाँ एक ओर तो नायिका शीतल पवन से प्रताड़ित भीगी हुई काँप रही है, तो दूसरी ओर विरह-ज्वाल उसके अँग-अँग को फूँके डाल रहा है । यहाँ विरोधाभास के साथ-साथ नायक से नायिका विनय भी करती है, कि वह उसके समीप आकर उसे अपना पीताम्बर उढ़ादे । जलती हुई वस्तु को वस्त्र उढ़ाना, यहाँ संगत नहीं है, कवि ने प्रथम पंक्ति के भावों का क्रम अन्त तक

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० २० ।
(२) वही, पद संख्या- १८ ।
(३) वही, पद संख्या- १७ ।

नहीं निभाया । दुष्क्रमत्व का एक अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है :-

चरन कमल सित, अरुन, स्याम रंग, रंगे लसत चित चोर ।
मानहु साँझ, रैन, दिन तीनहु। आय जुरे इक ठौर ।।१

यहाँ कवि ने नायिका के चरणों में निहित तीन रंगों की तुलना साँझ, रैन, तथा दिन से की है । श्वेत नख दिन है, अरुन तलुवे साँझ हैं, और ऊपर का स्याम-वर्ण रात्रि है , किन्तु कवि ने सित अरुन, स्याम के क्रम से दिन साँझ रैन न कह कर साँझ रैन दिन ही कहा है, जो दुक्रमत्व दोष उपस्थित करता है । तुकबन्दी और लय-प्रवाह के लिए कवि दिन, साँझ, रैन को दिवस साँझ, निशि भी कह सकता था, यथा-

चरन कमल सित अरुन स्याम रंग, रंगे लसत चित चोर ।
मानहु दिवस साँझ निसि तीनहु आय जुरे इक ठौर ।

कष्टार्थत्व-दोष - जहाँ अर्थ ग्रहण करने में कष्ट उपस्थित हो,वहाँ कष्टार्थत्व दोष होता है, कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

दार प्रपंच अदार तैं उत्तम, त्रिगुनातीत महाराज ।
- - - - - - - - ।
दैवी-सृष्टि हेतु करुनानिधि, श्री हरि बांधी पाज।।२

अपने दार्शनिक विचारों को शब्दों के जाल में उलझा कर कहना ही यहाँ कष्टार्थत्व उपस्थित कर देता है ।

३- वाक्य-दोष :- वाक्य-दोषों में न्यून-पदत्व, अधिक पदत्व, छन्दोभंग आदि दोष गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं ।

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ३९१ ।
(२) वही, पद संख्या- ५८६ ।

संगीत के निश्चित ताल-स्वरों में निबद्ध उनके काव्य में प्रयुक्त वाक्य राग-रागनियों पर अधिक अवलम्बित रहे हैं। यही कारण है कि उनके पद्य में स्थान - स्थान पर छन्दोभंग, अधिकपदत्व, न्यूनपदत्व आदि दोष पाए जाते हैं।

परिमाण की दृष्टि से देखा जाय तो उनके काव्य में वाक्य-दोष अधिक हैं। वाक्य-दोष कवि की छन्द-शास्त्र के सिद्धान्तों के प्रति असावधानी के द्योतक हैं। मुख्यरूप से संगीत-प्रधान रचना होने के कारण, स्वरों के आरोह-अवरोह के क्रम में इस प्रकार के दोष समुपस्थित हुए हैं।

> निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि गोस्वामी हरिराय जी ने कृष्ण की विविध लीलाओं को कीर्तन पद्धति के अनुसार ही चित्रित करना अभीष्ट समझा था। संस्कृत के विद्वान तथा एक कुशल उपदेशक होने के कारण उनका भाषा पर आधिपत्य था। उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम् तथा तद्भव शब्दों के अतिरिक्त अरबी, फारसी, जैसे विदेशी शब्द भी समाविष्ट हैं, जो अनुकूल अवसर पर ही प्रयुक्त हुए हैं। कवि ने अपने काव्य में वर्ण-मैत्री का विशेष ध्यान रखा है। उनका अधिकांश काव्य अभिधा में ही लिखा गया है। अलंकारों की विविध झाँकियाँ उनके काव्य में देखी जा सकती हैं। जहाँ कवि ने अलंकारों का प्रयोग सयत्न किया है, वहाँ पाँडित्य प्रदर्शन का आभास सा होता है, अन्यथा स्वाभाविक रूप से समाहित अलंकार हृदयग्राही बन पड़े हैं। उनके काव्य में उत्प्रेक्षा तथा रूपक का अधिक निर्वाह मिलता है। छन्द-योजना में कवि अपने पूर्ववर्ती कवियों से पर्याप्त प्रभावित रहा है, तथापि उसने अपने सम-सामयिक प्रयुक्त छन्दों को भी ग्रहण किया है, इनमें कवित्त सवैया आदि प्रमुख हैं।

गोस्वामी हरिराय जी ने अपने काव्य में गुण एवं दोष पर अधिक ध्यान न देकर अभिव्यक्ति को ही अधिक महत्ता दी है। उनके काव्य का शिल्प भक्तिकाल के मान-दंडों से पूर्ण प्रभावित है।

Chapter-7

सप्तम - अध्याय

गद्य -सौष्ठव

"गोस्वामी हरिराय जी ने गद्य की अधिकांश शैलियों को स्पर्श किया है। उनके वार्ता-साहित्य में कहानीतत्व, एकांकी व नाटकतत्व, उपन्यासतत्व, समालोचनातत्व तथा व्याख्यातत्व सभी स्वरूपों के दर्शन होते हैं।"

गोस्वामी हरिराय जी जिस प्रकार एक प्रसिद्ध कवि रहे थे, उसी प्रकार वे एक कुशल गद्य-कार भी थे। हिन्दी में व्रजभाषा-गद्य के स्वरूप एवं विकास पर अनेक विद्वानों ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। इनमें से कुछ विद्वानों को छोड़कर अन्य सभी ने गोस्वामी हरिराय जी की उपेक्षा ही की है। आचार्य शुक्ल, मिश्रवन्धु, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रभृति विद्वानों ने जहाँ भी वार्ता-साहित्य का उल्लेख किया है, वहाँ महाप्रभु जी, गुसाईं जी एवं गोकुलनाथ जी तक ही वे सीमित रहे हैं। "वास्तव में व्रजभाषा गद्य के परिष्करण का जो श्रेय गोस्वामी हरिराय जी को दिया जाना चाहिये, वह गोकुलनाथ जी को दिया गया है।[१-अ]

कुछ विद्वानों ने व्रजभाषा-गद्य का सर्वांगीण अध्ययन व परीक्षण करके गोस्वामी हरिराय जी को व्रजभाषा-गद्य निर्माण का सर्वाधिक श्रेय दिया है। इन विद्वानों में श्री द्वारका दास परिख[१] श्री प्रभुदयाल मीतल[२], डा० हरिहर नाथ टंडन[३], नागरी प्रचारिणी सभा के खोज-कर्त्ता[४], हरि-मोहन श्री वास्तव[५] आदि का नाम लिया जा सकता है।

---

(१) अ-देखिये- गद्य साहित्य का उद्भव और विकास, -सम्पा० डा० शंभूनाथ पांडेय, -पृ० ३५

(१) - चौरासी वैष्णवन की वार्ता, अग्रवाल प्रेस, मथुरा से प्रकाशित।

(२) - "सूरदास की वार्ता" तथा "अष्टछाप परिचय" में।

(३) - वार्ता साहित्य, एक बृहद् अध्ययन-अलीगढ़ से प्रकाशित।

(४) - हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण।

(५) - मध्य-कालीन हिन्दी गद्य।

सर्व प्रथम श्री द्वारका दास परिख ने 'प्राचीन वार्ता रहस्य' भाग-१ का संवत् १९९६ में कांकरौली विद्याविभाग से प्रकाशन कराके, हिन्दी संसार को गोस्वामी हरिराय जी की गद्य-रचनाओं से परिचित कराया। श्री प्रभुदयाल मीतल ने अपने प्रकाशन से गोस्वामी हरिराय जी सम्बन्धित दो ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं - प्रथम ग्रन्थ है 'गोस्वामी हरिराय जी का पद-साहित्य', जिसकी भूमिका में उन्होंने गोस्वामी हरिराय जी के गद्य-ग्रन्थों का उल्लेख किया है। दूसरा ग्रन्थ है - 'सूरदास की वार्ता', जो चौरासी वार्ताओं में से ही एक वार्ता का पृथक् प्रकाशन है। मीतल जी ने 'सूरदास की वार्ता' में गोस्वामी हरिराय जी के ब्रजभाषा गद्य का अच्छा विश्लेषण किया है, इसमें ब्रजभाषा-गद्य के क्रमिक विकास में गोस्वामी हरिराय जी के युग को ब्रजभाषा-गद्य का स्वर्णयुग माना है।[१] श्री मीतल जी के इस कथन का समर्थन श्री हरिमोहन श्रीवास्तव ने भी इन शब्दों में किया है, 'इन्होंने ब्रजभाषा की सर्वांगीण उन्नति की। वास्तव में हरिराय जी के युग को ही ब्रजभाषा गद्य का स्वर्णयुग कह सकते हैं।[२] डा० हरिहर नाथ टंडन ने अपने शोध ग्रन्थ, 'वार्ता-साहित्य एक बृहद् अध्ययन' में निष्कर्ष रूप में स्पष्ट किया है कि श्री हरिराय जी को ही चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ताओं के 'भावात्मक-संस्करण' प्रस्तुत करने का श्रेय है। विद्वान लेखक ने अनेक पुष्ट तर्कों द्वारा यह भी सिद्ध किया है कि 'वार्ताओं' का भावात्मक संस्करण 'टीका' नहीं स्वतंत्र ग्रन्थ है।[३] इन्होंने अनेक प्रमाणों से यह भी सिद्ध किया है, कि दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के लेखक गो० हरिराय जी ही हैं।[४]

डा० हरिहर नाथ टंडन ने गोस्वामी हरिराय जी कृत 'चौरासी वार्ता- भाव-प्रकाश', 'दो सौ बावन वार्ता, भाव-प्रकाश' तथा 'पुष्टि-दृढ़ाव' आदि कुछ ग्रन्थों का विश्लेषण किया है, इनमें चौरासी वार्ता तथा दो सौ बावन वार्ता पर अधिक ध्यान दिया गया है। इन वार्ताओं का महत्व, भाषा-

---

(१) सूरदास की वार्ता, पृ० ७८।

(२) मध्यकालीन हिन्दी गद्य, श्रीहरिमोहन श्रीवास्तव, पृ० ८४।

(३) वार्ता साहित्य एक बृहद् अध्ययन, पृ० ६३८।

(४) वही, पृ० २३०।

सम्बन्धी विशेषताएँ, शब्द, शैली आदि का भी पूर्ण विवेचन श्री टंडन जी ने किया है। प्रस्तुत अध्याय में इन चर्चित ग्रन्थों को छोड़कर अन्य गद्य ग्रन्थों की विशेषताएँ स्पष्ट करना ही अभिप्रेत है। इस संदर्भ में गोस्वामी हरिराय जी के गद्य ग्रन्थों की भाषा के सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत हैं।

-:: भाषा ::-

जहाँ तक गोस्वामी हरिराय जी के गद्य ग्रन्थों की भाषा का प्रश्न है, वह विशुद्ध ब्रजभाषा है। गोस्वामी हरिराय जी ने ब्रजभाषा में लिखते हुए प्रसंगवश उर्दू एवं खड़ी बोली को भी संस्पर्शित किया है। ये प्रयोग उनकी विचार-वाहिनी के सहज प्रवाह में स्वाभाविक रूप से ही सम्पन्न हुए हैं। खड़ी बोली के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

> `` ब्राह्मन ऐसे ही होते हैं। जो सहज की बात ऊपर रूठ जाते हैं। - - - - - उनने दो पद दीक्षित जी के गाए हैं। सो मैंने इतना कह्यो। जो जब देसाधिपति सुन पावेंगें तब कहा जबाव दोगे - - - - - जो बीरबल। तेरे प्रोहित ने झूँठ कहा।''[१]

प्रारम्भिक खड़ी बोली का यह परिष्कृत रूप है। शब्द और भावों का तारतम्य एक गति में बहता चला आता है। उपर्युक्त गद्यांश में केवल `कह्यो' क्रिया-पद ब्रजभाषा का है, इससे इतर सभी स्थलों पर क्रिया, कारण आदि शब्दों का प्रयोग शुद्ध खड़ी बोली के अनुरूप ही हुआ है।

अधिकांश विद्वानों ने खड़ी बोली का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी से माना है, इससे पहिले के ब्रजभाषा गद्य को वे महत्वपूर्ण स्वीकार नहीं करते। डा० रामरतन भटनागर के शब्दों में, `उन्नीसवीं शताब्दी

---

(१) गो० हरिराय जी प्रणीत-दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, भाग-३ पृ० २६५
- सम्पादक गो० ब्रजभूषण शर्मा व द्वारकादास परिख।

का पूर्वार्द्ध गद्य के जन्म और विकास के लिए महत्वपूर्ण है। इससे पहले गद्य-साहित्य का निर्माण पर्याप्त मात्रा में हो चुका था, मैथिल, ब्रजभाषा, राजस्थानी और खड़ी बोली में बहुत सी रचनाएं इस शताब्दी के पहले की मिलती हैं, परन्तु वास्तव में इस शताब्दी के पूर्व का गद्य साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है।१ गोस्वामी हरिराय जी के ब्रजभाषा गद्य-ग्रन्थों में खड़ी बोली के इस प्रकार के प्रयोगों के पीछे निश्चय ही एक पुष्ट पृष्ठ-भूमि रही होगी। ये प्रयोग उस समय की खड़ी बोली के प्रचलित स्वरूप को स्पष्ट करते हैं।

गोस्वामी हरिराय जी ने प्रसंगवश अपने गद्य ग्रन्थों में कुछ विशेष स्थलों पर खड़ी बोली को उर्दू का रूप भी दिया है। यह प्रभाव उनके समय की परिस्थितियों से ग्रहण किया गया होगा। 'पृष्ठ-भूमि' नामक अध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है कि गोस्वामी हरिराय जी का युग विदेशी प्रभुत्व का युग था, भारतीय-संस्कृति में मुगल-संस्कृति समन्वित होती जा रही थी। अत: गोस्वामी हरिराय जी की भाषा में भी यह प्रभाव पड़ा। फारसी मिश्रित खड़ी बोली का एक उदाहरण दृष्टव्य है :-

> "लोदी सिकंदर बादशाह ने तत्क्षण रुस्तम अली को बुलायकें सब वृतान्त पूंछ के कह्या। पहिले कसूर तेरा है। तैंने क्या जाना हिन्दू में ऐसा करामाती-फकीर नहीं होगा। सो सब आखों से देख और अपना यंत्र जल्दी मंगायले। कभी किसी के मजहब पर निगाह मत करना"।२

इस प्रकार के वर्णनों में गोस्वामी हरिराय जी ने प्रसंगवश कागद, सदर, खबर, फकीर, हजूर, हाकम, बादशाह, कामदार आदि शब्दों का प्रयोग भाषा को

---

(१) हिन्दी साहित्य, डा० रामरतन भटनागर, पृष्ठ- १६६

(२) श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता, प्रका० नाथद्वारा, सं० २०२५, पृ० १२।

सहज रूप प्रदान करने के लिए ही किया है । विशेष प्रयोजन को व्यक्त करने के लिए उन्होंने अन्य भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया है :-

> 'मन्हे, श्रीनाथ जी एक लहुआ आप्यो हतो'।१ (गुजराती)
> 'आघा सँभाल के अह्यो मैं हैं राजपूतानी छां'।२ (मारवाड़ी)

गोस्वामी हरिराय जी ने गुजराती एवं मारवाड़ी में पद्य रचना भी की हैं, जिनकी चर्चा अन्यत्र कर आए हैं । इस प्रकार के प्रयोगों से गोस्वामी हरिराय जी के विविध भाषाओं के अध्ययन का ज्ञान होता है । गोस्वामी हरिराय जी संस्कृत साहित्य के विद्वान थे, फलत: भाषा पर उनका अधिकार था । उन्होंने अपने गद्य की भाषा को सुष्ठु रूप प्रदान करने के लिए संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया है । उनके रचित वार्ता-साहित्य में कुछ विशेष शब्दों का भी प्रयोग हुआ है, जो पुष्टि सम्प्रदाय के व्यावहारिक जीवन में अधिकांश प्रयुक्त होते हैं, इनमें अनोसर, अपरस, आरोगनो, इहांताईं, उहांईं, उत्थापन, एकली, खवास, फांपी दोय सो, तक्कड़ी, राजभोग आदि अधिक प्रयोग हुए हैं । डा० हरिहर नाथ टण्डन ने अपने शोध प्रबन्ध में इस प्रकार के शब्दों की एक लम्बी सूची दी है ।३ संस्कृत-तत्सम शब्दों का प्रयोग 'ब्रह्मस्वरूपाख्यान' तथा 'छिद्रात्मक स्वरूप विचार' नामक ग्रन्थों में अधिक हुआ है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

> "ब्रह्म के स्वरूप तीन, क्षर, अक्षर, अक्षरातीत । तहाँ प्रथम अक्षरातीत को व्याख्यान करत हैं । तहाँ मार्ग तीन -पुष्टि, प्रवाह, मर्यादा । पुष्टि-मार्ग अक्षरातीत को मार्ग है । पुष्टि मार्ग के स्वामी अक्षरातीत हैं । पूर्णानन्द गोवर्द्धन धरन परब्रह्म

---

(१) देखिये-- दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता सम्पा० गो० ब्रजभूषण शर्मा तथा द्वारकादास परिख, भाग-३, पृष्ठ-९८

(२) वही ।

(३) देखिये-- वार्ता साहित्य एक वृहद् अध्ययन, पृष्ठ- ५७५ ।

श्रीकृष्ण जिनके धाम में जीव जाय सदा आनन्द में रहैं। रासादि को सुख देहैं फिर जन्म न होय - - - - "।१

" कोटि कंदर्प लावन्य। साक्षात्कार रसात्मक आनन्द मात्र करपाद मुखोदरादि। ऐसे जो पूर्ण पुरुषोत्तम। सो प्रथम एक रस रूप आप ही हते। और श्री स्वामिनी जी संग अन्तरीय लीला को अनुभव करते। पर बाह्य प्रागट्य न हुते" ।२

इस प्रकार के तत्सम शब्दों से युक्त भाषा सुष्ठु रूप ग्रहण करती है। उपर्युक्त गद्यांश निश्चय ही ब्रजभाषा का परिष्कृततम गद्य है, जो अपनी परम्परा में सर्वथा बे-जोड़ रहा है। गद्य का इतना परिमार्जित व सुसंस्कृत रूप न तो इनके पूर्ववर्ती लेखकों के कृतित्व में विद्यमान है, और न ही गद्य के इस उत्कृष्ट रूप की रक्षा उनके परवर्ती गद्य लेखक ही कर सके हैं।

गोस्वामी हरिराय जी ने तद्भव व तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग कर अपना पाण्डित्य प्रदर्शन नहीं किया, अपितु उन्होंने भावानुरूप गद्य के स्वरूप को निरूपित किया है। भाव के अनुरूप उन्होंने अनेक शैलियों में अपने विचार व्यक्त किए हैं। विचारों को जैसे भी सुस्पष्ट बनाया जा सकता था उन्होंने बनाने का यत्न किया है। इस सन्दर्भ में उन्होंने देशी-विदेशी अनेक प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है। उनकी भाषा अनेक शैलियों को अपने में समाविष्ट किए हुए हैं।

री आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में निर्दिष्ट-भारती, सात्वती, आरभटी तथा कैशिकी चार प्रवृत्तियों के पश्चात् रीतिशास्त्र

---

(१) ब्रह्मस्वरूपाख्यान, रतनलाल गो० से प्राप्त प्रति का प्रारम्भिक अंश।

(२) "द्विदलात्मक स्वरूप विचार" वही।

के आचार्य वामन द्वारा वैदर्भी, पांचाली, गौड़ी आदि प्रवृत्तियाँ, जिन्हें आज की शब्दावलि में शैलियाँ कहा जाता है, भारतीय वाड्मय के ऐतिहासिक-क्रम में प्रचलित थीं, किन्तु गोस्वामी हरिराय जी के समय तक ये सभी प्रवृत्तियाँ वीतराग के संदर्भ बन चुके थे। उस समय के साहित्य सृष्टाओं के समन्वय ये सभी प्रवृत्तियाँ धूमिल पड़ चुकी थीं। यद्यपि आज की समृद्ध खड़ी-बोली में जिन विविध शैलियों का विनिश्चय, वर्तमान आलोच्य- दृष्टि में समाहित है, उनका समुचित व व्यवस्थित स्वरूपांकन गोस्वामी हरिराय जी के युग तक नहीं हो पाया था, फिर भी गोस्वामी हरिराय जी के गद्य-साहित्य की समृद्धता में हम उन सभी शैलियों के व्यवस्थित रूप पाते हैं जो आज की आलोच्य - उर्वरा में प्रजनित मानी जाती हैं। अतः गोस्वामी हरिराय जी के गद्य में व्यवहृत इन्हीं शैलियों का समाकलन प्रस्तुत किया जा रहा है।

—:: शै ली ::—

गद्य की दृष्टि से प्रमुख शैलियाँ छः मानी गई है,:- विचारात्मक, वर्णनात्मक, भावात्मक, कथात्मक, आत्मव्यंजक तथा गवेषणात्मक।[1] इनके अतिरिक्त उपदेशात्मक व तथ्यनिरूपणात्मक शैली भी प्रयुक्त होती हैं। गोस्वामी हरिराय जी के गद्य-साहित्य में इन सभी शैलियों को अपनाया गया है।

१- विचारात्मक शैली:-

विचारात्मक शैली के दो रूप पाए जाते हैं, निगमन शैली तथा आगमन शैली। जहाँ किसी सिद्धान्त की बात उपस्थित करके, उसके लिए अनेक तर्कों की सिद्धि के लिए दृष्टान्त प्रस्तुत किए जाते हैं, वहाँ निगमन शैली होती है, तथा जिसमें अनेक दृष्टान्त प्रस्तुत करके उनमें कोई

---

(१) वाड्मय विमर्श-- ले० डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृष्ठ- ५६ ।

सिद्धान्त निकाला जाय वहाँ आगमन शैली कही जाती है ।१ गोस्वामी हरिराय जी के गद्य में इनके कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं :-

(अ) निगमन शैली :- गोस्वामी हरिराय जी ने अपने गहन दार्शनिक व सैद्धान्तिक विचारों को सहज ग्राह्य बनाने के लिए प्राय: इस शैली को ग्रहण किया है, यथा--

" पाछे वैष्णव को पत्थर की टेक राखनी । अरु संसार रूपी समुद्र में पाषाण प्रगट होत हैं । संसार रूपी जल भर्यो है । तामें वे पत्थर होय कैं रहैं । तो भीतर जल स्पर्श न करैं । तो भीतर की अग्नी को बचाव होयबे परि पूर्ण वैष्णव है । तातें जल भेदत नहीं है । हृदय में श्री आचार्य जी बसत हैं । श्री आचार्य जी अग्नि रूप हैं । सो वैष्णव हृदय में राखत है । ताको श्री आचार्य जी को खटो भरोसो है । ऐसे उत्तम वैष्णव को संग कीजे तो सुगम पडे । श्री आचार्य जी अग्नी रूप हैं । सो अग्नी ऊँची है । तापर धरिये तो परिपक्क करैं । अरु नवनीत जैसे स्वभाव कोमल है । श्री आचार्य जी अग्नी रूप हैं । ताते उनकों आसरो होई तो माखन मिटि कैं घी होइ । आपनो रूप फिरै तैसें लौकिक मिट के घी वैष्णव होई" ।१ गोस्वामी हरिराय जी ने यहाँ वैष्णवों के आचरण संबंधी मान्यताओं को पुष्ट करने के लिए 'पाषाण' का उदाहरण प्रस्तुत किया है । 'पाषाण' के गुण एवं धर्म की व्याख्या करते हुए लेखक ने एक आदर्श, वैष्णव-समाज के समन्वय प्रस्तुत किया है, जिससे निगमन-शैली का निर्वाह हुआ है । इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण दृष्टव्य है :-

---

(१) पुष्टि दृढ़ाव की वार्ता-- सम्पा० निरंजन देव शर्मा प्रका० मथुरा सं० २०२२ पृष्ठ- १३ ।

"वैष्णव की काहू कूँ चटक लागै तो वैष्णव होय, जैसैं कीट कौं भ्रमरी के काटे को ध्यान रहत हैं, सो कीट पणो । मिटके भ्रमरी होय । तैसैं तालशी वैष्णव भगवद्वार्ता करे ते, एक चित्त सू वाको ध्यान करे तो वैष्णव होय । फेर वैष्णव कौं वैष्णव पने की टेक राखनी । पपैया की तरह जैसे घन बूंद तो लेइ परि भूमि को पर्‍यो न लेइ । और सींप समुद्र मैं रहत है । परि स्वांति बूंद लेइ । परि समुद्र के जल को पान न करे"। १

(आ) आगमन-शैली :- जब तुलसां ने कह्यौ । अंगूठा के से काट्यो जाय ? ।। तब पद्मनाभदास ने कह्यौ । श्री आचार्य जी के सेवक पर तन मन धन न्यौछावरि करिए । सो सगाई कैसैं फेरि जाइ ? ।। या प्रकार तुलसां को मारग को अभिप्राय बताए" ।२

यहाँ लेखक ने 'अँगूठा काटने' के दृष्टान्त से मार्ग के अभिप्राय को स्पष्ट करने का यत्न किया है जिससे आगमन शैली का निर्वाह हुआ है । इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है:-

"या मैं यह जताए, जो-रँच सेवा साग की माधोदास दीनता सो किये । ताते श्री ठाकुर जी प्रीति सौं आरोगे यह तब जानिए, जो वैष्णव प्रसाद लेइ सराहना करैं । तब दोऊ सेवा सिद्ध होय और भगवदीय समान उदार कोऊ नाँही, जो रँच साग की

---

(१) पुष्टि दृढ़ाव की वार्ता-- सम्पा० निरंजन देव शर्मा प्रका० मथुरा सं० २०२२ पृष्ठ- १६ ।

(२) प्राचीन वार्ता रहस्य-- (भाव-प्रकाश) प्रथम भाग सम्पा० द्वारकादास परिख संवत्, १९९६, पृष्ठ- १५५ ।

सेवा किये जनम- जनम को संसार मिटाइ हरिभक्त कर दिये" ।१

गोस्वामी हरिराय जी ने विचारात्मक शैली को अधिक अपनाया है । अपने सिद्धान्त के गूढ़तम विचारों को अनेक रूप में सहज बनाने के लिए उन्होंने निगमन व आगमन शैली को ग्रहण किया है ।

२- वर्णनात्मक शैली:-

वर्णनात्मक शैली दो स्वरूप में प्रयुक्त होती है संश्लिष्ट वर्णन के रूप में तथा असंश्लिष्ट वर्णन के रूप में । संश्लिष्ट वर्णन वह है, जिसमें किसी स्थान, वस्तु या व्यक्ति का वर्णन इस ढंग से किया जाता है, जिससे उसका दृश्य उपस्थित हो जाता है । इससे इतर जहाँ केवल फुटकर नाम ही गिनाए जाएं वहाँ असंश्लिष्ट वर्णन कहा जाता है ।२

(अ) संश्लिष्ट वर्णन :- "सो आगरे के बाजार में एक बेस्या नृत्य करत हती । सब लोग नृत्य को तमासो देखत हते । सो कृष्णदास हू तमासे में ठाड़े भए । तब भीड़ सटकि गई । तब वह बेस्या कृष्णदास के आगे नृत्य करन लागी - - - - सो वह बेस्या बोहोत सुन्दर गावै, नृत्य करै सो हू बोहोत आछे करै"।३

"कुंभनदास जी तनिया पहरे फटी मैली पाग, पिछौरा, टूटे जोड़ा सहित देसाधिपति के आगे जाय ठाड़े भए"।४

(१) चौरासी वैष्णव की वार्ता- गो० हरिराय जी प्रणीत, सम्पा० द्वारकादास परिख, तृ० संस्क० पृष्ठ- ८३

(२) वाङ्मय- विमर्श- लेखक आ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्र०संस्क० पृ० ५६

(३) नित्यभावना से उद्धृत- किंवा विभाग, कांकरौली बंध १०४, पु०सं० ७

(४) प्राचीन वार्ता रहस्य, भाग-२ सम्पा० पो० कंठमणि शास्त्री, द्वितीय-- संस्क०, पृष्ठ- ३८४ ।

लेखक ने यहाँ कुछ ही शब्दों में कुंभन दास जी का समस्त व्यक्तित्व ही अंकित कर दिया है, यह लेखक के अभिव्यक्ति सामर्थ्य का परिचायक है, जिसमें वर्णनात्मक शैली का संश्लिष्ट वर्णन देखा जा सकता है ।

(आ) असंश्लिष्ट वर्णन :- "एक पाथो नामक गूजरी गाठ्योली की अपने पुत्र के लिए छाक ले जात हती तामें सूं बलात्कार सूं दोय रोटी श्रीनाथ जी छिड़ाय के आरोगे । ऐसें ही एक खेमो गूजरी गोवर्द्धन की दही बेचने को जात हती सो दान घाटी उपर श्री देवदमन मिले ---" ।१

३- भावात्मक :-

भावात्मक शैली के भी दो भेद स्वीकार किए गए हैं, धारा शैली एवं तरंग शैली । जहाँ भाव की व्यंजना आदि से अन्त तक निरंतर होती रहती है, वहाँ धारा शैली का प्रयोग समझना चाहिये और जहाँ बीच में भाव की व्यंजना हो जाया करती है, वहाँ तरंग शैली होती है ।२

(अ) धारा शैली :- गोस्वामी हरिराय जी की गद्य रचनाओं में भावात्मक शैली का प्राधान्य है । यही कारण है कि उनके ग्रन्थों के नाम भी 'भावना' से जाने जाते हैं, यथा -सेवा-भावना, उत्सव-भावना, छाकबीरी की भावना, आदि । भावना-ग्रन्थों में उन्होंने धारा शैली को अधिक अपनाया है । यह स्वरूप उनकी 'वार्ताओं' में निहित भाव-प्रकाश के रूप में अधिक प्रयोग हुआ है ।

---

(१) श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता- प्र० नाथद्वारा- पृष्ठ- १६ ।
(२) वाङ्मय विमर्श- आ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृष्ठ- ६० ।

गोस्वामी हरिराय जी ने चौरासी व दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता को `तीन जन्म` के वृत्तान्त से जोड़कर भावों को सुस्पष्ट करने की चेष्टा की है। इसमें `लीला-भावना` नामक वृतान्त निश्चय ही वार्ता साहित्य में उनकी मौलिक शैली को स्थापित करता है। डा० हरिहर नाथ टण्डन ने इस संदर्भ में लिखा है, `वैष्णवों के स्वरूप की लीला-भावना का सर्व प्रथम सूत्रपात करने का श्रेय इस शैली पर गोस्वामी हरिराय जी को है।`१ इस शैली में एक उदाहरण दृष्टव्य है :-

`` सो पुरुषोत्तम जोसी लीला में विसाखा जी की सखी हैं। `गुनचूड़ा` इनको नाम है।। और पुरुषोत्तम जोसी की स्त्री `गुनचूड़ा` की सखी हैं। सो `दुर्वासा` इनको नाम है।`` २

``सो गज्जन श्री चन्द्रावली जी की सखी, लीला में `सुभगानना` इनको नाम है। सो श्री ठाकुर जी प्रगटे ताके दूसरे दिन ये प्रगटी हैं।`` ३

गोस्वामी हरिराय जी ने अन्य स्थलों पर श्री कृष्ण की अलौकिक लीला वर्णन में भी वार्ता शैली को ही अपनाया है :-

`` इहाँ श्री बल्देव जी श्री ठाकुर जी सों कहे जो तुमने मैा कों श्री यशोदा जी के आगे फूँठो कियो। मैं तुम्हारे संग कबहू खेलन कों न चलूँगो, तब श्री ठाकुर जी ने श्री बल्देव जी सों कही। जो हे दाऊजी। तुम तो सदाँई साचे हो परन्तु तुम घर के हो। दोइ बात कहीं तो चिन्ता नाँही पर बाहिर

---

(१) वार्ता-साहित्य एक वृहद् अध्ययन- पृष्ठ- १३४

(२) चौरासी वैष्णवन की वार्ता- पृष्ठ- १६४

(३) वशंत होरी की भावना, प्रका० मथुरा, संवत्- २०२५, पृष्ठ- १७।

सौं आवें ताकौ सनमान कर्यौ ही चाहियें।१

"स्वामिनी जी के चरण चिन्ह की भावना", वर्षोत्सव की भावना आदि भावना-ग्रन्थों में इस शैली का पर्याप्त प्रयोग हुआ है।

(आ) <u>तरंग शैली</u> :- "जैसे श्री ठाकुर जी को अधर बिंब-आरक्त है। रस रूप है तैसें ही श्री स्वामिनी जी के चरण-कमल अत्यन्त आरक्त हैं। तिन चरण कमल कौं मैं बारंबार नमस्कार करत हौं"।२

४- <u>कथात्मक शैली</u> :-

विद्वानों ने वार्ता साहित्य के तीन जन्म की लीला के प्रसंग को 'जातक - कथा' के अनुरूप स्वीकार किया है।३ वैसे भी वार्ता शब्द का राजस्थानी भाषा में प्रचलित 'बात' शब्द से घनिष्ट सम्बन्ध है। राजस्थानी भाषा में ढ़ोला मारू री वार्ता आदि वार्तायें कथा रूप में ही रची गई हैं। संस्कृत में चाहे वार्ता शब्द का अर्थ भिन्न रहा हो[4], तथापि हिन्दी में प्रयुक्त वार्ता 'बात-चीत' से ही संबंधित है। वार्ता

---

(१) चरण चिन्ह की भावना, प्रका० जबलपुर, पृष्ठ- ११।

(२) वही, पृष्ठ- १३।

(३) वार्ता साहित्य एक वृहद् अध्ययन, पृष्ठ- ६३७।

(४) "वार्ता कामसूत्रं शिल्पिशास्त्रं दण्डनीतिरिति। पूर्वैः सहष्टादश विद्या-स्थानानि" इत्यपरे। अर्थात् वार्ता, कामसूत्र, शिल्पशास्त्र और दण्ड-नीति इन चार विद्याओं को जोड़ देने से अठारह विद्यायें हो जाती हैं। ------ बृहस्पिति के मत में दो वार्तायें हैं, दण्डनीति और वार्ता। (वार्ता दण्डनीतिर्द्वे विद्या इति बार्हस्पत्या)---'कृषि पाशु पाल्य वणाज्या च वार्ता' - - -। -- काव्य मीमांसा, राजशेखर, पृ० ८ से ११।

साहित्य का वृत्त भी बात-चीत की भाषा में कथाओं का सम्पादन ही है। गो० हरिराय जी ने इस कथा वृत्त को `पंडिताऊपन` में न कह कर सम्प्रदाय में प्रयुक्त व्यावहारिक भाषा में ही कहा है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है:-

> "सो वा ठौर एक बड़ो नगरसेठ हतो। सो चात्री हतो। वाके चार बेटा हते। और सबते छोटे दामोदर दास हते। सो उन चारों भाइन नें विचार कियों। जो होइ तो यह द्रव्य अपनो अपनो चारों भाये बांटि लेईं। काहे ते जो द्रव्य है सो कलेस को मूल है। पाछे हमारे आपस में हित न रहैगो। दामोदर दास तो छोटे हते। सो इन सों कहे। क्यों बाबा तू अपने बटि को द्रव्य लेईगो? तब दामोदर दास कहे। मैं तो कछू समभत नाहीं। तुम बड़े हो। आछो जानो सो करो। तब इनने द्रव्य सब घर में सूं काढ़ी"।१

गो० हरिराय जी के काव्य में जहाँ कथात्मक शैली का प्रयोग किया गया है, वहाँ छोटे-छोटे वाक्यों में कथन व्यक्त किया गया है। कथा-प्रसंग को वार्तालाप के माध्यम से और भी सरल बनाने का यत्न किया गया है। अलौकिक घटनाओं के योग से कथा में चमत्कृति भी उत्पन्न की गई है। कथा के अन्त में कवि `या को आसय` कह कर अपने उद्देश्य को भी स्पष्ट कर देता है।

५- <u>आत्म व्यंजक :-</u>

आत्म व्यंजक शैली में कवि ने अपने विचारों को यथास्थल प्रमुख स्थान देते हुए व्यक्त किया है। प्राय: वार्ताओं में बीच-बीच में भी लेखक ने अपने विशेष-विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं :-

---

(१) प्राचीन वार्ता रहस्य, कांकरौली, भाग-१, पृष्ठ- २८ ।

``सो यह वार्ता में भगवदीय कों बड़ी बड़ाई दी है । काहे
ते, भगवदीय भक्ति मुक्ति के दाता हैं। चाहें तो तत्काल
श्री ठाकुर जी सों मिलाय दें । यह तो पुत्र, तुच्छ फल
कहा ? तहाँ अर्थ यह है जो पुत्र लौकिक नाँही दिये । परम
भगवदीय पुत्र दिए । सो पुत्र श्री गुसाई जी को सेवक होइ,
सगरे कुल को आगे कल्याण करेगो । ताते भगवदीय जो
दैन्य सो अलौकिक देई, लौकिक देई तो नाँही दिये बराबर हैं`।१

प्रस्तुत गद्यांश में गोस्वामी हरिराय जी ने वैष्णवों की महत्ता का प्रतिपादन किया है । उनकी वार्ताओं का यह एक मुख्य उद्देश्य रहा है । अन्य स्थल पर उन्होंने ऐसे ही वाक्यों का प्रयोग किया है, यथा :-

`श्री आचार्य जी के सेवक पर तन-मन-धन न्यौछावर करिए`।२

अपनी पद रचनाओं में भी उन्होंने इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं :-

`हौं वारी इन वल्लभियन पर`।३

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि गोस्वामी हरिराय जी ने स्थान-स्थान पर अपने विचारों को भी सोद्देश्य `आत्मव्यंजक शैली` में प्रकट किया है ।

उपर्युक्त शैलियों के अतिरिक्त कुछ और भी विशिष्ट शैलियाँ गोस्वामी हरिराय जी के गद्य साहित्य में उपलब्ध होती हैं । इनमें उपदेशात्मक, तथ्यनिरूपण प्रधान, तथा गवेषणात्मक आदि शैलियाँ प्रधान रूप से उपलब्ध होती हैं ।

---

(१) चौरासी वैष्णवन की वार्ता, अग्रवाल प्रेस, मथुरा, पृष्ठ- २४६ ।
(२) प्राचीन वार्ता रहस्य, विद्या विभाग कांकरौली, भाग-१,पृ० १५५ ।
(३) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ६४१ ।

उपदेशात्मक शैली :-

यह शैली गोस्वामी हरिराय जी के आचार्य रूप को उजागर करती है। इसमें लेखक ने एक कुशल उपदेष्टा की भाँति श्रोताओं तथा पाठकों को अपने उद्गारों से परिचित कराया है। कुछ उदाहरण इसी प्रकार के द्रष्टव्य हैं :-

" या मार्ग और या मार्ग की क्रिया सब फल रूप हैं। परन्तु श्री महाप्रभु तथा श्री मत् प्रभु को सम्बन्ध दृढ़ राखि व्रजभक्तन के भाव सों क्रिया करें तब भक्ति फलरूप होय, अरु अलौकिक लीलानुभाव वेगि ही प्रभु दान करें या में सन्देह नाहीं।" १

" जाको अंग पुष्टि अंगीकार होयगो सो जानेंगो। जीव को उद्यम करनो। उत्तम भगवदीय की संगति मिलनों अरु वाके करे को विश्वास राखनो। जब विश्वास उपजे तब जानियें जो श्रीजी नें कृपा करी ----।" २

तथ्यनिरूपण प्रधान शैली :-

गोस्वामी हरिराय जी ने इस शैली में अपने कथ्य का अभिप्राय इस प्रकार से व्यक्त किया है।--

'सो तैसे ही यह श्री भागवत रूप पुष्टि मार्ग है। सो या को अधिकारी निरपेक्ष होय ताही के माथे यह मार्ग होइ। और जाकों अधिकार पाए, अहंकार बढ़े, सो ताको कछू फल सिद्ध न होइ।'३

---

(१) उत्सव भावना, निजी पुस्तकालय, नाथद्वारा, बन्ध सं० ४६, पु० ४, पत्रा-१७

(२) पुष्टि दृढ़ाव की वार्ता- मथुरा से प्रका० सं० २०२५, पृष्ठ- १

(३) प्राचीन वार्ता रहस्य, कांकरौली, भाग-२, पृष्ठ- ४४१।

तथ्य निरूपण प्रधान शैली में गोस्वामी हरिराय जी ने तर्क-शैली को भी ग्रहण किया है । यथा :-

> "तहां यह संदेह होइ, जो ठाकुर जी ताती क्यों आरोगे ? जगन्नाथ जोशी सों क्यों न कहे ? तहां यह जाननों, जो जा दिन तें जगन्नाथ जोसी के मन में थार छूइवे की असंभावना भई ता दिन ते बहुत अनुभव न करावते । इनकी प्रीत सों आरोगते ।" १

इनके गद्य-साहित्य में गवेषणात्मक शैली का भी प्रयोग हुआ है । वैसे तो समस्त वार्ता-साहित्य में निहित उनका 'भाव-प्रकाश' उनकी स्वयं की गवेषणा ही है, जिनके द्वारा उन्होंने अधूरे व संदेहास्पद प्रसंगों को सुस्पष्ट किया है और इसके लिए निश्चय ही उन्होंने यथा सम्भव शोध करके सामग्री संकलन की होगी । जहां भी इस प्रकार की जानकारी इन्होंने दी है, वहां प्रमुख रूप से गवेषणात्मक शैली का ही प्रयोग हुआ है । इसके अतिरिक्त जहां उन्होंने सम्प्रदाय के ऐतिहासिक तथ्य प्रस्तुत किए हैं, वहां भी इस शैली को देखा जा सकता है ।

'श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता' में सामग्री संकलन के सूत्रों के विषय में पहले ही उद्घोषित कर देते हैं, "अब श्री गोवर्द्धन नाथ जी के प्राकट्य को प्रकार तथा प्रकट होय के जो जो चरित्र भूमि लोक में कीने सो श्री गोकुलनाथ जी के वचनामृतादिक समूहन में तें उद्धार करि के न्यारे लिखत हैं ।" २

इसी आधार पर वे आगे की सभी ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करते हैं, यथा--

---

(१) चौरासी वैष्णवन की वार्ता,- पृष्ठ- १६६ ।

(२) श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता- संस्क०, नाथद्वारा, पृष्ठ- १ ।

"मिती आसौज सुदी १५ शुक्रबार सम्बत् १७२६ के पाछिलौ पहर रात्रि कौ श्री वल्लभ जी महाराज पना सिद्ध कराये और आरोगा र पाछे रथ हाँके सो चले नहीं"।१

अन्य स्थलों पर उन्होंने वार्तागत संदेह की पुष्टि के लिए प्रमुख-प्रमाणों सहित संदेह निवारण भी किया है :-

'यह वार्ता मैं बोहोत संदेह है। जो-सेठ सेवा छाँड़ि कैं दक्षिण क्यौं गए ? तहाँ कहत हैं, जो सेठ के मन मैं यह आई, जो दक्षिण मैं श्री आचार्य जी को जनम है। सो जनम-स्थान के दर्शन करि आऊँ, ताकि लिए दक्षिण गए'।२

"और 'नामरत्न' ग्रन्थ श्री रघुनाथ जी श्री गुसाई जी के लाल जी किये हैं। तामैं कहैं हैं- 'विप्रदारिद्र्यदावाग्नि'। ब्राह्मण को दारिद्र रूप जो काष्ट ताके दावाग्नि (सो) बुझावन हारे। तातैं यह नाम प्रगट करन (अर्थ) ब्राह्मण को बहोत समाधान करि द्रव्यादिक दे विदा करते" ।३

उपर्युक्त सभी उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि गोस्वामी हरिराय जी का ब्रजभाषा गद्य परिमार्जित तथा अनेक शैलियों से समन्वित था। जहाँ जिस शैली मैं अभिप्राय प्रकट हो सकता था वहाँ उसी शैली का निर्वाह मिलता है। भावों के प्रस्तुती-करण मैं निश्चय ही उन्होंने कुशलता का परिचय दिया है। गोस्वामी हरिराय जी ने अपने भाषा-सौष्ठव से ब्रजभाषा-गद्य को साहित्य की भाषा बनने का गौरव प्रदान किया। उनसे पहिले का ब्रजभाषा-गद्य-साहित्य अत्यल्प परिमाण मैं ही था और उसमैं भी गोस्वामी हरिराय जी

---

(१)श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता, प्रका० नाथद्वारा, पृष्ठ- ५२ ।
(२)चौरासी वैष्णवन की वार्ता, प्रकाशन-मथुरा, पृष्ठ- ६२ ।
(३)वही, पृष्ठ- २६४ ।

के गद्य की भाँति उत्कृष्टता तथा गरिमा का सर्वथा अभाव था । अत: गो० हरिराय जी का समय ब्रजभाषा गद्य के परिष्करण का युग था ।

ब्रजभाषा गद्य का सर्वांगीण विकास महाप्रभु वल्लभाचार्य के परवर्ती काल में ही हुआ था । एक ओर सूर ने सागर रच कर ब्रजभाषा को काव्य की भाषा बनाने का श्रेय प्राप्त किया तो दूसरी ओर गोस्वामी हरिराय जी ने ब्रजभाषा गद्य का चतुर्मुखी विकास कर साहित्य में गद्य के महत्व को प्रतिपादित किया । उन्होंने अपने पूर्वज आचार्यों के अपूर्ण ग्रन्थों को पूर्ण व परिष्कृत रूप प्रदान किया । भाव-प्रकाश नामक टिप्पणी निश्चय ही उनकी शोध वृत्ति को प्रदर्शित करती है ।

उपर्युक्त विविध उद्धरणों से जाना जा सकता है, कि गोस्वामी हरिराय जी ने भाषा को भावानुकूल ही प्रवाहित किया है, जिसमें विचार-नौकाऐं मन्थर-मन्थर गति से सन्देह और कौतूहल के पाटों को पाटती हुई प्रतिभाषित होती हैं ।लेखन ने शब्द योजना में अपने दीर्घ अनुभव और वृहद् अध्ययन का भी संकेत किया है । गोस्वामी हरिराय जी बहुभाषा-विज्ञ थे । उनका गद्य एवं पद्य में समान अधिकार था । ब्रज-भाषा गद्य में उनके ग्रन्थों के परिमाण को देखते हुए कहा जा सकता है, कि, शायद ही किसी धर्म-सम्प्रदाय की प्राचीरों में निवद्ध किसी साहित्यकार ने इतने गद्य-ग्रन्थों की रचना की हो ।

ब्रजभाषा-गद्य के क्षेत्र में 'भाव-प्रकाश' उनकी एक मौलिक देन है । यह मुख्य ग्रन्थ से संलग्न रहते हुए भी अपनी स्वतंत्र सत्ता रखता है । वार्ताओं के व्यवस्थित रूप को देखकर लेखक के सम्पादन-कौशल का भी परिचय प्राप्त होता है । इतिहास-प्रधान ग्रन्थों में लेखक की शोध-दृष्टि निश्चय ही तीक्ष्ण रही है । भावना-प्रधान ग्रन्थों में गोस्वामी हरिराय जी की वाणी हृदय से निकली है, जिसमें भावों के रंग-बिरंगे फूल झर-झर झरते रहे हैं ।

गोस्वामी हरिराय जी के गद्य के प्रस्तुत विवेचन से कहा जा सकता है कि इनका समय यथार्थ रूप से ब्रजभाषा - गद्य का स्वर्ण-युग था, क्योंकि भाषा का यह परिमार्जित रूप न तो उनसे पूर्व की कृतियों में प्राप्त होता है और न ही उनके पश्चात् की रचनाओं में। गोस्वामी हरिराय जी के पश्चात् कुछ ही विद्वानों ने ब्रजभाषा - गद्य में लिखने का उत्साह प्रकट किया था, अन्यथा इस ओर प्रयास मन्द पड़ता ही चला गया। आज ब्रजभाषा-गद्य विगत की स्मृतियाँ ही हैं। न गोस्वामी हरिराय जी जैसे उद्भट लेखक ही रहे और न ही इस क्षेत्र में उत्साह प्रकट करने वाले पाठक।

गोस्वामी हरिराय जी ने गद्य की अधिकांश शैलियों को स्पर्श किया है। उनके वार्ता-साहित्य में कहानी तत्त्व, एकांकी व नाटक तत्व, लेखतत्व, उपन्यास तत्व, समालोचना तत्व, व्याख्या-तत्व आदि सभी स्वरूपों के दर्शन होते हैं।

अब तक के समस्त अध्ययन से गोस्वामी हरिराय जी के सम्पूर्ण ब्रजभाषा साहित्य पर प्रकाश डाला जा चुका है। विविध उदाहरणों से गोस्वामी हरिराय जी के कवि और लेखक, उभय-रूपों की सम्पन्नता स्पष्ट की जा चुकी है। अगले अध्याय में गोस्वामी हरिराय जी के साहित्य में प्रतिबिंबित उनके भक्ति सिद्धान्त एवं दार्शनिक विचारों का अध्ययन भी करलेना अपेक्षित जान पड़ता है, क्योंकि इसके अभाव में कवि के साहित्य की गरिमा स्पष्ट नहीं हो पाती है, और न विद्वान आचार्य की साहित्यिक छवि ही उभर पाती है।

Chapter-8

अष्टम - अध्याय

भक्ति एवं दर्शन

"गोस्वामी हरिराय जी जिस जीवन को जी रहे थे, उसकी कुछ निश्चित प्राचीरें थीं, जो उनके साहित्यकार को एक मान्य-सीमा में ही परिभ्रमण करने के लिए बाध्य किये हुए थीं । इस अवरोध को उन्होंने अपनी गति के लिए बेढ़ियां न मानकर भटकाव के बचाव का कारण ही माना है । - - उनका एक मात्र उद्देश्य पुष्टि-मार्गीय सिद्धान्तों को जन-सामान्य के लिए सुलभ बनाना था ।"

पुष्टि-मार्गीय सिद्धान्तों का विवेचन जिस कुशलता से गोस्वामी हरिराय जी ने किया है, वह अपने में अप्रतिम ही है। उन्होंने अपने साहित्य की सरस प्रवाहिनी में शुद्धाद्वैत संबंधी मान्यताओं के निश्चित कगारों का निबंधन कर जहाँ एक ओर अपने मूल-ध्येय को प्रोद्-भाषित किया है, वहाँ दूसरी ओर उनकी भक्ति-वैतरिणी उस वैष्णव समाज का आव्हान भी करती है, जो अपने अभीष्ट के सामीप्य का जिज्ञासु है।

गोस्वामी हरिराय जी ने संस्कृत में 'मार्ग स्वरूप सिद्धान्त', 'स्वमार्गीय कर्त्तव्य निरूपण', 'स्वमार्गीय साधन रहस्य', 'भक्ति मार्ग', 'पुष्टिमार्गत्व निश्चय', 'पुष्टिमार्गीय स्वरूप निरूपण' आदि ग्रन्थ अपने भक्ति-सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिये ही लिखे थे। ब्रजभाषा में भी 'भावना ग्रन्थ' तथा 'पुष्टि-दृढ़ाव की वार्ता', 'मार्गशिक्षा', 'वैष्णवन के नित्य कृत्य,' 'द्विदलात्मक स्वरूप विचार' आदि ग्रन्थ मूल रूप में पुष्टि-मार्गीय सिद्धान्तों को ही अधिक स्पष्ट करते हैं। उनका अधिकांश साहित्य एक पूर्व योजित दार्शनिक-सत्य के उद्‌बोधन स्वरूप ही गठित हुआ है। 'साहित्य का उद्देश्य मनुष्य को सत् की ओर प्रवृत्त करना बतलाया गया है। प्लेटो ने इसको उपदेशात्मक मानकर समालोचना में आदर्शवादिता का समावेश किया, वह लौकिक सत्य को अलौकिक सत्य की छाया मानता है और उसी कला को उत्कृष्ट मानता था जो

नैतिक और दार्शनिक सत्य पर आधारित हों।१ नैतिक और दार्शनिक सत्य को साहित्यकार अपनी बोध-तुला पर तौल कर अन्य के लिये अनन्य रूप में प्रेषित करता रहा है। गोस्वामी हरिराय जी जिस जीवन को जी रहे थे, उसकी कुछ निश्चित प्राचीरें थीं, जो उनके साहित्यकार को एक मान्य सीमा में ही परिभ्रमण करने के लिये वाध्य किये हुए थीं। इस अवरोध को उन्होंने अपनी गति के लिये बेढ़ियाँ न मान कर, भटकाव से बचाव का कारण ही माना। यही कारण है, कि कृष्ण-लीला के बखान में ही उनकी सम्पूर्ण प्रतिभा के दर्शन हो जाते हैं। अपनी सैद्धान्तिक मान्यताओं को दृढ़ बनाने के लिये ही उन्होंने अपनी सशक्त वाणी का साहचर्य ग्रहण किया और अपने निश्चित उद्देश्यों की व्याख्या कर डाली। इनका एक मात्र उद्देश्य पुष्टि-मार्गीय मान्यताओं को जन-सामान्य के लिये सुलभ बनाना था।

पुष्टि-मार्ग का दार्शनिक-सिद्धान्त ज्ञान तथा भक्ति के युगल स्कंधों पर आरूढ़ है। ज्ञान के माध्यम से जहाँ भक्त के बोध-चक्षु अपने आराध्य को एक निश्चित स्वरूप में देखते हैं, वहाँ भक्ति के माध्यम से वह अपनी पावन,पूज्य तथा श्रद्धापूर्ण भावनाओं को अपने आराध्य के चरणों में समर्पित करने की व्यवस्था को भी ग्रहण करता है।

पुष्टि-मार्ग के दार्शनिक सिद्धान्तों की विवेचना अनेक मनीषी विद्वानों व्दारा की जा चुकी है, अत: इस सिद्धान्त का स्वरूप अब हिन्दी साहित्य के अध्येता के लिये अपरिचित नहीं है। इन सिद्धान्तों की यहाँ चर्चा करना मात्र पिष्टपेषण ही होगा, इसलिए पुष्टि-मार्गीय सिद्धान्तों की विवेचना मूल रूप में यहाँ न करके, गोस्वामी हरिराय जी के साहित्य में प्रतिबिम्बित संकेतों द्वारा ही करेंगे।

ज्ञान एवं भक्ति के प्रतिपादन में गोस्वामी हरिराय जी ने भक्ति को अधिक महत्ता प्रदान की है। ज्ञान-पक्ष का उन्होंने

अपने संस्कृत ग्रन्थों में स्पष्टीकरण किया है। यहाँ उनके ब्रजभाषा साहित्य में समाविष्ट भक्ति-सिद्धान्तों का विवेचन करना ही अभिप्रेत है।

भावमयी भगवत्परिचयात्मक सेवा को भक्ति कहा जाता है! इस प्रकार की भक्ति का प्रारम्भ 'विष्णुस्वामी' से माना गया है। इसका समय विक्रम की पाँचवीं शताब्दी अनुमानत: ज्ञात होती है।

-:: भक्ति-सिद्धान्त ::-

सम्राट् अशोक के समय बौद्ध-मत का बोल-बाला रहा था। इस समय विष्णुस्वामी मतानुयायी सिद्धान्त शिथिल पड़ चुके थे। आचार्य शंकर ने बौद्धमत के मायावाद का तर्क-सम्मत खण्डन कर भारतीय दर्शन के इतिहास में पुन: वैदिक-मत की प्रतिष्ठा की। इस सन्दर्भ में शंकराचार्य ने बौद्धमत के खण्डन हेतु वेद-वाक्यों का अपने विवेकानुसार अन्यथा अर्थ ग्रहण किया था। दसवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक भक्ति मार्ग के प्रतिपादक अनेक आचार्यों ने अपने-अपने भक्ति-सिद्धान्तों का प्रचार किया। उन्होंने साकार-भक्तिमार्ग के समर्थन में अनेक प्रकार के सिद्धान्तों द्वारा वैदिक-मतों की स्थापनाएँ कीं। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में वल्लभाचार्य ने भक्ति-समर्थक सभी सिद्धान्तों का अध्ययन कर प्राचीन शोध करके विष्णुस्वामी के मत को ही अधिक उपयुक्त समझा। अपनी विलक्षण बुद्धि से इस मत को उन्होंने पूर्ण पुष्ट किया। कालान्तर में यही मत 'वल्लभ-मत' के नाम से जाना गया।[१] गोस्वामी हरिराय जी ने इस तथ्य को स्वीकार किया है :-

'विष्णुस्वामी पथ प्रगट अचल करि पुष्टि-मर्यादा चलाई हो'[२]

इसी सन्दर्भ में गोस्वामी हरिराय जी ने अपने पूर्वजों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त का स्पष्टीकरण इन शब्दों में किया है :-

---

(१) देखिये-- दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता- सम्पा० श्री द्वारकादास परिख, (भाग-३) - प्रस्तावना, पृष्ठ- २३।

(२) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य-प्रकाशित, पद संख्या- ६०४।

'सो श्री आचार्य जी के मारग को कहा स्वरूप है ? जो-माहात्म्य ज्ञान पूर्वक दृढ़ स्नेह सो सर्वोपरि है । सो ठाकुर जी कों बहोत प्रिय है । परन्तु जीव माहात्म्य राखें । सो काहे ते ? जो-माहात्म्य बिना अपराध को भय मिट जाय । तासों प्रथम दसा में माहात्म्ययुक्त स्नेह आवश्यक चाहिये । और ब्रज भक्तन को स्नेह है सो सर्वोपरि है । तासों भक्तन के स्नेह आगे ठाकुर जी कों माहात्म्य रहत नाहीं । सो श्री ठाकुर जी स्नेह के बस होय भक्तन के पाछे-पाछे डोलत हैं । - - - - - सो ऐसो स्नेह प्रभु कृपा करि दान करें ताकों आप ही तें माहात्म्य छुटि जायगो । और जाको स्नेह पति,पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब तथा द्रव्य में है । और अपने देह सुख में है । सो भगवान् को माहात्म्य छोड़ लौकिक रीति करें सो भगवान कों अपराधी होय । तासों वेदमर्यादा सहित श्री ठाकुर जी के भय सहित सेवा करे और सावधान रहे । - - - - - सो महात्म्य पूर्वक स्नेह यह जो समय-समय ऋतु अनुसार सेवा में सावधान रहे'।१

-o:: माहात्म्य ::o-

आराध्य के प्रति दृढ़ स्नेह रखकर उसके माहात्म्य का निरंतर मनन करते रहना चाहिये । इसमें - लौकिक संबंधों के लिए कोई स्थान नहीं रहता । वेद-मर्यादा के अनुसार चलकर आराध्य की सेवा करनी चाहिए । भक्ति के इस पथ में भगवान के माहात्म्य को सर्वोपरि स्वीकार किया गया है ।

नवधा-भक्ति :-

भक्ति के इस पावन माध्यम में गोस्वामी हरिराय जी ने नवधा-भक्ति की सभी स्थितियों में रतहोकर अपने इष्ट को तुष्ट करने की चेष्टा की है । उनके काव्य में नवधा-भक्ति की सभी स्थितियों को व्यक्त किया

---

(१) सूरदास की वार्ता-- गो० हरिराय जी । सम्पा० श्रीप्रभुदयाल मीतल, - अग्रवाल प्रेस,मथुरा, -- पृष्ठ- २२ ।

गया है। पुष्टि-मार्ग में नवधा-भक्ति से सम्पन्न माहात्म्य-ज्ञान युक्त प्रेम लक्षणा भक्ति को अपनाया गया है। इसमें आराध्य के प्रति प्रेमासक्ति को अधिक महत्व दिया गया है। यह आसक्ति अपने में अनन्य है। इसके वृत्त में नवधा के सभी प्रकार सन्निहित हैं। प्रेमाभक्ति में 'रसोवैस:' के अनुसार आराध्य के पूर्ण रसात्मक स्वरूप को ग्रहण किया गया है।१ इस मार्ग में श्रवण[२], कीर्तन[३], स्मरण[४], पादसेवन[५], अर्चन[६], वंदन[७], दास्य[८], सख्य[९] और आत्म निवेदन[१०] के सभी विधान निहित हैं। गोस्वामी हरिराय जी ने इन सभी नवधा रूपों को स्वीकारते हुए प्रेमा-भक्ति को ही अधिक महत्व दिया है।

प्रेमाभक्ति :- 'अर्थ, धर्म, अरु काम मोक्ष फल प्रेम-भक्ति को कनक कस'।११ इसमें प्रेम-भक्ति के 'कनक' को 'कसने' के लिए 'अर्थ, धर्म, अरु काम मोक्ष' को स्वीकारा गया है। अपने गद्य ग्रन्थों में भी गोस्वामी हरिराय जी ने इस मत को स्वीकार किया है।--

---

(१) 'रसोवैस: इति श्रुत्या- कृष्णो भावात्मको मत: ।
-- मार्ग स्वरूप निर्णय, गो० हरिराय जी ।

(२) सुमिरन भजन करो केसव को, जब तक येह नहीं गरत गातरी ।
-- गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ६६८ ।

(३) नाथ - रसिक सिरोमनि श्री वल्लभ सुत, जनम जनम जस गाईं हो- वही, प०६०४

(४) नाथ हा, हा, मोहि दीजे दरस- वही, पद - ६५१ ।

(५) मेरी मति राधिका चरन रज में रहो, वही , पद - ६५६ ।

(६) मंगल की आरती उतारी । वही , पद - ५१३ ।

(७) तुमसों नाथ पुकारत हार्यो । वही, पद - ६४६ ।

(८) अहो हरि दीन के जु दयाल । वही, पद - ६५४ ।

(९) अहो कान्ह ! गैया कित विहरानी । वही, पद - ६८ ।

(१०) दुर्बल सो जीव एक, ताके शत्रु अनेक । वही, पद - ६५५ ।

(११) वही, पद संख्या- ६४४ ।

'श्री आचार्य जी के मार्ग में दशधा प्रेम-लक्षणा भक्ति अधिक है'। १

आराध्य के इस प्रेम में निमग्न भक्त के लिए न तो कोई बन्धन है,न मर्यादा :-

मन में आवत ऐसी सुत पति गृह तजि ।
भजिये री प्रीतम कों नचिये री उघरि ।। २

सभी को त्याग कर प्रीतम को भजने के लिए भक्त को किसी भी निश्चित प्राचीर में बंदी नहीं बनाया जा सकता । अपने मत को और भी स्पष्ट करने के लिए गोस्वामी हरिराय जी ने लिखा है :-

'सर्ग आदि लीला में दस विधि, जाको निरोध है नाम ।
प्रेमासक्ति व्यसन त्रिविध फल, त्रिविध लीला अभिराम ।
पुष्टि प्रवाह मरजादा मारग, तिनहिं दिखायो भेद ।
दैवी जीव कृपा साधन बल, सब प्रमान हैं वेद ।।३

गोस्वामी हरिराय जी ने इस 'प्रेमासक्ति' जन्य भक्ति के लिए साकार-कृष्ण को अपना आराध्य स्वीकार किया है :-

साकार :-

कृष्ण का स्वरूप भक्तों के मन को मोहने वाला पूर्ण सौन्दर्य से सम्पन्न है ।--

'मोर मुकुट गुंजामनी, कुण्डल तिलक सुभाल ।
पीतांबर छुद्र घंटिका, उर बैजंती माल ।
कर लकुटी मुरली गहें, घूंघर वारे केश ।
वह मेरे नैंनन बसो, स्याम मनोहर वेश ।।४

---

(१) २५२ वैष्णवन की वार्ता , भाग-१, सम्पा० श्री द्वा०दा० परिख, पृ०-२४ ।
(२) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १८६ ।
(३) वही, पद सं० ५८६ । (४) सनेह लीला ।

गोस्वामी हरिराय जी ने कृष्ण के साकार स्वरूप को अन्य स्थलों पर भी स्वीकारा है :-

-- श्री हरिबदन जो प्रगट न होते, तो बूड़त वेद जहाज ।।१

-- यह स्वरूप रसरूप सदा, मन बसो विरह रसखानि ।।२

उनके आराध्य का स्वरूप पूर्ण रसत्व से व्याप्त है। इस रस में निमग्न भक्त का हृदय स्वरूपात्मक-सेवा से किंचित भी विलग नहीं रह सकता ।३

<u>लीला</u> :-

यह लीला तुम कारने, गोप भेष अवतार ।
निर्गुन ते सगुन भये, तुमसों करत विहार ।।४

भगवान स्वयं लीलामय हैं, और उनकी समस्त लीला अपने भक्त वैष्णवों के लिये ही है, इसीसे उन्होंने निराकार होते हुए भी सगुण रूप को स्वीकार किया है। माया के गुण धर्म उनमें न होने से वे निराकार वा निर्गुण कहे जाते हैं तथा आनन्द के दिव्य एवं अप्राकृत गुणों के कारण वे सगुण एवं साकार भी कहे जाते हैं। पुष्टि-मार्ग में कृष्ण के इसी साकार स्वरूप को स्वीकार किया गया है।

भगवान कृष्ण अपनी लीलाओं से अपने भक्तों को प्रसन्न करते रहते हैं। उनकी ये लीलायें पूर्ण रस-मग्ना हैं। उनकी सभी लीलाओं को प्रकट करने का मुख्य कारण उनके भक्त ही हैं !-

ब्रज जन की रति मूरति, दई है दिखाई, लीला सब प्रगट करी,
सेवकन बताई ।।५

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० १९५ ।
(२) वही, पद संख्या- १४३ ।
(३) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, (भाग-३), पृष्ठ- ३५० ।
(४) सनेह लीला । (५) गो० हरिराय जी का पद सा०, प्र०, पद-५२७ ।

-- बत्तीस लदा जीव की गिनती, लीला रस ते भक्ति प्रतीती ।।१

-- तब कही बर दैन जो चाहौ, लीला अनुभव सुख गहौ ।।२

कृष्ण की लीलाएँ अनन्त हैं, अकथ हैं, फिर भी गुरु कृपा से ही उनकी लीलाओं का अनुभव किया जा सकता है :-

कापै कही जाय यह लीला, गुपत, न काहू जानी ।
कछु इक श्री वल्लभ करुना बल रसिक विचार बखानी ।।३

गोस्वामी हरिराय जी ने इसे अपने गद्य-ग्रन्थ में इस प्रकार स्पष्ट किया है :-

'श्री जी (श्रीकृष्ण) की लीला अति बड़ी अरु महा आनन्द रूप है । तैसो आनन्द रूप हृदय में राखनो तो महालीला को सुख देखिये । सो देखिये दोष उपजे तो महा पतित होय । और जो स्नेह उपजे तो श्री ठाकुर जी अपने रसात्मक स्वरूप को दर्शन देहि अरु दास करि राखें'।४

गो० हरिराय जी के अनुसार कृष्ण की यह लीला अत्यन्त अलौकिक है । तर्कागोचर है ।५ यह केवल भावात्मक है और शुद्ध हृदय से ही इसका अनुभव किया जा सकता है ।

भाव-प्रधान :- ' भाव रूप कौं भाव रूप ही भजन पंथ जत-यौं '।६

लौकिक वातावरण से सर्वथा इतर पारलौकिक स्थिति में पहुँच कर ही इसके

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५२३ ।
(२) वही, पद संख्या- ५२१ ।
(३) वही, पद संख्या- १४४ ।
(४) पुष्टि दृढ़ाव, गो० हरिराय जी, प्रका० मथुरा, पृष्ठ- ५ ।
(५) श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता, प्रका०, नाथद्वारा, पृष्ठ- ३६ ।
(६) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५३४ ।

स्वरूप का अनुभव किया जा सकता है ।--

-- सपने ही संगम नित जाकौ, जागत गति छिन की ।।१

भाव की महत्ता प्रतिपादित करते हुए वे लिखते हैं, `भाव बिना क्रिया करिए सो वृथा श्रम जाननौ । यह मार्ग अरु मार्ग की क्रिया श्री मत्प्रभु कौ शरण संबंध दृढ़ राखि ब्रज भक्तन के भाव सौं सेवा करैं । तब फल रूप होय । अरु अलौकिक लीला अनुभव बेगि ही दान करैं प्रभु । यामैं संदेह नांहीं`।२ अन्यत्र गोस्वामी हरिराय जी ने मर्यादा-मार्ग और पुष्टि-मार्ग मैं अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है,`पुष्टि-मार्ग मैं भावना ते स्वरूप पधारे । मर्यादा-मार्ग मैं वेद मंत्र के आवाहन ते ।`३ इस मार्ग मैं भाव को मुख्य रूप से ग्रहण किया गया है, गो० हरिराय जी के अनुसार इस मार्ग मैं भाव ही सर्व प्रमुख है ।४

भक्ति मैं भाव का सम्बन्ध हृदय की आन्तरिक अनुभूतियों से है, जो कल्पना के रथ पर चढ़कर अपने लक्ष्य का अवलोकन करता है । भावों के प्रवल उद्वेग मैं ही भक्त अपने भगवान् का साक्षात्कार करता है ।

गोपी भाव :- गोस्वामी हरिराय जी ने आराध्य का नैकट्य प्राप्त करने के लिये अन्य सम्बन्धों की अपेक्षा प्रिय-प्रिया के सम्बन्ध को ही अधिक उपयुक्त समझा था । इसी सम्बन्ध मैं अपने प्रभु को वश मैं करने के लिये वे स्वयं स्त्रीत्व का अनुभव करने लगते हैं । पुष्टि-मार्ग मैं सखी भाव से ही कृष्ण की आराधना का प्रचलन रहा है :-

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ३६८ ।

(२) उत्सव भावना, गो० हरिराय जी, प्रकाशित, पृष्ठ- ८६ ।

(३) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, (भाग-१) पृष्ठ- ४६ ।

(४) वही, पृष्ठ- ४३७ ।

'पुष्टि-मार्ग में जितनी क्रियाएं हैं, सो सब श्री स्वामिनी जी के भाव ते हैं।'१

स्वामिनी अर्थात् श्री राधा कृष्ण की अर्धांगिनी हैं। इसलिए कृष्ण से साक्षात् निवेदन करने से अच्छा यही है कि राधा के माध्यम से अनुनय की जाय। राधा से विनय करते समय गोपिकाओं की भावनाओं से मंडित होना भी आवश्यक है! इसलिए इस मार्ग में गोपीभाव को प्राधान्य दिया गया है। गोपिकाएं कृष्ण के ऊपर तन-मन से आसक्त हैं। वे कृष्ण की परकीया प्रेमिकाएं भी हैं। स्वकीया प्रेम की अपेक्षा परकीया प्रेम में घनिष्टता एवं तल्लीनता की अधिक लौ रहती है। अत: पुष्टि-मार्ग के आचार्यों ने गोपी-भाव को अपनी भक्ति के प्रतिपादित करने का माध्यम चुना।--

'तब सबरी गोपी श्री स्वामिनी जी सों प्रार्थना करी जो हम अनेक उपाय करिकैं हारी परन्तु काहू कों रस की प्राप्ति न भई। ताते हम तुम्हारी शरण हैं। हमकों कृपा करिकैं स्वरूपानन्द कौ अनुभव करावौ।'२ क्यों कि 'स्त्रीभाव कौ दान स्वामिनी जी के हाथ है।'३ इसलिए स्वामिनी जी की भी आराधना स्वार्थवश की गई। यह स्त्री-भाव लौकिक स्थितियों से सर्वथा परे है, 'अलौकिक स्त्रीभाव बिना पुरुष देह ते ब्रज भक्तन सहित दरसन न होइ।'४ स्त्री-भाव में भी गोपांगनाओं को महत्व देकर कृष्ण का अधिक सानिध्य प्राप्त करने का यत्न किया गया है। --

उद्धव तुम जानत सबै, परम भजन की रीति।
गोपिन सौं संबंध करि उपजी प्रेम प्रतीति।
कृष्ण भक्त मोहि जानियै, जाके अन्तर प्रेम।
राखैं अपने इष्ट सौं, गोपिन कौ सौ नेम।।५

---

(१) श्री स्वामिनी जी के चरण चिन्ह की भावना, (प्रकाशित), पृष्ठ- ११
(२) वही, पृष्ठ- २३ ।
(३) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, (भाग-१) पृ० ३३ ।
(४) वही । (५) सनेह लीला ।

गोस्वामी हरिराय जी के अनुसार इस भूतल पर यदि संत हैं या हुए हैं,तो वे सभी ब्रज की नारियाँ ही हैं :-

संत भये भूतल निर्षे, वे सब ब्रज की नारि ।
चरण शरण गहि के रही मिथ्या जोग विचारि ।।१

इस अनन्त शक्ति सम्पन्न परब्रह्म कृष्ण का न आदि है और न अन्त ही :-

-- निगम जाहि खोजत रहे, आगम अगम न अंत ।२
-- जोगेश्वर पावै नहीं सिद्ध समाधि लगाय ।।३
-- ललित बचन समुझत भए नेति नेति है बैन ।४

अनन्त शक्ति सम्पन्न होने पर तथा "नेति नेति" के इस स्वरूप को यदि वश में किया है,तो गोपिकाओं ने ही :-

-- जोगेश्वर पावैं नहीं, सिद्ध समाधि लगाय ।
सो ब्रजवासी संग में गोकुल चारत गाय ।।५

जिस प्रकार कृष्ण की महिमा का पार नहीं, उसी प्रकार गोपिकाओं के प्रेम की भी कोई सीमा नहीं है :-

--अरु गोपिन के प्रेम की महिमा कछू अनन्त ।६

इन गोपिकाओं के द्वारा ही पूर्ण प्रेम को व्यक्त किया गया है, अन्यथा सभी का प्रेम अपूर्ण है :-

---

(१) सनेह लीला, गोस्वामी हरिराय जी कृत ।
(२) वही ।
(३) वही ।
(४) दान लीला, गोस्वामी हरिराय जी कृत ।
(५) सनेह लीला ।
(६) वही ।

--गोपीजन हरषत उर आनन्द पूरन प्रीत जनाई हो ।१
--वृज सुन्दरी भाव रस पूरित, आनन्द निधि को अंग।२
--गोपीजन मन मान्यौं करिकैं, सजि आरति उतरावैं ।३
--प्रेम विवस व्है, हरि दरसन कौं तन सुधि जिन्ह विसराई।४
'रसिक प्रीतम' करुना ते तिनहू गोपिन की गति पाई ।।

गोस्वामी हरिराय जी ने सम्प्रदाय में प्रचलित मान्यता के अनुसार गोपीभाव की तरह ब्रजजन-भाव को भी महत्ता दी है, किन्तु यह महत्व गोपीकाओं के महत्व के पश्चात् की श्रेणी में है ।

ब्रजजन-भाव :- कृष्ण गोपांगनाओं की भांति अपने इष्ट-मित्र ग्वालों में भी अनन्य भाव रखते हैं । जहां गोपी-भाव में प्रेम निगूढ व्यंजना अन्तर्हित है, वहां 'ब्रजजन-भाव' में प्रेम की स्वच्छन्दता का आभास होता है । गोस्वामी हरिराय जी ने इसे स्पष्ट करते हुये लिखा है :-

---जोगेश्वर पावैं नहीं, सिद्ध समाधि लगाय,
सो ब्रजवासी संग में गोकुल चारत गाय ।५
---ब्रजवासी वल्लभ सदा मेरे जीवन प्रान ,
ताते निमिस न वीसरौं, नन्द ववा की आन।६
---ब्रजजन की रति मूरति दई है दिखाही ।७

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ६०४ ।
(२) वही, पद सं० ५८६ ।
(३) वही, पद सं० ५११ ।
(४) वही, पद सं० ३३८ ।
(५) वही, पद सं० २६ ।
(६) सनेह लीला ।
(७) वही ।

गोस्वामी हरिराय जी ने अन्यत्र कहा है, "सो तो (भगवान) ब्रज भक्तन कों जनावत हैं जो हमारो प्राकट्य केवल तुम्हारे अनुराग तै भयो है"।१ इस ब्रजजन की परिधि में कृष्ण की अनन्य प्रेमिका, गोपिकाएँ भी आ जाती हैं, फिर भी पुष्टि-मार्ग के आचार्यों ने गोपी-प्रेम-भाव को अधिक गहन मान कर उसे ही अधिक महत्व दिया है। गोपीभाव में प्रणय को सामीप्य प्राप्त करने का सर्वाधिक सशक्त माध्यम माना गया है इसी कारण इस सम्प्रदाय में भक्ति का रूप भी प्रेमासक्त भक्ति ही है।

आराध्य-स्वरूप :-

आराधना के इस भाव-जगत में पुष्टि-मार्गीय आचार्यों ने कृष्ण को ही 'प्रमुख' माना है। इस सम्प्रदाय के मुख्य देव श्रीनाथ जी हैं, जो कृष्ण के ही एक स्वरूप हैं। कृष्ण के स्वरूप स्थापन में इन्होंने सर्व प्रथम कृष्ण के बाल-रूप का ही 'सेवा' में प्राधान्य माना है। ध्यान के क्षेत्र में इन्होंने 'गोपीजन वल्लभ' के किशोर-भाव का चिंतन किया है। इस प्रकार द्विविध भाव रूप बाल एवं किशोर की सेवा का निरूपण किया गया है। गोस्वामी हरिराय जी के साहित्य में भी इन दोनों रूपों को परम्परावत् स्वीकार किया गया है। बाल रूप को सेवा में प्रमुख स्थान देने के लिए इन्होंने कृष्ण की बाल-लीलाओं को सेवा विधि के अनुसार ही चित्रित किया है इसमें नित्य-सेवा तथा वर्षोत्सव सेवा के अनुरूप कृष्ण के बाल चरित्र को चित्रित किया है। स्थान-स्थान पर गोस्वामी हरिराय जी ने 'बाल-भाव' को पृथक् रूप से महत्ता देकर भी व्यक्त किया है, :-

-- रसिक पावै कौन हरि को बाल-लीला भाव ।२

-- अवरज 'रसिक' बाल-लीला में लीला और करें ।३

---

(१) उत्सव भावना (प्रकाशित) - पृष्ठ- ६३ ।

(२) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं०- २३ ।

(३) वही, पद सं० २० ।

गद्य-ग्रन्थ में भी इन्होंने कहा है `सो मुग्ध बालक की तरह श्री ठाकुर जी को जानि सेवा करनी`।१ गोस्वामी हरिराय जी ने कृष्ण के इस बाल-स्वरूप को सौन्दर्य की मूर्ति मानकर व्यक्त किया है, इस रूप में इनके कृष्ण का एक चित्र दृष्टव्य है :-

बहुरि कब देखौं नन्द कुमार ।
लकुटि लिए धावत ब्रज बीथिन, बालक अति सुकुमार ।
बिथुरी अलक, लटन, लटकत सिर, राजत मुक्ता हार ।
कंठ बघनखा कर पहौंची सोहन बाजूबन्द सुचार ।
बैंनी गुही जसोदा सुंदर, सोभा देति अपार ।
`रसिक प्रीतम` की यह बानिक कब ह्वै है मन सिंगार ।।२

बाल-लीला वर्णन में कवि ने अधिकांश वर्णन, पुष्टि-मार्गीय सेवानुरूप अष्ट भांकियों के अनुसार ही किए हैं। इसमें मंगला, ग्वाल, श्रृंगार, राजभोग, उत्थापन, भोग, सन्ध्या, आरती एवं शयन की आठों भांकियों में ही कृष्ण का सम्पूर्ण बाल-चरित्र रच डाला है। कुछ भांकियों में कृष्ण का कैशोर रूप भी दर्शित हुआ है।

रसात्मक-मार्ग :-

मानसी चिन्तन के क्षेत्र में अपने पूर्वज आचार्यों की भाँति इन्होंने भी कृष्ण के किशोर रूप को ही स्वीकार किया है। कृष्ण की किशोरावस्था की लीलाओं के चित्रण में इनका हृदय अधिक रमा है, यह विगत अध्ययन से जाना जा सकता है। इसका प्रमुख कारण कृष्ण के रसात्मक स्वरूप को ही अधिक प्रदर्शित करना रहा है। कृष्ण का बाल-चरित्र कुछ कम रस युक्त नहीं, किन्तु पुष्टि-मार्गीय सिद्धांत में सेवक की भावनाओं में `स्त्रीत्व-भाव` सन्निहित होने के कारण उनकी वृत्ति

---

(१) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, सम्पा० द्वारकादास परिख, भाग-१ -- पृ० ८६ ।

(२) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ३०६ ।

की ललक कृष्ण के कैशोर स्वरूप को ही अधिक ग्राह्य कर सकी है। इस मार्ग का स्वरूप ही पूर्ण रसात्मक है। "महारसात्मक जो मार्ग ताको नाम पुष्टि मार्ग "१ गोपीभाव में भी इन्होंने संयोग की अपेक्षा विरह को अधिक महत्व दिया है। विरह में भावोद्वेग के कारण प्रियतमा का मन सदैव प्रिय के लिए आतुर रहता है। वस्तुत: विरह की 'पीर' में जो एकात्म भाव निहित है, वह संयोग के क्षणिक आनन्द में नहीं। गो० हरिराय जी ने विरह को विशेष महत्व दिया है, यही कारण है कि श्रृंगार वर्णन में उनका विरह प्रसंग अधिक मुखर प्रतीत होता है। विरह वर्णन में अनुभूतियाँ अति तीक्ष्ण है, यह भावोद्वेग का ही परिणाम कहा जा सकता है।

विरह :-

गोस्वामी हरिराय जी के शब्दों में 'पुष्टि-मार्ग की सेवा विरह आतुरता की है। विरह आतुरता बिना अनुभव न होइ। विरह आतुरता सों लोक, वेद के धर्म विस्मृत होत हैं। हृदय में प्रभु को आवेश होत है'।२ संयोग में इच्छाएं पूर्ण हो जाने से कुण्ठाएं भी स्खलित हो जाती हैं। इसलिए गोपीभाव में निमग्न इन आचार्यों ने विरह अवस्था को अधिक महत्व दिया, जिससे आवेश में प्रिय का स्मरण निरंतर बना रहे।

माधुर्य-भाव की उपासना को इस सम्प्रदाय में आधार माना है। यह भक्ति माधुर्यभाव युक्ति, होने से रागानुगा है। वैधी नहीं। प्रेम में व्यवधान न रहने से पूर्ण तन्मयता की स्थिति उपस्थित हो जाती है। इन्हीं क्षणों में भक्त अपने भगवान का सामीप्य प्राप्त कर उस अलौकिक आनंद का अनुभव करता है, जो उसे इस लौकिक वातावरण में सर्वथा अ-प्राप्त रहा है। अपने प्रियतम को तुष्ट

---

(१) पुष्टि - दृढ़ाव- पृष्ठ- ३५।

(२) दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता- (भाग-२) पृष्ठ- ८५।

रखने के लिए वह अनेक यत्नों से उसकी शुश्रूषा करता है। पुष्टि-मार्ग में 'सेवा-विधान' इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

सेवा-विधान :-

गोस्वामी हरिराय जी के अनुसार सेवा दो प्रकार की होती है, एक सेवा सर्वत्याग के साथ, दूसरी अनासक्त भाव रखते हुए अत्याग से। दूसरी के अनुसार भक्त धर्मानुसार ग्रहस्थाश्रम का पालन करते हुए तथा ग्रहस्थ में अनासक्त रहते हुए कृष्ण-सेवा करे।१ सर्वत्याग को विशेष महत्व देते हुए भी ग्रहस्थ में अनासक्ति को अधिक व्यवहारिक माना है। इस अर्थ में इन्होंने मात, पिता, बन्धु-बान्धवों के संबंधों को भी नकारा है।

सेवा के महत्व को अधिक प्रतिपादित करने के लिए इन आचार्यों ने अष्ट प्रहर की सेवा का संकेत किया है। जीवन के व्यावहारिक पक्ष में अपना अधिकांश समय एक ही विषय में निमग्न कर देने से व्यक्ति की विचार सरणियों में परिवर्तन आ जाता है। वह जिस जीवन को जीता है, उसे ही सोचता है, उसी का ध्यान धरता है और उसी के स्वप्न देखता है। अष्ट-प्रहर की सेवा के माध्यम से इन आचार्यों ने भक्त की भावनाओं को भगवत्सेवा में अभ्यस्त बनाने के लिए ही इस व्यवहारिक पक्ष को प्रस्तुत किया था, इसका आधार शास्त्र - सम्मत था, :-

'वेद में तथा श्री भागवत में आठ प्रकार की सेवा है। सो एकादस स्कंध में श्री भगवान् उद्धव जी प्रति कहे हैं। सो अष्ट प्रहर की सेवा करें'।२

कर्म-प्रधान :-

अष्ट प्रहर की इस सेवा में मग्न करके इन आचार्यों ने व्यक्ति

---

(१) तुलनीय-- 'स्वमार्गीय शरण समर्पण सेवादि निरूपणम्' (भाग-१) पृ०७५
- हरिरायवाङ्मुक्तावलि,

(२) स्वामिनी जी के चरण चिन्ह की भावना, (प्रकाशित), पृष्ठ- २५।

को उसके कर्त्तव्यों के प्रति अकर्मण्य नहीं बनाया। । वरन् कर्मठता के लिए तो ये बार बार प्रोत्साहन देते रहे हैं । गोस्वामी हरिराय जी ने भी कर्म को प्रधान रूप में स्वीकार किया है । इन्हीं के शब्दों में, `वैष्णव कों महिनत करिके द्रव्य कमावनों । महिनत को द्रव्य प्रभु अंगीकार करत हैं`।१ एक स्थान पर उन्होंने भाव-संसार में निमग्न भक्त के लिए निर्देश किया है कि उसे विवेक अवश्य रखना चाहिये, `जीव कों विवेक विचार करनो` । २ इसी प्रसंग में वे कहते हैं, `जीव को उद्यम अवश्य करनो`।३

गोस्वामी हरिराय जी ने अपने काव्य में भी कर्म की महत्ता प्रतिपादित की है :-

बोले हरि सुनो तात बात एक मेरी ।
करम बस सबै जु होत मिलि सुभाव हेरी ।
कृत के आधीन दैव, कहो कहा करि हैं ।
मन की कछु चलत नाहि, करम विनु न सरि हैं।४

सिद्धान्त पक्ष में कर्म की महत्ता अवश्य प्रतिपादित की गई, किन्तु अष्टप्रहर सेवा-विधान की भावना ने कुछ वैष्णवों को लौकिक परिस्थितियों में अकर्मण्य बना दिया था । --`रामदास जी अष्ट प्रहर अपरस में रहते । --- यह कहि यह जताये जो लौकिक काहू सों बोलति नाहिं । व्योहार, बनिज कछू न करते, स्त्री संग हू छोड़े`।५

सेवामें भाव प्रवणता होने के कारण विवेक का अधिक महत्व नहीं । विवेक तो वस्तुत: गुरू के लिए आवश्यक है । गुरू स्वंय अपने अध्ययन मनन के निष्कर्ष से अनुयायियों को भाव - सरिता में निमग्न होने के लिए निर्देश देता है । इस

---

(१) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता- भाग-२ पृष्ठ- २८५,
(२) पुष्टि दृढ़ाव - पृष्ठ- १,
(३) वही ।
(४) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य - प्रकाशित, पद सं० - १११,
(५) प्राचीन वार्ता रहस्य-भाग-३, सम्पा० पो० कण्ठमणिशास्त्री, कांकरौली, द्वितीय संस्करण, पृ० २८ ।

अवसर पर अनुयायी भक्त का विवेक उसका पवित्र भावोद्वेग में बह जाना ही है। तर्क-वितर्क से परे शुद्ध भावात्मक - संसार में विचरणकरना ही उसका कर्तव्य है, फिर भी गुरू उसे अपना विवेक जागृत रखने के लिये सदैव प्रेरित करते रहते हैं।

पुष्टि मार्ग की आराधना के मार्ग में तीन सोपान निहित हैं, भक्त, गुरू तथा हरि। हरि का स्थान सर्वोपरि है, किन्तु गुरू को भक्त एवं भगवान के बीच की कड़ी माना गया है। गुरू के द्वारा ही भक्त भगवान की कृपा का पात्र बनता है। गुरू ही भक्त को कृष्ण की लीलाओं को अनुभव करने के लिये सक्षम बनाता है।

गुरू :- पुष्टि मार्ग में गुरू और गोविन्द में अन्तर नहीं समझा जाता। एक स्थान पर शंका का निवारण करते हुए गोस्वामी हरिराय जी ने लिखा है, "सो कौन से स्वरूप को भजिये। ता ऊपर कहत हैं, श्री वल्लभ कुल सब पुरुषोत्तम स्वरूप हैं।[1]" पुष्टि मार्ग में गुरू की तीन विशेषतायें बतलायी गयीं हैं, - आचार्य भाव, भक्तभाव तथा ईश्वर भाव।

आचार्य भाव से गुरू मार्ग के सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण करते हैं, उपदेश, प्रवचन आदि के द्वारा मनुष्य को सत्य का बोध कराते हैं, तथा प्राणी को शरण में लेकर सेवा में संलग्न करते हैं।--

मार्ग- प्रतिपालक -- करि करुना श्री गोकुल प्रगटे, सुख दान दिवायो है,
पुष्टि पंथ मरजादा थापन, आपु तें आयों हैं ।।[2]
वेद मर्यादा पालक -- श्री हरि वदन जो प्रगट न होते, तो बूढ़त वेद जहाज।[3]
शरण देने वाले -- सकल शास्त्र श्रुति स्मृतिगन मथिकें, किय विरोध कों भंग।[4]

---

(१) पुष्टि दृढ़ाव, गोस्वामी हरिराय जी, (प्रकाशित), पृष्ठ-१०

(२) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य,(प्रकाशित), पद- ६०५

(३) वही, पद सं० ५८६

(४) वही।

सेवाज्ञान कराने वाले- प्रेम सहित ब्रजनन की सेवा सिखवत् आप बताई ।१

भक्तभाव से इन आचार्यों ने अपने सेव्य स्वरूपों की विविध भाँति से सेवा की है । भगवान् के सामीप्य का अनुभव कर आनन्द प्राप्त किया है । ये वैष्णवों का सत्संग भी करते हैं और उनकी महिमा भी गाते हैं ।

- जनम पदारथ बह्यौ जात री ।
सुमिरन भजन करौ केसव कौ, जब लग ये नहिं गरत गातरी ।
ये संगी सब चारि दिवस के, धन, दारा, सुत, पिता, मात री ।
- - - - - - - - - - !
'रसिक' कहत तू सर्व छाँड़ि कैं, गुन गोपाल के क्यौं न गात री ।।२
(भक्त भावना)

- यह विधि नित नौतन सुख मोकौं, बल्लभ लाड़ लड़ावे ।
मैं जानूं के वल्लभ जाने, के निज जन मन भावे ।।३
(सेवा)

- देखौ स्वाद हमारे रस कौ, जो नहिं कहत पतीजे ।
'रसिक प्रीतम' नित प्रति ऐसैं ही, मिलिके अति सुख कीजे ।।४
(सामीप्यानन्द)

- हौं वारी इन वल्लभियन पर ।
मेरे तन कौ करौ बिछौना, सीस धरौं इन चरननि तर ।।५
(वैष्णव-महिमा बखान)

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५८६ ।
(२) वही, पद संख्या- ६६८ ।
(३) वही, पद संख्या- ५११ ।
(४) वही, पद संख्या- ८० ।
(५) वही, पद संख्या- ६४२ ।

ईश्वरत्व कोटि को प्राप्त हुए ये आचार्य अपने वैष्णवों द्वारा भेंट स्वीकार करते हैं, उन्हें मोक्ष प्राप्ति के लिए योग्य बनाते हैं तथा उन पर कृपा-दृष्टि करते रहते हैं।

आचार्य वल्लभ को कृष्ण का मुखावतार माना गया है। इस प्रसंग में उनको अग्नि रूप में भी स्वीकारा गया है।-

या संसार अनल के जर ते, श्रीमुख अनल विचारी ।।१

गोस्वामी हरिराय जी ने वल्लभाचार्य की बधाई तथा उनके आश्रय के पदों में अपनी भक्ति भावना को बड़े ही दैन्य रूप में प्रस्तुत किया है। कृष्ण की तरह उन्होंने वल्लभाचार्य की भी महिमा का बखान किया है :-

-- श्री वल्लभ सदा बसौ मन मेरे ।२
-- जिन्ह श्री वल्लभ रूप न जान्यौ ।३
-- श्री वल्लभ श्री वल्लभ, प्रभु मेरे स्वामी ।४
-- श्री वल्लभ महा सिंधु - समान ।५
-- श्री वल्लभ मुख कमल की, हौं वलि वलि जाऊँ ।६

वैष्णव :-

गुरू की महिमा में खोये हुए भक्त, जिन्हें सम्प्रदाय में वैष्णव कहा जाता है, गुरू में अनन्यता का भाव रखते हैं। अन्य के प्रति लगाव ही उनका सर्वोपरि अपराध है :-

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५५५ ।
(२) वही, पद संख्या- ५६५ ।
(३) वही, पद संख्या- ५६४ ।
(४) वही, पद संख्या- ५६२ ।
(५) वही, पद संख्या- ५५४ ।
(६) वही, पद संख्या- ५५३ ।

अन्याश्रय:- 'वैष्णव कौं अन्याश्रय होनौं नहीं । और अन्याश्रय करैं तौ विमुख जानिये । ताते अन्याश्रय सर्वथा न करनौ । और अन्यसमर्पित लेय तौ दुर्बुद्धि आवे । श्री जी हृदय मैं न पधारैं । ताते प्रथम अपनौ हृदय शुद्ध करिये । तब हृदय की आँखिन सौं देखिये ।'१

मनशुद्धि:- वैष्णव को शुद्ध मन से एक निष्ठ होकर गुरू की आज्ञा माननी चाहिए । मन-शुद्धि पर बल देते हुए गोस्वामी हरिराय जी लिखते हैं :-
'संगति के बस मन है । मन के बस देह है ज्यौं चलावै त्यौं ही चले । ज्यौं बुलावै त्यौं ही बोले । हाथ पाव मन के दास है । ज्यौं कहैं त्यौं ही करैं हैं । परि बचन फेरे नहीं । देह कौ राजा सौ मन है । राजा सौं ऊंच संगति होय तो राज बढ़े और नीच संगति होय तो राज जाय । ताते मन कौं ऊंची संगति मिलावनौ वैष्णव को पहलौ धर्म है ।'२

'अनन्यता':- अनन्यता को विशेष लक्ष्य करते हुए उन्होंने लिखा है,--'जाकौं स्वरूप ऊपर अनन्यता उपजै वौ वैष्णव'।३ वैष्णव वर्ग में ऊँच-नीच का भेद नहीं रहता, इसमें जाति-पाँति का विचार भी नहीं किया जाता, 'भगवदीय वैष्णव मैं जाति बुद्धि सर्वथा नाहीं करनी'।४' यदि मनुष्य में ऊँच-नीँच का विचार है भी तो वह कर्मों के द्वारा ही है । पुष्टि-मार्ग में व्यक्ति का अभिमान और विनम्रता ही उसके नीँच-ऊँच को स्पष्ट करते हैं, 'एक तौ जीव मैं अभिमान है । सो तौ चाण्डाल है ।५

---

(१) पुष्टि दृढ़ाव, प्रका० बजरंग पुस्तकालय, मथुरा, पृष्ठ- ५ ।
(२) वही, पृष्ठ-२ ।
(३) वही, पृष्ठ-१ ।
(४) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, (भाग-२) पृष्ठ- ३६७ ।
(५) पुष्टि दृढ़ाव, प्रका० बजरंग पुस्तकालय, मथुरा , पृष्ठ- ६ ।

वैष्णावों के कर्त्तव्यों का संकेत करते हुए गोस्वामी हरिराय जी लिखते हैं, "एक तो चिन्ता न करैं। दूसरे असमर्पित न खाय। तीसरे विषय मैं लीन न होइ। चौथे जो कछु होय सो भगवद इच्छा करि मानैं। पाँचमे अभिमान न करै। छटे तो वैष्णावन के दासन को दास व्है रहै। सातवे तो भगवत् गुणगान करै। आठवे तो मन मैं प्रसन्न रहै। नवमे तो भगवदीय वैष्णावन देखिकें मन प्रफुल्लित होय। दसवैं तो लौकिक संग छोडि वैष्णावन को संग करै। ऐसो भगवदीय होइ तापर भर भाव घणोँ राखिये। वैष्णाव के मन की बात जाननी। बाकी देखा देखी न करनी।"१

अनुग्रह :- वैष्णाव भगवद् लीला का अनुभव भगवान के अनुग्रह से ही करता है। भगवान् की कृपा बिना वह न तो मन को शुद्ध ही रख सकता है और न ही सेवा में स्वयं को संलग्न कर सकता है। भगवान् का अनुग्रह ही सब कुछ है। अनुग्रह का महत्व प्रतिपादित करते हुए गो० हरिराय जी ने लिखा है :-

-- तिहारी कृपा कटाक्ष वृष्टि ते, होत है हरि आसक्ति ।२

उनके अनुसार ; पुष्टि मार्ग मैं प्रभुन को अनुग्रह ही नियामक है।३ अनुग्रह में आत्मीयता का बोध है, जब आत्मीयता प्रकट होती है, तभी वह नियामक अनुग्रह करके ही जीव को आज्ञा प्रदान करता है। इस आज्ञा मैं जीव की सद्गति का संकेत निहित रहता है। "काहू के द्वारा जब विशेष आज्ञा होइ तो परम अनुग्रह जाननो"।४ भगवान् की कृपा बिना कुछ भी सम्भव नहीं है। अत: भगवान् की कृपा प्राप्त करने के लिए उसकी अष्ट प्रहरी सेवा, भजन-कीर्तन आदि का विधान रक्खा गया है।

---

(१) पुष्टि दृढ़ाव, प्रका० बजरंग पुस्तकालय, मथुरा। पृष्ठ- ६ ।
(२) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५६५ ।
(३) दो सौ बावन वैष्णावन की वार्ता, (भाग-१) पृष्ठ- ५०३ ।
(४) वही, पृष्ठ- संख्या- ५४० ।

गुरू प्राणी को ब्रह्म का तादात्म्य कराने के लिए नाम श्रवण, ब्रह्म सम्बन्ध का विधान अपनाते हैं। भगवत् प्राप्ति भगवान् के अनुग्रह से संभव होने के कारण शरणागति को आवश्यक माना गया है। शरण में आने के लिए पहले गुरू को प्रसन्न करना पड़ता है। गुरू 'नाम मंत्र' तथा 'निवेदन' दो विधानों से भक्त को शरण देते हैं। नाम मंत्र में वैष्णव को गुरु अष्टाक्षर मंत्र, 'श्रीकृष्ण: शरणं मम' के द्वारा सम्प्रदाय में प्रविष्ट करते हैं। उसे कृष्ण के प्रति लगाव की प्रथम स्थिति में लाते हैं। ये आचार्यगण वैष्णव को अष्टाक्षर मंत्र का नाम - जाप करने का प्रथम आदेश देते हैं :-

- पढ़ौ सार वल्लभ बचनामृत। अष्टाक्षरहिं जपौ करि नैम ।१

अष्टाक्षर नाम-श्रवण के पश्चात् गुरू शिष्य को ब्रह्म संबंध की दीक्षा देते हैं, इसमें प्राणी अपने सभी लौकिक संबंधों सहित गुरू की साक्षी में कृष्ण के चरणों में स्वयं को समर्पित कर देता है। आचार्य को इस प्रकार के ब्रह्म संबंध की दीक्षा देने का आदेश नियामक शक्ति द्वारा ही दिया गया है :-

- आज्ञा भई वल्लभहिं, ब्रह्म संबंध तुम जु करावहु।
सकल दुष्कृत दूरि करि, सेवा-प्रयत्न जतावहु ।।२

गो० हरिराय जी ने अन्यत्र कहा है,- (श्रीनाथ जी ने गुसाईं जी से यह बात कही थी कि) 'जा जीवकों तुम ब्रह्म संबंध करावोगे तिनसों हौं बोलूंगो, तिनही के अंग सों अपनो अंग स्पर्श करूंगो। तिनही के हाथ को आरोगूंगो। ये तीन वस्तु तिहारे संबंध बिना काहू कों सिद्ध न होगी'।३

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५८७ ।

(२) वही, पद संख्या- ५२३ ।

(३) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, (भाग-३), पृष्ठ- ३०२ ।

ब्रह्म संबंध के पश्चात् भक्त अहमन्यता वा अभिमान का पूर्णतः परित्याग कर अत्यन्त दैन्यभाव से प्रभु के सम्मुख प्रस्तुत होता है । दैन्य के द्वारा प्रभु की महत्ता का पूर्ण प्रसारण किया जा सकता है । इसलिए दैन्य को इस मार्ग में महत्ता दी गई है ।

दैन्य :- गो० हरिराय जी ने अपने प्रभु की विनय के प्रसंग में स्वयं को अति दैन्य रूप में प्रस्तुत किया है । प्रभु के विरह में उनका हृदय द्रवीभूत हो उठता है;-

> अहो हरि दीन के जु दयाल ।
> कब देखोगे दसा हमारी , ग्रसति है कलि - काल ।१

दैन्य के अर्थ को स्पष्ट करते हुए गोस्वामी हरिराय जी ने लिखा है, निरंतर अपनो दोष विचारनो ताते दीनता सिद्ध होय ।२ वल्लभ सम्प्रदाय के आचार्यों ने सेवा-व्यवस्था में कीर्तन, भजन, भगवत्गुणगान आदि सभी का विधान भक्त के दैन्य को व्यक्त करने के लिए ही लिखा है ।

कीर्तन एवं भजन को इस मार्ग में अधिक प्रोत्साहन दिया गया है । वल्लभाचार्य जी ने पुष्टि-मार्ग में भक्ति की जिस पावन धारा को प्रवाहित किया, गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने उसे कर्म-मार्ग की ओर मोड़ दिया । आ० विट्ठलनाथ जी के वंशानुयायी आचार्यों ने अपने पूर्वजों के आदेशानुसार भक्ति में भाव और कर्म का सामन्जस्य कर इसे सिद्धान्त का रूप दे दिया । गोस्वामी हरिराय जी को इस श्रृंखला की मुख्य कड़ी माना जा सकता है । कीर्तन को अष्ट झाँकियों के अनुसार निरूपित कर भगवत्गुणगान को एक

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ६५४ ।
(२) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, (भाग-१) पृष्ठ- ३७८ ।

वैधानिक रूप दे दिया गया । अष्ट भांकियों के विविध कीर्तनों से संगीत, साहित्य व सिद्धान्त का पर्याप्त प्रसार हुआ, कालान्तर में इसे एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक देन के रूप में स्वीकार किया गया । कीर्तन विधान के अन्तर्गत अष्टछाप के कवियों की प्रतिष्ठा का इन पुष्टि-मार्गीय आचार्यों ने साम्प्रदायिक भावना का जन-प्रांगण में प्रसार किया तथा दूसरे रूप में ब्रजभाषा काव्य के लिए समृद्धि के द्वार खोल दिए ।

गोस्वामी हरिराय जी ने इस कीर्तन परम्परा के वैधानिक रूप को स्वीकारते हुए लिखा है,-

'मधुर विधान अष्ट के कीर्तन, बस भये गोकुल के भूप' ।१

भगवत् गुणगान में जहाँ इन आचार्यों ने कृष्ण के रस रूप को स्वीकार किया है, वहाँ विषय वासना का उन्होंने स्पष्ट विरोध किया है ।--

निहचैं करि मानों यहि मन में नाहिंन मोसों सेवा चोर ।
बिसै वासना रहत निरंतर करत विचार यहै निसि भोर ।।२

विषय वासना को उन्होंने भक्ति के मार्ग में एक रोढ़ा माना है ।--

इन्द्रिय विषय परायन होलें, मूरख जनम गंवायों ।
भक्त जनन के संग बैठिकें, थिर नहीं मन अटकायों ।।३

मृत्यूपरान्त नरक-स्वर्ग की व्यवस्था का भी उन्होंने समर्थन किया है,- जीवत प्रेत, अंत नरकन में, जम की मार परी ।४ तथापि गो-लोक धाम को सर्वोपरि माना है, जहाँ श्रीकृष्ण सदैव आनन्द-क्रीड़ा में मग्न रहा करते हैं । वर्ण के व्यावहारिक पक्ष में उन्होंने विप्र-धेनु को भी पर्याप्त महत्व दिया है ।५

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५८६ ।
(२) वही, पद संख्या- ६६३ ।
(३) वही, पद संख्या- ६६८ ।
(४) वही, पद संख्या- ६६७ ।
(५) वही, पद संख्या- १११ ।

वैष्णव तथा आचार्यों के लिए तिलक मुद्रा आदि अंकित करने का भी विधान है।१ किन्तु इसे विशेष महत्व नहीं दिया गया है, यदि समय हो तो तिलक मुद्रादि अंकित करें। तात्पर्य यही है कि इस सम्प्रदाय में किसी भी प्रदर्शन वृत्ति को महत्व न देकर भावात्मक निष्ठा का ही विशेष महत्व प्रतिपादित किया गया है। सेवा, कीर्तन, नामश्रवण आदि सभी में भावात्मक आवेश का उत्कर्ष ही सर्वोपरि माना गया है। इस भावात्मक उद्वेग के लिए कृष्ण की लीला का बखान करना, भगवत् वार्ता में रुचि लेना, सत्संग करना आदि कर्त्तव्यों को महत्ता दी गई है।

अन्त में पुष्टि-मार्गीय स्वरूप का स्पष्टीकरण गोस्वामी हरिराय जी ने इस प्रकार किया है,-'जिस मार्ग में लौकिक सकाम तथा निष्काम सब साधनों का अभाव है। जहाँ श्रीकृष्ण की स्वरूप प्राप्ति ही साधना और साध्य दोनों हैं। उसे पुष्टि-मार्ग कहते हैं। जहाँ देह के अनेक सम्बन्ध भगवान् की इच्छा पर छोड़ दिए जाते हैं, जिस मार्ग में भगवद् विरह की अवस्था में भगवान् की लीला के अनुभव मात्र से संयोगावस्था का सुखानुभाव होता है, और जिस मार्ग में सब भावों में लौकिक विषयों का त्याग है और इन भावों के सहित देहादि का भगवान को समर्पण हो, वह मार्ग पुष्टि-मार्ग कहलाता है। २

गोस्वामी हरिराय जी के साहित्य से प्रतिबिम्बित पुष्टि-मार्गीय भक्ति-सिद्धान्त के स्वरूप को देखते हुए सारांश रूप में कहा जा सकता है कि पुष्टि-मार्गीय भक्ति विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से अनुगृहीत है। इस मार्ग में कृष्ण के माहात्म्य का गान करते रहना ही भक्त का सर्वोपरि कर्त्तव्य है। नवधा भक्ति से युक्त प्रेमाभक्ति को इसमें अपनाया गया है। इसमें कृष्ण के साकार-

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ६४३।
(२) पुष्टि मार्ग निरूपणम्- संस्कृत ग्रन्थ, गो० हरिराय जी कृत।

स्वरूप की सेवा का विधान है । कृष्ण की लीलाओं का अनुभव करना ही भक्त का अभीष्ट है । साधन बल से सर्वथा रहित यह मार्ग भाव-प्राबल्य पर ही आधारित है । भक्तों ने अपने आराध्य के अधिक निकट पहुंचने के लिए गोपीभाव को अधिक महत्ता दी है । कहीं-कहीं ब्रजजन के भाव को भी स्वीकार किया गया है । श्रीनाथ जी पुष्टिमार्ग के प्रमुख सेव्य-स्वरूप हैं । कृष्ण का लीलात्मक स्वरूप पूर्ण रस से आप्लावित है, जिसका माधुर्य भक्त के रोम-रोम में व्याप्त होता रहा है । अपने प्रभु को प्रसन्न रखने के लिये आचार्यों ने प्रभु की सेवा को वैधानिक रूप दिया है ।

गुरु को भगवान से भी बढ़ कर महत्ता दी गई है । गुरु में तीन भावों का समावेश पाया जाता है, आचार्य भाव, भक्तभाव एवं ईश्वरभाव ।

वैष्णवों के प्रति इस मार्ग के आचार्यों ने सम्मान प्रकट किया है । वैष्णवों को अन्याश्रय व अन्य समर्पित वस्तु से बचना चाहिए । मन को शुद्ध रख कर भगवान् में अनन्य भाव रखना उसका प्रमुख कर्तव्य है । भगवान् का अनुग्रह ही इसमें सबसे महान वस्तु है, जिसे प्राप्त करने के लिए शुद्ध हृदय की आवश्यकता है, किसी साधन-विशेष की नहीं । भगवान् की महत्ता का अनुभव करने के लिए आवश्यक है कि स्वयं के हृदय में दैन्य भाव का समावेश हो । विषय वासना से सर्वथा परे यह मार्ग शुद्ध भावोद्वेग को ही महत्व देता है ।

गोस्वामी हरिराय जी के साहित्य से प्रतिध्वनित भक्ति-सिद्धान्त का जो स्वरूप दृष्टिगत हुआ है, वह पुष्टि-मार्ग के सिद्धान्तों को पूर्णत: विवेचित करता है । गोस्वामी हरिराय जी के पूर्ववर्ती सन्त कवियों के काव्य में भी, आंशिक विषमता रहते हुए, कुछ इसी प्रकार के विचार समाविष्ट हैं । गोस्वामी हरिराय जी का साहित्य इस दृष्टि से सन्त काव्य के अधिक निकट जान पड़ता है । दोनों पक्षों की कुछ समान मान्यताएं दृष्टव्य हैं :-

दोनों ही पक्ष संसार के प्रति विरक्ति भाव रखते हैं। कबीरदास जी के अनुसार 'रहना नहिं देश विराना है, यह संसार कागद की पुड़िया बूँद पड़ी घुल जाना है।' गोस्वामी हरिराय जी के विचारों में भी 'ये संगी सब चारि दिना के, धन, दारा, सुत, पिता, मात री'। दोनों ही पक्ष गुरु को इष्ट से भी अधिक महत्व देते आए हैं। जहाँ संतों के अनुसार 'गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पाइ, बलिहारी गुरु आपनो गोविन्द दियो बताइ'। वहाँ गोस्वामी हरिराय जी ने भी इसी तथ्य को स्वीकार किया है,-- जो श्री वल्लभ चरन गहे, तो मन वृथा करत क्यों चिन्ता हरि हिय आय रहे'। गोस्वामी हरिराय जी ने निष्काम - भक्ति को ही अभीष्ट समझा है, तो संतों के विचार में भी इष्ट का बिना किसी कामना के स्मरण करना चाहिये। सत्संग, भजन, कीर्तन, नाम महत्ता तथा हरि गुण-गान को उभय पक्ष स्वीकार करते हैं। भक्त और भगवान् के बीच में प्रिय-प्रिया का सम्बन्ध दोनों ही विचारकों ने अपनाया है, अन्तर केवल इतना है कि संतों ने स्वयं को भगवान् की पतिव्रता परिणीता-गृहणी स्वीकार किया है,- हरि मोर पिउ मैं हरि की बहुरिया'। गोस्वामी हरिराय जी ने इससे किंचित पृथक् परकीया-प्रणय को प्रधानता दी है। सूफीमत में इससे सर्वथा इतर मान्यता है, वे आराध्य को प्रिया और स्वयं को प्रिय मानते हैं।

संत एवं गोस्वामी हरिराय जी, उभय पक्ष को विरहानुभूति पीड़ित करती है। गोस्वामी हरिराय जी ने विरह की प्रगाढ़-पीड़ा को अन्तर्हित करके ही प्रिय के ध्यान में निमग्न रहने को प्रणय का आदर्श समझा है। -'भगवान् के विरह का रस मिलन के आनन्द से कुछ कम सुखकर नहीं है। सगुण-भक्तों और निर्गुण सन्तों ने समान रूप से प्रभु के विरह की अनुभूति में अपनी आत्मा को उज्ज्वल किया है। विरह प्रेम की जागृत अवस्था का नाम है - - - - विरह की यह ज्वाला ही भक्तों का अमृत-पान है।'१ सन्त कवियों में विरह वेदन सहने की

---

(१) सन्त साहित्य और साधना- डा० भुवनेश्वर मिश्र,'माधव', (प्रथम-संस्करण) पृष्ठ- १४ ।

दासता, सगुण-भक्त कवियों की अपेक्षा कम है। विरह के एक ही आघात में उनका हृदय विचलित हो उठता है,- "कै विरहिन कों मीच दै, कै आपा दिखलाय। आठ पहर का दाझना मो पै सहा न जाय।"

संत कवियों ने ब्रह्म को निर्गुण तथा निराकार स्वीकार किया है, किन्तु उन्होंने राम-कृष्ण के साकार स्वरूप से कभी विद्वेष नहीं किया, इसी प्रकार पुष्टि-मार्ग के आचार्यों ने भी ब्रह्म को प्राकृत-गुणों से हीनतथा दिव्य गुणों से सम्पन्न होने के कारण इसे निराकार व साकार दोनों पक्षों में समाविष्ट समझा है। "वस्तुत: भक्त कहिये या सन्त निर्गुनी कहिये या सगुनी, परमात्मा में अनन्य और निष्काम भक्ति तथा उस भक्ति के आवश्यक परिणाम-स्वरूप समस्त प्राणियों में एवं सुख-दुख, हानि-लाभ, शत्रु-मित्र, मान-अपमान में समभाव ही उसके मुख्य लक्षण हैं।"१

व्यावहारिक दृष्टि से सगुण और निर्गुण भक्तों में उपास्य और उपासना की दृष्टि से अन्तर अवश्य है। निर्गुण सन्तों ने सगुण भक्तों की तरह प्रतिमा-पूजन, सेवा आदि का विधान स्वीकार नहीं किया, वे किसी भी प्रकार की मूर्ति पूजा के पक्ष में नहीं रहे, जबकि सगुण भक्तों का आधार स्तम्भ ही मूर्ति पूजा है। यही कारण है कि निर्गुण सन्तों ने कर्म को महत्ता दी और सगुण भक्तों ने भक्ति-भाव को। एक पक्ष ने साधन-बल को अवलम्ब बनाया तो दूसरे ने साधन का सर्वथा विरोध किया। सन्तों में वैराग्य की भावना प्रबल है तो सगुण भक्तों में गृहस्थ-जीवन के पवित्र वातावरण की। मुख्य रूप से देखा जाय तो निर्गुण सन्तों और सगुण भक्तों में व्यवहारगत विषमता ही प्रधान है, इसमें साधन बल, पूजा-अर्चा, विरक्ति आदि कुछ ही विषयों में मत-भेद है, अन्यथा सिद्धान्त पक्ष में पर्याप्त समानता है, यह गोस्वामी हरिराय जी तथा सन्त कबीर के काव्य से जाना जा सकता है।

गोस्वामी हरिराय जी के भक्ति-सिद्धान्तों का विवेचन कर लेने के पश्चात् उनके दार्शनिक विचारों पर भी संक्षिप्त

---

(१) हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास- चतुर्थ-भाग, (भक्ति-काल), निर्गुणभक्ति, सम्पा० पं० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ६८।

रूप से प्रकाश डालना अपेक्षित है। पूर्ववर्ती विवेचन में कहा जा चुका है कि गोस्वामी हरिराय जी ने पुष्टि-मार्ग के दार्शनिक विचारों को अपने संस्कृत ग्रन्थों में अधिक स्पष्ट एवं विस्तार से व्यक्त किया है, तथापि उनके ब्रजभाषा साहित्य में भी उनके दार्शनिक विचारों का यत्र-तत्र आभास होता है।

-o::-दर्शन-::o-

दर्शन के क्षेत्र में गोस्वामी हरिराय जी की कोई नई मान्यता नहीं थी। अपने पूर्वजों द्वारा प्रणीत शुद्धाद्वैत सिद्धान्त को ही उन्होंने पुष्ट किया है, और उसी का बहुमुखी प्रसारण भी। ``पुष्टि-मार्गीय सम्प्रदाय के ज्ञान एवं भक्ति दो पक्ष हैं। इसका ज्ञान-पक्ष `शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद` है, और भक्ति पक्ष `स्वतंत्र निर्गुण भक्ति`। वल्लभाचार्य जी ने इस निर्गुण स्वतंत्र भक्ति को जीव के अधिकारानुसार त्रिविध रूपों में फलित किया है, इसके तीन रूप पुष्टिप्रवाह, पुष्टिमर्यादा एवं पुष्टि-पुष्टि मिश्र रूप हैं``।१

पुष्टि-मार्गीय दार्शनिक सिद्धान्तों को गोस्वामी हरिराय जी ने बड़े ही सहज ढंग से अपने काव्य में व्यक्त किया है। संक्षेप में उनके दार्शनिक मत इस प्रकार हैं :-

-o::- शुद्धाद्वैत -::o-

शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित `अद्वैत वाद` को उन्होंने स्वीकार किया है, किन्तु भक्ति के व्यावहारिक पक्ष की स्थापना के लिये, उन्होंने इस निर्गुण निराकार को ही साकार स्वरूप में स्वीकारा है। उनकी मान्यताओं के अनुसार ब्रह्म निराकार व निर्गुण होते हुए भी भक्तों के लिए अपनी लीला प्रदर्शित करने के लिए साकार स्वरूप ग्रहण करता है। इस मान्यतानुसार इस मार्ग के दार्शनिक पक्ष को शुद्धाद्वैत भी कहा जाता है। `अद्वैत` को स्वीकार करते हुए गो० हरिराय जी ने लिखा है :-

---

(१) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, सम्पा० श्री द्वारकादास परिख, (भाग-३) -प्रथम संस्करण, पृष्ठ- २१।

-- एक रूप बहु रूप परस्पर, बरनौं कहा देख मन लाजत ।१

एक में अनेकत्व को स्वीकारते हुए उन्होंने अनेक में एकत्व को भी स्वीकारा है :-

-- एक होइ सो द्वै क्यों लखियत, सोहत रूप अनेक ।
मतिहारी सोचत सुन सजनी, छिप्यौ एक में एक ।
एक मूल द्वै पात एक द्रुम 'रसिक' प्रीतम रस टेक ।।२

एक से अनेकत्व में व्याप्त होना उस ब्रह्म की इच्छा-शक्ति पर निर्भर है । एक में अनेक की प्रतिष्ठा शास्त्र सम्मत है,-'उसने चाहा कि वह अनेक रूप ले ले'।३ यह उसकी इच्छा का परिणाम ही है ।

पुष्टि-मार्ग में ब्रह्म को 'विरुद्ध धर्माश्रियता' से सम्पन्न माना गया है ।

-::ब्रह्म::- वह एक होते हुए भी अनेक है, व्यापक होते हुए भी परमाणु है तथा परमाणु होते हुए भी व्यापक है । वह सर्वत्र विद्यमान है । वह आवश्यकता के अनुसार 'भूतल भारि उतारि हौं धरि हौं रूप अनेक,'४ उसकी इच्छा-शक्ति पर ही निर्भर है । उसकी शक्ति का ब्रह्मा, शिव, शेष भी पार नहीं पा सकते ।५

जगत को ईश्वर का भौतिक अंश माना गया है । जगत

'उसने स्वयं को जगत के रूप में ढाल लिया'। ६ ।

गोस्वामी हरिराय जी ने भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा है :-

ब्रज बृन्दावन गिरि नदी, पसु पंछी सब संग ।
इनसो कहा दुराइवौ, प्यारी राधा मेरो अंग ।।७

---

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद सं० ४१६ ।
(२) वही, पद संख्या- १३६ ।
(३) 'तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय'- छान्दो, उ० ६।२।३।
(४) सनेह लीला ।
(५) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ६३० ।
(६) 'स आत्मानं स्वयमकुरुत' - तै० उ० २।७।
(७) दान लीला ।

`सर्वम् खलु इदं ब्रह्म` को इस मार्ग में भी स्वीकार किया गया है । संसार के अंधकार में यह `ज्योति-पुंज` सत् का उद्बोधक है, :-

-अँधियारे में परखौ प्रकासै, अंगदीप प्रगटाय ।।१

इस प्रकार जगत, ब्रह्म का क्रीड़ामांड होने के कारण सत्य है । वह ब्रह्म का ही एक स्वरूप है ।

-:: माया ::- माया ब्रह्म का ही एक साधारण सामर्थ्य है । माया के द्वारा ही प्रभु अपनी अनन्त लीलाओं को प्रदर्शित करते रहते हैं । माया के लौकिक अर्थ में सुत, दारा, माता, पिता, लेन-देन सब मिथ्या है । इसमें कृष्ण की रसमयी लीलाएं ही सत्य हैं :-

सनेही साँचे नन्द कुमार ।
और नहीं कोई दु:ख को बेली, सब मतलब के यार ।
मनुष जाति को नाँहि भरोसो, छिन विहार छिन पार ।
चित्त बचन को नहीं ठिकानो, छिन-छिन पलट विचार ।
माता, पिता भगिनी सुत दारा, रति न निभत एक तार ।
सदा एक रस तुमहि निभावो, `रसिक प्रीतम` प्रतिपार ।।२

माया और अविद्या दो पृथक् वस्तु हैं । अविद्या को उन्होंने भगवत् भक्ति में बाधक माना है :-

या संसार अनल के जर तैं, श्री मुख अनल विचारि ।
विसम विषय जल में बूढ़त हों, कर गहि लेहु उबारि ।
लगी डाँकिनी बड़ी अविद्या, को सकै ताहि उतारि ।।३

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ३८ ।
(२) वही, पद संख्या- ६५६ ।
(३) वही।

ब्रह्म, जगत, माया के समष्टि-स्वरूप की व्याख्या करते हुए, सम्प्रदाय के विद्वान लेखक गोस्वामी ब्रजभूषन लाल जी महाराज लिखते हैं, 'श्रीकृष्ण स्वयं लीला नायक, लीला रसिक, रसेश हैं। वात्सल्य, सख्य और श्रृंगार की रस त्रिपुटी उनकी लीला की प्राण-स्फूर्ति है। राधा उनकी आदि प्रेरक शक्ति हैं। लीला-नायिका हैं। गोपांगनाएं उनकी रस मिलन की माध्यम, प्रेरक। प्रेम लक्षणा भक्ति का अविचल भाव ही गोपीभाव है और उसका चरमोत्कर्ष ही राधा-भाव है। ब्रज-गोष्ठ स्थित वृन्दावन, गोवर्धन, यमुना-पुलिन ही इस सम्पूर्ण लीला-नाट्य - - - - - प्रकृति- पुरुष के रस मिलन, नित्य विहार की रंग-भूमि है।'१ इन्हीं के मतानुसार, 'प्रकृति -पुरुष के संयोग से आविर्भूत यह विश्व-ब्रह्माण्ड उस सच्चिदानन्दमय ब्रह्म स्वरूप का क्रीड़ा-भाण्ड है। 'एकोऽहं बहुस्याम' की मुक्त प्रेरणा से ही इस विशाल सृष्टि के साथ जीव जगत को उद्भव मिला, जिसमें मानव, पशु, पंछी, पर्वत, सरिता, वन- उपवन आदि का सहज समावेश है।'२

जैसा कि पूर्ववर्ती पृष्ठों में कहा जा चुका है, आध्यात्मिक दर्शन के क्षेत्र में गोस्वामी हरिराय जी की कोई नवीन मान्यताएं नहीं थीं, वरन् उन्होंने बड़ी ही निष्ठा से और कर्मठता से अपने पूर्वज-आचार्यों द्वारा प्रतिपादित शुद्धाद्वैतवाद का व्यापक प्रसार किया, उसे साधारण अनपढ़ व्यक्ति के लिए भी सहज बनाने का यत्न किया। इस प्रसंग में गोस्वामी हरिराय जी ने काव्य एवं संगीत का साहचर्य ग्रहण कर उसे अधिकहृदय ग्राही बना दिया है।

गोस्वामी हरिराय जी के सम्पूर्ण साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि गोस्वामी हरिराय जी का साहित्य उनकी साम्प्रदायिक सैद्धान्तिक मान्यताओं के प्रसारण हेतु ही रचा गया है।

(१-२) 'दान-लीला'- भाव विश्लेषण, प्रस्तावना, पृष्ठ-१ ।

गोस्वामी हरिराय जी ने गद्य और पद्य दोनों रूपों में अपनी विचारधाराओं को अभिव्यक्ति दी है। एक धर्माचार्य ने अपने सिद्धान्तों को, अपनी दार्शनिक मान्यताओं को काव्य का आवरण प्रदान किया, जिससे वह सामान्य जनता के गले सहज रूप से उतर सकी। कहीं-कहीं ललित वार्ताओं के माध्यम से भी उन्होंने अपने दार्शनिक विचारों को अभिव्यक्त किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोस्वामी हरिराय जी का साहित्य जहाँ भक्ति की मधुरिमा से मंडित है वहीं दर्शन की गरिमा से युक्त भी है।

Chapter-9

नवम-अध्याय

उपसंहार

'वह हिन्दी-गद्य के पितामह थे और काव्य-कौमुदी के सुधाकर । वह पुरोधा आचार्य थे और एक कुशल उपदेशक । वह विनम्र भक्त, सहृदय कवि, निष्णात कलाविद् तथा ब्रजभाषा-साहित्य के क्षेत्र में एक इतिहास पुरुष थे ।"

ब्रजभाषा ने हिन्दी-साहित्य को गौरवान्वित किया है तो गोस्वामी हरिराय जी ने ब्रजभाषा को गौरवान्वित किया है ! ब्रजभाषा के सात शताब्दी के दीर्घकालिक इतिहास में गोस्वामी हरिराय जी जैसी प्रांजल प्रज्ञात्मक-चेतना से संपृक्त अन्य व्यक्तित्व दिखाई नहीं देता है, जिसने अपनी १२५ वर्ष की आयु में लगभग २५०ग्रन्थों का प्रणयन किया हो ।

गोस्वामी हरिराय जी ब्रजभाषा के एक मनीषी साहित्यकार थे । कविता और गद्य दोनों क्षेत्र में इन्हें दक्षता प्राप्त थी । ब्रजभाषा गद्य के आदि निर्माताओं में उनका शीर्षस्थ स्थान है । उनके द्वारा लिखे गये भावना तथा वार्ता ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं । ब्रजभाषा में लिखा गया उनका पद साहित्य जहां भाव-सम्पदा से सम्पन्न है, वहां कलागत गरिमा से भी पूर्ण आप्लावित है । गोस्वामी हरिराय जी का कवि के रूप में सर्व-प्रथम परिचय, श्री प्रभुदयाल जी मीतल ने उनके सात सौ पदों को सम्पादित करके प्रस्तुत किया था । प्रस्तुत प्रबंध के शोध-पथ में गोस्वामी हरिराय जी के और भी अनेक ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं, जिनसे उनकी चतुर्दिक्-प्रतिभा का प्रकाशन होता है ।

गोस्वामी हरिराय जी का जीवन उनकी युग-प्रदत्त परिस्थितियों से पर्याप्त प्रभावित रहा था, इसका स्पष्टीकरण श्रीनाथ जी के देव विग्रह को व्रज से मेवाड़ ले जाने के प्रसंग से ही हो जाता है। इसी कारणावश गोस्वामी हरिराय जी को खिमनोर में ही रहकर अपनी उत्तर-अवस्था व्यतीत करनी पड़ी। गोस्वामी हरिराय जी अपने चरित्र के धनी थे। सम्प्रदाय के आचार्य होने के कारण वह वैष्णवों में पूज्य थे। अपने पदानुकूल उनमें योग्यता थी, प्रवचन करने में वे विशेष दक्ष थे।

गोस्वामी हरिराय जी के जीवन का सांध्यकाल उनकी भक्ति-भावना में अधिक निमग्न रहा था। उनके आध्यात्मिक विचार भी उनके व्यवहारगत जीवन को प्रभावित किए हुए थे। गोस्वामी हरिराय जी अपनी वृद्धावस्था में विप्रयोग का ही अनुभव करते रहते थे। भगवान् के विछोह का चिर अनुभव उनके मानसिक विचारों को उद्वेग की चरमसीमा तक ले गया था।१

गोस्वामी हरिराय जी ने अपनी 'छाप' में 'रसिक' शब्द का भी सार्थक प्रयोग किया था। 'रसोवैस:' के अनुरूप कृष्ण के रसात्मक-स्वरूप को पुष्टि-मार्ग में प्रधानता दी गई है। इस मार्ग को रस का मार्ग भी कहा जाता है। इस प्रसंग में 'रसिक' शब्द कवि की रस-ग्राहक प्रज्ञा का ही समर्थन करता है।

पद्य-साहित्य में उन्होंने मुक्तक-पद ही अधिक लिखे हैं, तथापि कुछ रचनायें आख्यानक भी हैं। उन्होंने अपनी प्रतिभा-सम्पन्न लेखनी से मौलिक विचारों का भी प्रतिपादन किया है। यह रूप उनकी 'गोवर्द्धन लीला', 'दामोदर लीला' आदि के विवेचन से स्पष्ट किया जा चुका है।

---

(१) श्री हरिराय जी नूं आख्यान (गुजराती), - पुरुषोत्तमदास त्रिभुवनदास कवि, नड़ियाद, पृष्ठ- २०।

चरित्र-चित्रण के सम्बन्ध में गोस्वामी हरिराय जी ने राधा और कृष्ण के लोक-विश्रुत स्वरूप को ही ग्रहण करके उन्हें अपने स्वच्छन्द विचारों से अभिमंडित कर दिया है। अन्य कृष्ण-भक्त कवियों की भाँति उनके कृष्ण अपने देवत्व का ढिंढोरा पीटते दृष्टिगत नहीं होते। वे मानवीय धरातल पर मानवतुल्य वातावरण की सृष्टि करने में ही अधिक रुचि रखते हैं। 'गीता' के कृष्ण की भाँति उनके कृष्ण कर्म की महत्ता स्पष्ट करते हुए कर्मठ भी हैं और उपदेशक भी।

कवि स्वयं एक साधारण मानव है। अत: उसकी कल्पना-शक्ति भी मानवीय धरातल के वातावरण में ही गठित हुई है, यही कारण है कि श्रृंगार के स्थूलतम चित्र प्रिय के प्रति अपनी एक-निष्ठता के कल्पना चित्र ही हैं। रीति-कालीन कवियों की भाँति उनके नायक-नायिका न तो लौकिक ही हैं और न ही प्रदर्शन-वृत्ति में रुचि ही रखते हैं।

गोस्वामी हरिराय जी के श्रृंगार काव्य में रीतिकालीन काव्य-परम्परा का किंचित ही संकेत मिलता है, अन्यथा पूर्ववर्ती भक्त कवियों ने उन्हें पर्याप्त प्रभावित किया है। रीति-कालीन नर-गुणगान करने वाले युग में भी अपने भक्तिभावों पर दृढ़ रह कर कृष्ण की लीला में निमग्न रहना गोस्वामी हरिराय जी जैसे एक-निष्ठ भक्त कवि का ही सामर्थ्य कहा जा सकता है।

कृष्ण-गुणगान के अतिरिक्त गोस्वामी हरिराय जी ने 'विप्रचरित्र', व 'राज चरित्र' में अपने युग की परिस्थितियों को भी चित्रित किया है, जिसमें समाज के अवगुणों की खुलकर भर्त्सना की गई है। तत्कालीन मुगल सम्राटों के प्रति खुले शब्दों में आलोचना करना उनके साहस का प्रबल परिचायक है, औरंगजेब के प्रति उन्होंने लिखा है :-

पहले नृपति मनोरथ करि करि दान विप्रकुल दीने ।
सेवन करि करि विप्र वरन कौ, जनम सुफल करि लीने ।
अबके नृप अपने ही आगे, विप्रन नगर कटावें ।
'रसिकराय' या कलि की महिमा मोपें बरनि न आवे ।।

\+ \+ \+ \+ \+

जिन्हीं वंश पहिले नृप दुजजन, दान अनेकन दीने ।
भूमिदान, गजदान, दानहय, अन्नदान शुभ कीने ।
तिन्हीं वंश अब नृपति, विप्रकुल मारि-मारि विलखावें।
'रसिकराय 'या कलि की महिमा, मो पैं बरनि न आवे ।।

ब्राह्मणों के कर्त्तव्य-च्युत स्वरूप का भी उन्होंने स्पष्ट वर्णन किया है । समाज की विकृतियों की भांति उन्हें पारिवारिक उद्दंडता भी अरुचिकर लगती थी, इसीलिए उन्होंने अपने वंशधरों के कृत्यों का भी नि:संकोच वर्णन किया है । यह सब कवि की स्वच्छन्द व साहसिक अभिव्यक्ति के द्योतक हैं ।

हिन्दी साहित्य को गोस्वामी हरिराय जी की सबसे महान देन उनका वार्ता-साहित्य है । उन्होंने वार्ता-साहित्य के माध्यम से ब्रजभाषा-गद्य के जिस सुष्ठु रूप की प्रतिष्ठा की वह अपने में अप्रतिम ही रहा । ब्रजभाषा गद्य में ग्रन्थ प्रणयन का सर्वप्रथम सूत्रपात गोस्वामी हरिराय जी द्वारा ही सम्भव हुआ । इससे पहले गोस्वामी गोकुलनाथ जी का नाम भी लिया जाता रहा है, किन्तु वस्तुत: गोस्वामी गोकुलनाथ जी ने ब्रजभाषा गद्य में किसी भी ग्रन्थ का स्वयं सृजन नहीं किया, वह एक कुशल उपदेशक थे, उनके उपदेशों अथवा प्रवचनों को उनके अनुयायीगण लिपिबद्ध कर लिया करते थे, जो 'बचनामृत 'नाम से जाने जाते हैं । इससे सर्वथा इतर गोस्वामी हरिराय जी ने ब्रजभाषा-गद्य में स्वतंत्र ग्रन्थों का प्रणयन कर अपने विचारों को व्यवस्थित रूप में गठित किया । इस संदर्भ में उन्होंने अपने पूर्वज आचार्यों के वचनामृतों का भी सदुपयोग किया था, जिसका उन्होंने यत्र-तत्र उल्लेख भी किया है ।

आज भी गुजरात और महाराष्ट्र जैसे अहिन्दी-भाषी प्रदेश में वार्ता-साहित्य का पठन-पाठन वैष्णव समाज में गौरव का विषय बना हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि ब्रजभाषा गद्य के प्रसार में गोस्वामी हरिराय जी ने जो योग दिया वह हिन्दी भाषा प्रचार की दृष्टि से आज भी अपना अतुल महत्व प्रतिपादित करता है।

गोस्वामी हरिराय जी एक भक्त पहले थे, और कवि बाद में। कविता में उन्होंने अपनी भक्ति भावना को मूर्धन्य स्थान दिया है। सम्प्रदाय के आचार्य होने पर भी उनमें भक्ति-भावना जन्य नम्रता विद्यमान थी। वह वैष्णवों की चरणधूल को भी अपने मस्तक पर रखने में झिझकते नहीं थे। --

हौं बारी इन वल्लभियन पर ।
मेरे तन को करौं बिछौना, शीस धरौं इन चरनन तर ।

भक्ति का स्रोत उनकी काव्य-धारा में सर्वत्र विद्यमान है। भक्ति के प्रति निष्ठा और श्रृंगार के प्रति रुचि उनके अधिकांश काव्य में देखी जा सकती है। उन्होंने कविता को रीतिकालीन कवियों की भांति साध्य नहीं माना, वरन् यह तो उनके लिए एक साधन था जो उनके भावों को आराध्य के चरणों तक पहुंचा सके!

उनके साहित्य में कला के सभी उपकरण अनायास ही स्वाभाविक रूप में आ जुड़े हैं, यह उनकी भाव-प्रवणता की सूक्ष्म अभिव्यक्ति का ही परिणाम था। कला-प्रदर्शन की न तो उनकी वृत्ति थी और न ही उन्होंने इसके लिए विशेष यत्न ही किया था।

गोस्वामी हरिराय जी का अधिकांश साहित्य पुष्टि-मार्गीय सिद्धान्तों की एक निश्चित परिसीमा में आबद्ध है, यही कारण

है कि इसमें प्रदत्त वर्णवृत्त को सामान्य पाठक ठीक-ठीक नहीं समझ पाते । उनके समग्र साहित्य के अध्ययन के लिए आवश्यक है कि पाठक को पुष्टि-मार्गीय सिद्धान्तों का पर्याप्त ज्ञान हो और वह गोस्वामी आचार्यों के व्यावहारिक आचरणों से भी परिचित हो । उदाहरण के लिए गोस्वामी हरिराय जी के काव्य तथा गद्य में कुछ ऐसे विशेष शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जिनका अर्थ सम्प्रदाय के दैनिक व्यवहार का अध्ययन किये बिना नहीं जाना जा सकता, यथा --

कर तबकरी धरत हैं आगे, रुचि सौं लेत कन्हैया ।

यहां तबकरी शब्द सम्प्रदाय में प्रयुक्त विशेष शब्द है । श्री प्रभुदयाल जी मीतल ने इसका अर्थ 'बच्चों के लिए बनाई गई एक स्वादिष्ट छोटी रोटी' बताया है[1] और डा० हरिहरनाथ टण्डन ने तबकरी शब्द का अर्थ खिलौना माना है[2] । वस्तुत: तबकरी एक छोटी थाली अर्थात् (तस्तरी) का ही पर्याय है ।

सम्प्रदाय की एक निश्चित प्राचीर में बंधे हुए भी उन्होंने अपने काव्य में यथाशक्य, युगीन परिस्थितियों का परिचय देते हुए एक सीमा में उनका प्रभाव भी ग्रहण किया है । उनकी भाषा में उर्दू, फारसी के शब्दों का प्रयोग परिस्थिति जन्य ही है । इसके अनन्तर खड़ी-बोली के अनुरूप भी क्रिया-पदों का प्रयोग उन्होंने कुशलता से किया है, जो उस युग के लिये महत्व की बात थी । एक उदाहरण द्रष्टव्य है :-

तू बनरा रे बनि बनि आया,
मो मन भाया -सुख उपजाया ।
अति उतंग नीली घोड़ी चढ़ि, धरि सिर सेहरा,
अति सुन्दर अंग सुगंध लगाया ।

---

(१) देखिये-- गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पृष्ठ- ४७ ।
(२) देखिये-- वार्ता साहित्य एक वृहद् अध्ययन- डा० हरिहरनाथ टंडन, पृ० ३८१ ।

अपने संग सकल जन सोहे, तिलक लिलार बनाया ।
`रसिक-प्रीतम` बलिहारी जाऊं, उठि हँसि अंग लगाया ।१

गोस्वामी हरिराय जी के इस प्रकार के प्रयोगों से ज्ञात होता है कि उनके पूर्व खड़ी बोली की एक पुष्ट-परम्परा अवश्य रही होगी । गोस्वामी हरिराय जी के ये प्रयोग एक विकास विन्दु के परिणाम हैं । इससे यह भी ज्ञात होता है कि साहित्य में खड़ी बोली का स्वरूप अपनी परिष्करण-सीमा में अधिष्ठित हो चुका था ।

इसी प्रकार फारसी भाषा के शब्दों से युक्त तथा खड़ी बोली के अनुरूप एक और रचना प्रस्तुत है :-

तुझे तो न आवे दया, उनने खाना छोड़ दिया,
 भया रहे चाकर हर रोज तेरे द्वार का ।
देखन की करे चाह, फिरे तेरी गाह-गाह ,
 नेंकु हू न करे उर मन हू में मार का ।
सबसों निसंक बोले मन की न बात खोले ;
 करे नहीं संक, जिसे सोच न विचार का ।
आशिक `रसिक` प्यारे महबूब देखे बिन,
 डोले घर, बह्या बार का न पार का ।।२

ाशिक, महबूब, यार जैसे शब्दों का प्रयोग उनके युग के प्रचलन और प्रभाव के ही द्योतक हैं । इसी प्रकार `दिल-जानी मेरी बांह गही` में `दिल-जानी` शब्द मुस्लिम संस्कृति का भाषा पर प्रभाव स्पष्ट करता है ।

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ११५ ।
(२) चौरासी कवित्त, संख्या- ५८ ।

गो० हरिराय जी ने अनेक टीका ग्रंथ लिखे हैं। यह प्रभाव उनकी स्वतंत्र रचनाओं में भी देखा जा सकता है। कहीं-कहीं उन्होंने गद्य-साहित्य में स्वयं के पद भी उद्धृत किए हैं, और उनकी व्याख्या भी प्रस्तुत की है, इससे कवि का मूल अभिप्राय स्पष्ट होता है। उदाहरण के लिए उनका एक पद और उसकी व्याख्या गोस्वामी हरिराय जी के शब्दों में ही द्रष्टव्य है :-

'कीर्तन -- सो सावन आयो, सैन काम की लायो ।
चलो सखी फूलिए सुरति हिंडोरे, कीजें लालन मन भायो ।
हाव-भाव के खंभ मनोहर, कचघन गगन सुहायो ।
काम नृपति वृषभान नंदिनी 'रसिकराय' वर पायो ।

या कीर्तन में भाव तो अत्यन्त गुप्त है। योगेश्वर के चिंतन कूं योग्य हैं। योगेश्वर के से भक्ति भाव सहित जिनके हृदय और अनन्यता और कामादिकन की आसक्ति नहीं। ऐसैन यह भाव सुनिवे कूं योग्य हैं। यह भाव तो गुप्त है, श्री नन्दकुमार की अनिवर्तनीय लीला है।'१

इसी के अनुरूप एक अन्य उद्धरण भी प्रस्तुत है :-

'सो ललिता जी को भाव यह कीर्तन में जाननो ---
(राग केदारो)

हँसि हँसि दूध पीवत नाथ ।
मधुर कोमल बचन कहि कहि, प्रानप्यारी साथ ।
कनक कटोरा भर्यो अमृत, दियो ललिता हाथ ।
लाड़िली अचवाय पहिले, पाछे आप अघात ।
चिंतामन चित्त वस्यो सजनी, निरखि पिय मुसिकात ।
स्यामा-स्याम की नवल छवि पर 'रसिक' बलि बलि जात' ।

याको यह भाव है, जो --- दोऊ सरूप रतन खचित सज्या ऊपर बिराजे हैं, तहाँ ललिता जी कनक कटोरा में दूध औटि के मिश्री सुगंध डारि लै आईं। तब

---

(१) पुष्टि दृढ़ाव, सम्पा० श्री निरंजनदेव शर्मा, मथुरा, पृष्ठ- १० ।

ललिता जी ने विचार कियो, जो दोऊ सरूप विराजे हैं तातें पहले मैं श्री स्वामिनी जी के हाथ में दउंगी तो श्री ठाकुर जी कों पान कराय के पान करेंगी । तहां मनोरथ सिद्ध न होयगो । तातें श्री ठाकुर जी के हाथ में दउंगी, तब पहले पान श्री स्वामिनी जी करेंगी । ताते दूध को कटोरा श्री ठाकुर जी के हाथ में दियो । तब 'लाड़िली अचवाय पहलें पाछें आप अघात' । काहे तें उनके हाथ सों वे आरोगे । उनके हाथ सों चिन्तामनि रूप श्री ठाकुर जी श्री स्वामिनी जी के हृदय में हैं वे आरोगे । ताते श्री स्वामिनी जी के हृदय में हैं वे आरोगे । ताते स्वामिनी जी के पान किये ते श्री ठाकुर जी तृप्त होत हैं । या प्रकार की ललिता जी की प्रीति चातुर्य देखि कैं श्री ठाकुर जी मुसिकाने । यह नवल छबि दूध पान करिवे के समय की शोभा ऊपर मैं (श्री हरिराय जी) बलिहारी जात हों ।१

गोस्वामी हरिराय जी ने अपने पद की उपर्युक्त व्याख्या करके अपने विचारों को स्पष्ट किया है; उन्होंने यत्र-तत्र अपनी श्रृंगारिक रचनाओं की दार्शनिक पृष्ठ-भूमि स्पष्ट करते हुए भी अपने विचार प्रस्तुत किये हैं :-

'मन मेरो तारेन बसै अरु अंजन की रेख ।
चोखी प्रीत हिये बसै, याते सांवल भेख ।।२

इसी पद के अनुरूप उनके विचार अन्यत्र इस प्रकार व्यक्त हुए हैं :-

"श्री ठाकुर जी मूल तो श्री स्वामिनी जी के जैसे गौर बरन हैं परन्तु जो स्याम स्वरूप भाषत हैं सो तो श्री स्वामिनी जी के प्राकट्य पाछे उनको जो श्याम कटाक्ष महामोहिनी रूप देखि कैं श्री प्रभु जी मोहित होइ कैं अपनी देह दिसा भूल गए, अरु ऐसी अवस्था भई कीट भ्रमर की नाईं

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी- प्रणीत चौरासी वैष्णवन की वार्ता, सम्पा० - द्वारकादास परिख, संस्करण तृतीय, पृष्ठ- ३ ।

(२) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १०४ ।

अरु स्याम कटाक्ष के अखण्ड ध्यान में आप तद्रूप स्याम व्हे गए ।" १

गोस्वामी हरिराय जी ने इस प्रकार अनेक स्थलों पर अपने अभिप्रायों को स्पष्ट किया है । उन्होंने अपने गद्य-ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर अपने स्व-रचित पदों को उद्धृत किया है और उनकी भाव-व्याख्या भी प्रस्तुत की है । 'श्रीनाथ जी की भावना' उनका इसी प्रकार का ग्रन्थ है ।

हिन्दी के भक्ति-साहित्य के इतिहास में यह उनकी मौलिक देन थी । सम्पूर्ण भक्ति-काल में किसी भी कवि ने इस प्रकार अपनी काव्य-रचनाओं को स्वयं विवेचित नहीं किया । आत्माभिप्राय का यह प्रस्तुतीकरण उनकी अपनी उपलब्धि थी ।

उन्होंने अपने कुछ ग्रन्थों में विषय-सम्बद्ध 'भूमिका' भी लिखी हैं । 'श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता' में लिखा हुआ प्राक्कथन, उनकी इसी वृत्ति का प्रमाण है । हिन्दी के गद्य-साहित्य में इस प्रकार की 'भूमिका' का सूत्रपात भी गोस्वामी हरिराय जी से पहले दृष्टिगत नहीं होता । अत: इस संदर्भ में भी उनका नाम उल्लेखनीय है !

गोस्वामी हरिराय जी ने अपने साहित्य में परम्परा के मोहवश जहाँ भी चमत्कार लाने का यत्न किया है, वहाँ वे पूर्णत: असफल रहे हैं । कुछ प्रयोग इस विषय में देखे जा सकते हैं, यथा-

हिंडोरा री ब्रज के आँगन माच्यौ !
ब्रह्मादिक कौतुक भूले, संकर तांडव नाच्यौ
सुक सनकादिक नारद मुनिजन, हिंडोरा देखन आये
नन्द को लाल झुलावत देख्यौ बहुत तूठ हम आये

---

(१) द्विदलात्मक स्वरूप विचार- सरस्वती भंडार, काँकरोली,
- बंध संख्या- १०७, पुस्तक संख्या- १६, पत्रा- २ !

जुवती जूथ अटा चढ़ ठाड़ीं अपनो तन मन वारें ।
'परमानन्द' दास कौ ठाकुर चित चोर्यौ यह कारे ।।१

संभवत: परमानन्द दास जी के इस पद से प्रभावित होकर ही गोस्वामी हरिराय जी ने यह पद लिखा होगा :-

हिंडोरा ब्रज के आँगन माच्यौ ।
वृन्दावन की सघन कुंज में संकर ताँडव नाच्यौ ।
एक नाचत एक भाव दिखावत, एक गावत सुर साच्यौ ।
'रसिक प्रीतम' की बानिक निरखत महामोद मन राच्यौ ।।२

हिंडोरा वर्णन में 'संकर ताँडव नाच्यौ' की उक्ति गोस्वामी हरिराय जी ने सम्भवत: परमानन्द दास जी से ही प्रभावित होकर ग्रहण की होगी । इस पद में चमत्कार प्रस्तुत करने का मोह ही प्रधान कारण माना जा सकता है ।

गोस्वामी हरिराय जी ने जहाँ भी इस प्रकार के सयत्न प्रयोग किये हैं, वहाँ उनका काव्य अपने स्वाभाविक सौन्दर्य से सर्वथा पृथक् हो गया है । यह प्रभाव उनके 'समस्यापूर्ति' जैसे छन्दों में भी देखा जा सकता है । कवि आलम का एक समस्यापूर्ति का छन्द प्रस्तुत है :-

सुन्दर सजि सेज रचीकर दम्पति,
कुंज कुटी भव ऊपर री ।
कवि आलम केलि रहे विपरीत
मनोज लसे दृग दूपर री ।
सरसीरुह आनन पैं स्रमविन्दु,
परे ते यशोमति सूपर री ।

---

(१) परमानन्द सागर, डा० गोवर्द्धन नाथ शुक्ल, पद संख्या- ८५८ ;
(२) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ३३८ ।

बरसै बरसाने की गोरी घटा,
नंदगांव के सांवरे ऊपर री ।।१

गोस्वामी हरिराय जी ने भी एक छन्द इसी समस्यापूर्ति पर लिखा है :-

रैनि अंधेरी दुराय सरुप,
चढ़ी मनों मैन चमू पर री ।
तब सांवरी ही भई आय जुरे,
रस रूप तिया तिन हू पर री ।
स्याम सजे लखि कूटी है धार,
कटाछन की पय भू पर री ।
बरसै बरसाने की गोरी घटा,
नंदगांव के सांवरे ऊपर री ।।२

तटस्थ दृष्टि से देखा जाय तो आलम का उपर्युक्त छन्द गोस्वामी हरिराय जी के इस छन्द से कहीं अधिक उपयुक्त व व्यवस्थित ज्ञात होता है । विपरीत-रति के माध्यम से अभीष्ट उक्ति की योजना दोनों में है, फिर भी आलम का छन्द इस सन्दर्भ में अधिक 'जानदार' और सार्थक है ।

इस 'समस्या' से बहुत कुछ मिलता-जुलता एक छन्द कवि ठाकुर का भी प्राप्त होता है-

अपने अपने निज गेहन में,
चढ़े दोऊ सनेह की नाव पै री ।
अंगनान में भीजत प्रेम भरे,
समयो लखि मैं बलि जाव पै री ।
कह ठाकुर दोउन की रुचि सों,
रंग ह्वै उमड़े दोउ ठांव पै री ।

---

(१) मथुरा के वर्तमान वरिष्ठ कवि श्री राजेश दीक्षित के निजी संग्रह से प्राप्त ।

(२) गोस्वामी हरिराय जी के चौरासी कवित्त, संख्या- १७ ।

सखी कारी घटा बरसै बरसाने पै
गोरी घटा नंदगांव पै री ।।१

वर्तमान कवि मुकुन्द चतुर्वेदी का भी इस विषय में एक छन्द दृष्टव्य है :-

सरसै है सरोज-मुखी सजनी,
रजनी कमनी पग नूंपर री ।
हरसै है हरी, बिजुरी दमकै,
झमकै झनकार सु भूपर री ।
यों 'मुकुन्द' मनोज के चोज भरी,
विपरीत रची रति रूपुर री ।
बरसै बरसाने की गोरी घटा,
नंदगांव के सांवरे ऊपर री ।।२

उपर्युक्त सभी उद्धरणों में आलम, ठाकुर, मुकुन्द आदि के छन्द गोस्वामी हरिराय जी के इस विषय के छन्द से कहीं अधिक रोचक व व्यवस्थित जान पड़ते हैं । इससे स्पष्ट होता है कि गोस्वामी हरिराय जी ने जहां भी इस प्रकार के सयत्न प्रयोग किए हैं, वहां वह सफल नहीं हो पाये हैं । इससे इतर जहां भी कवि ने स्वाभाविक रूप से अपनी प्रतिभा का उपयोग किया है, वहां उनका काव्य निश्चय ही उत्कृष्ट बन पड़ा है ।

स्वाभाविक कथनों में भी उनकी प्रतिभा सम्पन्न लेखनी के चमत्कार देखे जा सकते हैं । उदाहरण के लिये श्रृंगार वर्णन के प्रसंग में वीरजन्य उत्साह का समन्वय कुछ दुरूह होने पर भी कितना सहज बन पड़ा है :-

विरहावस्था के चित्रण में नायिका की मनस्थिति का वर्णन ध्यातव्य है :-

---

(१) ठाकुर ठसक, सम्पादक- लाला भगवानदीन, पृष्ठ- १२ ।
(२) ब्रजभाषा के वर्तमान एक प्रसिद्ध कवि गोविन्द जी के सुपुत्र ।

लाल हौं तुम सौं बहोत लरी ।
सपुने में मोहि छाँड़ि गये क्यौं, नैंक न कान करी ।
सिथिल करे मैं पेच पाग के, अलकावलि बिथुरी ।
हस्यो अधर छत किये कपोलन, चित नहिं सकुच धरी ।
विविध भाँति श्रम करत समर में, अधिक उसास भरी ।
करत जुद्ध भयो प्रगट वीर-रस सुधि बुधि सब बिसरी ।
कहौं कहा लौं लिपटी अब लौं, बहु ते चूक परी ।
जाग परी मन में पछितानी, विरहा अगिन जरी ।
बिनती करत परत पाँयनु मैं, मन मैं निपट डरी ।
करुनासिंधु 'रसिक प्रीतम' मेरो हरो अपराध हरी ।।१

श्रृंगार से प्रारम्भ इस पद का अन्त भी श्रृंगार के ही वातावरण में सम्पन्न हुआ है, किन्तु मध्य में उत्साह-भाव की योजना कवि ने बड़े ही सहज ढंग से प्रस्तुत की है ।

यत्न-साध्य प्रयोगों में उनके बधाई के पद, अधिक आलंकारिक छन्द, साम्प्रदायिक विशेष पर्वों के वर्णन, यथा- स्याम घटा, कसूमी घटा, हिंडोरा आदि के वर्णन अधिकांश में महत्वहीन-से हैं, किन्तु कृष्ण के बालचरित्र के कुछ वर्णन, श्रृंगारिक वर्णन आदि के स्वच्छन्द चित्र उनकी पूर्ण प्रतिभा का परिचय देते हैं ।

मध्य-युगीन प्राय: सभी कृष्ण-भक्त कवियों ने अपने-अपने पद-साहित्य में भिन्न-भिन्न राग-रागनियों का निबन्धन किया है । यह प्रभाव गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में भी समाविष्ट है । इस संदर्भ में गोस्वामी हरिराय जी की यह विशिष्टता थी कि उन्होंने जहाँ अपने पदों में रागों को निर्दिष्ट किया है, वहाँ वे निर्दिष्ट राग के सम्बन्ध में प्रचुर-ज्ञान भी रखते थे । भिन्न-भिन्न रागों का उल्लेख कर उनका प्रासंगिक निर्देश करना उनकी मौलिकता थी ।

---

(१) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ३२८ ।

एक स्थान पर उन्होंने लिखा है, `तब सोरठि राग महाविरह को है ताकों गाइ कैं सोरहि दिन बिताये`।१ उनके पद साहित्य में भी इस प्रकार के उदाहरण प्राप्त होते हैं :-

-- मनि माला गुंजाफल गरे, गौरी राग बैनु मैं परे ।२
-- ऐरी सखी काफी राग जमाय, गावत तान तरंग सों ।३
-- ब्रजनारी हिय हुलसि लेत सुर ताल अलापि मलार ।४
-- मंद मंद सुर गावत दोऊ मालव-राग मधुर सुरसारी ।५
-- गावत मिलि सारंग राग दोऊ, विकट तान उपजत हैं ता पर।६

गोस्वामी हरिराय जी ने इस प्रकार स्थान-स्थान पर विषयगत रागों का नामोल्लेख भी कर दिया है। अपने संगीत - सम्बन्धी ज्ञान को उन्होंने एक अन्य पद में निम्नलिखित रूप से व्यक्त किया है।--

सप्त सुर तीन ग्राम, इकईश मूरछना,
तान उनचास मिलि, मंडल मधि गावैं ।
चारि करन,हस्तक,सिर, नैंन भेद बहुभांति, ।
ताल सुरन उपजति गति, नृत्य कर नचावैं ।
ता तक धिंग थोंग थोंग कुकुभां कुकुभां,
भनकिट धिनकिट धिम धिम, मृदंग बजावै ।
`रसिक प्रीतम` छवि निरखत देव जुवती मोहीं,
तन मन उमंगि उमंगि विविध कुसुम बरसत सुख पावैं ।।७

---

(१) रथयात्रा, गोस्वामी हरिराय जी कृत- पत्रा- ४ ।
(२) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- ५१३ ।
(३) वही, पद संख्या- ४६३ ।
(४) वही, पद संख्या- ४५६ ।
(५) वही, पद संख्या- ४५५ ।
(६) वही, पद संख्या- ४१६ ।
(७) वही, पद संख्या- १७० ।

उद्धृत पद से ज्ञात होता है कि गोस्वामी हरिराय जी को संगीत शास्त्र के साथ नाट्य शास्त्र का भी समुचित ज्ञान था। इस पद में प्रयुक्त करन, हस्तक, सिर आदि नाट्य शास्त्र के विशेष पारिभाषिक शब्द हैं, जिनसे नृत्य की विभिन्न मुद्राओं के संकेत मिलते हैं। आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में १०८ करण, ६४ हस्तक तथा ६ प्रकार के सिर संचालन का विधान वर्णित है।१ नृत्य कला के संदर्भ में उन्होंने अन्य स्थलों पर भी ऐसे ही पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है, जिससे उनके नाट्य-शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान की पुष्टि होती है :-

-- रंग मंडल नट की ज्यों नाचत सुखदायी ।२

-- भेजु धरें नट नाचत, रंग मधि गावै, वोलत मधुरे बैन ।३

-- नृत्यत सुलप संचिनौतन गति, वहु विधि हस्तक भेद बताइ ।४

इस प्रसंग में गोस्वामी हरिराय जी की 'दानलीला' का भी उल्लेख किया जा सकता है, जो अभिनय तत्व की दृष्टि से पूर्ण सम्पन्न है, और जिसके आधार पर श्री गोकुलानन्द तैलंग, कांकरौली निवासी ने एक 'गीति-नाटिका' का सम्पादन भी किया है।

गोस्वामी हरिराय जी ने अपनी संगीत-रुचि को प्रदर्शित करते हुए कहा है कि 'नाद' का महत्व चित्र से कहीं अधिक है।--

-- दरसन रस तें अधिक नाद रस, सरस जन नि समुझावैं ।५

---

(१) "हस्तपादसमायोगो, नृत्यस्य करणं भवेत्" -नाट्यशास्त्र, अध्याय-४, श्लोक-३०

- 'अष्टोत्तरशतं ह्येतत्करणानां मयोदितं' - वही, ४-५५।

- हस्तक ६४ :-

चतुष्षष्टिकरा ह्येते नामतोऽभिहिता मया, वही- ६।१७ ।

(२) गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १६० ।

(३) वही, पद संख्या- १८२ ।

(४) वही, पद संख्या- ६१३ ।

(५) वही, पद संख्या- १६६ ।

-- अपने दृग अवलोकि भाव सौं, मृगन जाति बिसरावै,
रूप देखि सुनि नाद विवस तन, हरिनी दृगन पुजावै ।१

इस भाँति गोस्वामी हरिराय जी ने शब्द के साथ-साथ स्वर की महत्ता भी प्रतिपादित की है। उनके पद साहित्य के प्रकाशित संस्करण में निम्नलिखित राग-रागनियों का प्रयोग हुआ है :-

क्रम-संख्या	राग	कुलपद-संख्या
१	अड़ानो	२३
२	आसावरी	२६
३	ईमन	२५
४	कर्नाटिक	२
५	कल्याण	२
६	काफी	५
७	कान्हरो	३६
८	केदारो	५४
६	खेमरा	१
१०	खम्माच	१
११	गौरी	३२
१२	चौपाई	१०
१३	टोड़ी	१४
१४	दादरा	१
१५	देवगंधार	२०
१६	धनाश्री	१०
१७	नट	१७

(१) गो० हरिराय जी का पद साहित्य, प्रकाशित, पद संख्या- १६६ ।

क्रम-संख्या	राग	कुल पद संख्या
१८	नायकी	२०
१९	पीलू	१
२०	पूर्वी	६
२१	पंचम	२
२२	भूपाली	७
२३	भैरव	८
२४	मल्हार	२६
२५	मारू	५
२६	मालव	१३
२७	मालकौस	३
२८	रामकली	३०
२९	रायसौ	२
३०	रुराई	१
३१	ललित	१०
३२	लावनी	१
३३	बसंत	३
३४	विभास	१४
३५	विहाग	५३
३६	विलावल	२५
३७	सूहौ	१
३८	सोरठ	५
३९	सारंग	१५०
४०	श्री	८
४१	श्यामकल्याण	२
४२	षट	१
४३	हमीर	१६

उपर्युक्त राग-रागनियों के अतिरिक्त भी कुछ और राग-रागनियों के पद गो० हरिराय जी कृत प्राप्त होते हैं। इन सभी में सारंग, विहाग, केदारो, हमीर, रामकली, आसावरी, अड़ानो, ईमन, कान्हरो, गोरी, मल्हार आदि राग-रागनियों का ही अधिकांश में प्रयोग हुआ है।

गोस्वामी हरिराय जी ने प्राय: शास्त्रीय रागों का ही अपने पदों में निबंधन किया है। देशी-राग उनके पद साहित्य में यत्किंचित ही हैं। उपरिनिर्दिष्ट अधिकांश राग शास्त्रीय राग ही हैं।

गोस्वामी हरिराय जी के काव्य के विगत अध्ययन से जाना जा सकता है कि उनके काव्य में प्रगीत-काव्य की सभी विशेषताएं सन्निहित हैं। गेय-प्रधान उनके पद हृदय की पुनीत अनुभूतियों की सूक्ष्म व्यंजना करने में अति सफल रहे हैं। 'स्वरों के आरोह-अवरोह से काव्य में श्रुति-सुखदा का संचार होता है और स्वरों के उतार चढ़ाव का चरमोत्कर्ष राग-रागनियों में मिलता है। यही कारण है कि हृदय के कोमलतम भावों की अभिव्यंजना के लिये कवियों ने प्राय: गीत-शैली का ही आश्रय लिया है। हृदय की रागात्मिका-वृत्ति के योग से जब सुख और दुख की अनुभूति तीव्रतम होकर अनेक भावों की उमड़ती हुई धारा में समस्त परुषता और कलुषता का प्रक्षालन करती हुई, अकस्मात कल-कल ध्वनि से कवि के कण्ठ से फूट पड़ती है तो उसे गीत की संज्ञा प्राप्त हो जाती है।'१ गोस्वामी हरिराय जी के काव्य में अभिप्रेत वर्ण्य-विषय से ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने पद साहित्य में पुष्टि-मार्गीय नित्यकीर्तन को विशेष लक्ष्य किया है। नित्य के पदों में अष्ट-झांकियों के विविध पदों की रचना कर गो० हरिराय जी ने कीर्तन-साहित्य को अपना ध्येय-विषय चुना था, यही कारण है कि उन्होंने कीर्तन के अनुरूप संगीत के ताल-स्वरों में रागों को बैठाकर पदों की

---

(१) सूर और उनका साहित्य, डा० हरबंश लाल शर्मा, पृष्ठ- २८५ ।

रचना की थी, छन्द-शास्त्र के नियमों का पालन भी उनका मुख्य ध्येय नहीं था। उनके पदों में भिन्न छन्दों का निश्चित स्वरूप दिखलाई देता है, किन्तु उनका मुख्य लक्ष्य सरस कीर्तनों में भगवान का गुणगान करना ही था। कीर्तनों के माध्यम से ही कवि ने अपने सिद्धान्त, दर्शन, अनुभूति आदि को प्रकाशित किया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गोस्वामी हरिराय जी एक प्रतिभा सम्पन्न कवि, कुशल गद्यकार, सहृदय भक्त तथा एक महान आचार्य थे। गोस्वामी हरिराय जी ने महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के वंश में अवतरित होकर उस वंश तथा पुष्टि-मार्ग दोनों को गौरवान्वित किया है। पुष्टि-मार्ग के अनुयायियों में उनका अत्यन्त आदरपूर्ण स्थान रहा है। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के उपरान्त गुसाईं जी तथा गोकुलनाथ जी की श्रेणी में यदि किसी विद्वान आचार्य को रखा जा सकता है तो गोस्वामी हरिराय जी को ही। गोस्वामी हरिराय जी ब्रजभाषा साहित्य आकाश के एक अत्यन्त ज्योतिष्मान् नक्षत्र थे, जिनसे ब्रजभाषा काव्य एवं गद्य दोनों को पुष्कल प्रकाश और प्रेरणा की उपलब्धि हुई है। उनका काव्य जहाँ सरल है वहीं सरस भी। जहाँ भक्ति भावों से ओत-प्रोत है, वहीं श्रृंगार की मधुराई से मंडित भी। उनके साहित्य का अध्ययन हृदय की रागात्मिका वृत्ति को जागृत करने वाला तथा मानसिक - कालुष्य को विनष्ट करने वाला है।

अन्त में कहा जा सकता है कि भारतीय वाङ्मय के इतिहास में गोस्वामी हरिराय जी जैसी प्रखर मेधा और प्रबुद्ध लेखनी का धनी कोई भी कलाकार नहीं जन्मा, जिसने संस्कृत भाषा में साधिकार, शताधिक ग्रन्थों का प्रणयन करते हुए भी ब्रजभाषा में अपना शीर्षस्थ स्थान बनाया हो।

गो० हरिराय जी ब्रजभाषा गद्य के उन्नायक थे और साथ ही एक कुशल सम्पादक तथा व्याख्याकार भी। उन्होंने ब्रजभाषा पद्य में भी अपनी प्रांजल-मेधा का

प्रकाशन जम कर किया था । उन्होंने गुजराती, मारवाड़ी, खड़ीबोली और राजस्थान भाषाओं में भी अपनी लेखनी को गति दी थी ।

वह हिन्दी गद्य के पितामह थे और काव्य कौमुदी के सुधाकर । वह स्क पुरोधा आचार्य थे और स्क कुशल -उपदेशक । वह विनम्र भक्त, सहृदय कवि, निष्णात् कलाविद तथा वृजभाषा साहित्य के क्षेत्र में स्क इतिहास पुरुष थे ।

सहायक ग्रन्थ सूची -(हिन्दी)

क्रमांक	ग्रन्थ नाम	लेखक या सम्पादक	अन्य विवरण
१-	अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, भाग- १।२	डा० दीनदयालु गुप्त	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
२-	अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन	डा० मायारानी टंडन	हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ।
३-	अष्टछाप-परिचय	श्री प्रभुदयाल मीतल	अग्रवाल प्रेस, मथुरा।
४-	अष्टाचार, ब्रज-टीका	सम्पा० श्री विट्ठल प्रसाद,	लेखक के निजी संग्रह से।
५-	आ० महाप्रभु जी के ८४ बैठक चरित्र।	सम्पा० निरंजनदेव शर्मा,	बजरंग पुस्तकालय, मथुरा।
६-	कवितावलि	गो० तुलसीदास जी	गीता प्रेस, गोरखपुर।
७-	काव्यशास्त्र की रूप रेखा	श्री श्याम नंदन शास्त्री	सा०म० पटना।
८-	काव्य समीक्षा	आ० गिरिजादत्त त्रिपाठी	पुस्तक भंडार, पटना।
९-	गुजरात की हिन्दी, काव्य परम्परा और आचार्य कवि गोविन्द गिल्ला भाई।	डा० माणिकलाल चतुर्वेदी,	भारत-प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़।
१०-	गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन।	डा० जगदीश गुप्त	हिन्दी परिषद् विश्वविद्यालय, प्रयाग।
११-	गोविन्द स्वामी	सम्पा० श्री ब्रजभूषण शर्मा,	कांकरौली।
१२-	गोस्वामी हरिराय जी का पद साहित्य।	सम्पा० श्री प्रभुदयाल मीतल	अग्रवाल प्रेस, मथुरा।

क्रमांक	ग्रन्थ नाम	लेखक या सम्पादक	अन्य विवरण
१३	गो० हरिराय जी का जीवन चरित्र	एक वैष्णव	साँवली
१४	गो० हरिराय जी कृत दान-लीला काव्य-नाटिका	सम्पा० श्री गोकुलानन्द तैलंग	कांकरौली
१५	चौरासी वैष्णवन की वार्ता	सम्पा० श्री द्वारकादास परिख ।	कांकरौली
१६	छन्द: प्रभाकर	श्री जगन्नाथ प्रसाद 'भानु'	
१७	ठाकुर - ठसक	सम्पा० लाला भगवान दीन	
१८	दान-लीला (टीका)	श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी	साहित्य सेवा सदन, काशी
१९	देव और उनकी कविता	डा० नगेन्द्र	गौतम बुक डिपो, दिल्ली
२०	दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता.	सम्पा० श्री द्वारकादास परिख	कांकरौली ।
२१	धोलपद	एक वैष्णव	नाथद्वारा ।
२२	परमानन्द सागर	सम्पा० डा० गोवर्द्धन नाथ शुक्ल	अग्रवाल प्रेस, मथुरा ।
२३	प्राचीन वार्ता रहस्य (भाग-१,२,३)	सम्पा० पो० कण्ठमणि शास्त्री.	कांकरौली
२४	भक्त कवि व्यास जी	श्री वासुदेव गोस्वामी	अग्रवाल प्रेस, मथुरा ।
२५	मध्य कालीन काव्य में राग और रस ।	डा० दिनेशचन्द्र गुप्त	
२६	मध्यकालीन कृष्ण काव्य	श्री कृष्णदेव भारी	हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली ।
२७	मध्यकालीन हिन्दी-गद्य	श्री हरिमोहन श्रीवास्तव	
२८	मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति	डा० मदन गोपाल गुप्त	नैशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली ।
२९-	ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प	डा० सावित्री सिन्हा	नैशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

क्रमांक	ग्रन्थ नाम	लेखक या सम्पादक	अन्य विवरण
३०	वर्षोत्सव, (भाग-१,२)	सम्पा० लल्लूभाई छगनलाल देसाई ।	अहमदाबाद
३१	वार्ता-साहित्य एक वृहद् अध्ययन ।	डा० हरिहरनाथ टंडन	भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़ ।
३२	वाङ्मय-विमर्श	आ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	
३३	विहारी का नया मूल्यांकन	डा० बच्चनसिंह	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी
३४	संत साहित्य और साधना	डा० भुवनेश्वर मिश्र `माधव`	प्रथम संस्करण
३५	श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता	गो० हरिराय जी	नाथद्वारा
३६	श्री गिरधरलाल जी के १२० वचनामृत	गो० गिरधरलाल जी	लेखक के निजी संग्रह से ।
३७	श्री गोपिकालंकार मट्टू जी के३२ वचनामृत तथा पद संग्रह	गो० मट्टू जी महाराज	वही ।
३८	श्री वल्लभ वंश-वृक्ष	सम्पा० श्री ब्रजभूषण शर्मा	कांकरौली
३९	श्री वल्लभ-विलास	सम्पा० बाबू ब्रजभूषनदास	लेखक के निजी संग्रह से
४०	सूरसागर और भगवद्भक्ति	डा० मुंशीलाल शर्मा	साहित्य भवन, इलाहाबाद ।
४१	सूरदास (जीवनी और काव्य का अध्ययन) ।	डा० ब्रजेश्वर वर्मा	हि० परिषद् वि०वि०,प्रयाग ।
४२	सूर की भाषा	डा० प्रेमनारायन टंडन	हिन्दी साहित्य भंडार,लखनऊ ।
४३	सूरदास की वार्ता	सम्पा० श्रीप्रभुदयाल मीतल	अग्रवाल प्रेस,मथुरा ।

क्रमांक	ग्रन्थ नाम	लेखक या सम्पादक	अन्य विवरण
४४	सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य	डा० शिवप्रसाद सिंह	प्रथम-संस्करण ।
४५	सूर और उनका साहित्य	डा० हरवंशलाल शर्मा	भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़ ।
४६	सूर-निर्णय	श्री द्वारकादास परिख एवं श्री प्रभुदयाल मीतल	अग्रवाल प्रेस, मथुरा ।
४७	सूर-मीमांसा	डा० ब्रजेश्वर वर्मा	ओरियन्टल बुक डिपो, दिल्ली ।
४८	सूर-सागर (भाग-१,२)	सम्पा० नंद दुलारे बाजपेयी ।	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
४९	सेवक-वाणी	सेवक	
५०	हवेली परम्परा	श्री ब्रजराय जी महाराज	अहमदाबाद ।
५१	हिन्दी काव्य में श्रृंगार काव्य परम्परा और महाकवि बिहारी	डा० गणपति चन्द्र गुप्त	
५२	हिन्दी का समस्यापूर्ति काव्य	डा० दयाशंकर शुक्ल	गंगा ग्रन्थमाला कार्यालय, लखनऊ ।
५३	हिन्दी नाटकों में अभिनय-तत्व	डा० ब्रजवल्लभ मिश्र	शोध-प्रबंध, राज० वि०वि०, जयपुर ।
५४	हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास	श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय	
५५	हिन्दी वाङ्मय का विकास	डा० सत्यदेव चौधरी	
५६	हिन्दी-साहित्य	डा० राम रतन भटनागर	
५७	हिन्दी साहित्य को गुजरात के संतों की देन	डा० रामकुमार गुप्त	
५८	हिन्दी वैष्णव साहित्य में रस-परिकल्पना	डा० प्रेम स्वरूप	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली ।

इतिहास-ग्रन्थ

क्रमांक	नाम ग्रन्थ	लेखक या सम्पादक	अन्य विवरण
१	भारत वर्ष का इतिहास	डा० ईश्वरी प्रसाद	
२	भारत वर्ष का इतिहास	भाई परमानन्द	
३	भारतीय संस्कृति की कहानी	डा० भगवत्सरण उपाध्याय	
४	भारतीय संस्कृति का उत्थान	डा० रामजी उपाध्याय	
५	मराठों का इतिहास	ग्रान्ट डफ, अनुवादक श्री लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	
६	मिश्रबन्धु विनोद	मिश्रबन्धु	
७	मुगल शासन-पद्धति	सर जदुनाथ सरकार अनुवादक विजय नरायन चौबे ।	
८	ब्रज का इतिहास (भाग-१,२)	श्रीकृष्ण दत्त बाजपेयी ।	
९	ब्रज का इतिहास	श्री प्रभुदयाल मीतल	
१०	वीर विनोद	कविराज स्यामल दास	
११	सम्प्रदाय कल्पद्रुम	विट्ठलनाथ भट्ट	
१२	संस्कृति के चार अध्याय	श्री रामधारीसिंह 'दिनकर'	
१३	हिन्दी साहित्य	सम्पा० डा० धीरेन्द्र वर्मा ।	द्वितीय खण्ड
१४	हिन्दी-साहित्य का आदिकाल	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ।	विहार राष्ट्र भाषा परि० पटना ।
१५	हिन्दी साहित्य का इतिहास ।	आ० रामचन्द्र शुक्ल	ना०प्र०सभा, काशी ।
१६	हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास (भाग-६)	डा० नगेन्द्र	वही ।

क्रमांक	नाम ग्रन्थ	लेखक या सम्पादक	अन्य विवरण
१७-	हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास (निर्गुण-भक्ति) भाग-४	पं० परशुराम चतुर्वेदी	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
१८-	हिन्दुई साहित्य का इतिहास	ग्रान्ट डफ, अनुवादक लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी, उ०प्र०, इलाहाबाद ।

कोश - ग्रन्थ

१-	हिन्दी साहित्य कोश	सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा	

पत्रिका

१-	भारतीय संस्कृति	डा० गोविन्ददास	
२-	हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का त्रै-वार्षिक विवरण		नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
३-	सरस्वती	अप्रैल, १९७२	

संस्कृत - ग्रन्थ

१-	अभिनव भारती	आ० अभिनव गुप्त	
२-	कृष्णाश्रय	महाप्रभु वल्लभाचार्य	
३-	काव्य प्रकाश	मम्मट, अनुवादक श्री विश्वेश्वर ।	
४-	काव्य-मीमांसा	राजशेखर अनु० पं० केदारनाथ शर्मा	बिहार राष्ट्र-भाषा परि०, पटना ।
५-	दस श्लोकी	निम्बार्काचार्य	

क्रमांक	नाम-ग्रन्थ	लेखक या सम्पादक	अन्य विवरण
६-	नाट्य शास्त्र	आचार्य भरत	
७-	भक्ति रसायन	मधुसूदन सरस्वती	
८-	मार्गस्वरूप निर्णय	गो० हरिराय जी	
९-	साहित्य दर्पण	आचार्य विश्वनाथ	
१०-	शिक्षा पत्र	गो० हरिराय जी	
११-	हरिभक्त रसामृत सिंधु	रूप गोस्वामी	
१२-	हरिराय वाङ्मुक्तावलि	गो० हरिराय जी	

गुजराती

१-	गोस्वामी हरिराय जी महाप्रभु नूं जीवन-चरित्र	सम्पा० श्री व्दारका दास परिख	
२-	गोस्वामी हरिराय जी महाप्रभु जी नूं जीवन-दर्शन (भाग-१,२)	एक वैष्णव	प्रकाशन, सावली ।
३-	श्री हरिराय जी नूं आख्यान	वही ।	

अंग्रेजी

१-	दी हिष्ट्री आफ मुस्लिम रूल इन इंडिया	डा० ईश्वरी प्रसाद माहेश्वरी ।	
२-	दी हिष्ट्री आफ मैड्यूवल इंडिया	डा० ईश्वरी प्रसाद माहेश्वरी	
३-	दी स्टेट एन्ड रिलीजन इन मुगल इंडिया	डा० एम० एल० रॉय चौधरी ।	

भेंट - वार्ता

१- आचार्य जवाहर लाल चतुर्वेदी	दिनांक- १०-८-७२
२- श्री प्रभुदयाल जी मीतल	,, २६-३-७३
३- श्री रतनलाल गोस्वामी	,, ३-११-७०
४- श्री ब्रजभूषण लाल जी महाराज	प्राय:
५- श्री ब्रजेशकुमार जी	प्राय:
६- श्री गोविन्द लाल जी महाराज तिलकायत,नाथद्वारा	नवम्बर, १९७१
७- लाला भगवान दास जी नाथद्वारा वाले	नवम्बर, १९७१